प्रबन्धकर्ता :—
लाला लक्ष्मीचंद रामलाल
जैनी सर्राफ, अम्बाला
शहर।

मुद्रक :—
अभय कुमार जैन
जिनेंद्र प्रिंटिंग प्रैस,
राजपुरा फोन 53

'शुक्ल" जैन महाभारत

की

अनुक्रमणिका

प्रस्तुत ग्रन्थ और लेखक के विषय में इससे पूर्व प्रथम तथा द्वितीय भाग में बता चुके हैं इस विषय में अधिक बताना दिवाकर को दीपक दिखाना है।

पुस्तक के लगभग 625 पृष्ठ हैं जब पुस्तक ही इतनी महान् है तो उसके रचयिता कितने महान् होगे यह तो पाठक गण अपनी प्रतिभा से विचार सकेंगे।

प्रूफ का संशोधन श्री रमेश मुनि जी महाराज तथा श्री सन्तोष मुनि जी महाराज ने अति ही सावधानी एवं प्रेम से किया फिर भी त्रुटि का रह जाना सम्भव है क्योंकि पुस्तक एक विशाल एवं विराट है।

उपरोक्त दोनों मुनि इस ग्रन्थ लेखक श्रमण संघीय पंजाब प्रान्त मन्त्री प० रत्न कवि सम्राट जैन धर्म भूषण परम श्रद्धेय श्री शुक्ल चन्द्र जी महाराज के ही शिष्य हैं।

जिन्होने अत्याधिक परिश्रम से प्रूफ संशोधन कर अनेक त्रुटियां निकाल दी फिर भी कोई त्रुटि हो तो धर्म प्रिय सज्जन सुधार कर पढ़े। प्रत्येक बन्धु का परम कर्तव्य है कि जैन महाभारत के आदर्श और उसके दृष्टि कोण पर चलने का भरसक प्रयास करे तथा अपना जीवन सफल बनाए तभी अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

जो स्थान गगन में प्रथम नक्षत्र को उपवन में प्रथम सुमन को माला में प्रथम मोती को प्राप्त है वही स्थान ग्रन्थों में प्रथम जैन महाभारत को है। इससे अधिक लिखने मे मैं समर्थ नही हुं विशेष पाठक गण स्वयं समझ लेंगे।

भवदीय :—

सुखदेव राज जैन

कोतवाली बाजार, अम्बाला शहर।

श्री आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार
जयपुर

प्रस्तुत ग्रन्थ लेखक के विषय में

पंजाब प्रान्त मन्त्री पं० रत्न कवि सम्राट परम श्रद्धेय पूज्य श्री शुक्ल चन्द्र जी महाराज के सुशिष्य सन्तोष मुनि "दिनकर" "प्रभाकर।"

साधु जीवन कठोर साधना तथा दुर्गम निष्ठुर पथ पर चलना और नाना प्रकार के परिषहों का सहना है। आप इस आधुनिक युग मे जैन धर्म के एक उज्ज्वल चमकते हुए दिवाकर तथा श्री वर्द्धमान् स्थानक वासी जैन श्रमण संघ के मन्त्री हैं। दिनकर से तेजस्वी, राकेश से ओजस्वी दिव्य ज्योति अमर विभूति विश्व प्रिय आप ने शांति क्रांति को जन्म देकर जो सत्यादर्श संघ समक्ष रखे उसका अखिल भारतीय श्रमण एव श्रावक सघ अभिनन्दन करते हैं। आप एक सस्कृति के प्रकाशक है।

शात और निर्भीक जीवन में प्रेम और सामंजस्य का जो विलक्षण समन्वय हुआ है उसी के नाते आप आज तक जैन समाज के लोक प्रिय लोक पूज्य और लोकवद्य बन रहे हैं। हमारी समाज मे आप एक अमूल्य चिंतामणि रत्न है। ज्ञान के भंडार और शान्ति के सिन्धु हैं।

शुक्ल जैन रामायण तथा शुक्ल जैन महाभारत जैसे महान् ग्रन्थों के रचयिता से ही आपकी प्रतिभा का परिचय हो जाता है। आप एक प्रतिभा सम्पन्न और प्रभाव शाली सजग साधु तथा साधुत्व की एक साक्षात् मूर्ति है। जैनागमो का आपने गहरा अध्ययन किया और विपुल हिन्दी साहित्य का भी।

इसके साथ २ संस्कृत प्राकृत गुजराती, मराठी आदि भाषाओं पर भी आपका अच्छा अधिकार है। उपरोक्त दो ग्रन्थो के अतिरिक्त और भी कई पुस्तकों का आपने प्रकाशन किया जम्बु चरित्र वीर मति जगदेव चरित्र मुख्य तत्त्व चिंतामणि अध्यात्म गुण माला धर्म दर्शन शुक्ल गीतांजलि नवतत्त्वादर्श भारत भूषण जगतविख्यात प्रधानाचार्य पूज्य सोहनलाल जी म० एव पजाब केशरी प्राकाण्ड विद्वान जैनाचार्य पूज्य काशीराम जी म० का आदर्श जीवन आदि अनेक पुस्तकों का आपने अपना अमूल्य समय निकाल कर प्रतिपादन किया।

अखिल भारतीय समाज आपका मनोहर नाम न लेकर पडित श्री जी के नाम से पुकारती है। पडित श्री के नाम की ख्याति इसी लिए नही कि आप केवल विद्वान् हो अथवा द्विज वंश कुलोत्पन्न हैं। बल्कि विद्वता के साथ-साथ गम्भीर दार्शनिक सैद्धान्तिक तथा कठिन से कठिन विषय का भी लोक भाषा में विवेचन करते हैं, और जैनागमों का गम्भीर ज्ञान तथा समझाने की विद्वता पूर्ण कला आप मे ही है। सरलता सहन शीलता प्रमुदित मुख शांत मूर्ति स्नेह सरल स्वभाव करुणा सिन्धु शान्ति सरोवर जैन धर्म के ज्ञाता आदि गुण आपके स्वाभाविक ही है। इस युग में आप हिन्दी संस्कृत के एक प्राकांड विद्वान् हैं।

और इसी से आप महान् हैं। आपकी सर्व श्रेष्ठ पुस्तकों का जनता ने हार्दिक स्वागत किया जो हाथों हाथ विक रही है।

अपने जीवन मे आप जो कुछ हमें प्रदान कर रहे हैं वह हमारे विचारों की पवित्रता आचरण की पावनता और आत्मा को शुद्धता के लिए प्रकाश स्तम्भ और अलोक मार्तण्ड को भांति है। आपने अपनी अमृतमयी प्रेम प्लावित जादू भरी बाणी द्वारा अनेक स्थानो पर धार्मिक एवं सामाजिक सुधार कर समाज मे स्नेह की सुन्दर निर्मल एवं मगलिक कल्याण कारी मन्दाकिनी प्रवाहित की हैं। आप जैसे महान् ज्योतिंधर पर जैन समाज जितना भी अधिकाधिक गर्व करे उतना ही थोड़ा है। आप सत्य अहिंसा क्षमा शान्ति के एक साक्षात् अवतार हैं। आप की ओजस्वी वाणी ने जनता के समक्ष जादू का कार्य किया।

भारत भूषण जगत विख्यात अखिलय भारती श्रमण संघ के

प्रधानाचार्य पूज्य सोहन लाल जी महाराज पंजाब केशरी प्राकाड विद्वान् जैनाचार्य हृदय सम्राट पूज्य कांशी राम जी महाराज की भांति आप भी अपने पथ पर निर्भयता से अग्रसर हो रहे हैं .और उन्ही के सत्यादर्शो पर चल रहे है सत्य अहिंसा पथ पर अग्रसर होते हुए श्रमण सस्कृति के अमर देवता अहिंसा मूर्ति प्रेमावतार क्षमा सिन्धु केवल ज्ञान दर्शनाराधक करुणाभण्डार श्रमण भगवान महावीर का धर्म प्रचार्थ कर सम्वत २०२० का चातुर्मास जैन सघ की आग्रह भरी बिनती पर अम्बाला शहर स्वीकार किया।

आपने अपनी विशेषताओ से अपने आदर्शो से जन-हित कार्यों से और अपने महान् गुणो से इस निरस मानव लोक का तिमिर प्लावित मानव ससार को जैन धर्म रूपी दिवाकर की किरणें विस्तृत कर चमत्कृत कर दिया और जो मुरझाया हुआ तथा शुष्क उपवन था वह हरा भरा तथा लहलहाता हुआ बना दिया। और आप ने दानवता के स्थान पर मानवता ग्रहण करना स्वार्थ वृति तज कर परमार्थ वृति जागृत करना विश्व कल्याण में ही निज कल्याण की भावना रखना तथा अन्य की भलाई के लिए अपने प्राणों की आहुति दे देना आदि इस प्रकार के उपदेश सुनाकर जनता को मत्र मुग्ध बना दिया।

आप एक लोक प्रिय सन्त और जनता की श्रद्धा भावना के केन्द्र है साधुवो की व्यवस्था मे आप श्री हम सब के लिए एक आदर्श हैं। श्रमण सस्कृति मानव सस्कृति जैन सस्कृति का रहस्य बतलाते हुए आप ने फरमाया था कि जो सुख शान्ति दूसरे को देने मे है वह लेने मे नही जो आनन्द अन्य को देने मे हैं वह लेने में नही जो त्याग मे है वह भोग मे नही वही स्वर आज भी हमारी जैन समाज मे गूंजायमान हो रहा है।

सघ शिरोमणि चरित्र नायक चूडामणि, चितामणि रत्न प्रातः स्मरणीय कवि सम्राट केशरी मम विशाल कार्य तप पुतः ब्रह्मचर्य से तेज युक्त प्रफुलित वदन दिव्य ज्योति सुडोल भव्य शरीर हस्ती वत गम्भीर चाल चितन शील नयने नवनीत सम मृदु हृदय उन्नत ललाट तेजो मय मुख स्वर्ण रूप सरस सरल कोमल ओजस्वी प्रवाह मयी प्रभाव शाली जादू भरी अमृत मयी वाणी आदि गुणों सहित गुरुदेव

आपने केवल पजाव प्रांत मे ही नहीं महाराष्ट्र, सौराष्ट्र,वम्वई, वंगाल विहार, राज्यस्थान गुजरात, काठिया वाड, यु पी. एम. पी. पी. वी एस. पी. मैसूर आदि अनेक प्रांतो मे पैदल पर्यटन कर मधुर धर्मोपदेश द्वारा जनता का कल्याण किया और अव कर रहेहैं तथा सन् 1947 से पूर्व रावलपिंडी, गुजरांवाला, लाहौर, पसरूर, कसूर, स्यालकोट आदि मे किया जो आज हमारे लिए विदेश वन कर पाकिस्तान में सम्मिलित है।

आप अपने जीवन काल में कल्याणकारी लोक राज अहिंसात्मक विश्व वन्धुत्व एवं अध्यात्मिक साधना की पराकाष्टा को स्थापित कर रहे हैं आप जीव विज्ञान के आचार्य हैं। आपका समग्र शरीरिक दर्शन ही जिस भाग्यशाली पुण्यवंत नर को उपलब्ध हो गए वह सदा के लिए कृत कृत्य हो गया उसका जीवन सफल एवं उच्चकोटि का वन गया। इस लोक मे तथा परलोक मे सुखमय वन गया।

आप हमारी समाज में एक दिनकर सदृश्य है जिस प्रकार दिवाकर की सहस्रों किरणें प्रचण्ड एव प्रखर विस्तृत हो रात्रि तिमिर को नष्ट कर प्रकाश से जगमगा देता है परन्तु वह मार्तण्ड तो केवल रात्रितम का ही हरण करता है जो भौतिक है परन्तु आप की जैन धर्म दिवाकर की कोटि-कोटि किरणें ज्ञान का अलोक धर्म का प्रकाश अध्यात्मिक मानव हृदय को आलोकिक करती हुई असार ससार नश्वर नास्वान तथा क्षण-भगुर विश्व को त्यागने तथा सयम रूपी अमूल्य रत्न ग्रहण करने की प्रेरणा देती है।

आपके जीवन की प्रत्येक घटना एक आदर्श मयी हैं और उस का वर्णन भी इसी लिए करते हैं कि ससार-ससार के मिथ्या चक्कर से वचे पुण्य-पाप, सत्य-असत्य, हिंसा-अहिंसा की पहिचान करें और धर्म से सम्बन्ध योग कर जन्म मरण बन्धन तोड कर अष्टकर्म रहित अजर अमर निराकार अरूपी अविकार सच्चिदानन्द सकल विश्व एव त्रयलोक दृष्टिगोचर स्वर्ग एव दोजख का ज्ञाता परमात्मा स्वरूप वन सकता है। आप का हृदय नवनीत सम मृदु शिशु सम सरल मानों प्रम सरिता प्रवाहित हो रही है परन्तु नियम पालन तथा सयम क्रिया मे बज्र से भी निष्ठुर है इसमे तनिक सन्देह नही। भीनासर, अजमेर सादड़ी सोजत बीकानेर जहा भी मुनि सम्मेलन हुए आपने

सर्व में भाग लिया और प्रत्येक में सफलता आपके पावन पदपंकज चूमने लगी सैकडों साधुवों में आप का तेज निराला ही था वास्तव में शुक्ल सचमुच ही शुक्ल हैं मानो शुक्ल ध्यानी शुक्ल लेश्या के धारक हैं। मुख पर ज्योति दमदमा रही है कितनी सहन शीलता कितनी शांति कितना साहस उत्साह प्रेम कितना स्नेह धन्य है आप के जीवन को वारम्बार धन्य हैं आपके सयम को गुरु देव धन्य है।

आपका प्रारम्भ से ही श्रमण संघीय निर्माण में अत्याधिक प्रेरक हाथ रहा है। सन् 1957 में देहली विश्व धर्म सम्मेलन में आप सब साधुवों से प्रतिनिधि थे। सम्मेलन के लगभग 300 प्रतिनिधियों मे आपके चेहरे पर जो शान्ति चमक रही थी जो तेज चमत्कृत का वह अन्तर्राष्ट्रीय जगत के धार्मिक प्रतिनिधियों को जैन धर्म को त्याग मयी साधना और आत्मतेजस्विता के प्रति बरबश आकृष्ट कर रही थी उसकी सफलता का कारण आपकी कृपा दृष्टि ही है। आप भव्य भद्रात्मा ज्ञान दर्शन चरित्र के आराधक और दृढ़ संयमी साधक है सहानुभूति स्नेह प्रेम और सरलता का झरना तथा अहिंसा दया करुणासत्य ज्ञान तप का सरोवर निरन्तर एव अविरल प्रवाहित होता रहता हैं।

आपने ही जनता के हृदय की भावना को सम्मान देते हुए बड़े बड़े ग्रन्थों का काव्यात्मक भाषा मे निर्माण किया अभी जैन महा' भारत के पीछे भी आपका उद्देश्य जन कल्याण हो रहा है इसका प्रथम भाग तो प्रकाशित हो चुका था यह द्वितीय खड प्रकाशित हो रहा है। यह शुक्ल जैन महाभारत जैन आचार जैन इतिहास और जैन दृष्टि कोण के विषय में भी नवीन प्रकाश एव अलोक दिखाएगा ऐसा सम्पूर्ण मुझे विश्वास है।

सघ संगठन समाज की एकता और सघ की भलाई तथा दूसरों के परमार्थ के लिए आपने युवाचार्य जैसे महान् पद का भी त्याग कर दिया यही है आपके जीवन की एक महान् और महत्व पूर्ण विशेषता यही है आपके जीवन का एक सत्यादर्श।

निर्ममता और निस्वार्थता आपके हृदय की ठोस वस्तु हैं आप मानव जीवन धर्म दर्शन समाज और सस्कृति के विभिन्न विषयों पर गूढ विचार रखते हैं आप स्वछन्द विचार शैली विशिष्ट कल्पना

शक्ति एव मौलिक चिन्तन शीलता के परिचायक है । मानव जीवन को नवीन मोड देने नवीन दिशा दिखाने विकास पथ पर बढ़ने एवं प्रगति करने के लिए सहयोग देने में पूर्णतः समर्थ है आपने श्रमण संघ का जो कार्य एव निर्माण किया वह अद्वितीय है ।

अतीत काल मे श्रमण सघीय निर्माण मे आपने भरसक प्रयास किया वर्तमान में अत्याधिक प्रयत्न कर रहे हैं और भविष्य में अत्यंत चेष्टा करेंगे । ऐसी शुभाशा है ।

शासन देव से प्रार्थना है कि आपको दीर्घायु दे आपकी छत्र छाया मे रहते हुए चतुर्विध सघ प्रगति कर रहा है आपका आशीर्वाद और आपका साया करोडों वर्ष तक जैन समाज और अपनी शिष्य मंडली पर रहें यही मेरी एक हार्दिकाभिलाषा एवं कामना है। विशेष परिचय जानने के लिए जैन महाभारत के तृतीय भाग मे पढ़ें।

हार्दिक उद्‌गार

जैन धर्म दिवाकर पूज्य वर भव्य जीवों के तारण हारे हैं ।
आशाओं के केन्द्र हमारे निर्मल शशि उजियारे हैं ॥
शान्ति सिंधु क्षमा दया और ज्ञान गुणी भडारे हैं।
सहन शीलता करुणानिधि अद्‌भुत उज्ज्वल पुण्य सितारे है ॥
तेजस्वी "दिनकर" ओजस्वी इन्दु प्रम मन्दाकिनी वहाते हैं।
राजे और महाराजे सारे चरणन शीष निवाते हैं ॥
पजाब प्रान्त मन्त्री क्या-क्या गुण आपके गायें हम।
गुरु देव आपके चरणन मे श्री सादर शीष झुकाये हम ॥
प्रधानाचार्य भारतभूषण जगतविख्यात पूज्य सोहनलाल जी म०कीजय
पजाव केशरी जैनाचार्य प्रकाड विद्वान पूज्य काशीराम जी म० की जय
श्रमण सघीय मंत्री कवि सम्राट प०रत्न पूज्य शुक्ल चन्द्र जी म०कीजय

ओम शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

भवदीय :—मुनि सन्तोष "दिनकर"

प्रधानाचार्य सवत् 28
भादव शुक्ला पचमी
सवत् २०२०

महावीर सवत् 2489
23 अगस्त सन्
1963
श्री महावीर जैन भवन
अम्बाला शहर (पजाव)

शुक्ल जैन महाभारत

* प्रथम परिच्छेद *

पाण्डु की विरक्ति

पूर्व कर्म के हाथ में है जीवन की डोर
शुभ होवे तो मिल जायेगा जग उलझन का छोर
घोर तिमिर भी छट जाता है, होती है जब भोर
भटक भटक कर सरिता, पहुंचे सागर के ही ओर

श्वेत छत्र से सुशोभित पाण्डु नृप को वन क्रीड़ा करने की इच्छा हुई। चचल अश्व, मदोन्मत हाथी और सुन्दर, सुसज्जित रथ तैयार हो गए, चारों प्रकार की सेना सज गई। सौम्य सुन्दरी कमल मुखी माद्री भी पति आज्ञा से सोलह शृङ्गार करके तैयार हो गई। नृप महल से निकले तो अनेक प्रकार के बाजे बज उठे। माद्री पालकी मे सवार हो गई। अश्व चचल हो गए। और नृप अपनी सेना के साथ वन की ओर चल पड़े। वन में पहुंच कर सेना को एक स्थान पर रोक कर नृप और माद्री सघन वन में चले गए, वहां जहां प्रकृति सोलह शृङ्गार कर के मदनोन्मत्त थी। नृप कभी ताल वृक्षों की शोभा देखता, कभी सरल सरस वृक्षों पर दृष्टि जमा देता, और कभी मजरियों की सुगध से परिपूर्ण, सुगन्धित आम्र वृक्ष उसे अपनी ओर आकर्षित कर लेते। अशोक वृक्ष, जो कामिनियों के पैरों की ताड़ना से हरे भरे हो जाते हैं, नृप को अपने यौवनोन्मादी शरीर को एक टक देखने के लिए आमन्त्रित करते तो प्रमदाओं के

कुल्लो से सींचे गए बकुल के वृक्ष उसको ओर अपने कर पसार देते। कभी कुसवक वृक्ष उस की दृष्टि हर लेते तो कभी मदोन्मत्त भ्रमरों के मधुर संगीत उसके चित्त को बाहु पाश मे आवद्ध करने की चेष्टा करते। और वह कोयल कूक रही है, कानों मे माधुर्य घोलती हुई नृप और माद्री के शुभ गमन पर अभिनन्दन राग अलाप रही है। जल प्रपात अपने हिये को वाणा पर तरल तरंगो का, कि भौरयों के मधुर कण्ठ को भा लज्जित करने वाला राग नृप के हृदय को गुद गुदा रहा है और कहीं विभिन्न एव विचित्र रगो के पक्षो किलोल करते हुए मन मे आ बसने के लिए लालायित दीखते है। सारी प्रकृति ही मद भरी है। ऐसे मादक वातावरण में भला कौन कायर अपने हृदय पर काबू रख सकता है। नृप कभी प्रकृति के शृङ्गार को देखता तो कभी माद्री की घोर काली केश लताओं मे उलझ जाता। वह माद्री के साथ बन के स्वच्छन्द पशु पक्षियो की नाईं क्रीडा करने लगा। उस ने चन्दन के रस से, अगरुद्रव के मर्दन से, सुगधित द्रवा के निक्षेप से, उस चित्ताकर्षक एव सुन्दर बन पशुओं के चचल कटाक्ष सहित निरक्षिण से इस प्रकार महाराजा, राजरानी माद्री के सहित, जिस समय प्रकृति नदी के मनोरम रूप सुधा का आस्वादन करने मे तल्लीन थे, उसी समय एक ऐसी अकल्पित घटना घटी कि जिसने उनका आमोदमयी जीवन-सरिता के प्रवाह को ही मोड दिया। उस मद भरे सरस सुन्दर वातावरण मे, जहाँ लता वितानों पर मुखरित पुष्पो की मनमोहक सुगन्ध पर भ्रमरगण अपनी 'राग रागिनिया ध्वनित कर रहे थे। सहसा एक हृदयद्रविक चीत्कार कर्ण कुहरो मे गूजने लगा। उस आर्तनाद से वह समस्त बन-प्रदेश मानो प्रकम्पित हो रहा हो। जिससे धर्मात्मा पांडुनरेश के दयालु हृदय को बड़ा आघात पहुचा और वह एक क्षण का भी व्याघात न करते हुए शब्दानुसरण करते हुए उस स्थल पर पहुँचे जहां एक भोला मृग किसी लुब्धक के तीक्ष्णवाण से आहत होकर कराहता हुआ छट पटा कर अपनी जीवन लीला को समाप्त कर रहा था। और उसको प्रेयसी उसकी ओर व्यथित दृगों से अश्रुपूर्ण नेत्रों से खड़ी देख रही थी। पांडुनृप को उपस्थित पाकर मृगी का हृदय और भी चचल हो उठा। वह दैन्यभाव से एक बार नरेश की तरफ देखती, 'तो

दूसरी बार अपने म्रियमाण प्रियतम की ओर। जैसे कि कह रही हो कि क्या आप इसी न्यायपद्धति एवं बलवूते पर हम निरीह वन वासी प्रजा की पालना करते हैं। क्या हमने किसी को मारा था अथवा हम किसी का धन चुराते हैं ? जिसके उपलक्ष्य में आपके साथियों ने इतनी निर्दयता एवं कठोरता से मेरे पति का वध किया है ? मैंढ ही खेत खाने लगे तो उसकी रक्षा कैसे हो सकती है यह तो रक्षक के ही भक्षक बन जाने जैसी बात हुई ! केवल घास तृण खाकर ही जीवन यापन कर देने वाले मेरे पति को मार कर राजन् आप के साथियों को क्या मिला ? भूपति, हिरणी के दुःख तप्त हृदय से निःसृत आर्तनाद को हृदय कर्णों से श्रवण कर रहे थे । उसी की जाति के एक सदस्य के द्वारा उपस्थित किये इस पैशाचिक कांड ने नर नाथ का हृदय विदीर्ण कर दिया था। हिंसारूपी रंग में रंगे मानव रूपी दानव की दानवता से राजा का शरीर सिहर उठा था । उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि मानो समस्त चराचर जगत को अपनी सुखद गोद में भरण-पोषण एवं विश्राम प्रदान करने वाली प्रकृति देवी मनुष्य का उपहास उड़ाती हुई शिक्षा दे रही हो कि—ऐ मानव ! तू सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी हो कर भी मानवता के अभाव मे पशुओं से भी निम्नतर है। तू उनके उपकार मे, उनके श्रम से उत्पन्न अन्न, वस्त्र, फल, फूल, दूध, दधि, घी, मक्खन आदि अमृत का सेवन करके स्वयं तो जीवित रहना चाहता है। पर अपने जघन्य स्वार्थवश इन जीवित दाताओं को जीवित नही रहने देना चाहता ! यह तेरी कैसी कृत-घ्नता है ! यदि मानवाकृति प्राप्त की है तो मानवता का यह आदि सूत्र भी सदा सर्वदा स्मरण रख कि—

—दशवैकालिक सूत्र ४, ९

संसार भर के प्राणियों को अपनी आत्मा के समान समझो, यही अहिंसा की व्याख्या है और यही अहिंसा का भाष्य, महाभाष्य तथा कसौटी है । (अहिंसा जो कि मनुष्यत्व का प्रमुख अङ्ग है। जिस दिन जिस घड़ी मे तू अपने जीने का अधिकार ले कर बैठा है वही जीने का अधिकार सहज भाव से दूसरों के लिए भी देगा, तो मेरे अन्दर दूसरों के जीवन की परवाह करने की मानवता

जागेगी, दूसरों के जीवन को अपने जीवन के समान समझेगा, और सब प्राणी तेरी भावना में तेरी अपनी आत्मा के समान बनने लगेंगे और सारे संसार को समान दृष्टि से देखेगा, और समझेगा कि जो वस्तु मुझे प्रिय है वही इन्हें भी है क्योंकि—

सव्वे पाणा पिया उमा, सुहसाया, दुख पड़िकूला, अप्पिय वहा, पियाजी विणो, जीविउकामा । सव्वेसिं जीवीयंपियं ।

अर्थात — सब जीवों को जीवन प्रिय है और सभी जीना चाहते हैं सुख के लिए तरसते हैं और दुख से घबराते है अत: प्राणियों के जोवितव्य एव सुख का यदि तू निमित बनने को तैयार रहता है तो तभी समझना कि तेरे अन्दर अहिंसा है अर्थात तू वास्तव मे मानव है ।

सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउ न मरिज्जिउं ।
तम्हा पाणवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंति णं ॥

सब जीव जीना चाहते हैं, कोई मरना नही चाहता । सभी को अपने जीवन के प्रति आदर और आकांक्षाए हैं । सभी अपने लिए सतत प्रयत्न शील है । अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं, सत्ता के लिए जूझ रहे हैं सो जैसा तू है वैसे ही सब है । भगवान कहते हैं कि इसी लिए मैंने प्राण बध अर्थात हिंसा का त्याग किया है । और दूसरों को सताना छोडा है । स्वयं को सताया जाना पसन्द होता तो दूसरो को सताना न छोडते । मर जाना पसन्द होता तो मारना न छोड़ते । मगर सभी प्राणियों के जीवन की धारा एक है ।

तुमसि णाम तं चेव जं हत व्वति मण्णसि
तुमसि णामतं चेव जं अज्जावेयव्वंति मण्णसि,
तुमंसि नाम तं चेव जं परियावेयव्वति मण्णसि,

एव जं परिछेत्तव्वंति मण्णसि, जं उद्धवेयव्वंति मण्णसि,

भजू चेयं पडिवुद्ध जीवी मम्हा ण हंता-णविघायए,
अणुसंवेयणमप्पाणे णं जं हंतव्वं णाभिपत्थएँ।

तुम जिस जीव को कष्ट देने योग्य, परिताप उपजाने योग्य यावत मारने योग्य समझते हो वह प्राणी तुम्हारे समान ही शिर पैर, पीठ और पेट वाला है। यदि कोई प्राणी तुम्हें दुख देवे यावत् मारने के लिए आता हो तो उसे देख कर जिस प्रकार तुम्हें दुख होता है। उसी प्रकार दूसरे जीवों को भी होता है। अथवा जिस काय को तुम हनन करने योग्य मानते हो उस काय में तुमने हजारो बार जन्म धारण किया है, इस लिए यह समझो कि तुम ही हो। इस प्रकार विचार करके जो पुरुष सब जीवों को आत्म तुल्य मानता है, वही श्रेष्ठ है। जो जीवों की हिंसा की जाती है उसका पाप स्वय जीव को ही भोगना पडता है। अतः किसी भी प्राणी की स्वय घात न करे, न दूसरो से करवाये, और करने वालों को अनुमोदना भी न करे।

शास्त्र मे एक अन्य स्थान पर कहा गया है :—

सव्वेपाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता ण
हंतव्वाण अज्जा वेयव्वा ण परिघेतव्वा ण परिया
वेयव्वाणउद्वेयवा, एस धम्मे सुध्दे णिइए सासए।

—अर्थात एकेन्द्रिय से ले कर पंचेन्द्रिय तक किसी भी प्राणी की हिंसा न करनी चाहिए, उन्हें शारीरिक व मानसिक कष्ट न देना चाहिए। तथा उनके प्राणों का नाश नही करना चाहिए। यह अहिंसा धर्म नित्य है, शाश्वत है। हिंसा तीन काल में भी सुख देने वाली नही है। दया उत्कृष्ट धर्म है।

दया-नदी महातीरे, सर्वे धर्मास्तृणाङ्कुराः।
तस्या शोषमुपेतायाँ प्रियन्नन्दति ते चिराम ।१॥

ऐन्द्रिक लोलुप्ता के वशवर्ती मानव द्वारा किये जाते क्रूर कर्मों

को स्मरण कर-कर राजा का मन ग्लानि से भर उठा था जिस के कारण पांडु नृप का मन समार, शरीर और भोगों से विरक्त हो गया कहां तो वह विषयानुरागी था और कहां उसने यह सोच कर कि भोग से अन्य पापो के झझट मे उलझ कर आत्मा के धर्म को भूल गया हूं, मुझे अपनी आत्मा के लिए भी कुछ करना चाहिए, मुक्ति के लिए भी कुछ करना है. यह तो मेरा जीवन ही सब व्यर्थ जा रहा है, संसार के सारे मोह बधन तोड़ डाले इसी लिए तो काल लब्धि एक ऐसी वस्तु है जो जीव की भवितव्यता के अनुसार उसके भाव और तद स्वरूप क्रिया कर देती है। पाण्डु नृप उस समय विचारने लगा— इन्द्रिय विषय प्राणियों के लिए दुर्गति मे ले जाने वाला है। जहा वृथा ही प्राणवध हो उसमें मेरी क्या सिद्धि? जिस राज्य काज से पाप हो भला उससे मेरा क्या सम्बन्ध? फिर शास्त्रों मे पढा ज्ञान उसके मस्तिष्क मे उभर आया— "इस जीव ने अनन्त बार मनुष्यादि पर्याय धारण करके विषय सुख भोगे, उन से ही जब तृप्ति नही हुई तब अब कैसे तृप्ति हो सकती है,"— फिर वह सोचने लगा।— "जो एक बार भोगी जा चुकी वह तो जूठी हो गई, ससार मैं कौन ऐसा बुद्धिमान जो उच्छिष्ट खाना पसन्द करेगा? फिर विषय भोगते समय ही सुहावने लगते हैं, उत्तर-काल मे नीरस हो जाते हैं, बल्कि विष समान प्रतीत होते है अतः विषय सेवन जीव को कोई सुख देने वाली चीज नही है, वह तो रोग का प्रतिकार है इसा लिए आचार्यों ने ऊपर के स्वर्गों मे प्रविचार का नहो होना ही सुख बतलाया है। विषय सुख अनित्य है क्षण स्थायी है। कुछ देर चमत्कार दिखा कर नष्ट हो जाने वाला है। नृप विचार करता है कि हे आत्मन! तूने अनन्त काल तक विषय सुख भोगे पर तृप्ति न हुई, परन्तु अब तो सन्तुष्ट हो। इस समय तो तुझे सब अनुकूल साधन मिले हुए है। याद रख, ससय पाते हुए तू यदि नही चेता तो कर्म का एक ऐसा झकोरा आयेगा कि पीछे ढूण्ढे भी पता नही लगेगा। दूसरी बात यह है कि यदि तू समझकर भी इन विषयो से विरक्त नही होता है तो एक दिन वह आयेगा कि तुझे ही यह विषय छोड देंगे। इस लिए समझदारी इसी मे है कि तू पहले ही इनका परित्याग करदे और और उस पथ पर पग बढा जिससे तेरा कल्याण होगा। पदार्थ

मे रत रहने से जीव का कभी कल्याण नही होता यह निश्चय समझ पाण्डु नृप कुछ देर तक विचार मग्न रहे और फिर कुछ निर्णय करके अपने आप से ही बोले —" अब तक मैं मोह के फन्दे मे पड़ा हुआ था, अब मैं प्रति बुद्ध हुआ। इस समय मैं आत्म सुख से सुखी हूं। मुझे सन्तोष है और आत्मा के सच्चे सुख का अभिमान है। अब मुझे-स्त्री प्रेम से कोई प्रयोजन नही।

कामी पुरुष विषय भोगों में तन्मय हो कर अपने भोजन को अपने विवेक को, वैभव और वडप्पन को, यहा तक कि जीतव्य को छोड़ देते है, कामी राजा अपने राज्य धर्म को भूल जाते हैं, उन्हे अपने कर्तव्य, न्याय अन्याय, का भी ध्यान नही रहता, वे मिथ्यात्व के कारण अकरणीय कार्य भी करने योग्य बना लेते है। यह उनकी गिरावट की चरम सीमा आ जाती है। पर कामासक्त होने का कारण हमारा साहित्य भी है। साहित्यकार भी कामासक्त हो कर साहित्य को मानव जाति को नष्ट कर डालने योग्य रच डालते हैं। वे पेट के लिए विषयानुरागियों को प्रसन्न एव आनन्दित करने के लिए कामोत्तेजक कविताएं कह डालते है, जिनका सारे समाज पर प्रभाव पड़ता है पर जिस व्यक्ति की हृदय की आँखें खुली हैं वह जानता है कि जिन कुचों को सुवर्ण के कलश अथवा अमृत के दो घड़े बताया गया है वे मांस के दो पिड है। जो स्त्री मुख श्लेष्क-खकार और थूक का घर है, उसको उपमा दी जाती पूर्ण चन्द्रमा को, इसीलिए स्त्रियों को चन्द्र मुखी कहा जाता है। सीधे सीधे नेत्रों को, जहाँ निद्रा उचटन के पश्चात मल घृणास्पद मल ही मिलता है, मृगलोचन कह कर प्रशंशा की जाती है। इसी प्रकार स्त्री के अन्य अगों की वडी सुन्दर वस्तुओं से उपमा दी जाती है, इस प्रकार पाठकों के हृदय मे कामाग्नि प्रज्वलित हो जाती है। पाण्डु राजा सोचता है वास्तव मे यह हमारी आखें हैं, और हमारे भाव हैं जिसे अच्छा समझे उसकी हर बुराई को भी भलाई के रूप मे देखते हैं। स्त्री का रूप देखकर वेकार ही उत्तेजना आ जाती है। वास्तव में वह तो सात धातुओं का पिड है, नश्वर है, माया का स्थान है, फिर भी तू रागान्ध हो कर उसमें आसक्ति करता है, आश्चर्य है तेरी बुद्धि पर।" उसे अपने अब तक के

चरित्र से घृणा होने लगी और वैराग्य उसके हृदय मे अंकुरित हो गया। फिर उसे माद्री की आखो में मादकता दिखाई नही दी। उसके नेत्रों के सामने से विषय वासनाओं का आवरण दूर हो गया। फिर उसने अपनी वैरागी आंखों से अपने चारों ओर देखा कही उसे मादकता दिखाई नही पड़ी किसी भी सौंदर्य ने उसे अपनी ओर आकर्षित नही किया। वह चारों ओर देखता हुआ घूमने लगा। उसी समय उसे मुनि दिखाई दिए। वह उनके पास गया। क्योकि वह जानता था कि सच्चा सुख उन्ही के मार्ग मे है। मुनिगण का नेतृत्व करने वाले मुनि श्री सुव्रत जी थे, वे व्रतों से युक्त थे, सर्वाविधि ज्ञान के घारक थे, गुप्ति और समिति के पालन कर्ता एव षट काय के जीवों की रक्षा करने वाले थे। वे भव–तन भोगो से एकदम विरक्त थे और सदा आत्म चिन्तन में ही लगे रहते थे। बारह भावनाओं का चिन्तन करने वाले बाइस परीषहों को जीतने वाले उन मुनि जी की तपश्चर्या बहुत बढ़ी थी, इसी लिए उनका शरीर क्षीण हो गया था। वे जितेन्द्रिय व क्षमा के भण्डार थे। अक्षय सुख भोक्ता थे वे कभी स्त्रियों के तीक्षण कटाक्ष–बाणो के लक्ष्य नही हुए थे। उनका पक्ष उत्तम था। वे प्रतिक्षण ही कर्मों को निर्जरा करने मे लगे रहते थे। उन्होने इन्द्रिय जन्य सुख की तिलाजलि दे दी थी। बड़े बड़े राजा महाराजा जिनके चरणो की सेवा करते थे उन महान योगी सुव्रत मुनि के चरणों में पाण्डु नृप जा गिरा। मुनि राज ने धर्म वृद्धि का आशीर्वाद दिया और कहा– राजन् इस ससार वन मे यह जीव सदा ही चक्कर लगाता रहता है। जिस प्रकार अरहट की घड़ी तनिक भी नही ठहरती वह घूमती ही रहती है। जो पुरुषार्थी पुरुष हैं वे सदा ही धर्म का सेवन किया करते है। वे अपना एक क्षण भी व्यर्थ नही खोते क्योंकि निश्चय नही है कि एक क्षण मे क्या कैसा होता। धर्म दो भागो में बाटा गया है एक श्रावक धर्म और एक मुनि धर्म। धर्म के धारण करने कराने से ही जीव भव भ्रमण से छूट सकता है और कोई दूसरा उपाय नही है। योगी अथवा मुनि धर्म के पांच महाव्रत, पाच समिति, तीन गुप्ति इस प्रकार तेरह प्रकार से पालन होता है।" इसके उपरान्त सुव्रत मुनि ने मुनि धर्म और श्रावक

धर्म को सविस्तार व्याख्या की और अन्त में बोले—मुनि धर्म से मोक्ष और श्रावक धर्म से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। अतः राजन्! तुम परमोपकारी धर्म का पालन करो। अब तुम्हारी आयु बहुत ही कम रह गई है। इस लिए अब तुम भली प्रकार सावधान हो जाओ, विषयो से अब प्रीति मत करो। मानव जीवन को व्यर्थ मत बनाओ। मेरा तो यही मत है कि अब तुम एक क्षण की भी देरी मत करो, विधि पूर्वक धर्म पालन करो इसी में कल्याण है।

मुनि जी के धर्मोपदेश से पाण्डु नृप के नेत्र खुले और उसने विषयो की ओर से मन हटा कर धर्म की ओर प्रीति लगाई। माद्री के साथ अपने महल को वापिस गया। महल से जाते समय वह ससाराभिमुख था, पर वापिस आते समय वह आत्माभिमुखी न चुका था। उसने धृतराष्ट्र तथा विदुर को अपने महल मे बुलाया और सारी घटना कह सुनाई। तदुपरान्त अपने निर्णय को उनके सामने रखते हुए कहा—"मैंने अपना पथ खोज लिया है। मेरी आयु के बहुत ही कम दिन शेष रह गये है अब मे इस बहुमूल्य समय को धर्म ध्यान मे व्यतीत करना चाहता हूं अत एव राज-काज भार से मुक्त होना चाहता हूं।"

धृतराष्ट्र ने सारी बात सुन कर कहा धर्म पथ पर जाने वाले को रोकना कदापि भला नही है। यद्यपि हमारे हृदय मे बसा भ्रातृ स्नेह यह पसन्द नही करता कि आप हम से अलग हों। पर क्या करे, वैराग्य का अकुर जिस के हृदय मे उत्पन्न होता है उसे कोई भी नही रोक सकता।

जब पाडु के निर्णय की कुन्ती को सूचना मिली तो वह करुण क्रन्दन करने लगी। माद्री तो पहले से ही दुखी थी। पर उस की प्रिय रानियों का रुदन भी पाण्डु को विचलित न कर सका। उसने उन्हे सम्बोधित करके शांत भाव से कहा—'इस संसार में यह जीव कभी इस गति से उस गति मे, और कभी उस गति से इस गतिमें चक्कर लगाता हुआ घूमता रहता है। फिर मुझे किसी न किसी दिन तो इस ससार को, तुम्हें और राजपाट को छोड़ कर चले ही जाना है, कोई नई बात मे नहीं कर रहा।

इस लिए दुखी होने की क्या बात है ? विचारो, कि भरत चक्रवर्ति जो कि छ खण्ड का अधिपति था, जिस ने भूमण्डल को जीत कर अपने वश मे किया, वह भी काल से न बचा तो हमारी तुम्हारी तो बात ही क्या है? यह काल वली अजेय है । बात यह है कि इस भव सागर मे चक्कर लगाता हुआ कोई भी व्यक्ति सनातन शाश्वत नही रहा, इस लिए किस के लिए शोक किया जाय। इन भोगों से किस सत्पुरुष का मन उचाट नही हुआ । मैं चाहता हूं कि जो थोडी सी आयु शेष रह गई है उसको अकारत न जाने दो क्या तुम यह चाहती हो कि मेरी आत्मा इसी संसार में व्याकुल घूमती रहे। मैं कभी शाश्वत सुख न पा सकू मैं जानता हू कि तुम मुझे सुखी देखना चाहती हो, अत· मुझे विदा दो।"

इस प्रकार रानियो को समझाया और मुक्त हस्त से दान देना आरम्भ किया। दीन दुखियो मे अपार धन राशी वितरित की थी । अपने पाचो पुत्रों को बुलाकर उन्हे उन के कर्तव्य समझाए और राज्य भार धृतराष्ट्र को देकर बोले-भाई ! मेरे इन पाचो पुत्रों को अपना ही पुत्र समझ कर इनका लालन पालन करना।"

धृतराष्ट्र जो चक्षु हीन थे, बोले "भ्राता विश्वास रखो कि आज से मैं १०० के स्थान पर अपने १०५ पुत्र समझूगा ।"

जब विदा का समय आया तो पाण्डव रोने लगे। पाण्डु मुस्कराने लगे, कहा—"तुम तो वीर सन्तान हो तुम्हारी आखों मे आसू शोभा नही देते। आज तुम्हारा पिता धर्म पथ पर जा रहा है उसे आसुओ से नही मुस्कानो से विदा दो।"

पाडु नरेश की शिक्षाओ से सबने अपने मन को ज्यों त्यों शान्त किया परन्तु राजरानी माद्री के हृदय की विलक्षण स्थिति थी। पति के विना उसे समस्त ससार सूना-सूना सा प्रतीत हो रहा था। जिन महलों मे रानिया दिवान रग रेलियों करते करते सूर्य कब चढा और कब अस्त हुए का भी उसे ध्यान न होता था वही महल उसे यम दष्ट्रा समान भयानक प्रतीत हो रहे थे। जिसके कारण उसने समाधि प्राप्त करने के लिए पति पदानुसरण करने का

दृढनिश्चय करके अपने पुत्र नकुल और सहदेव को कुन्ती को समर्पण किया। और स्वयं पांडु नरेश के साथ ही आर्यिका दीक्षा के लिये अग्रसर हुई ।

सारा नगर उनके पीछे चला। पाण्डु नृप की जय जय कार से सारा नगर गूंज उठा । नगर से बाहर जाकर एक बार सभी की ओर देखकर पाडु बोले "—आप लोग अब मुझे क्षमा करें और वापिस जाकर धर्म ध्यान मे लगें, वैभव को छोड कर इस प्रकार पाडु चले गए। गगा के तट पर जाकर उन्होंने निर्ग्रन्थ दीक्षा ली और तप लीन हो गए। मुनि पाण्डु सभी जीवो पर समता भाव रखते थे, सब जीवों से उनका मैत्री भाव था, गुणी पुरुषो को देखकर आनन्दित होते थे। उनका मन दर्पण वत स्वच्छ था। अन्त मे उन्होने आहार का त्याग कर, गुरू को साक्षी कर वीर शय्या स्वीकार की। सम्यक ज्ञान दर्शन चारित्र तपाराधना रूपी पोत पर आरूढ होकर भव सागर को तीर्ण करने की इच्छा वाले उस महा यशस्वी पाण्डु मुनि ने प्राणी मात्र से समभाव एव मैत्री भाव स्थापित किया। तीव्र तपश्चरण से शरीर उनका जैसे कृश होता जा रहा था। अत. त्यो-त्यो विलक्षण आत्म तेज उनके ललाट प्रतिभासित हो रहा था। अन्तत. वह समय आया जबकि सिद्ध परमेष्ठी भगवन्तों का हृदय कमल मे स्मरण करते हुए इस विनश्वर शरीर को त्याग कर सौधर्मकल्प मे दिव्य देवद्युति सम्पन्न महार्हिदक देव के रूप जन्म लिया । उधर माद्री आर्यिका ने भी हृदय को कपाने वाली दुर्धर तप अग्नि द्वारा जन्म जन्मान्तरों की पापराशि को भस्म करते हुए सलेखना मरण करके इसी सौधर्म देव लोक मे दिव्य द्युति वाले अमर शरीर को प्राप्त किया।"

भीष्मपितामह द्वारा पाडवों का राज्यभिषेक- पाडु नरेश की दीक्षा के पश्चात् हस्तिनापुर के राज्य सचालन कक्ष मे कौरव वश के वयोवृद्ध, प्रतिष्ठित अधिकारियों की मत्रणा प्रारम्भ हुई कि अब भविष्य मे राज्य सचालन का भार किस को सौपना चाहिये बहुत समय के बाद विवाद के पश्चात् भी अधिकारी सब का निश्चत मत यही स्पष्ट हुआ कि यदि प्रजा की प्रसन्नता समृद्धि सुख नैतिकता राज्यवृद्धि की कामना है तो युधिष्ठिर को ही

राज्यधिकारी निश्चित किया जाय । नीति के अनुसार एक तो राज कुमारों मे युद्धिष्ठर सब से बड़ा है इसलिए भी राज ताज का वह अधिकारी है। दूसरे परम धार्मिक सत्यवादी, दयालु, उदार, न्यायवन्त शूरवीर आदि नृपोचित गुणो की साकार प्रतिमा भी है। इसी कारण समस्त प्रजा तथा सेना सेनापति, मत्रीगण आदि सभी अधिकरीगण युधिष्ठिर सहित पांडवों को हृदय से आदर भी देते है तथा उनके इशारे मात्र पर अपना तन मन धन न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहते है ।

मत्रणा गृह मे उपस्थित समस्त अधिकारियो द्वारा इस भावना को चतुर्दिशा से समर्थन प्राप्त हो रहा था। सबके ललाटों पर हर्षानुभूति नाच रही थी । परन्तु कौरव कुल वरिष्ट भीष्म पितामह, न्याय नीति मूर्ति विदूर, समीप मे बैठे हुए धृतराष्ट्र के चेहरे को निर्निमेषनिहार रहे थे। जिसके कारण उपस्थित समुदाय के वार्तालाप की प्रतिक्रिया धृतराष्ट्र के हृदय मे क्या हो रही है यह उनसे छुपा हुआ नही रहा था ।

भीष्म पितामह दुर्योधन की महत्वाकांक्षा को और पुत्रो के प्रति धृतराष्ट्र के मोह से भलीभान्ति परिचित थे। यही कारण था धृतराष्ट्र के हृदय के मुखरूपी दर्पण पर प्रतिबिम्बित एकके पश्चात् दूसरे भावो को अनायास ही पढ रहे थे। और कौरवकुल के हित कारी भविष्य के लिए चिन्तित थे।

तभी धृतराष्ट्र ने समीचीन चर्चा से ऊबकर मौनभग करते हुए बोलना आरम्भ किया, कि इसमे कोई शक नही कि पाडव होनहार शक्तिशाली एव प्रजाप्रिय है। परन्तु हमे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि दुर्योधन भी शूरवीर, नीतिनिपुण, दबंग प्रकृति का, एवं पांडवों की समानता रखने वाला राजकुमार है। अतः पीछे से कोई उपद्रव न खडा हो इसबात को ध्यान मे रखते हुए हमें अपना निर्णय करना चाहिये । क्यों पितामह और विदुर जी आपकी इसमें क्या सम्मति है ।

दीर्घ निश्वास छोडते हुए पितामह ने कहना प्रारम्भ किया

पुत्र, इस राज्य को स्थिर एवं वृद्धिगत करने में पांडु राजा ही सर्वे सर्वा थे, हम सब देख रहे हैं कि युधिष्ठिर भी अपने पिता के यशस्वी सर्वगुण सम्पन्न पुत्र हैं। और राजकुमारों में हैं भी सबसे बडे एवं प्रिय। अत. जो जिस कार्य योग्य हो उसे ही वह अधिकार समर्पण करना उचित होता है। परन्तु यदि दुर्योधनादि कुमार पांडवों के साथ प्रेम पूर्वक निर्वाह नही कर सकते और अपने लिए राज–ताज की माग करते हैं। तो सर्वश्रेष्ठ यही रहेगा, कि राज्य के दो भाग करके एक भाग पाडवो को, दूसरा भाग दुर्योधनादि को सौंप दिया जाय। कुल की मर्यादा एव प्रतिष्ठा इसी प्रकार स्थिर रह सकती है।

विदुरादि ने भी गृह—क्लेशाग्नि, जो धार्तराष्ट्रों मे अन्दर ही अन्दर सुलग रही है— विस्फोट का रूप न धारण कर ले, इस बात को ख्याल मे रख कर जब भीष्म पितामह की सम्मति का समर्थन किया, तो धृतराष्ट्र के आनन पर सहसा हृदय की हर्षानुभूति चमकने लगी। और साधु साधु कहते हुए इस निर्णय का समर्थन किया।

इसके पश्चात् राज्यविभाग एव अभिषेक आदि से सम्बन्धित आवश्यक विचार-विमर्श करके मत्रणा को समाप्त किया। और उसे मूर्त–रूप देने की क्रिया में तत्परता से सब कोई जुट गये।

× × × ×

हस्तिनापुर में राज्याभिषेक की तैयारियां जोर-शोर से प्रारम्भ हो गई महलों-भवनों, राजपथो, वीथियो को खूब सजाया गया। चारो तरफ वन्दनवार, पुष्पमालाओं सुगन्ध वस्तुओं का साम्राज्य छा गया। झडियों, ध्वजाओं से सारा नगर सजी दुलहन समाज आकर्षक बना हुआ था। शहनाईया बज रही थी। भेरी पटह झल्लरी दुन्दुभिनाद से जब आकाश व्याप्त था तो शुभ घड़ी मे पूर्व निश्चयानुसार भीष्म पितामह धृतराष्ट्र आदि कौरव कुल वरिष्ठों द्वारा युधिष्ठिर का यथाविधि राज्याभिषेक किया गया। इस प्रकार आधा राज्य पाडवों को और आधा राज्य दुर्योधनादि कौरवों के आधीन कर दिया गया।

राज्याभिषेक के उपरान्त युधिष्टिर को आशीर्वाद देते हुए धृतराष्ट्र ने समझाया—पुत्र युधिष्ठर, भैया पाडु ने इस राज्य को अपने बाहुबल से बहुत विस्तृत किया था और वश के गौरव को चार चाद लगाये थे। मेरी कामना है तुम भी अपने पिता के समान ही यशस्वी गौरव शाली, सुखी और कुलध्वज बनो। तुम्हारे पिता पाडु ने मेरे कथन को कभी अन्यथा नही किया। गुरु के विनीत शिष्य के समान सदा सर्वदा मुझे बहुमान देते रहे। तुम भी अपने पिता की यशस्वी सन्तान हो। मुझे तुम से भी ऐसी ही आशा है मेरे बेटे दुरात्मा है। एक स्थान पर ही रहने से सम्भव है परस्पर में वैमनस्य बढ़ें। इसलिए मेरी तुम्हे यही सम्मति है कि तुम खांडव-प्रस्थ को अपनी राजधानी बना लो और वही से राज्य संचालन करो। इससे तुम मे और दुर्योधनादि के मध्य शत्रुता की संभावनाए ही समाप्त हो जायेंगी।

खाडवप्रस्थ वही नगरी है जो पुरु, नहुप, ययाति और हमारे प्रतापी पूर्वजो की राजधानी रही है। उसके उद्धार से पूर्वजों की राजधानी के बसाने का यश भी तुम्हे प्राप्त होगा।

धृतराष्ट्र के मृदु वचनो को मान कर पांडवों ने खाडवप्रस्थ के भग्नावशेषो पर, जोकी उस समय तक निर्जन वन ही वन चुका था, निपुण शिल्पकारो से एक नये नगर का निर्माण कराया। सुन्दर २ भवनो अभेद्य दुर्गों आदि से सुशोभित उस नगर का नाम इन्द्रप्रस्थ रक्खा गया। इस नई राजधानी मे, जिसकी उन दिनों भारत में प्रशसा हो रही थी, माता कुन्ती और सती द्रोपदी सहित पांडव सुख पूर्वक राज करने लगे। तेईस वर्ष पर्यन्त दिन दूना रात चौगुना आनन्द मगल छाया रहा। इस बीच में भीम सेन अर्जुन नकुल सहदेव चारों भाईयों ने युधिष्ठर की छत्र छाया में अपने राज्य की सीमाए विस्तृत करी, अन्य अनेक प्रदेश अपने राज्यान्तर्गत कर वहा न्यायनीति का, ऋद्धि समृद्धि का साम्राज्य स्थापित किया।

* द्वितीय परिच्छेद *

हिडिम्बा विवाह

इन्द्रप्रस्थ के निवासी कौमुदी महोत्सव मनाने में तन्मय थे। नाना प्रकार के नाटकों नृत्यों हास परिहास में दिवस कब गया, रात्रि कब आई का भान भूले हुए थे। जिधर देखो रग रेलियों का सागर ठाठे मार रहा था। पांचों पांडव भी वन यात्रा से विरत नहीं थे। वे भी शरीर रक्षकों के साथ पर्वत के एक शिखर से दूसरे शिखर पर, एक वन प्रदेश से दूसरे वन प्रदेश में प्रकृति की मनोरम छटा को निहारते हुए मन्द मन्द सुगन्ध लिये हुए समीर से अठखेलियाँ करते हुए अपने उन्मुक्त हास से वन प्रदेश को मुखरित करते हुए विचरण कर रहे थे। उन्होंने एक दिन वन के गहन प्रदेश मे प्रवेश करने की ठानी। अंग रक्षकों को खेमे पर ही नियुक्त कर बबर केशरी सम निर्भीक झूमते झामते सारे दिन आमोद प्रमोद में चलते हुए साय काल के समय एक ऐसे वन प्रदेश में पहुचे जहां प्रत्येक ऋतुओं के सफल वृक्षों की पक्तियों के मध्य में एक निर्मल सरोवर कमलों की सुगन्ध बखेर रहा था। क्योंकि पाडव इस समय श्रान्त हो चुके थे। रात्रि सिर थी। अतः वहीं विश्राम लेने की ठानी। रुचि अनुसार सरस स्वादुफलों का आस्वादन किया। और सरोवर तीर स्थान पर निर्मित पृथ्वीशिला फलकों पर मनो विनोद करते हुए दुग्धसी शशिकिरणों मे स्नान करते हुए भीम के अतिरिक्तचारों पाण्डव सोगए भीम सेन जागता रहा। जहा वे लोग थे, उसी के निकट एक प्रबल विद्याधर रहता था जिसका नाम था

हिडम्वासुर वह बडा ही भयानक और हिंसक प्रकृति का था, उस की आखें सदा जलती रहती थी, बाल उसके नेत्रों की लाली की भाति लाल थे . वह भीमकाय विद्याधर बड़ा ही बलिष्ट था कहते हैं कि क्रोध मे आकर वह छोटे मोटे वृक्षो को भी उखाड़ कर फेंकता था। उसके भय के मारे वन की इस ओर कोई भी पग न धरता था। उस के साथ अनेक विद्याओ मे निपुण सुन्दर वहन हिडम्वा भी रहती थी, जो अपने भाई की भाति बलिष्ठ एवं निर्भीक थी। यह सुरम्य प्रदेश इन्ही की स्थली थी जहां पर कि इस समय पाण्डव सो रहे थे। वह ही, अकेला भीम सेन उनकी रक्षा के लिए जाग रहा था।

चन्द्र रश्मियो ने जव शीतल चान्दनी की वर्षा की और धवल चान्दनी वृक्षो के पत्तों मेसे छनछन कर पृथ्वी पर आने लगी, तव इस हल्के और शीतल प्रकाश में विचरण करते हुए हिडम्वासुर की दृष्टि पाण्डवों पर पडी। पासमें वैठे भीमसेन के गदराये शरीर को देखकर उस की जवान चटखाने लगी उसने अपनी वहन की तरफ देखा और बोला हिडम्वा ! आज हमारे लिए अनुपम शिकार आ गया है। वह देख कितना मोटा गदराम शरीर का व्यक्ति वैठा है उसके कुछ साथी सोये हुए है। लगता है वह कोई वलिष्ट एव निर्भीक व्यक्ति है उसे सीधे जाकर छेड़ना अच्छा नही तुम जाओ और अपने माया जाल से किसी प्रकार फसा कर यहाँ ले आओ फिर दूसरो को भी देखा जायेगा।"

हिडम्बा ने भी ध्यान से देखा और प्रसन्न होकर उसने एक परम सुन्दरी का रूप धारण कर लिया और भीम की ओर चली गई। उस ने दूर खडे होकर भीम को गौर से देखा। भीम के मुख मण्डल पर मनोहर कांति छाई थी, उसके ललाट पर अपूर्व तेज था। उस की आखें शशि रश्मियों के प्रकाश मे भी चमकती दीखती थी श्याम वदन भीम के मुख पर छाई निर्भीकता से वह वहुत ही प्रभावित हुई। आगे जाकर उसने पूछा—"तुम कौन हो और कहा से आए हो।" भीम ने एक बार उसकी ओर देखा और लापरवाह होकर वोला—हम कोई भी हो, कही से आए हो, तुम्हे क्या मतलव ? इस लापरवाही का हिडम्बा पर प्रभाव पड़ा, उसने कहा—"जानते नही हो यहा हिडम्बा सुर रहता है जिसके नाम से

ही लोग घबराते हैं।

भीमसेन ने फिर भी लापरवाही दर्शाते हुए कहा—"वही घबराते होंगे जिनमें बल नहीं। वीर पुरुष किसी से नहीं घबराते।"

भीम की इन बातों ने हिडम्बा पर जैसे जादू कर दिया हो, वह उस पर मुग्ध हो गई। उसने सहानुभूति दर्शाते हुए कहा— मेरा मतलब यह है कि आप यहां से शीघ्र चले जाईये वरना हिडम्बासुर आप को मार डालेगा।"

भीम मुस्करा उठा, उसने कहा—"आप की सहानुभूति का धन्यवाद! आप चिंतित न हो हिडम्बासुर कुछ करेगा तो स्वंय अपनी मौत बुलायेगा।"

वह कुछ और निकट आ गई अनेक यत्नों से भीम को अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्टा की पर भीम ने एक बार भी उसके अनुपम सौंदर्य पर अच्छी प्रकार दृष्टि न डाली। इस बात से हिडम्बा व्याकुल हो गई और उस ने मन ही मन निश्चय कर लिया कि विवाह करेगी तो इसी पुरुष से। उसने निकट जाकर कहा—"मैं हिडम्बासुर की बहन हूं। मुझे उसने इस लिए भेजा था कि आप को ले जाकर उसे सौंप दूं पर आप ने मुझे बहुत प्रभावित किया है। आप चाहे कुछ कहे मैं आपको अपना पति मान चुकी हूं। इस लिए आप की रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। आप यहां से तुरन्त हट जाय। मैं कितनी ही विद्याएं जानती हूं। आप जहां चाहें मैं आपको वहीं पहुंचा सकती हूं। आप मुझ पर ही ध्यान करें मेरे साथ यहां से चले चलिए।"

तब भीम ने उसे गौर से देखा और बोला—"तुम कहती हो कि मैं तुम्हारे साथ भाग चलूं। क्या अपने भाईयों को उस पिशाच के लिए छोड़ जाऊं।"

यदि तुम्हें उनसे मोह है तो इन्हें भी जगा लीजिए मैं इन्हें भी अधिक सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दूंगी। वह बोला "क्या थक कर सोये अपने भ्राताओं को जगा कर उन्हें कष्ट दूं। नहीं मुझ

नही हो सकता । भीम ने कहा परन्तु यदि आप इन्हें यहां से नही हटाएगे तो आप काल के मुह मे चले जायेंगे ।

मैं काल का भी काल हूं आने तो दो उस असुर को मैं मार कर न भगा दू तो मेरा नाम भी भीम नहीं ।"

प्रेम के मारे वह कहने लगी– देखिये आप मेरी बात मान लीजिए, कही ऐसा न हो कि बाद को पश्चाताप करना पड़े । मैं ने किसी मनुष्य को अपना जीवन साथी न बनाने का निश्चय किया था, पर आप को देखते ही मेरा वह निश्चय मिट गया, मैं आप को अपना स्वामी मान चुकी हूं। अतएव मैं अपने स्वामी को सकट मे पडते देखना नही चाहती ।

इतने मे हिडम्बासुर बहुत देरी होने के कारण स्वयं वहा चला आया और उसने हिडम्बा की अन्तिम बात सुन ली । उसे हिडम्बा पर बड़ा क्रोध आया, और इससे भी अधिक भीमसेन पर। उसने जाते ही भीम सेन पर आक्रमण कर दिया । भीमसेन ने तुरन्त फुरती से उस का दाव काट दिया और उसने हिडम्बासुर की टाग पकड़ ली । वह उसे घसीटता हुआ दूर ले गया, ताकि मार धाड से भ्राताओं की निद्रा भग न हो जाये । भीम और हिडम्बासुर में टक्कर होने लगी। हिडम्बासुर बार बार बड़े जोर से चीख कर भीम की ओर झपटता, पर भीम उसे अपनी ठोकरों से गिरा देता । बार बार चीखने की आवाज सुन कर अर्जुन की आख खुली और पास खडी एक सुन्दरी पर उसकी दृष्टि पड़ी, तो आश्चर्य चकित हो कर पूछा—"भीम कहां चला गया ? यह आवाज कैसी आ रही है ? तुम कौन हो ?" एक ही श्वास मे उसने कई प्रश्न उठा दिए ।

चिन्तित हिडम्बा ने दूर, जहा हिडम्बा और भीम युद्ध रत्त थे, की ओर सकेत करके कहा— "वहा हिडम्बासुर उन्हे मार रहा रहा है ।" अर्जुन ने धनुष बाण सम्भाले और तत्काल उधर गया । उसने देखा कि हिडम्बासुर भीम पर बार बार आक्रमण कर रहा है, उसने समझा कि भीम हिडम्बासुर के आगे कमजोर पड़ रहा है अतएव उसने भीम सेन को पुकार कर कहा—"भैया ! तुम कहो तो मैं इसे अभी ही बाणो से मार डालू । घबराना नही ।" भीम

सेन के अधरों पर मुस्कान खेल गई। वह बोला—नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। मैं तो इसके साथ अभी तक खेल कर रहा था।" इतना कह कर उसने एक बार क्रुद्ध हो कर हिडम्बासुर पर भयंकर प्रहार किया और हिडम्बासुर उसकी ठोकरों की मार से वहीं ढेर हो गया।

तब हिडम्बा ने अर्जुन से अनुनय विनय करके भीम के साथ अपने विवाह की बात कही। इतने मे अन्य भ्राता भी जाग गए। युधिष्ठिर ने हिडम्बा की विनती के उत्तर में कहा—माना कि तुम्हारा भीमसेन से अनुराग है परन्तु जब तक तुम्हारे कुल शील का हमें पता नहीं तब तक कैसे हम अपनी कुलवधू स्वीकार कर सकते हैं? महाराज आप उचित ही फरमाते हैं, हिडम्बा ने उत्तर दिया परन्तु आप निश्चय रखिये सिंहनियों का जन्म शृगालों के यहां नहीं होता। विद्याधरों की उत्तर श्रेणी में एक संध्याकार नाम का विशाल नगर है। उसमें शत्रुरूपी हस्तियों को अपने महा पराक्रम से मर्दन करने वाला हिडम्बवंशोत्पन्न यशस्वी सिंह घोष राजा राज्य करता है। उनकी प्रिय पत्नि का नाम लक्ष्मणा है। मैं उन्हीं की पुत्री हिडिम्ब सुन्दरी के नाम से प्रसिद्ध हूं। मेरी विमाता से उत्पन्न यह हिडम्बासुर मेरा भाई है। परन्तु यह जन्म से उद्धत प्रकृति का था। प्रजा को सताता था। जिसके कारण रुष्ट हो कर पिता ने इसे देश निकाला दे दिया था जिससे यह बहुत दुखित एवं असहाय सा हो कर वहां से विदा होने को जब आया, तब मेरे से न रहा गया। इसका मेरे साथ बहुत स्नेह था। और इसके उपकारों से मैं कृतज्ञ भी थी। इस लिए मैंने इसका साथ दिया। और अनेक सहेलियों के साथ विशाल रत्न राशि को लेकर मैंने इसके हृदय के भार को हलका करने की चेष्टा करी। और इस सुरम्य वन प्रदेश में एक विशाल भवन निर्माण करवा कर, जो कि यहां से थोडी दूरी पर है, उसमें निवास करना प्रारम्भ किया और यहां रहते हुए यह नर भक्षी बन गया। जिस स्थल को इस समय आप पवित्र कर रहे हैं, यह उसी की विहार स्थली का एक किनारा है। यहां आकर भी मेरे इस भाई का स्वभाव परिवर्तित न हुआ। जब यह भ्रमण को कहीं निकल जाता तो निष्कारण ही मारधाड़ प्रारम्भ कर

देता। अतः भ्रमण मे प्रायः मैं साथ रहने लगी और यथा सम्भव किसी मनुष्य को इसके चगुल में न फसने देती थी। परन्तु आज अपने कारनामों की जो उचित सजा होनी चाहिये वह स्वयं ही यह प्राप्त कर बैठा। और यथा सम्भव सहायता करते हुए मैंने इसके ऋण से अपने को उऋण बनाया। मैं समझती हूं मेरे सौभाग्य वश ही आपका इधर आना हो गया है। वरना इस अटवी मे प्रवेश करने का किसी को साहस ही नही हो पाता। हिडिम्बा ने अपना पूर्ण परिचय देते हुए कहा।

इसके पश्चात् वह सुन्दरी पाडवों को अपने भवन मे साथ ले गई। जहा उसकी सहेलियों एवं अनुचरों ने खूब अभ्यर्थना की। और विधि पूर्वक भीमसेन ने हिडिम्बा का पाणि ग्रहण किया। अनुचरो के हाथ पीछे सकुशल का समाचार दे कर कुछ दिन पाडवों ने वही प्रकृतिछटा का आनन्द लेते हुए व्यतीत किये। और कौमुदी महोत्सव की समाप्ति पर इन्द्रप्रस्थ को गमन किया। भीमसेन को इसी पत्नि से घटोत्कच नामक महापराक्रमी पुत्र प्राप्त हुआ। जो कि अपनी माता एवं नाना नानी की कृपा से विलक्षण विद्याओं को धारण करता था।

पवन द्वीप से कुछ जौहरी व्यापारी जरासिन्ध के महल मे गए और अपने वहु मूल्य रत्नो को वेचने लगे। जीवयशा ने उन के पास जितने वहु मूल्य रत्न थे, सभी देखे। एक रत्न, जो सभी मे मूल्यवान था, जीवयशा के मन भा गया, उसने मूल्य पूछा व्यापारियों ने मन चाहा मूल्य वता दिया। जीवयशा ने भी अपनी इच्छानुसार दाम लगा दिया। जीवयशा द्वारा वोले गए दामों को सुनकर व्योपारीयों ने पश्चाताप करते हुए कहा—"हम तो यहां इसी लिए आये थे कि आप के महल में अधिक दाम उठ सकेंगे। पर क्षमा करना, अव हम द्वारिका से यहां आ कर पछता रहे हैं। इससे अधिक मूल्य तो इस रत्न का वहीं मिलता था।"

द्वारिका का नाम उस ने जीवन में प्रथम बार ही सुना था, पूछ बैठी—"द्वारिका नगरी कौनसी ?"

व्यापारी ने हसते हुए कहा—"आप तो ऐसे पूछ रही हैं मानों कभी द्वारिका नाम ही न सुना हो। भला जम्बू क्षेत्र के किस व्यक्ति ने द्वारिका का नाम न सुना होगा।"

जीवयशा ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की, तो व्यापारी ने द्वारिका की पूरी पूरी प्रशंसा करते हुए द्वारिका का परिचय दिया। वह वोला—"श्री कृष्ण महाराज की राजधानी द्वारिका पृथ्वी पर स्वर्ग के समान है। इतनी सुन्दर नगरी जम्बू द्वीप में कदाचित ही कोई हो। ऐसा लगता है मानो देवताओं ने ही उसे वसाया हो।

ग्रौर लोग कहते भी यही है कि इन्द्र देवता की ग्राज्ञा से समस्त देवों ने मिलकर उसे बसाया था।"

श्री कृष्ण का नाम सुनते ही वह चौंक पड़ी पूछा—"श्री कृष्ण कौन है ?"

व्यापारी हस पड़ा बोला—"ग्राप तो ऐसी भोली बन रही हैं, जैसे कुछ जानती हीं नही। भला श्रीकृष्ण को कौन नही जानता उन्हों ने ही कस का वध किया था।"

व्यापारी के शब्दों से जीवयशा के हृदय में सोये प्रतिशोध के भाव दबी ग्राग की भांति धू धू करके धधक उठे। तुरन्त जरासिन्ध के पास गई ग्रौर नेत्रों मे ग्रांसू भर कर बोली—"पिता जी! यह मैं क्या सुन रही हूं ?"

'क्या सुना ?"
क्या मेरे पति का हत्यारा ग्रभी तक जीवित है ?"

"बेटी, वह भाग कर समुद्र तट पर जा बसा है। "क्या यही है ग्राप की प्रतिज्ञा ? क्या मैं इसी प्रकार एक ग्रोर विधवा जीवन ग्रौर दूसरी ग्रोर उस विषैले नाग को फूलते फलते सुनते रहने का हार्दिक क्लेश सहन करती रहूंगी ?" जीवयशा ने कहा।

"बेटी! ग्रनुकूल समय ग्राने पर ही सब काम हुग्रा करते हैं। मैं उस ग्रवसर की प्रतीक्षा मे हूं जब वह मूर्ख स्वयं मेरे चंगुल मे ग्रा फसेगा।" जरासिंध ने ग्रपनी पुत्री को सात्वना देते हुए कहा।

परन्तु जीवयशा ऐसे नहीं मानने वाली थी। उस ने क्रोध में ग्राकर कहा—'बस बस पिता जी रहने दीजिए, ग्रपकी डींगे भी देख ली। ग्राप के लिए कभी ग्रवसर नही ग्रायेगा। ग्राप इसी प्रकार मुझे झूठी तसल्ली देते रहेगे। ग्राप साफ साफ क्यों नही कहते कि ग्राप मे इतनी शक्ति ही नही कि श्री कृष्ण का सिर कुचल सकेंगे। ग्राप स्वयं उससे डरते हैं। ग्रापके हृदय में मेरे प्रति तनिक सा भी प्रेम होता तो ग्राप ग्रपना सब कुछ दाव पर लगा कर

अपनी बेटी के पति के खून का बदला लेते। पर आप को क्या पड़ी है ?

जा के पैर फटी न बिवाई
वह क्या जाने पीर पराई

जरासिन्ध बेटी की चुनौती भरी बात से व्याकुल हो गया। उसने कहा—"जीवयशा! तुम विश्वास रक्खो कि मैं एक न एक दिन उसका सिर तुम्हारे कदमो मे लाकर पटक दूंगा। पर मेरी शक्ति को मेरे बाहु बल को चुनौती न दो।"

"पिता जी, जो गरजते है वरसते नही।"

जीवयशा की बात जरासिन्ध के तीर की भांति चुभी। वह तड़प कर बोला--"तो फिर तुम्हें मेरा बाहुबल ही देखना है तो लो मैं अभी ही उस दुष्ट का सहार करने जाता हू। जब तक कृष्ण का वध नही करूंगा चैन न लूगा।

कही अवसर के बहाने रास्ते से बेचैनी से मत लोट पडना। निर्लज्जता पूर्वक जीवयशा बोली।

जरासिंध ने तुरन्त अपने मत्री को बुलाया और गरज कर बोला मंत्री जी ! हम आज तक प्रतीक्षा करते रहे कि तुम कब कृष्ण वध के लिए उचित अवसर बताते हो, पर तुम तो जैसे सो गए और मुझे जीवयशा के सामने अपमानित एवं लज्जित होने का तुम ने अवसर दिया। अब हम अधिक प्रतीक्षा नही कर सकते। जाओ अभी ही सेनाए सजवादो। हम इसी समय द्वारिका पर चढाई करने के लिए कूच करना चाहते हैं।

मत्री ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया—"महाराज ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, पर इतनी जल्दी मे कोई निर्णय कर लेना ठीक नही है।" जरासिन्ध क्रोधित होकर गरजा—"मत्री जी ! आपने सुना नही, हम ने क्या आदेश दिया। हम इस समय कुछ नही सुनना चाहते। चाहते हैं केवल आज्ञा पालन। क्या ठीक है क्या नही, वह सब हमारे सोचने की बातें है।"

मंत्री कांपते हुए वहा से चला गया, उसने तुरन्त सेनाए

सजवाई और उन्हे नृप के साथ कूच करने का आदेश दिया। स्वयं भी साथ हो गया। जरासिन्ध ने उसी समय शिशु पाल आदि अपने सहयोगियो के पास दूत भेज कर, उन्हे सेनाए लेकर तुरन्त अपनी सेना से आमिलने का सन्देश भेज दिया। और स्वयं सेनाए लेकर चल पड़ा। ज्योंही उसने नगर से प्रस्थान किया, मुकुट एक झटके से नीचे आ गिरा। मंत्री ने मन ही मन विचार किया कि यह अपशकुन किसी भावी सकट का सूचक है। पर क्रोध में बुद्धि को ताक पर रख आये हुए नरेश को कुछ भी समझाना व्यर्थ समझ कर वह चुप रह गया।

रास्ते में शिशुपाल की सेनाए आ गई, जिसके साथ स्वय शिशुपाल भी था। जब लाखो की सख्या में सैनिक एकत्रित हो गए तो जरासिन्ध अहकार से सोचने लगा कि कृष्ण को वह क्षण भर मे परास्त कर देगा और उस के रक्त से अपने और अपनी बेटी के हृदय मे सुलगती प्रतिशोध की अग्नि को शांत कर सकेगा।

लाखों की सख्या में सैनिक साथ थे, जरासिन्ध श्री कृष्ण को परास्त करने की आशाओं में झूमते चला जा रहा था, कि नारद जी आ पहुचे। उन्होने पूछा—"राजन्! आज किस शत्रु पर चढाई की ठान ली है।'

"श्री कृष्ण से कस बध का वदला लेने जा रहा हूं।" जरासिंध बोला।

नारद जी मुस्करा पड़े। बोले—"दही के भरोसे से कपास खाने की भूल मत करो।"

"क्या मतलब ?" जरासिन्ध ने अकड़ कर पूछा।

"मतलब यह है कि भेड जब भेडिये से वदला लेने चले, शृगाल जब सिंह को ललकारने का साहस करे, तो उसके साहस की तो प्रशसा करनी पडती है पर इस दुस्साहस पर उसे अपनी औकात पहचानने की कहने को जी चाहता है।" नारद जी बोले।

जरासिंध का खून खौल उठा। उसने कहा—"तनिक सभ्यता से वात करो। क्या नहीं जानते कि मैं जरासिन्ध हूं जिसके नाम से

सारी पृथ्वी कांपती है। और वह जिसे तुम सिंह बता रहे हो, वह भी मेरे ही भय से दुम दबा कर भाग गया है और सागर तट पर उसने आश्रय लिया है।"

"कहीं यह अहंकार ही तुम्हें न ले डूबे ?" नारद जी बोले।

"बस बस भिखारी हो कर नरेश के मुंह मत लगो। वरना कहीं मुझे तुम्हें ही ठीक न करना पड़े जरासिन्ध क्रोध में नारद जी के साथ उचित व्यवहार करना भी भूल गया।

किन्तु नारद जी भी उसकी घुड़कियों में आने वाले न थे, उन्होंने हंस कर कहा "जब मिथ्याभिमान किसी को अंधा बना देता है तो मुझे उस पर दया आती है। ठीक है तुम जैसों का इलाज श्री कृष्ण और उनके भाई बलराम जी के पास ही है। पर एक बात मानो स्वयं मरना है तो मरो, शिशुपाल बेचारे को क्यों मरवाते हो ?

जरासिन्ध लाल पीला हो कर नारद जी की ओर झपटा, पर इस से पूर्व कि कोई भयंकर अन्याय होता, नारद जी वहां से चले गए और जा कर श्री कृष्ण के दरबार में दम लिया। श्री कृष्ण ने बड़े आदर सत्कार से उनका स्वागत किया। नारद जी बोले— "आप इधर आराम से सिंहासन पर विराजमान हैं और उधर जरासिन्ध अपनी सेनाएं लेकर कंस वध का बदला लेने आ रहा है। श्री कृष्ण हंसते हुए बोले— "मुनिवर जिस का मस्तक फिर गया हो वह ऐसे ही कार्य किया करता है। आता है तो आने दो। द्वारिका के निकट आते ही उसे अपनी भूल ज्ञात हो जायेगी।"

"कहीं मृग और कछुए की दौड़ की ही भांति बात न हो जाए। उसके साथ शिशु पाल भी अपनी अपनी सेनाओं सहित है। इतना अहंकार है उसे कि आज तो वह शिष्टाचार को भी तिलांजली दे आया है। लाखों सैनिक हैं।"

नारद जी की बात सुनते ही श्रीकृष्ण गम्भीर हो गए। उनको बार बार धन्यवाद किया और स्वयं जरासिन्ध के मुकाबले की तैयारी में लग गए उन्होंने तत्क्षण अपनी सम्पूर्ण राज-सभा को

निमन्त्रित किया। और समस्त स्थिति को विस्तार से प्रस्तुत करके पूछा कि- आप बतलायें कि इस उद्दड एव निष्कारण बने शत्रु का कैसे प्रतिकार किया जाय ?

यादववश को विनष्ट करने वाले विमूढ़ से हमारी तलवारें बातें करेंगी। इसमे दो मत हो ही नही सकते कड़कते हुए दुर्दान्त योधा अनाधृष्टि ने गर्जना करी। परन्तु रण कौशल का परिचय देते हुए दूरदर्शिता की बात कही कि-हम जिनेन्द्र शासन मे पढते एव पूर्वजो मे सुनते आ रहे है कि प्रति वासुदेव का वध वासुदेव के हाथो से ही होता है, अन्य से नही। अतः प्रतिवासुदेव जरासिन्ध की मौत किस वीर के हाथो निर्णीत है, इस बात का निश्चय अवश्य कर लेना चाहिये।

यादव कुल श्रेष्ठ, दशार्हप्रणोय समुद्रविजय जो अब तक समस्त परिस्थिति पर विचार रहे थे, ने शान्त परन्तु गम्भीर वाणी से सभा को लक्ष्य करके कहना प्रारम्भ किया कि हमारे वश की ज्योति वत्स श्री कृष्ण एवं अनाधृष्टि ने जो कुछ कहा वह आपने सुना। वैसे तो पापी को नष्ट करने के लिए उसका पाप ही बहुत होता है। परन्तु व्यवहारानुसार विचार करना बुद्धिमत्ता का चिन्ह है। सभी जानते हैं जब गीदड की मौत आती है तो वह नगर की तरफ दौडा करता है। वही अवस्था इस समय जरासिन्ध की है। हमने कभी उसे अपमानित नही किया और नाही आज तक धर्म विरुद्ध आचरण किया। परन्तु यदि तो भी व्यर्थ ही वश विशेष से शत्रुता कल्पना कर जरासिन्ध को रक्तपात ही प्रिय है तो निश्चय ही यह अन्याय उसे सदा सर्वदा के लिए समाप्त किये बिना न रहेगा। मुझे वह समय अच्छी तरह स्मरण है जबकि देवकी देवी ने प्रकृति प्रदत्त सात महान शुभ सूचनाओं को प्राप्त करके श्री कृष्ण को जन्म दिया था और पश्चात हमारे पूछने पर धुरन्धर नैमित्तिकों ने घोषणा की थी कि "यह कुलदीपक कुमार त्रिखडेश्वर वासुदेव पद को प्राप्त करेगा" हमे तो तभी निश्चय हो गया था कि प्रति वासुदेव जरासिन्ध के अन्याय को समाप्त करने का श्रेय इसी बालक को प्राप्त होगा। परन्तु यदि तो भी आप यही निश्चय करना चाहते हैं कि जरासिन्ध की मृत्यु किसके हाथो होगी तो उसका सीधा सा उपाय

है कि जो वीर "कोटि शिला" को उठाता है वही प्रतिवासुदेव को समाप्त कर वासुदेव पदवी प्राप्त करता है। समस्त सभा में ठीक है, ठीक, की ध्वनि गूजने के साथ ही मुस्कराते हुए श्रीकृष्ण जी उठे और प्रमुख यादव वीरो के साथ गरुड़ विमान मे बैठ कोटि शिला-स्थल पर पहुंचे। जहां पर वर्तमान अपसर्पिणी काल मे तब तक अपने अपने समय मे आठ बार उन महापुरुषो ने पदार्पण किया था जिन्हों को ससार को "वासुदेव" होने का परिचय देना आवश्यक हो गया था। अन्तिम नारायण श्री कृष्ण जी ने एकाग्र-चित्त से परमेष्ठी स्मरण किया और सिद्ध भगवान की जय का घोष गुजायमान करते ही उस पर्वताकार "कोटिशिला" को उठा कर अपनी अद्भुत शक्ति का परिचय दिया। उसी समय आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी। दुन्दुभिनाद के साथ "चरम वासुदेव श्रीकृष्ण महाराज की जय" से समस्त पर्वत गुजायमान हो गया। तभी से श्रीकृष्ण जी का अपर नाम "गिरिधर" हुआ। यादव वीरो के हर्ष का ठिकाना न था। जय जयकार करते हुए विमान से तत्क्षण द्वारिका मे पहुचे और बलराम जी ने समस्त वृतान्त उपस्थित यादव सभा को सुनाया। जिस में द्वारिका भर मे एक नवीन् दृश्य उपस्थित हुआ। मुहल्लो २ गलि २ घर २ "वासुदेव श्रीकृष्ण की जय" के नारो से गूजने लगा। समस्त वीरो की धर्मनिति युद्ध मे विजय प्राप्ति की लहर दौड़ रही थी। चौगुने जोश से सभी योध्दा कार्यरत हुए। पाडवों के पास दूत द्वारा सूचना भेज दी गई। सभी यादवों को तैयार रहने का आदेश दे दिया गया। अरिष्ट नेमि जी ने कितनी ही औपधियां जो युद्ध मे आवश्यक थीं, ला कर दे दी। समुद्र विजय के समस्त भ्राता सभी के पुत्र, समस्त यादव योद्धा अस्त्र शस्त्र ले कर युद्ध के लिए तैयार हो गए।

महाराज युधिष्ठिर उन दिनों सम्राट पद प्राप्त करने के लिए राजसू यज्ञ करना चाहते थे, इस सम्बन्ध मे विचार विमर्श के लिए उन्होंने श्रीकृष्ण को इन्द्र प्रस्थ बुलाया था। उन्होंने श्री कृष्ण से कहा— "कुछ लोग मुझे राजसू यज्ञ करने की राय दे रहे हैं। आप एक ऐसे व्यक्ति हैं जो मुझे प्रसन्न करने के लिए मेरी प्रशसाए नहीं करेंगे, बल्कि मेरे दोषों को मेरे सामने साफ़ साफ़ बता देंगे। आप मूह देखी बात नही करेंगे और न किसी स्वार्थ वश कोई अनुचित

मत ही देंगे। इसी लिए परामर्श के लिए मैंने आप को बुलाया है। अब आप बताईये कि आपकी क्या सम्मति है।

श्री कृष्ण जी ने उत्तर दिया— "राजन्! राजसू यज्ञ का अर्थ है वह महोत्सव जिसमे खण्ड (क्षेत्र) के समस्त राजा एकत्रित हो कर महोत्सव करने वाले राजा को सम्राट पद से विभूषित करते हैं, और उस के आधीन रहना स्वीकार करते है। सम्राट् पद प्राप्त करने के लिए आप कोई महोत्सव करे. यह बडी प्रसन्नता की बात है, पर देखना यह है कि क्या अन्य राजा, आपके आधीन आना स्वीकार करेंगे? यदि यह भी मान लिया जाय कि दुर्योधन तथा कर्ण आदि आपको सम्राट बनाने मे कोई आपत्ति नहीं करेंगे तो भी जरासिन्ध तो कदापि आपको सम्राट मानना स्वीकार न करेगा। उसने कितने ही राजाओं को बन्दी बनाकर अपने बन्दी गृहो मे डाल रखा है। तीन खण्ड के राजा उस से घबराते है। और महर्ष उस के आधीन होना स्वीकार कर चुके हैं। यहाँ तक सुना है कि जब सौ नृप उसके बन्दीगृह में आजायेंगे तब वह उन से ही राजसू यज्ञ करेगा, और पथ भ्रष्ट लोगों के मतानुसार यज्ञ मे पशुओं की बलि के स्थान पर कुछ राजाओं की बलि देगा। ऐसे अन्यायी नरेश से मत आशा करना कि वह आपको सम्राट माने गा, कोरी भूल है। इस लिए यदि आप को सम्राट पद चाहिये तो पहले जरासिन्ध से निबटिये।"

भीम वहीं उपस्थित था, श्री कृष्ण की बात सुनकर वह बोल उठा—यदि भ्राता जी आज्ञा दे तो उस धूर्त से मैं अच्छी तरह निबट सकता हूं। मुझ से कहा जाय तो उस पापी को यम लोक पहुंचा दू। और अपनी गदा से उस के समस्त सहयोगियो को एक एक करके बध कर डालूं।"

"भीम! माना कि तुम बडे बलवान हो, पर जरासिन्ध भी कोई कम शक्तिवान नही है। शिशुपाल जैसा साधन सम्पन्न और पराक्रमी नरेश तक उस के आधीन हैं। उसे परास्त करने के लिए शिशुपाल और उसकी सेना का सामना करना पड़ेगा।" श्री कृष्ण ने कहा।

"जो भी हो। मैं और अर्जुन बलि मिल कर उस को धूल न

चटादें तो तब कहना।" भीम गरज कर बोला युधिष्ठिर श्री कृष्ण और भीम की वार्ता के समय विचार मग्न थे, वे बहुत सोच विचार के, पश्चात बोले—"यदि सम्राट पद प्राप्त करने के लिए मुझे अपने भीम और अर्जुन जैसे वीर भ्राताओ को दांव पर लगाना पड़े, और कितने ही निरपराधी मनुष्यो के रक्त से अपने मस्तक पर सम्राट का तिलक लगाना हो, तो मैं सम्राट पद को प्राप्त करने की कामना ही नही कर सकता। मैं नही चाहता कि मेरी एक आकाँक्षा की पूर्ति के लिए रक्त पात हो। इस लिए अच्छा है कि मैं अपने मित्रों और भ्राताओं के उस प्रस्ताव को भूल जाऊ और सुख शांति पूर्वक राज्य काज करू।"

श्री कृष्ण बोले—"आप के विचार आदरणीय है। धर्म पक्ष के राही ऐसा ही निर्णय किया करते हैं। तथापि जरासिन्ध जैसे पापी नरेश की करतूतों को रोकने के लिए आप को कुछ न कुछ अवश्य ही करना चाहिए। कोई शक्तिवान व धर्म प्रिय नरेश यह सहन नही कर सकता कि कोई अन्यायी स्वच्छन्दता पूर्वक छोटे छोटे नरेशों का संहार करता रहे और अपनी आकाक्षा पूर्ति के लिए पशु वध से आगे जाकर नरवध करने का साहस करें।"

"आप को बात ठीक है। तथापि मैं अपने प्रिय बन्धुओ को किसी ऐसे कार्य के लिए नियुक्त नहीं कर सकता जिस मे उन के प्राणो पर बन आये। हाँ, यदि आप चाहें तो आप के सहयोग के लिए मैं और मेरे बन्धु परम उरू नर पिशाच पाप लीला रोकने में सर्वदा तत्पर रहेगे।"—उत्तर में युधिष्ठिर ने आश्वासन दिया॥

उस समय यही बात तय पाई थी कि अब की बार यदि जरासिन्ध ने कोई नया उत्पात खड़ा किया तो श्री कृष्ण के नेतृत्व में पाण्डव अपनी पूर्ण शक्ति उसके सहार के लिए प्रयोग करेंगे।

भाग्य वश इस निर्णय के कुछ दिनों बाद ही जरासिन्ध ने श्री कृष्ण पर आक्रमण करने की मूर्खता कर डाली। श्री कृष्ण के त द्वारा जब महाराज युधिष्ठिर को यह समाचार मिला उन्होंने भीम और अर्जुन की सेना सहित तुरन्त द्वारिका को भेज दिया।

द्वारिका से श्री कृष्ण, बलराम, समुद्र विजय, वसुदेव,

और इन सभी के पुत्र, तथा अन्य योद्धा, एक बड़ी सेना सहित साथ ही पाण्डवों की सेना व पाण्डव रणभेरी बजाते हुए चल पड़े। द्वारिका से पैंतालीस योजन दूर सेन पल्ली स्थान पर सेनाएं रोक दी गईं। उधर से वसुदेव के अनुयायी खेचर भी आ गए।

जरासिन्ध की सेनाओं से एक योजन दूर ही सेनाएं रोक दी गई थी और एक राजदूत द्वारा जरासिन्ध पर सवाद भेजा गया कि अच्छा यही है, जरासिन्ध अपनी सेनाओ सहित वापिस चला जाय।

परन्तु जरासिन्ध के सिर पर तो अहकार सवार था, वह कब मानने वाला था, उसने अपने एक मंत्री द्वारा श्री कृष्ण पर सवाद भिजवाया कि कस वध का बदला लेने के लिए जरासिन्ध आया है वह 'खून का बदला खून' की नीति मानने वाला है, और बिना श्री कृष्ण से बदला लिए नही लौटेगा।

श्री कृष्ण ने मत्री को उत्तर देते हुए कहा—"आप जरासिन्ध से जाकर कहे कि यदि वे बिना युद्ध के नही मानेंगे तो हम भी सब प्रकार से तैयार हैं। परन्तु कस वध की आड़ ले कर वे युद्ध न करें। उस पापी ने मेरे छः भ्राताओ को न जाने क्या किया। उसने प्रजा को बहुत कष्ट पहुचाए थे, उस ने अपने पिता को बन्दी बनाया था, मेरे पिता जी को कपट से उसने जेल मे डाल रक्खा था, मेरा वध करने के लिए कितने ही षड्यन्त्र किए थे। इस लिए उस ने जैसा किया वैसा फल पाया। अतएव कस का बदला लेने का विचार अन्याय पूर्ण है। हम नही चाहते कि बिना कारण ही रक्तपात हो, अतएव वह लौट जाये, वरना उस के हठ से हमे भी युद्ध करना पड़ेगा, जिसका परिणाम उस के हक मे ठीक नही होगा।"

मत्री ने श्री कृष्ण के साथी योद्धाओं को देखा और स्वय घबरा गया, उस ने जरासिन्ध से जाकर श्री कृष्ण का उत्तर कह सुनाया और अन्त मे बोला—"महाराज! शत्रु दुर्बल भी हो तो भी उसे अपने से अधिक शक्ति शाली समझना चाहिए। यह युद्ध युक्ति सगत नहीं है, और इस समय मुरारी के वीरों को देख कर भी हमारा युद्ध करना उचित नहीं है।"

मत्री की वात से जरासिन्ध के ग्रहकार को ठस पहुची थी ग्रत: उस ने कड़क कर पूछा—"उन में कौन ऐमा है, जो मेरी मेना मेरे सहयोगियों ग्रौर मुझ से जीत सके ?"

मत्री ने हाथ जोड कर कहा—"महाराज ! रोहिणी के स्वयवर मे ग्राप वसुदेव से परास्त हो चुके है। ग्रौर ग्रव तो वसुदेव के दो वीर पुत्र भी हैं, कृष्ण ग्रौर बलराम, दोनों ही बलवान एव विद्यावान है, उन के साथ पाण्डव भी है, द्रौपदी के स्वयवर मे ग्राप ग्रर्जुन के कौशल को देख ही चुके हैं। उन के साथ नेमि नाथ जी भी हैं, जिन की दिव्य शक्ति की घर घर में चर्चा है। हे मगधेश्वर ! उन वीरो का सामना करना दुर्लभ है। शिशुपाल रुक्मणि के हरण के समय श्री कृष्ण से मुह की खा ही चुका है। फिर ग्राप किस वीर पर गर्व कर सक्ते हैं। श्रीकृष्ण के देव ग्रधिष्ठायक हैं, जिन्हो ने काली कुवर के प्राण लिए थे। ग्रतएव ग्रच्छा यही है कि ग्राप लौट चलिए। युद्ध का विचार त्याग दीजिए।"

मत्री की वाते सुन कर जरासिन्ध को बहुत क्रोध ग्राया। कहने लगा—"रे धूर्त ! कायर ! यदि शत्रुग्रो से इतना ही भयभीत है तो यहाँ से भाग क्यों नही जाता ? क्यो दूसरों को भी भयभीत कर रहा है। या साफ साफ कह कि तू यादवो के बहकाए में ग्रा गया है।"

मत्री जरासिन्ध की बात सुन कर कापने लगा, ग्रौर यह समझ कर कि यदि कुछ ग्रौर समझाने की चेष्टा करूगा तो व्यर्थ ही प्राण गंवाने पड़ेंगे। उसने जरासिन्ध की चापलूसी करना ही ग्रपने लिए हितकर समझा। उसने कहा— "महाराज ! ग्राप तो वेकार ही रुष्ट हो गए, मेरे कहने का ग्रर्थ तो यह है कि पुरानी सारी वातों को याद करके ग्रौर शत्रुग्रो की शक्ति को उचित प्रकार से जानकर युद्ध करें। वैसे ग्रापका रण क्षेत्र मे सामना करना किसके वस की बात है, फिर भी चक्रव्यूह रचा कर युद्ध करना चाहिए। शत्रु भी ग्राप से भयभीत है। ग्रापकी तलवार की शक्ति को कौन नही जानता ? मैं तो ग्रापको शत्रुग्रों के मन की वात बता रहा था।"

जरासिन्ध ने प्रसन्न हो कर कहा— अब भी तो ढग की बात कही। सिंह को शृंगाल से डराने की बात करता है। यादवो के लिए तो मै अकेला ही हूं।

"महाराज! आपकी अपार शक्ति के सामने वे क्या है? मैं कही आप की मर्यादा के प्रतिकूल कोई बात थोड़े ही कर सकता हू? मैं तो आपको उत्तेजित कर शत्रुओं के नाश का समुचित प्रबन्ध कर रहा था।" मन्त्री ने कहा।

बात चीत करते करते रवि अस्त हो गया। जरासिन्ध ने समस्त सरदारों और योद्धाओ को खा पी कर विश्राम करने का आदेश दिया।

× × × × × × ×

प्रात.काल होते ही जरासिन्ध ने चक्र व्यूह रचना आरम्भ कर दिया। एक सहस्र ओर बनाए गए, एक एक ओर पर एक एक हजार योद्धा, नरेश और रण बाकुरे लगाए गए। एक एक योद्धा के साथ दो दो हजार रथ सवार, अश्व सवार और पैदल सैनिक थे। ओरों की रक्षा के लिए ५ सहस्र घुड़ सवार और सोलह सहस्र पैदल सैनिक नियुक्त किए गए। चक्रमुख पर आठ हजार योद्धा जिन मे विशेषतया कौरव वशी सेना के सरदार थे, नियुक्त किए गए। चक्र के मध्य मे मगधेश्वर के साथ पाच हजार शूरवीर रण बांकुरे रक्खे गए और उनके चारो ओर सवा ६ हजार रणवीर चुने हुए नौजवान खडे किए गए। बाईं ओर मध्य देश के नरेश और उस की सेना दाईं ओर उनके अन्य भूप लगाए। चक्र नाभि की सधि सधि पर एक एक शूरवीर सेना पति नियुक्त किया गया। चक्रव्यूह के सामने शकट व्यूह रचा गया जिस पर शिशुपाल की सेनाए, व सरदार थे।

जब जरासिन्ध के चक्रव्यूह की सूचना श्री कृष्ण को मिली तो उन्हो ने गरुड व्यूह रचने का आयोजन किया। व्यूह के मुख पर ५० हजार तेजस्वी कुमार रक्खे गए। मोर्चे पर कृष्ण और बलराम ने अपने अपने रथ रक्खे। वसुदेव के अक्रूर सुमुख आदि राजकुमारों

को श्री कृष्ण के आगे रक्षक की भाति नियुक्त किया गया। उनके पीछे सहस्रो रथ सवार, गज सवार और अश्व सवार सैनिकों के साथ उग्रसैन अपने पुत्रों सहित थे। सब के पीछे धर, सारण, शशि दूर्धर, सत्यक, नामक पाच राजा नियुक्त किए गए, ताकि समय पड़ने पर काम आ सकें। दाहिनी ओर समुद्र विजय ने अधिकार जमाया, उनके चारो ओर २५ हजार चुने हुए सैनिक थे। बाई ओर बलराम के योद्धा और पाडवो की सेना रक्खी गई उनके साथ मे अर्जुन और भीम, उन के पीछे २५ हजार अश्व सवार सैनिक नियुक्त किए गए। फिर चन्द्र यश्म, सिहल बवर काम्बोज, केरल, द्रविड़, इन छ नरेशो को साठ हजार सैनिकों सहित लगाया गया। इनके पीछे शाम्बस भानु, कुशल रणबाकुरे थे, और अनगिनत सेना इस व्यूह की रक्षा के लिए थी। इस प्रकार का गरुड़ व्यूह रच कर श्री कृष्ण ने युद्ध की तैयारी करली। आवश्यकता पड़ने पर वायुयानो का भी प्रयोग किया जा सकें, इस लिए वायुयान भी तैयार कर दिए गए।

भाई की रक्षा के लिए अरिष्ट नेमि जी भी युद्ध मे उतर रहे हैं, यादव जान कर देवराज शकेन्द्र जी ने उनकी सेवा के लिए मातली नामक सारथी, अस्त्रशास्त्रों से सुसज्जित रथ तैयार कर भेज दिया गया जिस पर अरिष्ट नेमि जी सवार हुए। समुद्र विजय ने श्री कृष्ण के ज्येष्ठ पुत्र को इस व्यूह का सेनापति नियुक्त किया।

व्यूह तैयार हो जाने पर श्री कृष्ण ने एक बार पुनः जरासिन्ध को युद्ध से बाज आने का सन्देश भेजा, जिस के उत्तर मे जरासिन्ध ने युद्ध का बिगुल बजा दिया। फिर क्या था, घमासान युद्ध होने लगा। खड़गें परस्पर लडने लगी। कट—कट कर शीश गिरने लगे, रक्त की धाराए फूट पड़ी। अकड़ते और जवानी के उत्साह मे कूदते फादते योद्धा आपस मे जूझ रहे थे धनुष तथा खडग की मार से योद्धा भूमि पर गिर कर तड़पने लगे। जरासिन्ध की सेना की सख्या अधिक थी और वह अपनी सेनाओं को ले कर जी जान तोड़ कर लड रहा था, कुछ ही देरी मे जरासिन्ध के भयकर प्रहार से श्री कृष्ण की सेना तितर बितर हो गई। जरासिन्ध हर्षित हो डीगें हाकने लगा उसके सैनिको मे हर्ष दौड़ गया, यह देख कर

श्री कृष्ण व्याकुल हो गए, उन्होंने तुरन्त अपनी पताका फहराई, पाचजन्य बजाया और शीघ्र ही योद्धाओं को ललकार कर एकत्रित किया, उन्हे प्रेरणा दी, अपने शब्दो से उत्साह प्रदान किया और उनके सम्मान की चुनौती देते हुए एक साथ मिल कर जरासिन्ध की सेना पर टूट पडे। चारो ओर से जरासिन्ध और उसके व्यूह को घेर लिया।

महा नेमि और अर्जुन ललकार कर शत्रु सेना पर टूट पडे। अनाधृष्टि, वलाहक योद्धा दे उनका साथ दिया और देखते ही देखते जरासिन्ध का चक्रव्यूह तोड डाला। इन वीरों का रणकौशल देखकर शत्रु सेना आश्चर्य चकित रह गई, उसके पैर उखडने लगे। तब रुक्मिन और रुधिर जरासिन्ध की ओर से मोर्चे पर आ डटे, इस ओर से अर्जुन और अरिष्ट नेमि जी थे। अरिष्ट नेमि जी के शस्त्रो के प्रहार से रुक्मिन और रुधिर दोनों ही घबराए, अर्जुन के बाणो ने उन्हे होश न लेने दिया, तब उनके पाव उखडते देख सात नरेश जरासिन्ध की ओर से लडने के लिए आ गए। महा नेमि जी ने तुरन्त उनके आयुध गिरा दिए।

अपने पक्ष की हार होते देख जरासिन्ध के सहयोगी सक्रन्तय नृप ने महानेमि जी पर एक भयकर (विद्यामयी) शक्ति छोडी जिस के प्रभाव से यादव कम्पित हो गए। तब मातली ने अरिष्टनेमि जी को बताया कि रावण भी यही अभेद्य शक्ति रखता था जो उसने धरणेन्द्र से प्राप्त की थी। इस राजा ने भी उसी शक्ति को वलि से प्राप्त किया है। इसको काटने का वज्र ही एक मात्र साधन है।

तब अरिष्ट नेमि जी ने महा नेमि को वज्र बाण दिया, उस बाण के छूटते ही उस शक्ति का सहार हो गया वह व्यर्थ हो गई, रुक्मी आयुध लेकर सक्रन्तय नृप के साथ आ मिला और आठ नरेशो ने अपनी सेनाओं सहित मोर्चा जमाया। कौमुदी गदा और अनल बाण से नेमि जी ने रुक्मी को मैदान से भगा दिया। कुछ ही देरी मे अरिष्ट नेमि जी ने अनेक प्रकार के दिव्य शक्तिवान् अस्त्रो का प्रयोग किया जिन से आठों नरेशो के पाँव उखड गए और वे भागते ही नजर आये।

भयकर युद्ध चल रहा था, प्रत्येक योद्धा अपने अपने रण–कौशल से विरोधी को परास्त करने की चेष्टा मे था। समुद्र विजय ने राजा द्रुम को, स्तिमित ने भद्र राजा को, और अक्षोम्य ने वसु सैन नृप को यमलोक पहुचा दिया। इसी प्रकार कितने ही शूरवीर संग्राम में मारे गए। महाद्म, कुन्तिभोज, श्री देव आदि नृप यम लोक सिधार गए। इतने मे सूर्य अस्त हो गया और दोनों पक्ष अपने अपने डेरो मे चले गए। रात्रि भर सभी ने विश्राम किया।

प्रात. होते ही हिर राय नाम नृप जरासिन्ध की ओर से अपनी सेना को लेकर रण क्षेत्र मे आ गया, और आते ही भयकर वाण वर्षा की, परन्तु अर्जुन ने उसके वाणों को बीच ही में काट गिराया। हिर राय नाम रह रह कर सिंह की भाति गरजता और विकट रूप से वाण वर्षा करता रहा, तब भीम ने आगे वढ कर अपनी गदा से उसके रथ को चूर चूर कर दिया और समुद्र विजय के शुभ जयसैन ने अर्जुन के पास अपना रथ खड़ा करके हिर राय नाम की सेना पर वाण वर्षा आरम्भ कर दी। उसके तीक्ष्ण वाणों से गिरते सैनिकों को देख कर हिरराय नाम ने गरज कर कहा—

ओ मूर्ख जय सैन! भाग जा, क्यों व्यर्थ में प्राण गवाता है। जय सैन ने क्रोधित हो कर एक ऐसा वाण मारा कि हिरराय नाम का सारथी लुढक पडा। क्रुद्ध हो हिरराय नाम ने जय सैन पर वाणों की बौछार कर दी और जयसैन अपने सारथी सहित मारा गया।

अपने भाई को गिरते देख महाजय दौड कर आ गया और हिरराय नाम पर टूट पड़ा, परन्तु उसकी हिरराय नाम के सामने एक न चली, कुछ ही देरी में वह भी मारा गया।

यह दृश्य देख कर अनाधृष्टि पर कोप छा गया और मोर्चों पर आ डटा, आते ही एक ऐसा वाण मारा कि जिसने उस धनुष को ही तोड दिया, जिसके द्वारा जयसैन और महाजय का वध किया गया था। और गरज कर वोला— हिरराय नाम इन दो कुमारो के रक्त का वदला तुझ से लिया जायेगा। भागने का प्रयत्न न करना।

याद रख कि तेरी मृत्यु का सन्देश आया रखा है।

"छोकरे! पहले अपनी मां से तो विदा ले ली होती, जाकर देख उसके स्थनों से दूध चू रहा होगा।" हिररायनाम ने अकड कर कहा और स्वयं भयकर वार करने आरम्भ कर दिए, अपने सरदारों को उत्तेजित करने के लिए उसने ललकारा—"देखते क्या हो,शत्रु को भागने का अवसर भी मत दो, वह देखो, उनकी मौत उनके सर नाच रही है, वहादुरो आगे वढो, विजय तुम्हारी बाट देख रही।"

सरदारों ने मिल कर घोर संग्राम करना आरम्भ कर दिया, यह देख कर भीम, अर्जुन और यादवो को भी जोश आ गया, भीम ने अकड़ कर कहा— "वीरो, गीदड़ों की भबकियो की चिन्ता मत करो, जिनके हाथ मे शक्ति नही होती, वे जवान चलाया करते हैं। तनिक इन्हे अपने वाजुओं की शक्ति तो दिखादो।" सभी जोश से लड़ने लगे।

हिरराय नाम अनाधृष्टि को मारने के लिए दांत पीस कर, तलवार लेकर वढा, अनाधृष्टि भी रथ से उतर पड़ा और तलवार हाथ में ले कर यह कहता हुआ आगे वढा— "अरे दुष्ट मामा, देखता हूं तेरी तकदीर मे भी भानजे के हाथो ही मरना लिखा है। तो चल ले मैं ही तुझे यमलोक पहुचाता हू।"

हिरराय नाम क्रोध से पागल हो उठा, बोला—मूर्ख अपने उन भाईयो से मिलना चाहता है तो आ मेरी तलवार तुम जैसो को यमपुरी पहुचाने मे वहुत माहिर हू ?

'अरे पापी! तू जीवित रहा तो मुझे वार वार मामा कहते हुए लज्जा आयेगी। 'आ चल तुझे यम महाराज के पास पहुंचा दू।" इतना कह कर, अनाधृष्टि ने तलवार का वार इस जोर से किया कि हिरराय नाम का सिर धड़ से अलग हो कर धूल मे जा मिला। फिर अष्टावीश को भी उसने मार गिराया।

भीम और अर्जुन ने अनाधृष्टि की वीरता देख कर कहा— "वाह, वाह, वास्तव मे सिहनी का सिह बबर है।" दो वीरों

के मरते ही जरासिन्ध पक्ष की सेना मे भगदड़ मच गई। यह दृश्य देख कर जरासिन्ध वहुत चिन्तित एव दुखित हुआ और युद्ध बन्द करके उसने दूर जा कर तेला तप धारण किया और कुल देवी को स्मरण करके उसको आराधना की अन्त में उसने कहा—"माता! मेरा भविष्य अन्धकारमय होता जा रहा है। सारे सहयोगी निष्काम होते जा रहे हैं, वस अव तेरा ही एक मात्र सहारा है। हे माता, शीघ्र आओ और शत्रु की सेना का वल क्षीण करो।"

जरासिन्ध की विनती से सुरी आकर यादव सेना पर कोप गई और सारी सैना को निर्वल वना कर चली गई। सैनिक अस्त्र शस्त्र चलाना चाहते पर हाथ काम ही नही करते थे, तव वड़ी चिन्ता हुई। अरिष्ट नेमि जी से उस समय मातली ने सुरी के अभाव को समाप्त करने की युक्ति वताई, मातली के कथनानुसार ही कार्य किया गया, और देवी की माया समाप्त हो गई। फिर यादव सेना अपनी पूर्ण शक्ति से लड़ने लगी।

परन्तु जरासिन्ध समझने लगा कि यादव सेना का आत्म वल कम हो गया है, इस लिए उसने एक दूत भेज कर समुद्र विजय के पास सन्देश भिजवाया कि श्री कृष्ण और वलराम को हमारे हवाले कर दो, तो हम युद्ध बन्द करके वापिस चले जायेंगे।

समुद्रविजय ने दूत से कहा— 'जरासिन्ध चाहे युद्ध करे या रण क्षेत्र से भाग जाय, जव तक यादवों के दम में दम है, वे किसी प्रकार भी ऐसी शर्त को स्वीकार न करेंगे।"

दूत के जाने के वाद समुद्र विजय ने यादवों को ललकार कर कहा— क्या वात है, शत्रु को ऐसा अपमान जनक प्रस्ताव भेजने का साहस क्यों हुआ? क्या यादवों की तलवार की गति धीमी हो गई है, क्या यादव योद्धाओं के हौसले पस्त हो गए हैं? क्या हम शत्रु को लेने का अवसर देकर अपना उपहास कराने पर तुले हैं। यदि तुम यादव अथवा सच्चे वीर होते घर वापिस जाने की इच्छा को भूलकर आगे वढ़ो। एक ही दशा मे घर जाना है वह विजय की पताका फहराते ही कोई घर जायेगा, वरना यही कट कट कर मर जायेगा।'

कि जब से तुम रण भूमि मे आये हो और विशेषतया जब से श्रीकृष्ण के पास हो आये हो, तभी से तुम्हारा मस्तक फिर गया है। तुम पागलों जैसी बातें करते हो, मेरे वैरियों की प्रशंसा करते हो, और मुझे मैदान से भाग जाने को उकसाते हो, क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम वैरियों से मिल गए हो। नमक हराम !"

उसी समय दूसरा मंत्री, डंभक बोल उठा— "महाराज ! शूरवीर कभी रण क्षेत्र से इस प्रकार वापिस जाने की बात भी नहीं सोचा करते। वे या तो विजयी हो कर लौटते हैं या प्राण देदेते हैं। रण भूमि मे मरने वालों को यश मिलता है हंस की बातें महाराज के लिए अपमान जनक हैं।"

डंभक की बातें सुन कर जरासिन्ध और भी बिगड़ गया उस ने हंस को ललकारते हुए कहा— "सुन रहे हो, मंत्री जी की बात ! जो भी तुम्हारी बात मुंह से सुनेगा वही तुम पर थूकेगा, अतएव भविष्य मे ऐसी बात मुह से मत निकालना, जो मेरे कोप को जागृत करदे, मेरी तलवार वैरियों का रक्त पी सकती है, तो वैरियों के हितैषियों को, आस्तीन के नागों को भी यमलोक पहुचा सकती है।"

बेचारा हंस अपना सा मुह ले कर रह गया। बोला कुछ नहीं प्रातः होते ही जरासिन्ध ने सेनाओं को तैयार होने का आदेश दिया और शिशुपाल को उस दिन के लिए सेनापति नियुक्त कर स्वय भी रण के वस्त्र, वस्त्र आदि पहन लिये। सवालाख सेना सज कर तैयार हो गई। जरासिन्ध ने अपनी खड्ग हवा मे लहराते हुए कहा— "युद्ध होते कई दिन बीत गए। शृंगालों की सेना अभी तक सामना करती रही। पर अब मैं यह सहन नहीं कर सकता। अतः मैं इस खडग की शपथ लेकर कहता हूं कि चाहे जो हो आज मैं कृष्ण का सिर इस खडग से उतार लूगा। जिस सैनिक में एक एक वैरी का खून पी जाने का साहस न हो, वह अभी ही पीछे चला जाय।"

शिशुपाल बोला—"महाराज ! आप निश्चिंत होकर लड़िए।

हमारा एक एक सैनिक आपके नाम पर अपने प्राण न्योछावर करने को तैयार है, एक एक सैनिक आपकी शपथ को पूर्ण करने के लिये वैरियों गाजर मूली की भांति काट डालने को तैयार है।"

शिशुपाल! हम सदा से ही तुम पर पूर्ण विश्वास करते हैं। श्री कृष्ण तुम्हारा भी वैरी है। तुम्हें जीवन चाहिये तो कृष्ण का वध करो। तुम्हे सुख चाहिए तो अपने पथ के कांटे को क्रूरता से समाप्त कर दो। आज तुम्हारे शौर्य की परीक्षा है।" जरासिन्ध ने शिशु पाल को उत्तेजित करते हुए कहा— "महाराज! आप की प्रसन्नता मुझे अपने जीवन से अधिक प्रिय है।" शिशुपाल ने चापलूसी करते हुए कहा। हमे तुम से ऐसी ही आशा है।"

इधर मन के लड्डू फोडे जा रहे थे, उधर यादव गरुड़ व्यूह रच रहे थे। जब उधर व्यूह रचना देखी तो शिशुपाल ने भी चक्र व्यूह रचा। सारी सेना को युक्ति पूर्वक लगाया। जरासिन्ध प्रथम दिन की भांति सैनिकों के बीच रहा। शिशु पाल उस के आगे रक्षको का अधिष्ठाता था।

जरासिन्ध ने युद्ध आरम्भ करने से पूर्व अपने मंत्री को बुला कर पूछा—"मंत्री जी! हमें यह बताओ कि आज विरोधी सेना में कौन कौन से सुभट हैं?

मंत्री ने सामने सकेत द्वारा बता बता कर कहा-"महाराज! वह सामने श्याम अश्व वाले रथ पर अनाधृष्ट कुमार है। वही पाडवो की सेना का सेनापति है। वह देखिये उस के रथ पर गज चित्र युक्त पताका लहरा रही है। श्वेत अश्व और कपि ध्वजा वाला रथ अर्जुन का है। नील कमल की शोभा वाले अश्व जिस रथ मे जुते हैं, उस पर भीम सेन सवार हैं। और वह देखिये, सिंह चिन्ह ध्वजा वाला, स्वर्ण समान चमकता रथ समुद्र विजय का है। वृषभ चिन्ह जिस ध्वजा में है, वह अरिष्ट नेमि जी के रथ पर लहरा रहा है, उस मे शुक्ल वर्ण के अश्व जुते हैं। कबरे अश्वों वाले रथ में अक्रूर कुमार हैं, और कदली के चिन्ह वाली ध्वजा उस पर लहरा रही है। लाल अश्व वाला रथ उग्र सेन का, तीतर वर्णी अश्वो का रथ महानेमि का, और हरिण

चिन्ह वाली ध्वजा जिस पर लहराती है वह रथ जरत कुमार का है। पद्म रथ राजा के रथ, के अश्व पदम समान हैं, और कमल जिस ध्वजा पर चमक रहा है, वह साहरण के रथ पर लहरा रही है। ....'' 'मैं पूछता हूं, कृष्ण का रथ कौन सा है ?'' बीच ही मे जरासिन्ध कड़क कर बोला।

मन्त्री एक बार तो कांप उठा—बोला—''महाराज सेना के बीच में श्वेत अश्वों वाला रथ जिस पर गरुड़ चिन्त्रित ध्वजा लहरा रही है, श्री कृष्ण का है। और कृष्ण के पास दाहिनी ओर बलराम हैं''

बस बस पुराण मत बखानो'

मन्त्री जरासिन्ध की बात सुन कर मौन रह गया।

जरासिन्ध ने सेना पर दृष्टि डाली और गरज कर बोला—सब शत्रु दल पर टूट पडना।''

युद्ध आरम्भ हुआ। योद्धा आपस मे जूझने लगे, गज सवारों से गज सवार, अश्व सवारों से अश्व सवार, रथारोहियो से रथारोही, और पैदल सैनिको से पैदल सैनिक भिड़ गए। खड़गों की खन खन की ध्वनि से रण क्षेत्र भर गया। इतने ज़ोर का शोर हुआ कि आकाश पृथ्वी भी कांप उठे।

उसी समय नारद जी पधारे। जरासिन्ध के पास पहुंच कर बोले—' आप जैसे योद्धा के सामने वह ग्वाला क्या चीज है। तनिक आगेवढ कर उसी का सफाया कीजिए, सैनिको पर खडग उठाना आप को शोभा नही देता। आप श्री कृष्ण को मार कर जो यश प्राप्त करेंगे, वह आज तक किसी को नही प्राप्त हुआ होगा।

नारद जी की बात सुन कर जरासिन्धु उत्तेजित हो गया और नारद जी के सकेत पर कार्य करने के लिए आगे बढ़ने लगा।'

नारद जी श्री कृष्ण के पास भी पहुंचे और बोले–महाराज! बूढा जरासिन्ध तो पक्के आम की भांति है, परन्तु आप की

विना नही गिरेगा। आप के सामने वह क्या है, शीघ्र काम तमाम कर के झगड़ा समाप्त कीजिए, क्यों व्यर्थ रक्त पात करा रहे हैं ?"

श्री कृष्ण जी नारद जी की बात पर हंस दिए, "आप को तमाशा ही देखना है, तो घवराइए नही। अब अधिक प्रतीक्षा नही करनी होगी। वह स्वयं अपनी मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहा है।" यवन कुमार और अक्रूर आदि मे घमासान युद्ध हो रहा था, मार काट करते यवन कुमार को सहारण ने जाकर आगे वढने से रोक दिया। यवन कुमार कुछ देरी तक उसका सफल सामना करता रहा, सहारण ने ललकार कर कहा— "छोटे मोटे सैनिकों को मार कर अपने को वीर समझ लिया होगा, पर किसी वीर से पाला नहीं पड़ा है, तो वगले झांक रहे हो।"

सहारण की बात सुन कर यवन कुमार को वडा क्रोध आया उसने कडक कर कहा—"अपने मुह मियां मिट्ठू बनते आप ही को देखा है। डीग हांकना छोड़ कर हाथ दिखाओ। आटे दाल का भाव अभी ज्ञात हुआ जाता है।"

'वढ वढ ॰र बातें बनाना बहुत आता है, होता हुआता कुछ नही।" चिड कर सहारण बोला। यवन कुमार ने क्रुद्ध होकर उस का रथ चूर चूर कर दिया। इस पर सहारण भी क्रुद्ध हो गया. उस ने यवन कुमार पर खड़ग का एक ऐसा वार किया कि सिर धड से अलग हो गया। सहारण की इस वीरता को देख कर यादव सेना में भारी हर्ष छा गया, सैनिक आनन्दित हो कर उछलने लगे।

युवराज का वध होते देख कर जरासिन्ध वहुत झुंझलाया, उस ने श्री कृष्ण की ओर बढना छोड कर सहारण का पीछा पकड़ा। कुछ देरी तक दोनों में युद्ध होता रहा, अन्त मे जरासिन्ध के वारों को सहारण न काट पाया और उस की खडग से मारा गया।

फिर वह भूखे सिंह की भांति वलराम के पुत्रों पर टूट पड़ा और सभी को आन की आन में मार गिराया, इस से पाडवों की

सेना में आतंक छा गया। सभी भयभीत हो गए, जरासिन्ध जिधर जाता मार काट करता निकल जाता, कुछ सैनिक तो उस से अपने प्राण बचाने के लिए भाग जाते।

शिशुपाल श्री कृष्ण से भिड़ गया, उस ने कृष्ण को ललकार कर कहा—"यह गोकुल ग्राम नहीं है, चरवाहों, ग्वालों की सग्राम में भला क्या चल सकती है। देखा कैसे मर रहे है, तुम्हारे योद्धा ने क्षत्रियों का सग्राम कभी नही देखा होगा, अब तो आंख खुली। खैर चाहते हो तो शस्त्र फैंक दो।'

श्री कृष्ण ने हंस कर कहा—"शिशुपाल! पहले अपनी उस माता से तो पूछ लिया होता, जिसने मुझ से तेरे प्राणों की क्षमा माँगी थी? या मेरे हाथो मरने मे ही तुझे आनन्द आयेगा?'

शिशुपाल गरज कर बोला-मैंने तो अपनी मां से पूछ लिया, पर तू तो यशोदा ग्वालिन से पूछ ले, उसके ढोर कौन चुगाएगा? मेरा एक भी वार नही सहा जायेगा।

श्री कृष्ण ने कहा—"ऐसे योद्धा होते तो रुक्मणि के विवाह मे दबा कर न भागते।

'चलेगी न तेग और तलवार उन से
यह बाजू बहुत आजमाए हुए हैं॥"

शिशुपाल को बहुत क्रोध आया, उस ने दांत पीस कर श्री कृष्ण पर आक्रमण कर दिया। श्री कृष्ण वार काटते हुए बोले—'तेरी धृष्टताओं को मैंने कितनी ही वार क्षमा कर दिया, पर अब तू सिर पर ही चढता चला आता है तो ले अपने किए का भोग।' इतना कह कर उन्हों ने उस पर एक ऐसा वार किया कि शिशुपाल वही ढेर हो गया। शिशुपाल के मरते ही यादव सेना में नवीन आशा का सचार हुआ, सैनिकों ने श्री कृष्ण की जय जयकार करनी आरम्भ करदी। जरासिन्ध अपने परम सहयोगी की मृत्यु देख कर आग बबूला हो गया। उस ने आव देखा न ताव अपना रथ श्री कृष्ण की ओर हंकवा दिया। उधर जरासिन्ध के पुत्रों ने बल राम को घेर रखा था, श्री कृष्ण ने उन पर वाण वर्षा की उधर

बलराम भी शीघ्र गति से बाण बरसा रहे थे। दोनों के बाणों की वर्षा से जरासिन्ध के पुत्र मारे गए। जब जरासिन्ध की दृष्टि उस ओर गई तो उस ने अपने पुत्रों की हत्या का बदला लेने के लिए बलराम को घेर लिया। और गदा का प्रहार किया, जिस से बलराम व्याकुल हो गए,. पुन. गदा मारने को उठाई तो अर्जुन को दृष्टि उस पर चली गई अर्जुन बीच मे कूद पड़ा और भयकर युद्ध करके बलराम को बचा लिया।

जरासिन्ध ने श्री कृष्ण को निकट देखकर कहा—"तुम इतने दिनो अपनी चतुराई से मेरे हाथों से बचे रहे पर अब मेरे हाथों तुम्हारी सारी माया समाप्त हो जायगी। आज मैं जीव यशा की प्रतिज्ञा पूरी करूंगा।"

श्री कृष्ण बोले 'यह तो अभी ही पता चल जायेगा कि जीव यशा की प्रतीज्ञा पूर्ण होगी या एवंता मुनि की भविष्य वाणी। तनिक दो दो हाथ हो कर।"

जरासिन्ध ने गरज कर कहा—मैं जरासिन्ध हू जिस ने कभी पराजित होकर नही जाना, मेरे नाम से सारा ससार कापता है। ग्वालों मे खेलने वाला मेरा क्या सामना करेगा?"

इतना कह कर उस ने श्री कृष्ण पर बाण वर्षा आरम्भ करदी, पर श्री कृष्ण उस के बाणों को अपने बाणों के बीच ही में काट देते। कितने ही समय तक बाणों से युद्ध होता रहा अन्त मे जरासिन्ध ने चक्र रत्न चलाया। उसे चलता देख कर ही यादव सुभट भयभीत हो गए, पान्डवों और यादवों ने मिलकर उसे काटने के कितने ही यत्न किये पर कोई वार न चलाई। आखिर चक्र आकर श्री कृष्ण के शरीर मे लग गया पर शरीर का स्पर्श होना था, कि चक्र गेंद की भांति हो गया, श्री कृष्ण को कोई चोट ही न आई। इस बात को देखकर जरासिन्ध की आंखें फैल सी गईं, उस की समझ मे ही न आया कि चक्र रत्न से श्री कृष्ण का शरीर क्यों न कटा।

श्री कृष्ण ने उसी चक्र को अपने हाथ में लिया, और गरज

कर बोले —"पापी ! देख क्या यह भी मेरी ही माया है। ये तेरा शस्त्र ही मेरे काम आ रहा है। तू बूढ़ा है, जा कुछ दिनों और ससार में रहना चाहे तो भाग जा, वरना तेरा ही अस्त्र तेरे प्राण लेगा ?"

जरासिन्ध पर तो शक्ति का अहंकार सवार था, उस ने अकड कर कहा—"ग्वाले ! पहले इस चक्र का प्रयोग सीखने के लिए मेरा शिष्य बनता तब इसे प्रयोग करने की बात करता तो कदाचित तेरी धमकी का मुझ पर कुछ प्रभाव भी पड़ता अब क्या है, तेरे लिए तो यह एक खिलौना ही है।"

तो फिर देख इस खिलौने की करामात ! इतना कह कर श्री कृष्ण ने चक्र रत्न उस की ओर घुमा कर मारा, जिस से देखते ही देखते जरासिन्ध का शीश कट कर धरा पर आ गिरा और वह चौथे नरक मे चला गया। आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी। श्री कृष्ण की जय के नारों से युद्ध स्थल गूंज उठा। जरासिन्ध की सेनाओं ने शस्त्र डाल दिए और रण भूमि उत्सव स्थल में परिणत हो गई। यादव सनिक आनन्द चित हो कर विपुल वाद करने लगे।

जरासिन्ध का वध होते ही नेमिनाथ जी ने तुरन्त जा कर जरासिन्ध के बन्दी ग्रहो मे बन्दी बने पडे राजाओं को बन्धन मुक्त किया। जब जीवयश को पिता की मृत्यु का समाचार मिला तो वह बहुत दुखी हुई और अग्नि मे कूद कर खाक ही गई। श्री कृष्ण ने मगध देश का चौथाई भाग जरासिन्ध के शेष रहे पुत्र को दे दिया। उन्होंने मृत यादवो के शवो का दाह सस्कार किया और तीन खण्डों की दिग्विजय करने चल पडे। जिसे आठ वर्ष मे पूर्ण किया और तीन खड मे अखड आन मानवाकर त्रिखंडीश्वर हो कर वाद्यसमूहों के साथ महामहोत्सव पूर्वक अलका सदृश द्वारिका नगरी मे प्रवेश किया।

* चतुर्थ परिच्छेद *

अद्भुत महल
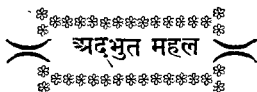
जरासिन्ध और शिशुपाल का बध हो जाने से महाराज युधिष्ठिर के सम्राट पद पाने का रास्ता खुल गया। श्री कृष्ण के सहयोग से महाराजाधिराज पद से युधिष्ठिर को विभूषित करने के लिए एक महोत्सव राजसूयज्ञ के नाम से रचाया गया और दुर्योधन कर्ण और शकुनी भी श्री कृष्ण के कारण महाराज युधिष्ठिर को सम्राट बनने से न रोक पाये।

इधर श्री कृष्ण ने अपनी बहन सुभद्रा का विवाह अर्जुन के साथ कर दिया था इस लिए पांडवो के साथ उनका घनिष्ट सम्बन्ध था, वे पाण्डवों के प्रत्येक कार्य मे सहयोग और परामर्श देते थे। इसी सम्बन्ध के कारण, और महाराज युधिष्ठिर को धर्म परायणता के कारण पाण्डवो की कीर्ति मे वृद्धि होती रही, आधा राज्य पाने पर भी वह भारत खण्ड मे प्रसिद्ध हो गए और सौ राजा उनके आधीन आ गए।

सुभद्रा के गर्भ से एक कांतिवान पुत्र उत्पन्न हुआ, इस खुशी में महाराज युधिष्ठिर ने एक विराट उत्सव किया। उस उत्सव के लिए अर्जुन के मित्र मणिचूड़ ने अद्भुत महल बनाया, जिसमें उस युग की सर्वोत्तम कला दिखाई गई थी। रत्नो और मणियों से युक्त दीवारें और स्तम्भ इतने आकर्षक बने हुए थे कि आंखें धोखा खा जाती थी। कही रवि उदय होता दर्शाया गया था, तो कही पूर्ण शशि धवल चांदनी बखेरता हुआ। फर्श पर नील मणि लगी थी।

और रंगों का ऐसा सुन्दर नमूना था कि नीले तथा श्वेत रंग से रंग फर्श को देख कर कोई भी व्यक्ति 'जल' का धोखा खा सकता था, जहां जल था वहां फर्श दिखाई देता था. इसी प्रकार दीवारें भी छद्ममयी थी, दूर से द्वार दीख पड़ने वाली जगह मोटे पत्थरों की दीवार थी और जहां दीवार प्रतीत होती थी, वह द्वार थे। विभिन्न भांति की रत्न पुतलियां, चित्र, तथा नाना प्रकार के कामों से युक्त वह महल एक अद्भुत भवन बन गया था।

पुत्र जन्मोत्सव पर युधिष्ठर ने अनेक नरेशों को निमन्त्रित किया, श्री कृष्ण, बलराम दुर्योधन, कर्ण, शकुनि आदि सभी निमन्त्रित थे। बहुमूल्य भेंट दी, बहुमूल्य उपहारों के ढेर लग गए। देश विदेश से कलाकार निमन्त्रित थे। आठ दिन तक विभिन्न नृप, संगीत और प्रदर्शनों की धूम रही। युधिष्ठिर ने मुक्त हस्त से धन व्यय किया दान देने में युधिष्ठिर ने इतना धन व्यय किया देखने वाले भी दांतों तले उंगली दबा कर रह गए। हस्तिनापुर, द्वारिका, और इन्द्रप्रस्थ के ब्रह्मचारी विद्यार्थी बड़ी संख्या में एकत्रित थे, उन्हें सहस्रों गौएं दान दीं, जो जिसने मांगा वही दिया, याचक लोग कह उठे—"महाराजाधिराज युधिष्ठिर ने पुत्र जन्मोत्सव पर जो किया, वह अभूतपूर्व है, प्रशंसनीय है, और एक समय तक उसकी याद रहेगी।"

सभी आनन्द चित्त थे परन्तु दुर्योधन के दिल पर सांप लोट रहा था, वह ईर्ष्या के मारे जला जा रहा था यद्यपि महाराजाधिराज युधिष्ठर ने भ्रातृ स्नेह से धन का हिसाब किताब उसी के जिम्मे दे दिया था, और उसे इस बात की छूट थी कि वह अपनी इच्छानुसार जितना चाहे व्यय करे। यह बात इस लिए की गई थी ताकि दुर्योधन के मन का मैल जाता रहे और वह समझ ले कि युधिष्ठिर उसे सगे भ्रात तुल्य मानते है। परन्तु जिस समय कोष की चाबियां उसे मिली तो वह सोचने लगा कि यह सुन्दर अवसर है पाडवों को बरबाद करने का। खूब धन उड़ाऊंगा और कोष खाली कर दूंगा। जिससे राज कोष का सन्तुलन बिगड जायेगा और प्रजा के लिए व्यय होने वाला धन समाप्त होने से प्रजा जन पाण्डवों के प्रति क्रुध हो जायेगी, क्योंकि जन साधारण के हितार्थ भी व्यय

नहीं किया जा सकेगा। कर्मचारियों का वेतन रुक जायेगा, इसलिए वे असन्तुष्ट हो जायेंगे। इस प्रकार राजा का सारा ढांचा ही अस्त व्यस्त हो जायेगा। यह सोच कर वह एक पैसे के स्थान पर चार पैसे व्यय कर रहा था, पर जब उसने देखा कि उसकी इस नीति से पाण्डवों के यश मे ही वृद्धि हुई तो वह अपने भाग्य को कोसने लगा।

शिशु का नाम अभिमन्यु रक्खा गया। ज्योतिषियों ने उस के वीर होने की भविष्यवाणी की। श्री कृष्ण ने शिशु को बहुमूल्य उपहार दिए। उन्हे अपार हर्ष हो रहा था, यह देखकर कि बालक का कांतिवान मुख और उज्ज्वल ललाट बता रहा था कि बालक अद्भुत वीर योद्धा होगा।

उत्सव की समाप्ति पर समस्त नरेश, अतिथि एवं विद्वान गण विदा हो गए। पर दुर्योधन को युधिष्ठिर ने यह कर रोक लिया—"ऐसी क्या जल्दी है, कुछ दिन ठहर कर चले जाना, जैसा हस्तिनापुर वैसा ही आपके लिए इन्द्रप्रस्थ है।"

सभी पाण्डवों ने दुर्योधन से बहुत प्रेम दर्शाया, दुर्योधन मन ही मन उनसे कुढता था, पर प्रत्यक्ष रूप मे वह भी उन से प्रेम ही दर्शाता। भाईयों के कहने पर कुछ दिन उसने वही रुकना स्वीकार कर लिया।

जन्मोत्सव पर बना हुआ अदभुत महल उन दिनों इन्द्र प्रस्थ मे दर्शनीय भवन था, जो देखता वही प्रशसाए करता। परन्तु दुर्योधन ने अभी तक उसे जाकर नही देखा था, क्योंकि ईर्ष्या के कारण उसे यह कदापि सहन नही हो सकता था कि पाण्डवो की किसी भी वस्तु की प्रशसा करनी पड़े।

परन्तु एक दिन भीम ने दुर्योधन से कहा—"भ्राता जी ! मणि चूड द्वारा निर्मित भवन आप भी तो देखिए। लोग तो बड़ी प्रशसा करते है। पर कला की पहचान आप सरीखे कला प्रेमियो और अनुभवियो को ही होती है। लोग तो किसी को प्रसन्न करने के लिए भी वैसे ही प्रशसा कर दिया करते हैं। चलिए आप देख कर उस मे जो कमि हो बताईये। महाराजाधिराज युधिष्ठिर ने

उस पर बहुत-धन व्यय किया है।"

दुर्योधन न चाहते हुए भी जाने से इंकार न कर सका, अपने अन्य संगी साथियों के साथ वह भीम के साथ महल देखने चल पड़ा।

जिस समय दुर्योधन और उस के साथी महल के आंगन में पहुंचे उस समय द्रौपदी उसके ऊपर खड़ी थी।

दुर्योधन ने ज्यों ही अन्दर प्रवेश किया तो सामने नील मणि के फर्श को देखकर वह समझा जल है, इस लिए उसने जूते निकाल कर वस्त्र ऊपर कर लिए। देखने वाले दुर्योधन की इस भूल पर हस पड़े, और ऊपर खड़ी द्रौपदी भी खिल खिला कर हंस पड़ी।

लोगो और द्रौपदी के हसने से दुर्योधन को बड़ा क्रोध आया, भीम उसी समय बोल पड़ा—भाई साहब, वस्त्र सभाल रहे हो, किसी से मल्ल युद्ध तो नही करना ?"

क्रुद्ध दुर्योधन बोला—'क्या तुम मुझे यहा डुबा मारने लाये हो ? महल है या तालाब घर।"

भीम ने हस कर कहा—"भाई साहब ! यह जल नहीं, नील मणि से आपकी दृष्टि धोखा खा गई है।"

दुर्योधन को अपनी भूल पर बडी लज्जा आई। उसने अपने वस्त्र नीचे कर लिए, जूता पहन लिया और आगे बढने लगा। खीझ मिटाने के लिए वह सब से आगे तीव्र गति से चला, उसके पीछे था दुःशासन। कुछ दूर जाकर दुर्योधन धड़ाम से जल कुण्ड मे गिर पडा। दर्शक हस पडे, दुःशासन भी गिरते गिरते बाल बाल बचा। भीम ने कहा—"भाई साहब ! ऐसी जल्दी क्या थी. स्नान करने को ही जी चाहता था तो आप मुझ से कहते। आप के लिए सब प्रबन्ध हो जाता। यहां तो आप ने वस्त्रों सहित ही जल मे छलांग लगा दी।"

दुर्योधन को क्रोध भी आया और लज्जा भी आई। भीम ने उसे बाहर निकाला। ऊपर खडी द्रौपदी ठहाका मार कर हस पड़ी।

दुर्योधन जल रहा था, पर बेचारा स्वयं लज्जित भी था, भीम ने ऐसे दूसरे कपडे दिए, कपडे बदल कर वह फिर भवन की सैर करने लगा।

एक स्थान पर उसे द्वार दिखाई दिया, दुर्योधन ने उस ओर पग बढ़ाया, भीम ने उसी दम कहा—जरा ध्यान से देखिये, कहीं दीवार से मत टकरा जाना।"

दुर्योधन ने कहा—'तो तुम ने मुझे मूर्ख ही समझ रखा है।" वह यह कह कर आगे बढा ही था कि सिर दीवार से जा टकराया द्रौपदी. देखते ही हस पड़ी। और बोली

डिगोरी पकड़कर कोई करो इम्दाद अन्धे की

न हो अन्धा यह क्यों, आखिर तो हैं औलाद अंधे की।

सुनते है धृतराष्ट्र अन्धे है, पर लगता है उनके पुत्र भी अन्धे ही हैं।

दुर्योधन ने एक बार आग्नेय नेत्रो से द्रौपदी की ओर देखा और वह अपने क्रोध को न रोक सका, वही से माथा सहलाते हुआ बोला— 'कौन अंधा है, तुझे शीघ्र ही पता चल जाएगा, जिन आँखो मे हर्ष ठाठें मार रहा है, एक दिन उन्ही से अश्रुसिन्धु फूट पडेगा, तब तू अन्धे को ही याद करेगी।"

भीम ने दुर्योधन को क्रोध करते देखा तो झट से बोल उठा— भ्राता जी! द्रौपदी आपकी भाभी है। परिहास करने का तो उसे अधिकार हैं। आप तनिक सी बात पर क्रुद्ध हो गए। जाने भी दीजिए।"

क्रुद्ध दुर्योधन मौन हो कर भीम के साथ आगे बढा। भीम ने द्वार की ओर सकेत करके कहा—यह है द्वार। आप इस के द्वारा अन्दर जा सकते हैं।"

यह द्वार तो दीवार जैसा दीखता था, दुर्योधन ने रोप पूर्ण हंसी हंसते हुए कहा— "बस बस, मुझे मूर्ख न बनाओ। दीवार को मैं द्वार नहीं समझ सकता। अन्धे का हूं पर अन्धा नहीं, भीम

हंसी रोकने का प्रयत्न करते हुए बोला— "अच्छा आप मेरे पीछे आईये।"

भीम उसी दीवार सा चमकने वाले द्वार में घुसा और अन्दर चला गया, दुर्योधन को बड़ा आश्चर्य हुआ।

* पञ्चम परिच्छेद *

भोर हो या सायं, निशि हो या दिन, चौबीसों घण्टे दुर्योधन चिन्ता में घुलता रहता था। उसके लिए उपलब्ध समस्त वैभव शूल समान हो गए, उसे बात बात पर क्रोध आता, दास दासियों पर अकारण ही चिल्ला उठता, रंग सरसों सा हो गया। रात्रि को जब आकाश में तारों का जाल बिछा होता, शीतल चांदनी कलियों के अधरों पर मुस्कान बखेरती, और ओस कणों को भी श्वेत रत्नों का रूप प्रदान करती, उस समय भी दुर्योधन झुंझलाया रहता. उस के मुख से दीर्घ निश्वास, निकलती वह हर समय व्याकुल रहता। जब ओस कण पृथ्वी पर फैली हुई वस्तुओं को भिगो देते, उस समय भी उसके हृदय में चिन्ता की ज्वाला धधकती रहती। उसका मुह उतरा रहता, और चिडचिडे स्वभाव के कारण सारा महल दुर्योधन से कांपने लगा। वह किसी बात मे रुचि न लेता, न किसी से हसता बोलता, निरोग हो कर भी वह रोगी की भांति अधिक समय शय्या पर ही पड़ा रहता। तभी तो कवि ने कहा है :—

> चिन्ता ज्वाल शरीर मे, बनि दावा लगी जाय।
> प्रगट धुआं नहि लखरे, उर अन्तर धधुआय॥
> उर अन्तर धधुआय, जरै जिमि काच की भट्टी।
> रक्त माम जरि जाय रहे हड्डिन की टट्टी॥
> कह गिरधर कविराय सुनो हो मेरे मिन्ता;
> सो नर कैसे जियें कि जिन पर व्यापे चिन्ता॥

दुर्योधन की यह दशा देख कर उसके मामा शकुनि से न रहा गया, पूछ बैठा– "दुर्योधन तुम निशि दिन दुबले होते जा रहे हो। कोई रोग भी प्रतीत नही होता, प्रत्येक प्रकार की सुख सम्पदा तुम्हें प्राप्त है, फिर इस प्रकार रोगी जैसी दशा का क्या कारण है?

"मामा! आप तो जानते ही हैं, पाण्डव कितनी उन्नति कर रहे हैं, वे सारे क्षेत्र पर छा गए है। उनके यश की दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो रही है। इस बार जब अर्जुन के पुत्र के जन्मोत्सव में मैं गया था, आप तो मेरे साथ थे ही। मेरा कितना उपहास किया गया, कितना अपमानित हुआ मैं। इस सब के होते मैं जिऊ तो कैसे! मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मैं पतन की ओर जा रहा हू। और एक एक बात मे पाण्डव मुझे परास्त करते जा रहे हैं।" व्यथित दुर्योधन ने अपने मन की बात कह सुनाई।

शकुनि ने दुर्योधन को सान्त्वना देते हुए कहा– "तुम्हारे मन मे बसी चिन्ता को समझ गया, पर मेरी समझ में यह नहीं कि पाण्डवों की उन्नति से तुम पर कौन सी मुसीबत का पहाड़ टूट पडा? पाण्डवो के पास जो कुछ है वह तुम्हारा ही दिया हुआ तो है। तुम उन से किस बात में कम हो? पाण्डव तुम्हारे-ही भाई हैं, उन की वृद्धि को देख कर तुम्हें चिन्ता होना आश्चर्य की बात है।"

"मामा जी! आप भी ऐसी बातें ... दुर्योधन
शकुनि की बातो पर शका प्रगट करते हुए ... तो ऐ
बातें नही कहनी चाहिए। जब कि आप
पूर्ण जीवन व्यती
हू। द्रौपदी ने मु
पर मैं उसका कुछ
मुझे अन्धा कह क
होती रही तो
करेंगे,
पता वह भी दिन
मुझे हस्तिना पुर

शकुनि ने दुर्योधन को धैर्य बधाने के लिए कहा– "तुम भी कैसे बुरे स्वप्न देखने लगे ? पाण्डव एक नही हजार जन्म भी करें तो भी वे तुम्हारा बाल बांका नही कर सकते। और मेरे विचार से तो तुम्हें यूही भ्रम हो गया है। द्रौपदी ने तुम्हे अपमानित करने के लिए उपहास नही किया होगा, और न पाण्डव ही तुम से किसी प्रकार का द्वेष रखते हैं। अतः व्यर्थ की चिन्ता से क्या लाभ। तुम भी अपनी उन्नति के लिए प्रयत्न करो।"

"नही, मामा मैं पाण्डवों को भलि प्रकार समझता हूं-दुर्योधन ने कहा– वह एक एक बात मुझे चिड़ाने के लिए करते हैं। वह महल भी उन्होंने मेरे ही उपहास के लिए बनाया था। मैंने प्रतिज्ञा की है कि द्रौपदी द्वारा किए गए अपमान का बदला लूगा, जब तक मैं उसी प्रकार द्रौपदी को भरी सभा में अपमानित नहीं कर लूगा, तब तक चैन नही लूगा। या तो अपने अपमान का बदला लूगा और पाण्डवो को मुझे चिडाने का बदला मिल जायेगा, वरना मैं जीवित ही चिता में प्रवेश करू गा। अतः यदि आप मुझे प्रसन्न देखना चाहते हैं, तो कोई उपाय बताइये जिस से मैं अपने अपमान का बदला ले सकू।"

शकुनि ने बार बार समझाया कि वह द्रौपदी या पाण्डवों से बदला लेने की बात मन से निकाल दे, पर दुर्योधन न माना जब शकुनि ने देखा कि दुर्योधन हठ पर अड़ा हुआ है, तो वह भानजे के प्रेम से विवश हो कर उसके मन को शान्त करने के लिए उस की इच्छा पूर्ति के उपाय सोचने में लग गया। दुर्योधन और शकुनि दोनों आपस में विचार विमर्श करने लगे। उसी समय कर्ण भी वहां पहुंच गया और उनकी मन्त्रणा में वह भी शामिल हो गया। कर्ण ने तो यही अपना पुराना सुझाव दिया– "चलो अनायास ही पाण्डवों पर आक्रमण कर दो।" पर शकुनि ने इस प्रस्ताव का सख्त विरोध किया वह बोला— "कर्ण! तुम हमेशा शक्ति द्वारा विरोधियों को झुकाने की बात किया करते हो, पर कभी यह नहीं सोचते कि विरोधी पर भी कम शक्ति नहीं है। पाण्डवों को शक्ति द्वारा परास्त कराना बच्चों का खेल नहीं है। वे सब इतने शक्ति

शाली है कि उनका सामना करना लोहे के चने चबाना है। उन्हें तो किसी अन्य हो उपाय से जीता जा सकता है।"

कर्ण ने दम्भ पूर्ण शब्दो में कहा— "मामा ! आप भी कैसी बाते करते हैं' रण भूमि मे तो जाने दीजिए, पाण्डवों में एक भी ऐसा नही जो मेरे सामने आ कर जीवित बच कर जा सके।"

दुर्योधन बीच में बोल उठा – "पर यदि किसी प्रकार बिना लड़ाई झगड़े के ही उन्हें परास्त किया जा सके तो इससे बढ़ कर अच्छी बात और हो क्या सकती है?"

कर्ण तब कुछ ढीला पडा और बोला—"हां, यदि कोई ऐसी भी तरकीब हो सकती है, तो अवश्य की जानी चाहिए, युद्ध करना ही आवश्यक तो नही है।"

फिर दोनो शकुनि का मुंह देखने लगे, जैसे उनके मौन नेत्र शकुनि से अन्य उपाय पूछ रहे हों। शकुनि कुछ देर विचार मग्न रहा और अन्त मे चुटकी बजा कर बड़े हर्ष से बोला –'युधिष्ठिर को चौसर खेलने का तो शौक है ही, बस उसे आप चौसर खेलने को आमन्त्रित करें, इधर से मैं रहू फिर दुर्योधन ! मैं उनकी जीत कर दिखला दू गा। बस चौसर के खेलका प्रबन्ध तुम पर रहा।"

बात सुनते ही कर्ण और दुर्योधन के मुख मण्डल पूनो के चाद की भांति खिल उठे। कितनी ही देर तक वे आपस में शकुनि की बुद्धि की प्रशसाए करते रहे और उसके पश्चात चौसर खेलने के षड्यन्त्र का जाल बिछाने पर विचार करने लगे।

× × × × × × ×

दुर्योधन और शकुनि धृतराष्ट्र के पास गए। शकुनि ने बात छेड़ी – "राजन ! देखिये तो आप का बेटा दुर्योधन शोक और चिन्ता के कारण पीला सा पड़ता जा रहा है। उसके शरीर का रक्त ही सूख गया प्रतीत होता है। क्या आप को अपने बेटे की भी चिन्ता नही है। ऐसी भी क्या बात कि आप अपने बेटे की चिन्ता का कारण तक न पूछे ?

बूढे धृतराष्ट्र को अपने पुत्र पर अपार स्नेह था ही, शकुनि की बात से वह सच मुच बहुत चिन्तित हो गए. दुर्योधन को अपनी छाती से लगा कर प्यार करते हुए बोले—"बेटा, हा मेरे तो आंखें ही नहीं, जो मैं तुम्हारी दशा देख सकता। पर तुम्हें सभी प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त है. तुम मेरे ज्येष्ट पुत्र हो, राज्य के उत्तराधिकारी तुम्ही हो। फिर तुम्हें दुख काहे का है ?

दुर्योधन अवरुद्ध कण्ठ से, दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए बोला—"पिता जी! मैं राजा कहलाने योग्य कहां रहा ? एक साधारण व्यक्ति की तरह खाता पीता, पहनता ओढता हूं। यह भी पता नही कि भविष्य में यह भी मिलेगा, या नही ? बेटे की निराशा पूर्ण बातें सुन कर धृतराष्ट्र का हृदय फटा सा जाने लगा, उन्होने तुरन्त उस से, इस उदासीनता और निराशा का कारण पूछा। दुर्योधन ने अपने मन की गांठ खोलते हुए इन्द्रप्रस्थ की सुषमा, वहां की स्मृद्धि, पाँडवों के यश की वृद्धि और द्रौपदी के उपहास की सारी बातें बता दीं। और अन्त मे बोला—'अब आप ही बताइये मुझे चैन आये तो क्यो कर। मेरे लिए तो दुर्दिन आ रहे हैं, न जाने कब पाण्डव शक्ति शाली होकर राज्य छीन लें। यदि मुझे राजा भी बने रहने दिया, तो भी आज तो द्रौपदी अपमान करती है, कल उसके बच्चे मुझे भी सभाओं मे अपमानित किया करेंगे। सच पूछो तो पिता जी, पाण्डवों की उन्नति क्या हो रही है, मेरे हृदय पर कुल्हाड़े चल रहे है।"

धृतराष्ट्र ने दुर्योधन की चिन्ता का कारण पाण्डवों की उन्नति जान कर कहा—"बेटा सन्तोष रक्खो। तुम्हारी आशाए निर्मल हैं। तुम्हें ·· ·····"

दुर्योधन ने बात काटते हुए उपदेश देना आरम्भ कर दिया—"पिता जी सन्तोष क्षत्रियोचित धर्म नही है। डरने अथवा दया करने से राजाओं का मान सम्मान जाता रहता है, उनकी प्रतिष्ठा नही रहती। युधिष्ठिर का विशाल व धन धान्य से भरपूर राज्य श्री देखकर मुझे ऐसा लगता है कि मानो सम्पति और राज्य तो कुछ है ही नही। पिता जी मैं तो यह महसूस कर रहा हू कि पाण्डव

उन्नति की ओर जा रहे हैं और हम पतन की ओर।"

बेटे पर असीम प्यार के कारण उसे व्याकुल देख कर धृतराष्ट्र से न रहा गया, उन्होंने बड़े प्रेम से दुर्योधन को समझाना चाहा बोले—बेटा! तुम्हारी ही भलाई के लिए कहता हूं. पाण्डवों से बैर मत करो युधिष्ठिर किसी प्रकार तुम से बैर नही रखता, वह कभी किसी के प्रति भी शत्रुता नही रखता. वह धर्मराज है अपने ही भाई से भला क्यों बैर रक्खेगा। उसकी शक्ति हमारी ही शक्ति तो है। उसने जो ऐश्वर्य प्राप्त किया है उस पर हमारा भी अधिकार है। जो उसके साथी है, वही हमारे भी हैं। उसे जो भी यश प्राप्त हुआ उस से हमारे कुल की भी तो कीर्ति में वृद्धि हुई। उसका कुल जितना उच्च है, उतना तुम्हारा भी है। वह रण कौशल मे जितना प्रवीण है. उतने ही तुम भी हो।. तब फिर अपने ही भाई की उन्नति को देखकर तुम्हारे मन मे द्वेपानल क्यों भड़कता है? बेटा! तुम विश्वास रक्खो वह कभी तुम्हारी वृद्धि के प्रति ईर्ष्या नही करेगा। उस से बैर रखना तुम्हें शोभा नही देता।"

धृतराष्ट्र की सीख दुर्योधन को पसन्द न आई, वह झुंझला कर बोला—"पिता जी! आप वृद्ध हो गए हैं, पर अभी तक आप को लोगों को समझाना नही आया। आप तो बस युधिष्ठिर की प्रशसाओं के तूमर बांधते रहते हैं। आप को क्या पता कि पाण्डव शनैः शनैः शक्ति प्राप्त कर के हम से राज्य छीनने का बडा यत्न कर रहे है। आप की सीख पर चला तो मैं कही का नही रहूंगा।"

कहते कहते दुर्योधन का गला रुध गया, पिता का हृदय पसीज गया, पर वह थे, नीति शास्त्र के पारगत, बोले—"बेटा मैं तुम्हे दुखी नही देखना चाहता, तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में कितना प्रेम है, यह तुम ने कभी समझने का प्रयत्न ही नही किया। मैं जो कहता हू तुम्हारे हित के लिए ही कहता हूं। पाण्डवों को किसी भी प्रकार आज परास्त करना सम्भव नही है। इस लिए तुम शक्ति सचय करो, इसी में तुम्हारी भलाई है। शत्रु को कभी प्रेम से और कभी शक्ति से जीता जाता है।"

दुर्योधन पिता को राजनीति का पाठ पढाते हुए बोला—"पिता जी ! आप की दशा उस कलुछी के समान है जिसे पाक में रहकरभी उस के स्वाद का ज्ञान नहीं होता। आप नीति शास्त्र में पारंगत होते भी नीति को नहीं समझते। पिता जी ! नीति और ससार की रीति—नीति एक दूसरे से भिन्न होती है। सन्तोष और सहन शीलता राजाओं का धर्म नहीं है। राजा का धर्म है कि वह किसी भी प्रकार शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे, चाहे उसे लोग न्याय कहे, अथवा अन्याय लोगों की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।"

उसी समय शकुनि भी बोल उठा—"राजन् ! दुर्योधन ठीक कहता है, अब की बार इन्द्रप्रस्थ मे द्रौपदी और पाण्डवों ने जितना दुर्योधन का अपमान किया है, उसे देखते हुए आप को कुछ करना ही चाहिए। यदि इस समय आप ने दुर्योधन का साथ न दिया तो आपको अपने बेटे से हाथ धोने पडेंगे।" इसके पश्चात शकुनि ने दुर्योधन के निश्चय को कह सुनाया, इसका मनोवंछित प्रभाव पड़ा, धृतराष्ट्र द्रवित हो गए, उन्हों ने दुर्योधन पर प्रेम दर्शाते हुए पूछा—"यदि तुम अपनी ही इच्छानुसार काम करने के इच्छुक हो, तो बताओ, मैं उसमे क्या सहयोग दे सकता हूं। अपने ज्येष्ठ पुत्र के हित के लिए मैं प्रत्येक उचित कार्य करने को तैयार हू।"

तब शकुनि ने सलाह दी—"आप तो केवल युधिष्ठिर को चौसर खेलने के लिए निमन्त्रित कर लीजिए। बस पासों के चक्कर मे युधिष्ठिर को परास्त करके आप के पुत्र की इच्छा पूर्ति कर दी जायेगी। दुर्योधन का दुख दूर करने का इस समय बस एक यही उपाय है, न लड़ाई झगडा, न रक्त पात, हलदी लगे न फट-करी रग चोखा ही चोखा।"

धृतराष्ट्र ने चौसर के खेल में युधिष्ठिर की सम्पति छीन लेने का पहले तो विरोध किया, पर दुर्योधन और शकुनि दोनो ने पुत्र स्नेह को भडका कर और अनेक बातें इधर उधर से मिलाकर उन्हें नरम कर लिया। जब शकुनि और दुर्योधन ने देखा कि शनैः शनैः धृतराष्ट्र पर इस कुमन्त्रणा का प्रभाव पड़ने लगा है तो दुर्योधन अन्त मे बोला—"पिता जी ! उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो भी उपाय हो

सके, किया जाना उचित है । तलवार और वाण ही तो शस्त्र नही है, प्रत्येक वह साधन शस्त्र की गणना में ही आता है, जिस से विरोधी को परास्त किया जा सके। किसी के कुल या जाति से यह नही जाना जाता कि वह शत्रु है अथवा मित्र जो भी हृदय को दुख पहुचाये, और जो भविष्य के लिए सकट खड़ा कर सकता है, वही शत्रु है, फिर चाहे वह सगा भाई ही क्यों न हो। सन्तोष की सीख तो आदमी को पगु बनाने के लिए दो जाया करती है, क्षत्रिय यदि सन्तोष करने लगे तो फिर उनके शस्त्रों को जंग खा जाये और वे कभी अपने राज्य व शक्ति का विस्तार न कर सके। सब से अच्छा क्षत्रिय वह है जो भावी सकट को पहले से ही यह पहचाने और जो भविष्य मे दुखदायी हो सकता है, इस से पहले कि वह उस योग्य हो, पहले ही दबोच कर ठण्डा करदे। मुसीवत को पहले से ताड़ कर उसे रोकना ही बुद्धिमानो का कर्तव्य है । पिता जी! वृक्ष की जड मे चीटियो का बनाया हुआ बिल जिस प्रकार एक दिन सारे वृक्ष के ही नाश का कारण बन जाता है उसी प्रकार हमारे भाई भी एक दिन हमारे नाश का कारण बनेगे, इस लिए क्षत्रियो के धर्म का पालन का प्रत्येक सम्भव उपाय से उन को शक्ति कम करना हमारा कर्तव्य है। फिर हम उन्हे भूखो थोड़े ही मारने वाले है, उन्हे उतनी ही छूट देंगे, उतने ही साधन उन्हे प्राप्त होंगे, जिससे वे सुख पूर्व जीवन व्यतीत करें पर हमारे नाश का कारण न बने ।"

दुर्योधन की बात समाप्त होते ही शकुनि बोल उठा—"राजन्! आप बस युधिष्ठिर को खेलने का निमत्रण देदें । राज रीति अनुसार वह अवश्य ही तैयार हो जायेगा, शेप सारी जिम्मेवारी मुझ पर छोड दे।

दुर्योधन ने फिर कहा—"पिता जी! बिना किसी प्रकार के जोखिम और युद्ध तथा रक्त पात के शकुनि मामा पाण्डवो की सम्पत्ति जीत कर मुझे देने को तैयार है. आप इस अवसर से लाभ उठाइये। यदि ऐसे सुन्दर अवसर पर भी आप ने कायरता दिखाई तो फिर समझ लीजिए, ऐसा स्वर्ण अवसर फिर नही आने वाला।

धृतराष्ट्र बोले—' बेटा! मुझे इस प्रकार पाण्डवों की सम्पत्ति.

हीन करना अच्छा नही जंचता ।"

"पिता जी ! आप तो बस उचित तथा अनुचित के चक्कर में ही रहेंगे, और शत्रु अपना काम कर जायेंगे। जब सांप निकल जायेगा, तब लकीर पीटने से क्या होगा। आप इस धर्म और राज्य नीति को उठाकर ताक पर रख दीजिए और थोड़ी देरी के लिए केवल राजा बन कर सोचिए। दुर्योधन बोला।

उसी समय शकुनि ने भी उसका समर्थन कर दिया–महाराज उसमें हिचकिचाने की क्या बात है ? चौसर का खेल कोई हमने तो ईजाद किया नही। हमारे पूर्वज भी तो इसे खेलते आये हैं, और कितनो ने ही इस हथियार से अपनी मनोकामना पूर्ण की है। यह एक ऐसा शस्त्र है, जो बिना रक्त बहाये ही किसी को विजय और किसी को पराजित बना देता है। उस में अन्याय की तो कोई बात नही।"

धृतराष्ट्र बोले 'अच्छा तो मैं विदुर से और सलाह कर लू। वह बडा बुद्धिमान है, उस की सलाह बड़ी नपी तुली रहती है।"

दुर्योधन सुन कर बोला–"पिता जी ! मुझे तो कभी कभी लज्जा आने लगती है कि मैं उस बाप का बेटा हूं. जिसे अपनी बुद्धि पर तनिक सा भी विश्वास नही है। विदुर चाचा तो मुझ से जलते हैं, वे पाण्डवों से ही स्नेह रखते हैं, वे भला आप को ऐसी कोई सलाह क्यों देंगे जिस से मेरा लाभ और पाण्डवों की हानि हो।- वे तो आप को उपदेश देंगे और अपने उपदेशों से आप को शांत कर देंगे।"

शकुनि ने भी कहा–"राजन् ! आप राज्य के स्वामी हैं, आप को किसी की सलाह के मोहताज नहीं रहना चाहिए। यह दुनिया बड़ी चालबाज है। लोग अपने अपने स्वार्थों की रक्षा और अपने चहेतों के भले के लिए ही कोई सलाह दिया करते हैं। क्या आपको अपने बेटे से अधिक विदुर जी पर विश्वास है।"

तात्पर्य यह है कि दुर्योधन और शकुनि ने धृतराष्ट्र को अपनी बात मनवा ही दी धृतराष्ट्र ने वायदा कर लिया कि युधिष्ठिर को

खेलने का बुलावा वे भेज देंगे। दुर्योधन और शकुनि बहुत प्रसन्न हुए। दोनो ने मिल कर इन्द्रप्रस्थ मे देखे भवन जैसा ही एक सभा मण्डप तैयार कराया और फिर बुलावा भेजने को कह दिया।

एक दिन धृतराष्ट्र ने विदुर जी को बुला कर चुपके से इस सम्बन्ध मे उन से भी राय ली। विदुर जी ने इस बात का विरोध किया। पर धृतराष्ट्र ने अन्त मे यह कह कर बात समाप्त कर दी कि—"जो हो मुझे भी ऐसा लगता है कि प्रारब्ध हमे नचा रही है। नाश होना है, तो होगा ही। उस से हम कैसे बच सकते हैं। अब तो मैंने निर्णय कर ही लिया, इस लिए तुम जाकर युधिष्ठिर को सभामण्डप देखने और खेलने का निमत्रण दे आओ।"

"मुझे ऐसा लगता है कि हमारे कुल का नाश होना अब आरम्भ होन वाला है। आपकी आज्ञा मानकर मैं चला भी जाऊ तो मेरी आत्मा मुझे बारम्बार धिक्कारती। शास्त्रो में जो सात दुर्व्यसन गिनाए गए है,-जुआ उन मे से प्रथम है। आप स्वयं उसे खिलायें वह बडे दुख की बात है।" विदुर जी ने कहा।

धृतराष्ट्र ने कहा-"विदुर जी ! तुम्हारी बात युक्ति संगत होते हुए भी आज मैं उसे अस्वीकार करने पर विवश हूं। क्योकि मैं दुर्योधन से वायदा कर चुका हू। यदि तुम्हारी आत्मा इन्द्रप्रस्थ जाने को स्वीकार नही करती, तो तुम्हारा जाना उचित नही है। मैं किसी दूसरे को भेज दूंगा।"

विदुर जी धृतराष्ट्र के इस निश्चय को सुन कर क्षुब्ध होकर वहाँ से चले गए। अन्त मे जयद्रथ को भेजना तय पाया। जयद्रथ के प्रस्थान करने से पूर्व दुर्योधन और शकुनि ने उसे बहुत कुछ समझाया पढाया।

* छठा परिच्छेद *
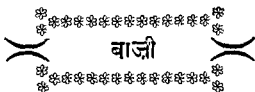
हस्तिनापुर में सभा मण्डप (भवन) तैयार हो जाने पर शकुनि और दुर्योधन का सिखाया—पढ़ाया जयद्रथ इन्द्रप्रस्थ पहुँचा। अचानक जयद्रथ के इन्द्रप्रस्थ पहुच जाने पर युधिष्ठिर ने उस का बड़ा आदर सत्कार कर के पूछा- कहिए, हस्तिनापुर में तो सब सकुशल है ?"

जयद्रथ बोला—"सभी सकुशल एव प्रसन्न हैं। आप को हस्तिनापुर ले चलने के लिए आया हूं।"

युधिष्ठिर ने गद गद हो कर कहा—"अहो भाग्य! मुझे चाचा जी ने याद किया। क्या कोई उत्सव हो रहा है ?"

"धृतराष्ट्र ने हस्तिनापुर मे एक सुन्दर सभामण्डप बनवाया है, वास्तव में आज पृथ्वी पर उस के समान सुन्दर एव मनोहर अन्य कोई भवन नहीं होगा। लाखों रुपये व्यय कर के बनवाया हुआ यह भवन सभी को पसन्द आया है, पसन्द ही नहीं, देखने वाले उस की मुक्त कण्ठ से प्रशसा कर रहे हैं। दुर्योधन की इच्छा थी कि आपको भी वह भवन दिखाया जाय। अतः धृतराष्ट्र ने आप को अपने परिवार सहित हस्तिनापुर चलने का निमंत्रण देने के लिए भेजा है।" जयद्रथ ने कहा।

धर्मराज युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र के निमंत्रण को सहर्ष स्वीकार कर लिया। अपने अन्य भ्राताओं को बुलाकर उन्हों ने धृतराष्ट्र का निमत्रण और अपना चलने का निर्णय सुना दिया। सभी भ्राता

धृतराष्ट्र के दर्शन करने के इच्छुक थे, वो सोचते थे हस्तिनापुर जा कर उन्हें विदुर चाचा और भीष्म पिता मह से भी भेंट करने का अवसर प्राप्त होगा और प्रेम भाव से दुर्योधनके मन में धधक रही ईर्ष्या दावानल को शान्त करने का प्रयत्न भी कर सकेंगे, अतएव सभी चलने को तैयार हो गए।

पाण्डव परिवार सहित हस्तिनापुर की ओर चल पड़े। वे बड़े प्रसन्न थे, और हस्तिना पुर के नर नारियों, परिवार के प्रतिष्ठित वृद्ध जनो से भेंट करने की आशा से आनन्दित हो रहे थे, हस्तिना पुर पहुचने पर दुर्योधन शकुनि आदि ने उनका बहुत आदर सत्कार किया। एक सुन्दर भवन में उन्हे ठहरा दिया गया दूसरे दिन स्नान आदि करके सभा ने मण्डप देखा वे बड़े प्रसन्न हुए और मुक्त कन्ठ से उसकी प्रशंसा की। भवन का कोना कोना उन्हें दिखाया गया, जब मुख्य स्थान पर वे पहुचे तो शकुनि ने कहा— "युधिष्ठर! खेल के लिए चौपड़ बिछा हुआ है, चलिए दो हाथ लें।"

"राजन्! यह खेल ठीक नही है। इस मे कोई साहस की तो बात होती नही, व्यर्थ ही समय जाता है और नये उत्पात खड़े हो जाते हैं। धर्म ग्रथो और सर्वज्ञ मुनियो का उपदेश है कि पासे का खेल खलना धोखा देने के समान है, यह मनुष्य के नाश का कारण बनता है। क्षत्रियो के लिए तो रण का क्षेत्र जीत और हार के लिए होता है। पाँसा फेंक कर भाग्यो का निर्णय करना अच्छी बात नही है।" —युधिष्ठिर ने शिष्टता पूर्ण उत्तर दिया।

यद्यपि यह सब बाते युधिष्ठर ने सहज भाव से कही थी पर उन के मन मे जरा सा खेल लेने की भी इच्छा हो रही थी। शौकीन जो ठहरे। हा, उन्हे यह भी मान था कि यह खेल बुरा है, इस लिए इन्कार भी कर रहे थे।

शकुनि ने तुरन्त कहा—"महाराज! आप जैसा खिलाड़ी भी ऐसी बातें करे तो आश्चर्य की बात है। इस मे तो कोई धोखे की बात ही नही है। शास्त्र पढे हुए पडित भी आपस में शास्त्रार्थ किया करते हैं, जो अधिक विद्वान को परास्त कर देता है। युद्ध

में भी शस्त्रों विद्या का पारंगत नौसिखिये को परास्त कर देता है। यही बात इस खेल में भी है। मंजा हुआ खिलाड़ी कच्चे खिलाड़ी को हरा देता है। यह भी कोई धोखे की बात हुई ?—आप को कदाचित हारने का भय है, इस लिए आप धर्म की आड़ ले रहे हैं।"

युधिष्ठिर को अन्तिम बात चुभ गई, उत्तेजित होकर बोले—"राजन् ! ऐसी बात नहीं है, आप आग्रह करते हैं तो मैं खेलने को तैयार हूं, मैं राजवशों की रीति के अनुसार खेलने को सदा तत्पर हूं, पर मैं समझता उसे बुरा ही हूं।"

युधिष्ठर ने दुर्योधन के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए कहा—"भाई के प्रेम पूर्ण निमत्रण को भला मैं कब अस्वीकार कर सकता हूं। पर मेरे साथ खेलेगा कौन ?"

"मेरी ओर से मामा शकुनि आप के साथ खेलेंगे, पर दांव पर लगाने के लिए रत्नादि जो धन चाहिए वह मैं दूगा—दुर्योधन बोला।

युधिष्ठिर ने सोचा था कि यदि दुर्योधन खेलेगा तो उसे वे आसानी से ही हरा देंगे, पर जब शकुनि के साथ खेलने की बात आ गई तो वे हिचकिचाने लगे, क्योंकि शकुनि पुराना मजा हुआ खिलाडी है, इसे वे अच्छी तरह जानते थे। बोले—"मेरी राय है कि किसी को दूसरे के स्थान पर न खेलना चाहिए। वह खेल के साधारण नियमो के विरुद्ध है।"

"अच्छा तो न खेलने का अब दूसरा बहाना बना लिया—"शकुनि ने हसते हुए कहा।

युधिष्ठिर भला यह कब सहन कर सकते थे, कि कोई उन्हें बहाने बाज कहे, इस लिए उत्तेजित होकर बोले—"कोई बात नहीं मैं खेलूगा।"

उसी समय भीम बोल पडा—"भ्राता जी ! आप धर्मराज होकर क्या करने जा रहे हैं। अब आप राजकुमार नहीं महाराजा धिराज हैं। जुआ खेलना धर्म के प्रति कूल है। इस दुर्व्यसन ने

कितने ही परिवारों का नाश कर डाला कितनों को राजा से रंक बना दिया। यह खेल नही झूठ, फरेब और कपट का दूसरा नाम जुआ है। आप तो धर्म नीति और राजनीति में पारंगत है, फिर भी जुआ खेल रहे हैं, यह बात साफ बता रही है कि आप अपने को स्वय ही घोर सकटों मे फंसा रहे हैं।"

दुर्योधन ठहाका मार कर हसा और अन्त मे बोला—"यह भी खूब रही। सभी धर्म और नीति सिखाने वाले हो गए। भाई भाई मे क्रीड़ाएं भी होती हैं, और मनोरंजन भी। इस का मतलब क्या यह है कि महाराजाधिराज है तो भाईयों के साथ खेलने पर भी प्रतिबन्ध लग गया ?"

युधिष्ठिर ने भीम को शांत करके कहा—"भैया भीम ! राज वंश की रीति के अनुसार मैं खेलने से इन्कार नही कर सकता। फिर यह जुआ, जुए की भांति नही, भाईयों का मनवहलाव होते हैं।"

इतने में विदुर जी भी आगए, पांचो भाईयों ने चरण छू कर प्रणाम किया, चौसर खेलने की तैयारी देख कर विदुर जी ने संकेत से युधिष्ठिर को रोकते हुए कहा—"बेटा युधिष्ठिर तुम तो धर्म ग्रंथों के विद्वान हो, तुम ने शास्त्रों मे बताए गए त्याज्य दुर्व्यसनों को भी पढा है। तुम भी नल के इतिहास की पुनरावृति करना चाहते हो, तो खेलो और जी भर कर खेलो। क्योकि वश की उन्नति के दिन तो हवा हुए, पाण्डु ने राज का विकास किया, तो तुम उसका मालियामेट कर डालो। कोई बात नही है, दुर्व्यसन तुम नहीं अपनाओगे तो नष्ट हुए दरिद्र लोग अपनायेंगे क्या ?"

ताने भरी बात सुनकर युधिष्ठिर झिझकने लगे, तभी शकुनि ने कहा—"आप भी कैसी बाते कर रहे हैं, कितने दिनों में तो युधिष्ठिर हस्तिनापुर आये है, इस शुभ अवसर पर मन बहलाव हो जाय तो क्या डर है ?"

इसी प्रकार की बातों से युधिष्ठिर को शकुनि और दुर्योधन ने खेलने पर तैयार कर लिया, युधिष्ठिर की आत्मा तो

कहती थी कि यह बुरा हो रहा है, पर दिल कहता था कुछ बाज़ी खेलने मे क्या बुराई है। धन तो हाथ का मैल है, कुछ हार भी गया तो कौन सी बात है।—आखिर हृदय की बात चल गई।

× × × × × × ×

और खेल आरम्भ हुआ, सारा मण्डप दर्शकों से खचाखच भरा हुआ था. द्रोण, भीष्म, तथा, विदुर और धृतराष्ट्र जैसे वयो वृद्ध भी विराजमान थे। विदुर जी के मुख पर खेद और क्षोभ के भाव झलक रहे थे, भीष्म ने खेल आरम्भ होने से पूर्व कहा—"युधिष्ठिर को चौसर पर देख कर ही मुझे बहुत दुख हो रहा है। न जाने क्यों मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आज कुछ अनर्थ होने वाला है।' उसी समय विदुर जी बोले—"और मुझे तो ऐसा लगता है कि यह बाजी इस वश के पतन का श्री गणेश कर रही है। युधिष्ठिर स्वय अपने धर्म पथ को भूल कर एक दुर्व्यसन मे अपने आप को झोंक रहा है, मानो भाग्य ही उस से और हम से रूठ रहे हैं।"

द्रोणाचार्य ने कहा—"युधिष्ठिर! न जाने क्यों आज मेरा मन रो रहा है।"

उस समय दुर्योधन उनकी ओर आग्नेय नेत्रो से देख रहा था, क्रुद्ध होकर बोला—"तो क्या आप लोग यह नही चाहते कि हम दो भाई एक स्थान पर बैठ कर मनोरजन के लिए कुछ खेल भी ले?"

धृतराष्ट्र ने बेटे को ढाढस बधाने और पीठ थपथपाते हुए कहा—"नही, नही मनोरजन करने या मन बहलाव से तुम्हे कौन रोकता है? बस किसी प्रकार का झगडा फिसाद नही होना चाहिए।"

शकुनि मामा खेल मे हो और कोई अनहोनी घटना न घटे यह कैसे हो सकता है?" असन्तुष्ट भीम ने कहा।

"कहिए युधिष्ठिर महाराज! क्या इरादा है, मैदान में

डटना है या भाग जाना है।" शकुनि ने युधिष्ठिर को उत्तेजित होकर कहा ।

"पाण्डवों ने कभी भाग जाना नही सीखा। पासा फेंको।" युधिष्ठिर ने उत्तेजित होकर कहा।

किन्तु उन्हें यह पता नही था कि यह चौसर का खेल उन से सारी सम्पति छीनने के लिए रचा गया है। और जो पासे फेंके जा रहे है, वे विशेषतया युधिष्ठिर को ही बरबाद करने की इच्छा से बनवाये गए है । उन्हे मुख्यता इसी खेल के लिए बनवाया गया था, जिन को फेंकने का तरीका और जिन से हर बार जीतने का उपाय केवल शकुनि को ही ज्ञात था। उन पाँसों से शकुनि जब चाहे जीत, जब चाहे हार सकता था, एक प्रकार से उन की कला शकुनि के हाथ मे थी। इस लिए खेल में जीतने का श्रेय चाहे किसी को मिले, पर वास्तव में श्रेय था उस को, जिसने यह अदभुत पाँसे बनाये थे ।

यह बात साफ होने पर भी कि यह खेल झगड़े की जड़ साबित होगा, कुल वृद्ध उसे रोक नही पा रहे थे। उन के चेहरों पर उदासी छाई हुई थी। कौरव राजकुमार बड़े चाव से देख रहे थे।

ज्यों ही पासो को हाथ लगाया गया, विदूर जी ने कहा—"यंत्र का रहस्य उसका स्वामी ही जानता है, युधिष्ठर, खेलने से पहले अपने अपने को तोल लो ।"

परन्तु खेल आरम्भ हो गया। पहले रत्नों की बाजी लगी, फिर सोने चादी के खजानो की, उसके बाद रथों व घोडो की, तीनो दाव युधिष्ठिर हार गए। तब चतुर शकुनि ने एक बार युधिष्ठिर को जिताना चाहा ताकि युधिष्ठिर दत्तचित्त हो कर खेल मे लगे रहे, खेल बन्द न करदें। समस्त आभूषण दाव पर लगाए गए, उस बार युधिष्ठिर जीत गए। फिर क्या था युधिष्ठिर का हौंसला बढ़ गया, वह जोश से खेलने लगे।

उसी दम भीष्म जी बोले—

जीते तो चस्का पड़े, हारे लेत उधार ।
ना मुराद इस खेल की, जीत भली न हार

फिर पांसे फेंके गए, युधिष्ठिर ने जीते हुए धन और दासियों को दाव पर लगा दिया। उसे वे हार गए। फिर तो अपनी सारी सेना की बाज़ी लगादी और हार गए। एक बार सब हाथी लगा दिए, उन्हें भी हार गए। शकुनि का पासा मानो उस के इशारो पर चलता था।

खेल चलता रहा। युधिष्ठिर बारी बारी से अपनी गायें, भेड़—बकरियां, दास दासियां, रथ, घोड़, हाथी, सेना और यहां तक कि देश की प्रजा को भी हार बैठे। परन्तु उनका चस्का न छूटा, तब भीम ने हस्तक्षेप करते हुए कहा—"भ्राता जी! अब बहुत हो चुका। शास्त्रों में जो कहा है, उस का परिणाम मिल गया। अब आप इस नाश कर्ता खेल को बन्द कीजिए। क्यों दुनिया भर के सामने लज्जित होते है? क्यों अपने माथे पर कलक लगाते हैं।

उस समय शकुनि बोला—"भीम तुम चुप रहो। जब इधर से कोई नही बोल रहा, तो तुम क्यों हस्तक्षेप करते हो। जो हार गए, क्या पता दूसरे दाव पर उसे युधिष्ठिर जीत ले? क्या हार कर वापिस जाना चाहते हो?"

युधिष्ठिर के मन मे जो आशा करवटें बदल रही थी, और सहारा मिला, वे भीम को शात करते हुए बोले—' भीम तुम चुप रहो। इस बार न सही, तो अबकी बार तो मुझे और भी भाग्य आज़मा लेने दो।"

भाइयो के शरीर पर जो आभूषण थे, वह भी उन्होने दांव पर लगा दिये, और हार गए।

और कुछ शेप है?" शकुनि ने पूछा।

युधिष्ठिर यू हार मानने वाले न थे, भला वह कैसे सहन कर लेते कि वे जुए मे चारो खाने चित हो गए, बोले—"यह

सावले रग का सुन्दर युवक. मेरा भाई नकुल खड़ा है, वह भी मेरा धन है, इसको बाजी लगाता हूं चलो।"

"अच्छा तो यह बात है, तो यह लीजिए, आपका प्यारा भाई अब हमारा हो गया" उत्साह से कहते कहते पासा फेंका और बाजी मार ली।

विदुर जी चिल्ला उठे—धिक्कार है, धिक्कार है, यह मन बहलाव हो रहा है या अत्याचार। तुम लोगों की धूर्तता की भी कोई सीमा है। धन दौलत, दास, दासी, हाथी घोड़े और प्रजा को हार गए, अब भाइयों की भी बाजी लगाने लगे? तुम लोगों को लज्जा आनी चाहिए। यह खेल नही, निर्लज्जता और अन्याय का स्वाग हो रहा है। सुनते हो धृतराष्ट्र! तुम्हारे बेटे मनुष्यों को बाजी पर लगा रहे है। तुम्हारे शकुनि और दुर्योधन कौरव वश के मुख पर कालिख पोत रहे है। इन्द्रप्रस्थ का राज्य छीन लिया अब पाण्डवों को धातु की भाति प्रयोग कर रहे है। धृतराष्ट्र कुल की नाक बचानी है तो उठो इन पांसों को भाड़ मे फेंक दो और शकुनि को निकाल बाहर करो।"

दुर्योधन जीत की खुशी मे उछल रहा था, उसे जीतने का इतना नशा था कि वह विदुर जी को ललकारने लगा—आप क्यो शोर कर रहे हैं? जब खेलने वाला मनुष्यो को दाव पर लगा रहा है, तो हम क्या कर सकते है?" शकुनि ने उसी समय कहा—"युधिष्ठिर को अपने भाग्य पर विश्वास है, वे यूही नहीं खेल रहे, एक ही दाव पर वह सब कुछ वापिस ले सकते है?"

"भाई धृतराष्ट्र! देख नही सकते, तो सुन तो सकते हैं. बेटा शिष्टाचार को भी भूल गया, उसने लोक लज्जा को भी ताक पर रख दिया, और उधर तुम्हारे भतीजे सब खो रहे है। अब भी कुछ करो।" विदुर जी ने व्याकुल हो कर कहा।

धृतराष्ट्र बोले—"मैं तो वृद्ध हो चुका, अब मेरी कौन सुनता है?"

भीष्म पितामह इस दशा को देख कर क्षुब्ध हो गए थे, कहने लगे—"आज क्या होने वाला है? कुछ पता नहीं। मुझे तो ऐसा लगता है कि शकुनि के हाथ में पांसा नहीं, बल्कि नगी तलवार है, और उससे वह निर्भय व स्वच्छन्द हो कर कुल मर्यादा, धर्म, नीति और वंश की प्रतिष्ठा का वध कर रहा है।"

धृतराष्ट्र को भी विवश हो कर कहना पड़ा—"दुर्योधन! वस बस बहुत हो चुका। मैं सुन रहा हूं कि प्रत्येक व्यक्ति तुझे धिक्कार रहा है। अब यह महानाशक खेल बन्द कर दे।"

"पिता जी! आप शांत बैठे रहिए, युधिष्ठिर को आज जी भर कर खेल लेने दीजिए।" —दुर्योधन बोला। "कहिए, अब क्या लगाते है, खेलते हैं या भाग्य को रोते हैं? शकुनि ने युधिष्ठिर को ताना देते हुए कहा।

युधिष्ठिर बोले—"क्यों गर्व करते हो, अब की बार न सही, इस बार तकदीर का पाँसा पलटेगा। यह जो मेरा भाई सहदेव है जो सारी विद्याओं मे निपुण है, विख्यात पण्डित की बाज़ी लगाना उचित तो नहीं, फिर भी लगाता हू। चलो देखा जायेगा।"

शकुनि ने पांसे को हाथ में लिया और उत्साह से कहा—

निश्चित हो कर खेलिये भाग्य हो जब कि साथ।
पाँसा शकुनि हाथ है, तो जीत भी अपने हाथ॥

यह चला और वह जीता—कहते हुए पांसा फेंक दिया और पांसा गिरते ही प्रफुल्लित हो कर उछल पड़ा। बोला—"देखिये बाज़ी तो स्पष्टतया हमारी है, कहिए अब किस की बारी है।"

युधिष्ठिर चिन्ता मग्न हो गए, तब शकुनि ने इस आशंका से कि कहीं युधिष्ठिर खेल न बन्द करदे, कहा- "कदाचित भीम और अर्जुन आप की दृष्टि मे, नकुल और सहदेव से अधिक मूल्यवान है? हां, हो भी क्यों न वे माद्री के बेटे थोड़े ही हैं। सो उन्हें तो आप बाज़ी पर लगाने से रहे।"

युधिष्टिर बोले—"शकुनि, कदाचित आप हम भाईयों में फूट डालने का असफल प्रयत्न कर रहे है। अधर्म तो मानो तुम्हारी रग रग में कूट कूट कर भरा है। तुम क्या जानो कि हम पाच भाईयो के सम्बन्ध कैसे है?"—युद्ध के प्रवाह में पार लगाने वाली नाव के समान, महान तेजस्वी, पराक्रम मे अद्वितीय, विजय श्री का प्रिय, सर्वगुण सम्पन्न, भ्राता अर्जुन को अब की वार मैं वाजी पर लगाता हूं।"

शकुनि ने निर्लज्जता मे कहा—वाह युधिष्ठिर महाराज वाह! वाज़ी लगाने वाला हो तो ऐसा हो पर—

भाग्य वान की जीत है भाग्य हीन की हार।
होनी होत टले नही, यह कर्मों की मार॥

पासे फेंक कर बोला—"लीजिए महाराज अर्जुन भी आप के हाथ से हार गया, अब क्या भीम को वाज़ी पर लगाईयेगा?"

कोई दैविक शक्ति मानो युधिष्ठिर को पतन की ओर खीचे ले जा रही थी, वे स्वय अपने को इस विनाशक खेल से रोकने का प्रयत्न करते, पर अपने पर काबू करने मे असफल हो जाते, अपने कर्मों के फल से बधे हुए युधिष्ठिर ने कहा—हा युद्ध मे जो हमारा अगुआ है, असुरो को भयभीत करने वाला वज्र-धारी, इन्द्र सदृश तेजवान, महाबली, अद्वितीय साहसी, और पाण्डव कुल गौरव, अपने भाई भीम को दावपर लगाता हू।" युधिष्ठिर की बात समाप्त होते होते शकुनि ने पासा फेंक दिया और युधिष्ठिर भीम को भी हार गए।

शकुनि बोला—'तो आप ही रह गए, कहिए क्या विचार है?"

युधिष्ठिर ने कहा—"हा! इस वार मैं स्वय अपने आप को दाव पर लगाता हू' जो हो, पासा फेंको।"

"लो, यह जीता" कहते हुए शकुनि ने पासा फेंका और बाजी भी ले गया।

दुर्योधन प्रसन्नता के मारे उछल पडा, वह खडा हुआ और

एक एक करके सब पाण्डवों को पुकारा, घोषणा की कि अब ये उस के दास हो चुके हैं। शकुनि को दाद देने वालों के हर्ष नाद और पाण्डवों की इस दुर्दशा पर तरस खाने वालों के हाहाकार से सारा सभा-मण्डप गूंज उठा।

इधर सभा में खलबली मच रही थी, उधर शकुनि युधिष्ठिर से बोला "अब बताइये, क्या लगाते हैं।"

"अब मेरे पास धरा ही क्या है लगाने को, सब कुछ तो हार चुका।"—युधिष्ठिर ने निराशा व उदासीनता - भावों से दुखित हो कर कहा।

"नहीं आपके पास एक और चीज शेष है, जिसके चरण घर मे आते ही आपको सुख सम्पदा और यश प्राप्त हुआ।"-शकुनि ने द्रौपदी की ओर संकेत करते हुए कहा "मैं तुम्हारी बात समझा नहीं, ऐसी भला कौन सी वस्तु है"

"वही साक्षात लक्ष्मी द्रौपदी, क्या पता उसी के भाग्य से आपको विजय प्राप्त हो जावे।" शकुनि ने युधिष्ठिर को फांसने के लिए कहा।

—और जुए के नशे में चूर युधिष्ठिर, 'जब तक श्वास, तब तक आस" की लोकोक्ति के अनुसार कह बैठे—'तो चलो, मैं इस रूपसि, लक्ष्मी, द्रौपदी की भी बाजी लगाई—'यह मुह से निकल तो गया, पर फिर वे स्वयं ही विकल हो गए, उसके परिणाम को सोच कर वे कांप उठे।

युधिष्ठिर की बात पर सारी सभा में हा हा कार मच गया, वृद्धजनों की ओर से "धिक्कार धिक्कार" की आवाज आई। विदुर जी बोल उठे—"जुए के नशे में अन्धे? क्या सती द्रौपदी की लाज का भी जुआ खेल रहे हो। तुम मनुष्य हो या पशु। देखो इस पाप से कहीं आकाश न टूट पड़े।"

कुछ लोग बोले—"छि. छि. कैसा घोर पाप है?" कुछ लोगों के नेत्रों में अश्रुधार बह निकली, भीष्म और द्रोणाचार्य व्याकुल

हो, उठ कितने ही लोग पसीने मे नहा गए।

परन्तु दुर्योधन और उसके भाई मारे खुशी के नाचने लगे। पर युयुत्सु नाम का धृतराष्ट्र का एक बेटा शोक सन्तप्त हो उठा, उसके मुख से निकल ही तो गया- "जब यह घोर पाप होने लगा, तो कुरु वश के नाश के दिन ही आ गए समझो।"- और मारे लज्जा के उसने अपना सिर झुका लिया।

शकुनि हर्षचित्त हो कर बोला—

अन्तिम बाज़ी है यही, यह भी मेरे हाथ।
बनी द्रौपदी भी गुलाम, अपने पति के साथ॥

और उसने पासा फेंक दिया।

आनन्दित हो कर उसने शोर मचाया—"यह लो, यह बाज़ी भी मेरी ही हो गई।"

दुर्योधन को तो जैसे मन इच्छित फल मिल गया, वह विजय से मदान्ध हो कर विदुर जी को आदेश देता हुआ बोला—' 'आप अभी रनवास मे जायें और उसे तत्काल यहां ले आयें, आज से वह हमारी दासी है, उसे हमारे महल मे झाड़ू देने का काम करना होगा आज मैं उस चुड़ैल से अपने अपमान का अच्छी तरह बदला लूंगा।"

विदुर जी को दुर्योधन की बात से बडा क्रोध आया, वे बोले "मूर्ख, क्यो मदान्ध हो कर अपनी मृत्यु और कुल के नाश को निमन्त्रण कर रहा है। पाप की ऐसी पट्टी तेरी आंखो और बुद्धि पर बन्ध गई है कि मानवीय व्यवहार को भी भूल गया। सती द्रौपदी के लिए तेरे मुख से ऐसे शब्द निकलने लगे कि कोई गंवार व्यक्ति भी अपने भाई की स्त्री के लिए नही कह सकता। अपने बिछाये हुए जाल मे युधिष्ठिर को फांस कर क्या अब तू इतना पाप भी करने पर उतारु हो गया है कि एक सती की आबरू पर भी हाथ उठाने को तैयार है। कुरू वश के मस्तक पर कलंक लगाने से पहले, यह तो सोचा होता, कि जिन्हो ने अपनी बल, बुद्धि से इतने बड़े पृथ्वी खण्ड पर राज्य किया है, वह इस लिए नही कि किसी एक

की दुष्टता से उन के इतिहास पर ही कालिख पुत जाये। अपने इस बूढे अन्धे बाप की प्रतिष्ठता का तो ध्यान रक्खा होता।"

दुर्योधन को फटकारने के पश्चात विदुर जी सभा सदों को सम्बोधित करते हुए बोले-"अपने को हार चुकने के पश्चात युधिष्ठिर को कोई अधिकार नही कि द्रौपदी को बाजी पर लगाए, साथ ही सती द्रौपदी कोई किसी की सम्पत्ति नही है, वह जीवन संगिनी है, तो इसका यह अर्थ नही हो जाता कि उसे पशुओं की भाँति किसी को सौंप दिया जाय। पांचाल राज्य की राजकुमारी को जुए में घसीटने का पाप करने का अधिकार किसी को नही है, उस का अपना स्वतः का अस्तित्व है। अतएव द्रौपदी को अपमानित करना एक घोर अन्याय है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कि कौरवों का अन्त समीप आ गया है। इस लिए अपने ही हित की बातें उन्हे कड़वी लगने लगी हे, और अपने ही हाथों अपने लिए गड्ढा खोद रहे हैं। आप लोग ऐसे अत्याचार को रोकने का प्रयत्न कीजिए, आखिर आप भी तो इन्सान है, क्या हमारे बहू बेटिया नही है? क्या हम सभी पशु बने हुए इस जघन्य, व पाशविक अत्याचार को देखते रहेगे। यह खेल नही कपट जाल है।"

उपस्थित लोगों मे से कितने ही चिल्ला उठे—"विदुर जी ठीक कहते हैं, द्रौपदी को बाजी पर नही लगाया जा सकता वह नही हारी गई। यह युधिष्ठिर की अनाधिकार चेष्टा थी "

विदुर जी की बातो और लोगों के शोर को सुन कर दुर्योधन बौखला उठा, उसने अपने सारथी, प्रातिकामी को बुला कर कहा—

"विदुर, तो हम से ही जलते है और पाण्डवो से डरते है, तुम्हे तो कोई डर नही? अभी रनवास मे जाओ, और उससे कहो कि अब वह हमारी दासी है, तत्काल यहां आयें। तुम उसे साथ ले कर यहाँ शीघ्र आओ।"

इस समय चारो ओर से आवाज़े आई—"यह अन्याय है अत्याचार है। नारी का अपमान घोर पाप है, छि छि: यही है राजाओं का न्याय?"

कोई व्यक्ति जोर से बोला— "अन्धे धृतराष्ट्र की क्या बुद्धि भी मारी गई है, जो यह अन्याय करा रहे हैं। यह तो दरिद्र जुआरियो में भी नही होता।"

विदुर जी ने धृतराष्ट्र से कहा— "सुन रहे हो? लोग क्या कह रहे है? तुम्हारा बेटा तुम्हारा नाम उछाल रहा है"

भीष्म पितामह ठण्डी स्वास लेते हुए बोले— "इस घोर पाप को देखने से पहले ही मैं मर जाता तो अच्छा था।"

दुर्योधन इन आवाजों से व्याकुल हो कर चीख उठा— "बन्द करो यह बातें, जो होता है उसे देखते रहो।"

* सप्तम परिच्छेद *

दुर्योधन की आज्ञा पा कर प्रातिकामी रनवास में गया और द्रौपदी को प्रणाम करके बोला— "रानी जी ! आप को महाराज दुर्योधन ने इसी समय सभा मण्डप मे बुलाया है।"

उस समय प्रातिकामी के मुख पर खेद के भाव छाये हुए थे, उसकी बात सुन कर शोक विह्वल चेहरा देख कर द्रौपदी ने आश्चर्य चकित हो पूछा— ' क्या कह रहे हो तुम ?- क्या मुझे सभा मण्डप में बुलाया है ? और वह भी दुर्योधन ने ?"

गरदन झुकाए हुए प्रातिकामी बोला—जी हां, जी हां, महा राज युधिष्ठिर जुए मे आप को हार चुके हैं। अब आप दुर्योधन की दासी हो गई हैं, आप को महल मे झाड़ देने का काम करना होगा। इसी आज्ञा को सुनाने के लिए आप को सभा मे बुलाया गया है।"

प्रातिकामी की बात सुनते ही द्रौपदी भौंचक्की सी रह गई, जैसे उन के कानों में किसी ने शूल ठोक दिए हों। उस के हृदय पर वज्राघात हुआ, कुछ देर तक वह मूर्तिवत खड़ी रह गई। जो पाचाल देश की राजकुमारी, ऐश्वर्य और वैभव मे जीवन व्यतीत करने वाली पुष्पों से भी अधिक नाजुक, प्रेम और वात्सल्य के सरोवर में पनपी कमलिनि दास दासियों से सेवित रानी द्रौपदी को अनायास ही ऐसी बात सुनने को मिली कि जिसकी स्वप्न मे भी कल्पना न की

जा सकती थी, अतः उसे मूर्छा आने लगी, पर अपने को सम्भाल कर उसने कहा— "प्रातिकामी ! मैं यह क्या सुन रही हूं। तुम गलत कह रहे हो, या मेरे कान गलत सुन रहे है।

क्या रवि भूमि की धूलि से उग सकता है ?............बाजी पर लगाने के लिए क्या महाराज युधिष्ठिर के पास और कोई चीज नही थी ?"

प्रातिकामी ने बडी नम्रता से समझाते हुए कहा— "हां महारानी जी, महाराजाधिराज युधिष्ठिर के पास और कोई चीज नही रह गई थी ?"

"यह कैसे हुआ ?" द्रौपदी के नेत्रों में असीम आश्चर्य ठाठें मार रहा था।

तब सारथी प्रातिकामी ने जुए के खेल का आरम्भ से ले कर अन्त तक का सारा वृतान्त कह सुनाया। सारी बातें सुन कर द्रौपदी अचेत सी रह गई। उसका कलेजा फटा सा जा रहा था, उसे सारी पृथ्वी घूमती सी, सारी वस्तुए चक्कर लगाती सी प्रतीत हुई। पर क्षत्रिय-नारी थी, अत उस ने अपने को शीघ्र ही सम्भाल लिया, क्रोध के मारे उसके नेत्र अगारो की भाति लाल हो गए उसने प्रातिकामी से कहा— "रथवान जा कर उन हारने वाले जुए के खिलाडी और धर्म विरुद्ध कार्य करने मे लज्जा न अनुभव करने वाले से पूछो कि पहले वे अपने को हारे थे या मुझे ? भरी सभा मे उन से यह प्रश्न पूछना और जो उत्तर वह दें उसे मुझ से आ कर बताना, उसी के बाद मैं जाऊंगी।"

प्रातिकामी गया और भरी सभा में युधिष्ठिर से प्रश्न किया ? सुनते ही धर्मराज युधिष्ठिर अवाक रह गए। वे उस प्रश्न की गहराई को समझते थे। वे अपने को मन ही मन धिक्कारने के अतिरिक्त कुछ न कर सके, उन से कोई उत्तर देते न बना।

इस पर दुर्योधन बोला— "वह चुडैल वही बैठे बैठे प्रश्न कर रही है, अपनी वर्तमान दशा को भी उसने नही समझा, प्रातिकामी

उससे जाकर कहो, कि तुम स्वयं चल कर जो चाहे पूछ लो। कोई उसके बाप का नौकर नही है जो उसके आदेश मान कर किसी से प्रश्न पूछता फिरे— जाओ, उसे अभी यहां ले आओ"

प्रातिकामी तुरन्त रनवास की ओर चला गया, पर उसी समय विदुर जी बोले— "दुर्योधन ! इतनी नीचता पर न उतर कि लोग तुझ से घृणा करने लगेगे। तू अगर इन्सान है तो इतना तो समझ कि द्रौपदी का भरी सभा मे बुलाना बहुत ही घृणास्पद है। वह तेरे भाई की ही पत्नी है और पाचाल देश की राजकुमारी है।"

भीष्म पितामह भी चुप न रह सके, दुखित व क्रुद्ध हो कर बोले—' नीच दुर्योधन ! यदि तू नीचता की चरम सीमा को पहुचना चाहता है, यदि तू नारी, जो सदा आदरणीय है और वह भी सती द्रौपदी जैसो नारी को भरी सभा में अपमानित करना चाहता है, तो तेरा पिता तो अन्धा है ही, हमारी भी आखें फोड दे, हमारे कानो के परदे तोड डाल ताकि हम द्रौपदी को उन आखो से अप-मानित होते न देख सके जिनसे हम ने उसे आदरणीय के रूप में देखा है, उन कानो से उसके करूण चीत्कार न सुन सके जिन से हम ने उसका मधुर प्रणाम सुना है। दुष्ट मत भूल कि वह एक सन्नारी है जिसने कभी हमारे सामने अपनी आखे ऊंची नही की।"

सभा में उपस्थित लोग चिल्ला उठे– "अनर्थ हो रहा है, पाप हो रहा है।"

परन्तु दुर्योधन नीचता पूर्ण ठहाका मार कर हसता रहा। उधर प्रातिकामी ने द्रौपदी से विनम्र शब्दों में कहा- "राजकुमारी ! नीच दुर्योधन ने आदेश दिया है कि आप स्वयं चल कर युधिष्ठिर से पूछ लें।"

शोकविह्वल द्रौपदी ने कहा—"नही, नहीं मैं सभा मे नही जाऊंगी, यदि युधिष्ठिर उत्तर नही देते तो उपस्थित सज्जनों को मेरा प्रश्न सुनाओ, और जो उत्तर मिले आकर मुझे सुनाओ।"

प्रातिकामी पुनः सभा मे आया और सभासदो को द्रौपदी

का प्रश्न सुनाया ।

यह सुनकर दुर्योधन चिल्ला उठा, और अपने भाई दु:शासन से बोला—"दु:शासन ! यह नीच पाण्डवों मे डरता प्रतीत होता है, तुम्ही जाकर उस घमडी औरत को ले आओ। और यदि वह आने मे आना कानी करे तो उसकी चोटी पकड़ कर यहा घसीट लाओ।"

तब विवश हो कर धृतराष्ट्र ने कहा— दुर्योधन ! क्यों कुरु वंश को कलंकित करता है, अपनी मूर्खता से बाज आ।"

पर दुर्योधन ने सुनी अन सुनी कर दी। दुरात्मा दु:शासन के लिए इससे अच्छी बात और क्या हो सकती थी, खुशी खुशी वह द्रौपदी के रनवास की ओर चल दिया। शिष्टता को ताक पर रख कर वह द्रौपदी के कमरे मे घुस गया और निर्लज्जता पूर्वक बोला—"सुन्दरी ! आओ, अब क्यों देर लगाती हो। हमने तुम्हें जीत लिया है, अब शरमाती क्यो हो। अरी अब तक पांच की थी, अब सौ कौरवो की बन कर गुलछर्रे उडाना। यह परदा वरदा छोड़ो अब तो सभा मे चलो, बड़े भैया तुम्हे बुलाते हैं, उनका दिल खुश करो।"

"देवर ! तुम कैसा उपहास कर रहे हो, मुझे सभा में ले जाना चाहते हो। इस मे तुम्हे लज्जा न आयेगी।" द्रौपदी बोली। दु:शासन को क्रोध चढ गया, बोला- "देवर, देवर कह कर हमे अपमानित मत करो। कौन देवर किसकी भावी। अब तो तुम हमारी दासी हो। इतनी ही लज्जावती थी तो ऐसे मूर्खों के घर में क्यो आई थी;

"दु:शासन ! जरा होश सम्भाल कर बात कर।" आवेश में आकर द्रौपदी बोली।

"चलती है या नहीं, या बताऊ होश की बात ? मैं नरमी से बात कर रहा हू तो तू सर पर चढती जाती है।"—चिल्ला कर दु:शासन बोला और लपक कर हाथ पकड़ने की चेष्टा करते हुए

कहने लगा–"तू ऐसे नहीं मानेगी, पैरों के बल नहीं सर के बल जायेगी।'

द्रौपदी तीर की चोट खाकर व्याकुल हरिणी की भांति आर्तनाद करती हुई शोकातुर हो अन्तःपुर में भाग चली। परन्तु दुःशासन ने वहां भी उसका पीछा न छोड़ा। दौड़कर उसे पकड़ लिया। द्रौपदी ने दीनता पूर्वक कहा—"आज मैं रजस्वला हूं। एक ही साड़ी पहन रक्खी है, मुझे सभा में न ले चलो।'

किन्तु दुरात्मा दुःशासन न माना उसने कहा "द्रौपदी! यह तो और भी अच्छी बात है। आज तुम्हें अन्धे के पुत्रों की शक्ति का भान हो जायेगा। हमारी दासी है तू। तेरे नखरे नहीं चल सकते।,, द्रौपदी ने अपने आप को छुडाना चाहा, पर दुःशासन कुत्ते की भांति उस से चिपटा था, उसने उसके बाल बखेर डाले, आभूषण तोड़ फोड़ डाले, और उसी अस्त व्यस्त दशा में उस के बाल पकड़ कर घसीटता हुआ सभा की ओर ले जाने लगा।

धृतराष्ट्र के लड़के दुःशासन के साथ मिल कर भारी पाप कर्म करने पर उतारू हो गए। पर द्रौपदी ने अपना क्रोध पी लिया।

सभा में पहुंच कर दुःशासन ने उसे फर्श पर दे पटका। सती द्रौपदी सभा में उपस्थित वृद्धों को लक्ष्य करके बोली— "कपटजाल में फंसा कर महाराज युधिष्ठिर को पापियों ने हस्तिनापुर बुलाया और मजे हुए खिलाड़ी और धोखे बाज लोगों ने उन्हें कुचक्र रचा कर अपने जाल में फंसा लिया। धर्म के प्रतिकूल यह दुर्व्यसन होता रहा, पाप व कपट का षड्यन्त्र चलता रहा, पर आप सभी मौन रहे, इस पाप लीला को देखते रहे। आप लोग तो न्यायवत, विद्यावान, धर्म रक्षक और बुद्धिमान कहलाते हैं, आप राज वंश की नाक है। क्या यही है आप का न्याय? यही है आप का धर्म यही है आप की बुद्धिमत्ता। पापियों ने युधिष्ठिर को अपने जाल में फंसा कर मुझे भी दाँव पर लगवा लिया, आप सब लोगों ने इस अधर्म अन्याय, अत्याचार और कपट जाल को कैसे स्वीकार कर लिया, उस समय कहां गई थी आपकी बुद्धिमत्ता, उस समय आप का न्याय कहां जा कर सो गया था। आप की आंखों की लज्जा धर्मबुद्धि कहां चली गई थी? क्या इसी बिरते पर न्यायाधीश बनते

हो ? क्या यही है कुरुवश की नीति ? क्या आप भी पापी के सहयोगी नही है ? जो पहले ही अपने आप को पराधीन कर चुका हो, जिस की स्वतन्त्रता छिन गई, उसे एक नारी की बाजी लगाने का क्या अधिकार था ? मुझे युधिष्ठिर को दाव पर लगाने का अधिकार किस ने दिया है यह कहां का न्याय है कि कोई व्यक्ति पराधीन हो गया तो उसकी पत्नी भी पराधीन कर दी जाय ? जिस अधर्म मे मेरी कभी सम्मति नही हुई उस मे मुझे हारने या जीतने का किसी को अधिकार नही है। मेरा अपना अस्तित्व है। मैं धातु नही हूं, मैं मानव हूं। मुझे अपने जीवन के सम्बन्ध में निर्णय करने का स्वयं अधिकार है। आपजो कुरुकुल के वृद्ध यहां बैठे हैं, आप की जबान को क्या लकवा मार गया है। कहां है आपकी वीरता कहां है आप का न्याय ? बोलो क्या नारी का अपमान करना ही आप के कुल की परम्परा है। आप के भी बहू बेटियां है, आप भी किसी नारी की कोख से जन्म ले कर ही इतने बड़े हुए, क्या नारी को इस प्रकार अपमानित करते देखते समय आप को लज्जा नही आती ? बोलो क्या है मेरे प्रश्नों का उत्तर। आज एक नारी आप से पूछती है, कि इस अन्याय के सम्बन्ध में आप का क्या विचार है ? क्या यह जो कुछ हो रहा है, धर्मानुकूल है !"

इतना कह कर द्रौपदी मौन हो गई, उसने एक एक करके सभी के मुख को देखा और फिर पाण्डवों की ओर दृष्टि डाल कर उन्हे लक्ष्य करके सिंहनी की भांति गर्जना की— इसी बिरते पर धर्मराज कहलाते हो, इसी बिरते पर रण वीर, योद्धा, कर्मवीर, महाबली और गुणवत कहलाते हो ? मैं युधिष्ठिर महाराज आप से पूछती हूं, कहां है आप का धर्म ? कहा है आप का न्याय ? किसने आप को मेरे भाग्य का निर्णय करने का अधिकार दिया था ? मुझे अपने पाप की भट्टी मे धकेलने का आपको क्या अधिकार था ? यदि कौरव कुल ने लज्जा, मानवता, धर्म और न्याय को स्वार्थ एव नीचता की भट्टी मे फेंक दिया, यदि इन वृद्ध सज्जनो ने अपने पापी बेटों के हाथो अपने को गिरवी रख दिया है, यदि इन की बुद्धि को लकवा मार गया, तो आप तो धर्मराज हैं, आप क्यों इनके षडयन्त्र मे फसते चले गए ?

फिर अर्जुन को लक्ष्य करके बोली—"मेरे सुहाग के स्वामी !

क्या इसी बलबूते पर धनुर्धारी बने थे। आप से तो वह दरिद्री भी अच्छे जो जीते जी अपना सहधर्मिणी की ओर किसी को आंख उठा कर भी नहीं देखने देते। आप की भुजाओं में बहते गर्म लहू को आज क्या हुआ, आज जब भी सभा में मुझे अपमानित किया जा रहा है, आप की विद्या, आप का तेज, आपकी वीरता कहां जा कर सो गई? पर आप तो दुर्योधन के दास हैं, अब काहे को बोलेंगे? इसी वीरता पर आप मुझे पांचाल देश से ब्याह कर लाये थे?"

द्रौपदी के वाक्यों से व्याकुल अर्जुन अपनी गरदन झुकाए खडा रहा। फिर वह सन्नारी भीम, नकुल और सहदेव को सम्बोधित करके बोली—"मैं समझती थी कि पाडववीर है, उन की भुजाओं में जान है, वे धर्मवीर है धीर और गुणवान हैं। पर आज जब मुर्दों की भाति गरदन लटकाए खडे अपने सामने मुझको अपमानित होते देख रहे हैं, तो मुझे लगता है कि यह सब दिखाने भर के हैं, वरना इनका विवेक तो कब का मर चुका है। कहो, क्या पांडु नरेश की सन्तान आप ही हैं?" डूब मरो चुल्लू भर पानी मे, तुम्हारे रहते आज मैं अकेली निस्सहाए अबला हो गई हूं। यह दुष्ट मुझे भरी सभा मे लाकर रक्त के आंसू रुला रहे हैं, और आप लोग मौन खड़े है, मिट्टी के बुतो की तरह?"

पांचाल राज की कन्या को तो आर्त्त स्वर में पुकारते और असहाय सी विकल देख कर भीम सेन से न रहा गया, वह अपनी परिस्थिति को समझता था, इस लिए कडककर बोला –"भाई साहब! मुझे आज्ञा दीजिए कि जिन हाथों ने सती द्रौपदी के केशों को पकडकर उसे घसीट कर यहा लाया है, अभी ही उसके हाथ अपनी गदा से तोड़ डालूं। इन दुष्टों का क्षण भर में काम तमाम करदूं।"

"चुप रह ओ हमारे दास, मुझे मजबूर मत कर कि मैं अभी ही तेरी इस कैंची की भाति चलती ज़बान को भरी सभा मे कटवा दूं।" क्रोध से जलता हुआ दुर्योधन गुर्राया।

अर्जुन ने उसे शान्त करते हुए कहा— "भैया भीम! तुम चुप रहो। महाराज युधिष्ठिर की भूल के परिणाम को

मन मसोस कर सहलो।" तब भीम ने युधिष्ठिर को लक्ष्य करके कड़क कर कहा—'भाई साहब! दरिद्र, अज्ञानी, अधर्मी और गवार जुआरी भी जुए मे हार जाते है, पर अपनी रखैल स्त्री को भी बाजी नही लगाते। किन्तु आप अन्धे हो कर द्रुपद को कन्या को हार बैठे आप ने ही यह भूलकर के सती द्रौपदी का धूर्तों के हाथों अपमान कराया। इस भारी अन्याय को मैं नही देख सकता। आप ही के कारण यह घोर पाप हुआ है। भैया सहदेव! कही से जलती हुई आग तो लेआ। जिन हाथों से महाराज युधिष्ठिर ने जुआ खेला, और जिन हाथो के कारण द्रौपदी भाभी का अपमान हुआ, उन्ही को मैं जला डालूं।"

भीम सेन को आपे से बाहर देखकर अर्जुन ने उसे रोका और बोला—"भैया सावधान! युधिष्ठिर भाई के सम्बन्ध में ऐसी कोई बात मुह से न निकालो। क्यों कि यदि हम आपस मे ही ऐसी बातें करने लगे तो शत्रुओं की पूरी तरह से विजय हो जायेगी। यह हमारे पूर्व कर्मों का ही फल है, जो हमारी बुद्धि मारी गई और हम स्वयमेव ही अधर्म की ओर चले गए। शान्त हो जाओ और जो होता है उसे सहन करो।"

अर्जुन की बात सुन कर भीमसेन शान्त हो गया, अपने को सम्भाल लिया और क्रोध को पी गया।

द्रौपदी की ऐसी दीन अवस्था को देख कर दुर्योधन के एक भाई विकर्ण को बहुत ही दुःख हुआ, उससे न रहा गया खड़ा हो गया और बोला— उपस्थित क्षत्रिय वीरो, वृद्धजनो और दर्शको। मैं नहीं चाहता था कि आपके सामने कुछ कहूं। जिस सभा मे कुल के वृद्ध सुलझे हुए, बुद्धिमान और अनुभवी लोग तथा वे लोग जो न्याय के रक्षक हैं, विराजमान हो तो कम आयु के लोगों को बोलना नही चाहिए, परन्तु जब न्यायाधीश ही चुप चाप तमाशा देखने लगें, जब कि अन्याय अपना नग्न ताण्डव करता हो, पर वृद्ध जनो के कान पर जू न रेंगती हो, जब कि किसी सन्नारी के साथ अत्याचार हो रहा हो और विद्यावानो तथा न्यायकर्ताओं के मुह पर ताले पड गए हो, तो छोटों को जिनकी बुद्धि सही सलामत है, जिन का विवेक जीवित है, जो न्याय प्रिय है, उन्हे विवश हो कर

बोलना ही पड़ता है। इसलिए मैं पूछता हूं, कि अपने को न्यायाधीश कहने वाले, उच्चासनों पर विराजमान लोग इस अत्याचार लीला पर क्यों चुप्पी साधे बैठे हैं। यह स्पष्ट है कि महाराजाधिराज युधिष्ठिर को कपट से बुला कर जुआ खेलने पर मजबूर किया गया, इकार करने पर ताने मारे गए और न जाने पासे पर क्या जादू पड़ा था कि युधिष्ठिर को कुछ ही समय में महाराजाधिराज से रक बना दिया गया, रक भी नहीं, वल्कि दास बना लिया गया। मेरी आपत्ति एक तो यह है कि जब युधिष्ठिर पहले स्वय को हार चुके तो उन्हें द्रौपदी को दाव पर लगाने का भला क्या अधिकार था?

दूसरी यह कि क्षत्रियो ने चौसर खेलने के जो नियम बना रक्खे है उनके अनुसार विरोधी खिलाड़ी स्वयं कह कर किसी वस्तु की बाजी नही लगवा सकता। पर शकुनि मामा ने महाराज युधिष्ठिर को द्रौपदी का नाम ले कर उसे बाजी पर लगाने का प्रस्ताव ही नहीं किया, वल्कि उकसाया भी।

तीसरी बात यह कि द्रौपदी, पशु, पक्षी नही है, वह मानव हैं, बिना उसकी मर्ज़ी के, और जब कि वह जुआ खेलना पाप समझती है, उसकी कोई सम्मति इस खेल मे नही थी, तो द्रौपदी को इस अधर्म मे क्यो धकेला जाये? इस लिए मैं सारा खेल ही नियम विरुद्ध ठहराता हू। मेरी राय मे द्रौपदी नियम पूर्वक नहीं जीती गई। इस लिए जो कुछ हो रहा है वह भयकर अन्याय है, जिस का विरोध प्रत्येक न्याय प्रिय व्यक्ति को करना चाहिए।"

युवक विकर्ण के इस तर्क सगत वक्तव्य से, अब तक जिन के मस्तिष्क पर भ्रम का परदा पड़ा था, उठ गया और लोग चिल्ला उठे — "ठीक है विकर्ण ठीक कहता है। यह अन्याय हो रहा है। यह नियम विरुद्ध है। धर्म की रक्षा हो गई। धर्म की रक्षा हो गई।"

विकर्ण के वक्तव्य से दुर्योधन के पक्ष पातियोमे खल बली मच गई। उस समय कर्ण, अपने मित्र दुर्योधन के हाथ पाव फूलते देख कर उठ खड़ा हुआ और गरज कर बोला "विकर्ण! तुम निरे मूर्ख हो। तुम सभा में बैठने के भी योग्य नही हो तुम्हें शिष्टाचार भी नही आता। जिस सभा में कुल वृद्धजन उपस्थित हों, छोटों को नही बोलना चाहिए। फिर तुम बिना आज्ञा के कैसे बोलने लगे

तुम मे न बुद्धि है और न विवेक ही, और खड़े हो गए तर्क वितर्क करने को। अरे मूर्ख, जब युधिष्ठिर ने पहली बाज़ी मे अपनी सारी सम्पत्ति हार दी, तो फिर उसके पास बचा ही क्या? द्रौपदी तो स्वयमेव ही हारी गई। युधिष्ठिर के शब्द नही सुने जो वह अपने भाईयो की बाज़ी लगाते हुए कह रहे थे। वह अपने भ्राताओं आदि को अपनी ही सम्पत्ति मानते है। इस लिए तुम्हारी शकाएं पूरी तरह बकवास है, उन मे कोई तथ्य नही। मेरी समझ में तो यह नही आ रहा कि अभी तक पाण्डव अपने राज्योचित वस्त्रों में क्यो हैं? जब सारी सम्पत्ति हार गए तो पाण्डवों और द्रौपदी के सारे कपडे तक भी दुर्योधन के हो गए। यह तो दुर्योधन का भ्रातृ प्रेम समझो कि वह इन मूल्यवान कपड़ों को पहनने की पाण्डवों और द्रौपदी को अभी तक छूट दे रहे है।"

कर्ण की कठोर बातो से पाण्डवों पर तो वज्र टूट पडा। उन्हों ने उसी समय बहुमूल्य वस्त उतार दिए। दुर्योधन को तो एक नया उत्पात सूझ गया, जो कदाचित अभी तक उस के मस्तिष्क में न आया था, उस ने दु शासन को लक्ष्य करते हुए कहा —"यह द्रौपदी कैसे अभी तक साड़ी पहने खड़ी है। दु.शासन अभी ही, इसी समय इसकी साडी उतार लो।"

सभा मे उपस्थित लोग दुर्योधन के इस आदेश को सुन कर काप उठे। न्याय प्रिय लोगों के नेत्रों से अश्रुधार फूट पडी। वृद्ध जनो ने अपना मुह ढाप लिया। चारों ओर श्मशान की सी शांति छा गई।

दु शासन आगे बढा और वह दुरात्मा द्रौपदी की साड़ी खीचने लगा। अब बेचारी द्रौपदी क्या करती। उसने मनुष्यो की आशा त्याग कर उस समय शासन देव को याद किया, जिन प्रभु की रट लगाई, उसने आर्त्त स्वर मे शील सहायक देव की टेर लगाई— "प्रभु! अब तुम्ही हो मुझ अबला की लाज के रखवारे। तुम्हारी शरण आती हू। हे शासन देव! यदि मैं वास्तव मे पति व्रता और सती हू तो आओ मेरी लाज बचाओ। मेरे पति, और मेरे सभी सहायक इस समय मेरा साथ छोड चुके है, पर आप तो मेरा साथ न छोडना। लो मैं आप ही की शरण आती हूं"

द्रौपदी कहती कहती अचेत हो गई। उस समय एक अदभुत

चमत्कार दिखाई दिया। सभासद आँखें फाड़ फाड़ करे देख रहे थे। दु:शासन द्रौपदी की साडी पकड़ कर खीचने लगा, ज्यो ज्यो वह खीचता जाता, त्यों त्यो साड़ी बढती जाती। यह चमत्कार देख कर लोगो में कंपकपी सी फैल गई।

निर्लज्ज दुर्योधन भी पहले तो आंखें फाड फाड़ कर देखता रहा, फिर बोला—"दु:शासन! देखी द्रौपदी की करतूत, न जाने कितनी साढियां पहन कर आई है। जरा जल्दी जल्दी खींच।"

दु शासन ने तेजी से खीचना आरम्भ किया। पर और अलौकिक शोभा वाली साढी का ढेर लग गया। आखिर दु.शासन खीचता खीचता थक गया, सारा शरीर पसीने से तर हो गया, अन्त में उसके हाथों में खीचने की शक्ति नही रही और वह हाँपता हुआ अलग हट कर बैठ गया।

इतने में भीम सेन उठा, उसके होंट मारे क्रोध के फड़क रहे थे. मुख मण्डल तम तमा रहा था, नेत्रों से ज्वाला निकल रही थी। ऊचे स्वर मे उसने प्रतिज्ञा की— "उपस्थित सज्जनों! मैं शपथ पूर्वक कहता हूं कि जब तक भरत वश पर बट्टा लगाने वाले और मानवता को कलकित करने वाले इस नीच दु शासन की इन भुजाओं को न तोड दूंगा, जिनसे इसने सती द्रौपदी को अपमानित किया है, तब तक इस शरीर का त्याग नही करूगा। जब तक रणभूमि मे इस की छाती नही तोड दूगा, तब तक चैन नही लूगा।" भीम सेन की इस भीष्म प्रतिज्ञा को सुन कर सभा सद थर्रा गए।

अचानक उसी समय सियार बोलने लगे, गधों के रेंकने और मासाहारी चील कौवो के चीखने की आवाज सुनाई दी। इस प्रकार की मनहूस आवाजें कितनी ही देरी तक आती रही।

इन लक्षणो से धृतराष्ट्र समझ गए कि जो कुछ हुआ है, वह उस के पुत्रों के लिए बहुत ही दुखदायी होगा। सम्भव है उनके कुल का विनाश हो जाये। इस लिए उन्हों ने शीघ्र ही इस घटना पर पानी फेरने का उपाय करना आवश्यक समझा। इन्हों ने द्रौपदी को अपने पास बुलाया। उसे समझाया, प्रेम पूर्वक उसे सान्त्वना दी। और जो हुआ उसे भूल जाने की प्रेरणा दी।

फिर युधिष्ठिर को समझाते हुए बोले— बेटा युधिष्ठिर ! तुम तो अजातशत्रु हो। उदार हृदय भी हो। मैं जानता हूं कि तुम इतने विशाल हृदय हो कि अपने शत्रुओं को क्षमा दान कर सकते हो। दुर्योधन से तुम्हे कोई वैर नही है। तुम ने उसे सदा अपना भाई समझा है। यह कुमित्रों के जाल मे फंस गया है। इसे अपने और पराये की पहचान नही है। इसे इस कुचाल के लिए क्षमा करदो। और जो कुछ हुआ उसे अपने दिल से निकाल दो।"

उन्हो ने दुर्योधन को अपने पास बुलाया और कहा—"बेटा ! तुम्हारी भूले हमारे कुल के नाश का कारण बन जायेगी। तुम जिस रास्ते पर चल रहे हो, वह नाश का है, कलक और पाप का है। अब भी समय है, सम्भल जाओ। और अपनी भूलों को सुधारने का प्रयत्न करो। इस समय जो हुआ वह घोर अनर्थ है। वह हमारे कुल के मस्तक का काला दाग बन जायेगा। तुम युधिष्ठिर की जीती सम्पति वापिस करदो और उन्हे पहले के अनुसार राज्य करने दो, जिस आदर सत्कार से उन्हे बुलाया था, उसी आदर सत्कार से वापिस भेज दो। तुम्हारा और कुल का हित इसी बात मे है। यदि तुम ने ऐसा न किया तो याद रक्खो तुम्हारा नाश अवश्यमभावी है। लक्षण बता रहे है कि अपनी बरबादी के बीज तुम ने बो दिए है। चलो अब भी समय है। इन सब बातो को इस एक उपाय मे धो सकते हो। मेरी बात मान कर युधिष्ठिर की सम्पत्ति वापिस करदो।"

दुर्योधन के मन मे भी यह बात बैठ गई कि कुछ भूल हो गई है। लक्षण शुभ नही है। पापी कायर भी होता है। इसी कारण दुर्योधन उस समय मन ही मन कांप रहा था, पर वह सोचने लगा कि यदि युधिष्ठिर की सम्पति उसे वापिस देदी, तो पाण्डव कभी इस घटना को न भूलें गे और किसी न किसी समय अवसर पाकर अवश्य ही बदला लेंगे। सांप चोट खाकर बच निकलता है, तो वह अवश्य ही चोट करने वाले को डसता है। इसी प्रकार पाण्डव इन्द्रप्रस्थ पहुचते ही अपने दल बल के साथ, मुझ पर आक्रमण कर देंगे और भीम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेगा।" इस

लिए भयभीत होते हुए वह बोला—"पिता जी ! जो सम्पत्ति युधिष्ठिर हार चुके उसे वापिस कैसे किया जा सकता है। हम ने उन से यह सम्पत्ति छीनी थोडे ही है और न कोई अन्याय कर के ही ली है। नियम पूर्वक चौसर के खेल मे जीती है। इस लिए अब युधिष्ठिर का उस पर कोई अधिकार नही। न उसे वापिस लेने का साहस ही करना चाहिए। हम ने बल पूर्वक तो यह सब कुछ दाव पर लगवाया नही। फिर भी आप की आज्ञा को मैं टाल नहीं सकता। मैं इतना कर सकता हू कि युधिष्ठिर मेरी एक शर्त मान ले, तो उन्हे उसका राज पाट वापिस मिल सकता है।"

"बोलो क्या शर्त है ?"

"शर्त यह है कि पाण्डव द्रौपदी सहित बारह वर्ष तक वनों मे जाकर रहे और तेरहवें वर्ष मे अज्ञात वास करे। यदि अज्ञात वास के समय में वे कही पहचान लिए तो फिर उन्हे बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञात वास में व्यतीत करना होगा। यदि वे नहीं पहचाने गए तो तेरह वर्ष उपरान्त आकर वे अपना राज पाट वापिस लेने के अधिकारी होंगे। यह शर्त यदि पाण्डव मानें तो मैं भाई होने के नाते उन के साथ यह दया कर सकता हूं।"—

"हम किसी की दया के मोहताज नही है। हमारी भुजाओं मे शक्ति होगी तो हम स्वय अपना राज्य वापिस ले लेंगे।"—

भीमसेन ने गर्जना की।

बात बिगड़ती देख कर धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को अपने पास बुलाया और बहुत ही विनम्र शब्दों मे प्रेम पूर्वक उन्हे इस शर्त को मान लेने पर विवश किया, कभी पाण्डु का वास्ता दिया, कभी उनके दया भाव को याद दिलाया, कभी उन की सहन शीलता और भ्रात प्रेम को जागृत किया, तात्पर्य यह है कि हर प्रकार से उन्हे मजबूर कर दिया और अन्त मे उन से शर्त मनवा ही ली।

बात तय हो गई और पाण्डव माता कुन्ती से विदा ले कर परिवार सहित वनोको चल पड़े।

* अष्टम परिच्छेद *

जब पाण्डव परिवार सहित बन को जाने लगे तो उनको देखने की इच्छा से हस्तिनापुर के नर–नारी सडकों पर निकल आये। इतनी भीड़ थी कि सड़कों पर चलना असम्भव था, इसलिए कुछ लोग ऊंचे भवनों की छतों और छज्जों पर खड़े थे। महाराजाधिराज युधिष्ठिर जिन की सवारी सेना सहित बडी सज धज से निकला करती थी, उस दिन साधारण वस्त्र पहने पैदल अपने परिवार सहित जा रहे थे, यह देख कर लोग हा हा कार करने लगे। कुछ लोगों की आखो से अश्रुधार वह रही थी, कुछ 'हाय–हाय' कर रहे थे और कुछ 'छि–छि.' करके कौरवों को धिक्कार रहे थे। उनके अत्याचार पर सारा नगर क्षुब्ध था।

अन्धे धृतराष्ट्र ने विदुर को बुला कर पूछा—"विदुर ! पाण्डु के बेटे अपने परिवार सहित कैसे जा रहे हैं ? मैं अन्धा हूं, देख नही सकता तुम्ही बताओ कैसे जा रहे है ?"

विदुर जी बोले—"कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर ने कपडे से मुख ढांक रक्खा है। भीमसेन अपनी दोनों भुजाओं को निहारता, अर्जुन अपने हाथ मे कुछ बालू लिए उसे बिखेरता, नकुल और सहदेव अपने शरीर पर धूल रमाये हुए क्रमशः युधिष्ठिर के पीछे जा रहे हैं।

द्रौपदी ने अपने बिखरे हुए केशों से अपना सारा मुंह ढक लिया है और आंसू बहाती हुई युधिष्ठिर का अनुसरण कर रही है।"

यह सुन कर धृतराष्ट्र की आशंका और चिन्ता पहले से भी अधिक प्रबल हो उठी। उन्होंने उत्कंठा से पूछा—"और नगर वासी क्या कह रहे है?"

"महाराज! लोगो के नेत्रों से आंसू और कण्ठ से कौरवो के लिए धिक्कार के शब्द निकले हैं। कह रहे हैं कि धृतराष्ट्र ने अपने बेटों को राज्य देने के लिए पाण्डवों को निकाल दिया। कुछ लोग कह रहे हैं कि कुरुवश के वृद्धो को धिक्कार है जिन्होने दुर्योधन और दु.शासन के कहने से यह अत्याचार किया। इसी प्रकार कोई कुछ और कोई कुछ कर रहा है देखो नीले आकाश मे बिजली कौंध रही है। और भी कितने ही अनिष्टकारी लक्षण हो रहे हैं।"—

विदुर जी ने कहा।

विदुर और धृतराष्ट्र की यह बातें हो रही थी कि कहीं से नारद जी आ निकले। उन्होंने धृतराष्ट्र को बताया कि दुर्योधन के इस पाप के कारण चौदह वर्ष बाद कौरवो का नाश हो जायेगा। भविष्य के जानकारो का यही विचार है। यह भविष्य वाणी सुना कर नारद जी तो चले गए और धृतराष्ट्र और उसके साथी नारद की यह भविष्यवाणी सुन कर भय भीत हो आचार्य द्रोण के पास गए और उनके आगे गिड गिडाते हुए बोले—"आचार्य जी! जब चारों ओर से हम पर विपत्तियां टूट पडने की आशंका है, तब हम आप की शरण आये हैं। यह सारा राज्य आप का है, हम आप ही की शरण है, आप विद्यावान, दयावान और बुद्धिमान है, आप हमें शरण लीजिए। आप कभी हमारा साथ न छोडें।"

इस पर द्रोणाचार्य बोले—"पाण्डव अजेय हैं, वह न्यायवंत एव गुणवान हैं, यह जानते हुए भी चूंकि तुम लोग मेरी शरण आ गए हो, इसलिए मैं तुम्हें ठुकरा नहीं सकता। जहां तक मुझ से बन पड़ेगा मैं तुम्हारी प्रेम पूर्वक हृदय से सहायता करूंगा। परन्तु होनी को कौन टाल सकता है। तेरह वर्ष उपरान्त पाण्डव बडे

क्रोध से लौटेंगे। उन का स्वसुर द्रुपद मेरा शत्रु है। अपने अपमान का बदला लेने के लिए उसने तपस्या की थी जिससे धृष्टद्युम्न प्राप्त हुआ। मैं जानता हूं वह मेरे प्राण हरने वाला है। उसके कारण मेरा नाश होना है। और अब सारे लक्षण बता रहे हैं कि मैं और तुम एक ही नौका में सवार हो गए हैं। यह नौका डूबनी अवश्य है। इस लिए जो पुण्य कर्म करने हो, वह इन तेरह वर्ष मे ही कर लो। विलम्ब न करो, धर्म पथ पर बढो। वरना मनुष्य जीवन बेकार हो जायेगा। दुर्योधन ! मेरी बात मान लो युधिष्ठिर से सन्धि कर लो। इसी मे तुम्हारा भला है। मैंने अपनी राय दे दी, अब तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो।"

द्रोणाचार्य को दुर्योधन अपने पक्ष मे करने के लिए ही उनके पास गया था, पर वह कोई श्रेष्ठ राय मानने को तैयार नही था, उस ने उनकी बाते टाल दी।

× × × × × × ×

एक दिन सजय ने धृतराष्ट्र से पूछा—"आप चिन्तित दिखाई देते हैं, क्या कारण है ?"

पाण्डवो से बैर हो जाने के बाद मै निश्चिन्त रह ही कैसे सकता हूं ?" अन्धे राजा ने उत्तर दिया।

सजय बोला— "आप सच कह रहे है, जिसका नाश होना होता है उसकी बुद्धि फिर जाती है। आप ने लड़को के कहने मे आ कर अधर्म को अपनी नीति का आधार बनाया। किसी के पापों का फल देने के लिए प्रकृति किसी के सिर पर कुल्हाड़ा थोडे ही चलाती है, उसके पाप ही ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देते है, जिस से वह उल्टे रास्ते चल कर स्वय गड्ढे मे गिर जाता हैं।"

धृतराष्ट्र व्याकुल हो कर कहने लगे— "दुख तो इस बात का है कि मैंने विदुर की राय भी नही मानी। जब कि मैं सदा ही बुद्धिमान की बात मानता था, उसने जो राय दी वह धर्म और नीति के अनुकूल थी। किन्तु मैं अपने नासमझ बेटों की बात

मान बैठा। मुझे धोखा हो गया, मैं भटक गया।"

एक ओर धृतराष्ट्र विदुर जी की राय को न मानने पर दुखी हो रहे थे, दूसरी ओर देखिये वे विदुर जी के साथ क्या करते हैं?—यह उदाहरण इस बात का कि जब नाश के दिन निकट आते है तो उल्टी सूझा करती है।

"विनाश काले विप्रीत बुद्धि

विदुर जी बार बार आग्रह करते कि पाण्डवों के साथ सन्धि करलो, वे कहते—"आप के बेटो ने घोर पाप किया है, ऐसा पाप जिसका उदाहरण इतिहास में कही नही मिलता। उन के पाप से हमारे कुल का सर्व नाश हो जायेगा। आप अब भी सम्भलिए, अपने मूर्ख बेटों को सुपथ पर लाइये। पाण्डवों को बन से वापिस बुला लीजिए, उनका राज्य उन्हे दे दीजिए। यह सब करना आप ही का कर्तव्य है।" विदुर जी प्रायः ऐसे ही उपदेश धृतराष्ट्र को दिया करते।

विदुर जी की बुद्धिमता का उन पर भारी प्रभाव था, अतः धृतराष्ट्र उनकी बातों को शुरु शुरु मे सुन लिया करते थे। परन्तु बार बार विदुर जी की यह बातें सुनकर धृतराष्ट्र ऊब उठे।

एक दिन विदुर जी ने फिर वही बात छेडी तो धृतराष्ट्र झुंझला कर बोले—"विदुर! तुम हमेशा पाण्डवों का पक्ष लेते हो और मेरे पुत्रो के विरुद्ध बातें करते रहते हो। इस से प्रकट होता है कि तुम हमारा भला नही चाहते, नही तो बार बार मुझ, दुर्योधन का साथ छोडने को क्यो उकसाते। दुर्योधन मेरे कलेजे का टुकडा है, चाहे वह कुछ करे मैं उसे नही छोड सकता। तुम्हारी इन बातो को सुनते सुनते मेरे कान पक गए हैं। तुम्हारी बातें न न्यायोचित हैं और न मनुष्य स्वभाव के अनुकूल ही। यदि हम तुम्हे अन्यायी और पाण्डव पुण्यात्मा प्रतीत होते हैं, तो तुम हमारे पास क्यो हो, पाण्डवो के साथ ही बन मे क्यों नही चले जाते?"

धतराष्ट्र क्रोध मे ऐसे कह कर बिना विदुर का उत्तर सुने

ही अंतःपुर मे चले गए ।

विदुर ने मन में कहा कि अब इस वंश का नाश निश्चित है। उन्होंने तुरन्त अपना रथ जुतवाया और उस पर चढ कर जंगल में उस ओर तेजी से चल पड़े जहां पाण्डव बनवास के दिन बिता रहे थे।

विदुर जी के चले जाने के बाद धृतराष्ट्र को अपनी भूल सुझाई दी। वह सोचने लगे विदुर जी को भगा कर मैंने अच्छा नही किया। इससे तो पाण्डवो की शक्ति ही बढ़ेगी। अतः उन्होंने संजय को बुलाकर उसे विदुर जी को समझा बुझा कर कर वापिस ले आने को भेजा। संजय ने बन में जाकर विदुर जी को बहुत समझाया और धृतराष्ट्र की ओर से क्षमा मांगी और विदुर जी को वापिस हस्तिना पुर ले आया।

× × × ×

एक बार महर्षि मैत्रेय धृतराष्ट्र के महल मे आये। धृतराष्ट्र ने उनका बडा सत्कार किया, फिर हाथ जोड कर विनय पूर्वक कहा—"मुनिवर आप ने कुरु जंगल के बन मे मेरे भतीजो को देखा होगा वे कुशल से तो हैं? क्या वे बन मे ही रहना चाहते है? हमारे कुल मे उन के बनवास से परस्पर मित्र भाव कम तो नही हो जायेगा?"

महर्षि बोले—"राजन्! काम्यक बन मे अनायास ही पाण्डवों से भेंट होगई - उन पर जो बीती है, वो मुझे ज्ञात है। आप के और भीष्म जी के रहते हुए यह नही होना चाहिए था।"

उस समय दुर्योधन सभा मे उपस्थित था, मुनिवर ने उसे लक्ष्य करके कहा—"राजकुमार! तुम्हारी भलाई के लिए कहता हूं कि पाण्डवो को धोखा देने का विचार छोड दो। पाप का परिणाम सदा दुखदायी होता है। जो अन्याय तुम उनके साथ कर रहे हो वास्तव मे तुम अपनी आत्मा के साथ ही वह कर रहे हो। अब भी अधर्म का रास्ता छोड कर सुपथ पर आजाओ। मैत्रि भाव और प्रेम पूर्वक रहो।"

हे राजकुमार शास्त्रों में कहा है.—

तुमंसि नाम सच्चेव जं हंतव्वं ति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेव जं अज्जावे अव्वं ति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेव जं परिया वेयव्वं ति मन्नसि
तुमंसि नाम सच्चेव जं परिघेत्तव्वं ति मन्नसि
एवं तुमंसि नाम सच्चेव जं उद्दवेयव्वं ति मन्नसि ॥

अर्थात जब तुम किसी को हनन, आज्ञापन, परिताप, परिग्रह, एवं विनाश योग्य समझते हो तो यह विचार करो कि वह तुम ही हो। उसकी आत्मा और तुम्हारी आत्मा एक सी ही है। जैसे तुम्हे हननादि अप्रिय है, और तुम उससे बचना चाहते हो, उसी प्रकार उसकी आत्मा को भी है।

मुनिवर ने मधुर वाणी मे दुर्योधन को समझाया पर जिद्दी दुर्योधन ने उनकी ओर मुंह भी नहीं किया, कुछ बोला भी नही, बल्कि अपनी जांघ पर हाथ ठोंकता रहा। और पैर के अंगूठे से जमीन कुरेदता मुस्कराता रहा।

दुर्योधन की इस ढिठाई से मुनिवर को बड़ा खेद हुआ। धृतराष्ट्र ने हाथ जोड कर पूछा कि "भगवन ! आप दुर्योधन के भविष्य के सम्बन्ध मे तो कुछ बताइये।"

मुनिवर बोले—देवों ने सर्वज्ञ देव से पूछकर जो बताया है, वह मैं कह सकता हूं, वह यह है कि दुर्योधन इस समय जिस जांघ को ठोक रहा है, युद्ध में भीम अपनी गदा से तोड़ेगा। और इसी से इसकी मृत्यु होगी।

* नवम परिच्छेद *

जब श्री कृष्ण को हस्तिना पुर में हुई घटना की सूचना मिली और उन्हें ज्ञात हुआ कि पाण्डव सपरिवार बनो मे चले गए हैं, तो वे तुरन्त पाण्डवो से मिलने के लिए चल पडे। दूसरी ओर धृष्ट द्युम्न भी पांचाल देश से कुरु जगल के बनों की ओर चला।

श्री कृष्ण के साथ राजा कैकेय, भोज और वृष्टि जीत के नेता आदि भी थे। इन सभी का पाण्डवों के साथ बहुत स्नेह था और उन्हे बडी श्रद्धा के साथ देखते थे। अर्जुन के मित्र विद्याधर खेचर भी उनसे मिलने के लिए चले। इस प्रकार क्षत्रिय राजाओ का एक बड़ा दल और अनेक विद्याधर आदि पाण्डवों के आश्रम मे पहुचे।

पाण्डव बडे हर्षान्वित होकर सभी से मिले। दुर्योधन और उसके साथियो की करतूतो का पूरा हाल जब सभी ने सुना तो सभी को खेद हुआ। सभी राजाओं ने एक स्वर से धृतराष्ट्र और उसके बेटो की भर्त्सना की। कितने ही राजा एक स्वर से बोले— "दुराचारी कौरवों का विनाश हम सबकी खड्ग से होना अवश्यमभावी है। हम इस अन्याय का बदला रण भूमि

में लेंगे। उन के रक्त से हम पृथ्वी की प्यास बुझावेंगे।"

आगन्तुक राजा जब अपने अपने मन की कह-चुके, तो द्रौपदी श्री कृष्ण से मिली। श्री कृष्ण को अपने सामने देखते ही उसकी आँखों से सावन भादों की झड़ी लग गई। अवरुद्ध कण्ठ बड़ी कठनाई से वह वोली—"मधु सूदन! मैंने कौरवों के हाथों से जो अपमान सहा है, वह ऐसा है कि कहते हुए ही मेरा कलेजा फटा सा जा रहा है। उस समय मैं रजस्वला थी, एक साड़ी ही पहनी हुई थी। दुष्ट दुःशासन ने मेरे केश पकड़ कर घसीटता हुआ भरी सभा मे मुझे ले गया। कुरु कुल के सभी वृद्ध वहा उपस्थित थे। पर किसी ने इस पाप के विरुद्ध उफ तक नही किया। दुर्योधन की आज्ञा पर उस दुष्ट ने मेरी साडी खीचनी आरम्भ की, मुझे भरी सभा मे नगा करने की चेष्टा की, उस समय महाराज युधिष्ठिर ने सिर नीचा कर लिया, धनुषधारी अर्जुन का गाण्डीव उस समय भूमि पर पडा था, महाबली भीम उस समय चुप खड़ा था, मेरा वहा कोई नही रह गया था। वृद्ध जन गरदन झुकाए बैठे थे। मैं भीष्म और धृतराष्ट्र की वधु हू, पर वे इस वात को भी भूल गए थे। पाण्डु नरेश की वधु और पाँचाल नरेश की बेटी उस समय निस्सहाय व अवला बनी हुई थी। दरिद्र पुरुष भी होते हैं, वे भी अपनी पत्नी के अपमान को सहन नही करते, पर मैं विश्व विख्यात धनुषधारी की पत्नी होकर अनाथ सी विलाप कर रही थी। उस समय यदि काम आया तो मेरा सती चारित्र। जिस समय से मुझे यह घोर अपमान सहन करना पड़ा उस समय से मैं तो यह समझ बैठी हू कि मेरा इस ससार मे कोई नही है, न पति न परिवार, श्रीहर, और न आप ही। पापी दुराचारी मेरे साथ प्रत्येक अन्याय कर सकते हैं। बोलो क्या मुझ जैसी अभागिन इस संसार मे और भी कोई होगी?"

—कहते कहते द्रौपदी का कोमल होंट फड़कने लगा, वह विलख विलख कर रो रही थी। उस के अश्रुओं की बहती गगा यमुना मे श्री कृष्ण की धीरता भी बह चली। वे शोक विह्वल हो गए। परन्तु समय की नजाकत को समझते हुए उन्हों ने अपने आप को बहुत सम्भाला और मिष्ट वचनों से द्रौपदी को सान्त्वना देने लगे,

और बोले—बहन द्रौपदी ! तुम विश्वास रक्खो कि पाण्डव और उनके सहयोगी इतने शक्ति शाली हैं कि वे तुम्हारे अपमान का बदला अवश्य लेंगे। तुम पर जो भी बीती है, उसे सुन कर मेरा कलेजा फटा सा जाता है। पर एक बात से मुझे सन्तोष है कि जो कुछ हुआ है वह अवश्य ही तुम्हारे पूर्व कर्मों का फल है, दुर्योधन आदि तो निमित्त मात्र है। हां परन्तु उन्हों ने जो कुछ किया वह वैरभाव से ही किया इस लिये उन्हें भी अपने पाप का फल भोगना पड़ेगा। तुम शोक न करो मैं वचन देता हूं कि उन दुष्टों के विरुद्ध में पाण्डवों को प्रत्येक सम्भव और उचित सहायता दूंगा। यह भी निश्चय मानो कि तुम पुनः महलो के वैभव को प्राप्त करोगी। महाराज युधिष्ठिर पुनः अपने पद को सुशोभित करेंगे। चाहे आकाश टूट कर गिर जाए, चाहे हिमालय फट कर बिखर जाय, चाहे पृथ्वी टुकड़े टुकड़े हो जाय, चाहे सागर सूख जाय पर मेरा यह वचन भूठा नही होगा।"

श्री कृष्ण की इस प्रतिज्ञा में द्रौपदी का मन खिल उठा। उसने अर्जुन की ओर अर्थ पूर्ण दृष्टि से देखा। अर्जुन भी द्रौपदी को सान्त्वना देते हुए बोला—"हे पांचाली, श्री कृष्ण का वचन भूठा नही होगा। वही होगा जो उन्होने कहा है। तुम धीरज धरो। हमारे साथ वासुदेव है तो फिर हमें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है।"

धृष्ट द्युम्न ने अपनी बहन की बातों को सुन कर दुखित हो कर कहा—"हे बहन ! मुझे तुम्हारी बातें सुन कर बड़ी लज्जा आ रही है। मेरे रहते मेरी बहन को कोई अपमानित करने का दुस्साहस करे, यह मेरे लिए डूब मरने की बात है।" —"फिर वह अपने आप को धिक्कारने लगा—"धिक्कार है मेरे पौरुष को। टूट जाओ ऐ मेरी बलिष्ट भुजाओ टूट जाओ, जब तुम अपनी बहन की रक्षा नही कर सकती तो तुम्हारा अस्तित्व व्यर्थ है। हे मेरे नेत्रो अच्छा है तुम ज्योति हीन हो जाओ, मैं अपनी आंखो से अपनी बहन के नयनो को सजल कैसे देखूं ? फूट जाओ मेरे कानों फूट जाओ, अपनी बहन के अपमान की कथा सुनने से अच्छा है कि तुम फूट ही जाओ।"

धृष्ट द्युम्न को श्री कृष्ण ने धैर्य बन्धाया। उस समय वह बोला— 'महाराज! आज आप ने जो प्रतिज्ञा की है मैं उसे पूर्ण करने के लिये अपना सब कुछ दाव पर लगा दूगा। मैं उसे द्रोणाचार्य को, जो कि मेरे पिता का शत्रु और आजकल कौरवों का संरक्षक है, मारूगा। भीष्म को शिखण्डी, दुर्योधन को भीमसेन, और सूतपुत्र कर्ण को अर्जुन युद्ध में यमलोक पहुचायेंगे।"

श्री कृष्ण ने कहा—"मैं उस समय द्वारिका में नहीं था। यदि होता और इस खेल का पता चलता तो चौसर के खेल को ही न होने देता, यह खेल धर्म के प्रतिकूल है। इस दुर्व्यसन में जो पड़ा है, उसका नाश हो गया है। धृतराष्ट्र के बुलाये बिना ही सभा में पहुंच जाता और भीष्म तथा द्रोण जैसे वृद्धजनों को समझा बुझाकर इस नाशकारी खेल को रुकवा देता।"

"आप ऐसे समय द्वारिका से कहा चले गए थे? धृष्टद्युम्न ने पूछा।

जरासिन्ध के मित्र शाल्व ने उस समय जबकि मैं इन्द्रप्रस्थ में था, द्वारिका का घेरा डाल दिया था। पर बलराम की बुद्धिमता और नगर की सुरक्षित स्थिति के कारण वह अपने मन्तव्य में सफल नही हुआ और मेरे द्वारिका पहुचने मे पहले ही घेरा उठाकर भाग गया था। मैं इन्द्रप्रस्थ से लौट कर उस धुर्त को परास्त करने चला गया था। उसे यमलोक पहुचा कर आ ही रहा था कि मुझे इस काण्ड की सूचना मिली और मैं तुरन्त वन की ओर चल पड़ा।" श्री कृष्ण ने बताया।

इसके पश्चात श्री कृष्ण पाण्डवों से विदा हुए. वे सुभद्रा और अभिमन्यु को अपने साथ लेते गए। धृष्टद्युम्न ने बहुत चाहा कि वह पाचाल देश चली चले पर वह तैयार न हुई। अतएव द्रोपदी के पुत्रों को ले कर धृष्टद्युम्न पाचाल देश की राजधानी को चला गया।
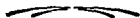
* दसम परिच्छेद *

चाहे दुर्योधन ने अपने अभिमानी स्वभाव के कारण उस समय पूरी ढिठाई दिखाई थी। परन्तु महर्षि मैत्रय की भविष्य वाणी ने उसके हृदय को हिला दिया था। देवर्षि नारद के कथन के पश्चात् उसी का अनुमोदन करती हुई वह वाणी रह कर उसके हृदय प्रदेश मे गूंज रही थी। जिस से दुर्योधन का खाना पीना हराम हो गया था। कोमल शय्या पर करवटे बदलते बदलते ही प्रभात हो जाती थी परन्तु निद्रा देवी के दर्शन भी नही हो पाते थे।

इसी समय दूत ने आ कर उन सारी घटनाओ की सूचना दी जो कि वन मे पाण्डवो के पास घटी थी। अनेक प्रबल विद्याधरों, नरेशों, मुख्यतया त्रिखडाधिपति वासुदेव श्री कृष्ण की प्रतिज्ञा को सुन कर दुर्योधन का हृदय हाफ उठा उसका रहा सहा आत्म-विश्वास समाप्त हो गया। मौत की भयावह छाया उसकी आँखों के सामने मडराने लगी। पैरों को पटकता हुआ विक्षिप्तो की सी अवस्था मे वह कब तक महल में घूमता रहा इसका ध्यान उसे तब आया, जब कि उसके कानो मे शकुनि को यह शब्द पडे कि--

दुर्योधन, क्या कारण है तुमने अभी तक भोजन नही किया,

जब कि सूर्य मध्यान्ह को भी लांघ गया है। और समीप में आने पर दुर्योधन के चेहरे पर उड़ती हुई हवाइयो और चढी हुई आखों को देख कर शकुनि स्तम्भित सा रह गया। मामा को अपने समीप मे देख कर दुर्योधन स्मस्त्थ हुआ। और सिंहासन पर बैठते हुए भर्राये हुए कठ से कहने लगा मामा जी या तो इसके प्रतिकार का अपनी विचक्षण बुद्धि से कोई शीघ्र ही मार्ग निकालिये अन्यथा कौरव-कुल की नैया तो मझधार मे ही डूबी हुई समझिये।

क्यों-क्यों राजन्, ऐसी अशुभ वाणी क्यों मुह से निकाल रहे हो– बैठते हुए आश्चर्य निमज्जित शकुनि ने दुर्योधन से कहा।

जब चारों तरफ से अशुभ ही अशुभ देखने और सुनने को मिल रहा है तो आप ही सोचिये मैं कब तक शुभ स्वप्नो की कल्पनाए करताहुआ बैठा रह सक्ता हू। समय रहते हुए यदि कुछ प्रबन्ध नही किया तो दावानल के धू धू करके चारों तरफ से महल को घेर लेने पर कुआ खोदने के उपक्रम से कुछ होने जाने वाला नही है। इस तरह कहते हुए प्रतिहारी को भेज कर अपने अभिन्न हृदय कर्ण, दुःशासन आदि को भी दुर्योधन ने बुला लिया और अपनी व्याकुलता का समस्त रहस्य समझाते हुए बल दिया कि हमे कोई ऐसी युक्ति निकालनी चाहिये कि साप मरे न लाठी टूटे।

कहते हैं पाप ही पापी के हृदय को दहलाता रहता है। इस समय इस चाडाल चौकडी के हृदय पर अपने कुकर्यों के अवश्यम्भावी कुफल की विभीषिका पूरो रगत दिखला रही थी। परन्तु रस्सी जल जाने पर भी जैसे ऐंठन सीधी नही बनती, त्यो अपने विनाश की काली रात्रि को सन्मुख देखते हुए भी, गाधारी पुत्र शालीनता एव सद्बुद्धि को अब भी सन्मान देने को तैयार नही थे।

पाडवों की प्रतिष्ठा और उन्हे सुख प्राप्ति की कल्पना भी दुर्योधन के हृदय मे बवडर उत्पन्न करने के लिये पर्याप्त आधार थी परन्तु साथ ही साथ अपने अनिष्ट की सम्भावना के तूफान ने उसकी ईर्षाग्नि को ज्वालामुखी की भान्ति भयंकर रूप से धधका दिया था। जिसके कारण इस समय उसके हृदय से निकलने वाले विचार

रूपी लावे से न्याय-नीति सौजन्यता या मानवता रूपी कल्पद्रुम झुलसते जा रहे थे। वह ऐसा उपाय ढूढ निकालने मे निमग्न था कि जिससे पाडवो का विनाश अवश्यम्भावी हो। इस कुचक्र-योजना निर्माण मे उसका मामा शकुनि मित्र कर्णादि सहयोगी एवं परामर्श-दाता बने हुए थे। काफी समय पर्यन्त विचार-विमर्श एवं वादविवाद के पश्चात्, अन्तत यह मित्र–मडली एक ऐसे विचार–विन्दु पर केन्द्रित हुई, कि जिससे दुर्योधन सहित सभी के चेहरे विजयोल्लास की सी दीप्ति मे चमकने लगे। और "शुभस्य शीघ्रम्" का दुरुपयोग करते हुए, परस्पर के बुद्धि नैपुण्य की प्रशसा करते हुए, योजना को क्रियान्वित करने के लिए धृतराष्ट्र के मत्रणा-गृह मे जा उपस्थित हुए।

\+ + + + × × ×

वत्स चिरञ्जीव होवो। कहो इस समय किस कारण से आना हुआ। नमस्कार का उत्तर देते हुए वृद्ध राजा ने दुर्योधन से पूछा।

पिता जी, बस अब बहुत हो चुका। पुरजनों की तीखी कड़वी बातों को सुनते-सुनते मेरे कान पक चुके है। अब मेरे से आपकी अपनी, अपने भाईयो की यह तीव्रनिन्दा एव भर्त्सना नही सही जाती इतने विशाल साम्राज्य को पा कर भी हमे यदि मनस्ताप से झुलसते रहना पडे तो उसके रखने से क्या लाभ ?

क्यो ? क्यो पुत्र, किस घटना को ले कर पुरजन हमे घृणित दृष्टि से देखते है। उत्सुकता से धृतराष्ट्र न पूछा।

यही कि जिस दिन से भाग्य ने हमारा साथ दिया। न्यायः पुरस्क र हमने द्यूत मे युधिष्ठिर को पराजित किया, उसी दिन से पुरजन परिजन हाथ धो कर हमारे पीछे पड हुए है कि कौरवो से अपने भाइयो को वृद्धि नही देखी गई। उनका यश, राज्य, वैभव प्रतिष्ठा इन्हे फूटी आखो नही सुहाती। हमे कोई कुलगार कह कर थकता है। कोई अत्याचारी को रट लगा रहा है। और यहा तक धृष्टता बढ गई है कि आपकी ही छत्र छाया मे रहते हैं, और आपको

ही कहते हैं कि आंखों से तो अंधा था ही, अब हृदय की भी फूट गई है। पिता जी, सच कहता हूं कि इस अपमान से जीवित रहने की अपेक्षा मर जाना श्रेयस्कर है। मन करता है इन राज्यद्रोहियों को चुन चुन कर मौत के घाट उतार दूं। परन्तु आपकी कोमल प्रकृति से विवश हो कर दांत पीस कर रह जाता हूं। अब जब सिर से भी पानी गुजरने लगा तो मेरे लिए आप से निवेदन करना आवश्यक हो गया है।

वृद्ध धृतराष्ट्र बुद्धिमान थे, न्यायशील भी। अपने भतीजों के प्रति उन्हें कुछ स्नेह भी था। उन्हें अपने पुत्रों के प्रति मोह था। उनके चक्षु ज्योति हीन थे। उनके स्वभाव में दृढ़ निश्चय करने और उस पर चलते रहने की कमी थी। किसी बात पर वे स्थिर नहीं रह सकते थे। अपने हठी पुत्र दुर्योधन को वश में रखने की उनमें क्षमता नही थी। इसी कारण यह जानते हुए भी कि दुर्योधन कुपथ पर जा रहा है, उसे रोकने अथवा सुपथ पर लाने में असमर्थ थे। इसके कार्यों को देख देख कर उनके मन मे पीड़ा होती। पर वे मन ही मन में घुटते कुढ़ते रहते पर प्रत्यक्षतः कुछ कह न पाते थे। परन्तु आज अपने पुत्र की बातों को सुन कर, जहा उन्हें अपने अपमान को जान कर दुख होना चाहिये था प्रत्युत प्रसन्नता हुई। उन्होने सोचा, चलो सुबह का भूला शाम को भी घर आ जाये तो खैर ही है। शायद कोई रास्ता ऐसा निकल आये जिससे अब यह पाडवों से विरोध करना त्याग देवे और प्रेम पूर्वक साथ रहना स्वीकार कर लेवे। इत्यादि विचार करते हुए राजा धृतराष्ट्र ने चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा—

पुत्र, गुलाब केतकी कस्तूरी किसी से चिचौरियां करने नही जाती कि तुम हमे सुगन्धित रूप में बखानो। पारखी स्वयं उनकी सुगन्ध से आकर्षित होता है और प्रशसा करता है। त्यों पांडव धर्मात्मा हैं, गुणवान हैं, सबसे समान स्नेह रखते हैं। इसी कारण प्रजा भी उन्हे चाहती है। उनकी सहायता करने वालों की भी कमी नहीं है। और जब से तुमने द्यूत के द्वारा पांडवों से विरोध खड़ा किया है। तब से प्रजा तो क्या हमारे वंश के प्रतिष्ठित समस्त पुरुषों की भी दृष्टि से गिर गये हो। मुझे यह भय सताता रहता

है कि कही प्रजा विद्रोह न कर बैठे। हम लोक निन्दा और अपयश पात्र तो हो ही चुके है पर कही हस्तिनापुर से भी हाथ न धोना पड जाय। इस लिए अब भी समय है कि तुम पांडवों से प्रेम स्थापित कर लो। इसमे तुम्हे यश भी प्राप्त होगा और निश्चित रूप से आनन्द मंगल भी।

पिता के मुख से पाडवो की प्रशसा सुन कर दुर्योधन के हृदय में एक बार फिर टीस सी पैदा तो हुई। परन्तु अवसर की अनुकूलता नहीं थी। अतः जहर की सी घूट पीते हुए, अपने रचे हुए जाल में फसाने के लिए प्रत्यक्षतः स्वर मे कोमलता प्रदर्शित करते हुए बोला —

पिता जी मैं इस से नही घबराता कि कौन पाडवो का साथी है। और कितनी उनमे शक्ति है। हमारे भी मित्रो की कमी नही मुझे अपनी शक्ति का पूर्ण विश्वास है। मैं जब चाहे पाडवो को सदा की नीद सुला सकता हू। परन्तु मुझे दुख तो इस बात का है कि मैं जैसे २ पाडवों को चाहता हू वे त्यों त्यों प्रजाजनों मे अधिक सन्मान के पात्र बनते जाते हैं। और हमे प्रतिष्ठा के स्थान पर अपयशकाभागी बनना पडता है। इस लिये कोई ऐसी युक्ति सुझाइये कि जिस से हमे भी ससार आदर की दृष्टि से देखने लगे और आप का सर्वत्र जय जयकार होवे।

बेटा तुम ने आज मेरे हृदय को अमृत में सीच दिया। भगवान तुम्हे सदा ही सबुद्धि देवे। पुत्र स्मरण रक्खो, यश रूपी वैभव से जो सम्पन्न है वह तीनो काल मे सुखी और अजर अमर है और अपयशभागी त्रैलोक्येश्वर होकर भी दीनहीन और मृत प्राय होता है। अतः सर्वदा वह कार्य करो जिस से तुम्हारे यश की वृद्धि हो। दूसरे को बढाने से ही मनुष्य वृद्धि पाता है। जितना किसी को सुख प्रदान करोगे उतनी ही तुम्हारी वृद्धि होगी। यश प्राप्ति होगी। जितना किसी को सताओगे, रुलाओगे, गिराओगे, उतना ही तुम्हे भी कष्ट उठाना पड़ेगा, रोना पड़ेगा और ससार की दृष्टि से गिर जाओगे। इस लिए पुत्र यदि तुम यशस्वी

एवं सुखी बनना चाहते हो, तो सबसे प्रथम अपने भाई पांडवों के दुखों का निराकरण करो कि जिनको तुमने राजराजेश्वर की गद्दी से दीनहीन भिक्षुकों की सी दयनीय स्थिति में ला पटका है यदि तुम उन्हें सुख सुविधाएं प्रदान करो, तो प्रजा तुम्हारा अवश्य अभिनन्दन करेगी। और वत्स, मैं तो यह समझता हूं कि यदि उनका राज्य तुम उन्हें समर्पण करदो, समस्त विसंवाद ही समाप्त हो जाये और ससार भर मे तुम्हारा जय जयकार गूंज उठे। प्रेम से दुलारते हुए अन्धे राजा ने दुर्योधन को सन्मार्ग पर लाने की चेष्टा की।

पिता जी आप का कथन धर्म नीति अनुमोदित है। सभी ग्रन्थ एव वृद्धजन यही कुछ समझते है परन्तु मैं तो राजनीतिज्ञों के इस कथन को प्राथमिकता प्रदान करता हू कि शत्रु एवं कांटों को जब भी समय मिले मसल डालना चाहिये। परन्तु देखता हूं कि इस पथ पर अग्रसर होते हुए प्रत्येक अवसर पर मुझे लांछित ही होना पड़ा है। अतः हृदय से न चाहते हुए भी, मात्र आप की आज्ञा को शिरोधार्य कर, एक बार इस शिक्षा की भी परीक्षा करके देख लेता हूं। यदि इसमें कुछ हृदय को समाधान एव लोक में सफलता प्राप्त हुई, तो फिर जैसे भी आप की आज्ञा होगी उसे बिना ननुनच के स्वीकार करता रहूंगा। परन्तु वर्तमान मे मुझे यह उचित नही जचता कि मैं पांडवों को सहसा राज्य प्रदान कर दू। दुर्योधन ने कहा।

हां, दुर्योधन तुम्हारा कथन सोलह आने सत्य है। यदि इस समय पांडवो को राज्य लौटाया गया तो लोग समझेंगे कि दुर्योधन पाडवो से डर गया है। दूसरे इस समय वे लोग अपने किये का भोग रहे हैं। जो उन्होने महाराज का अपमान किया था अब उसका उनको स्वाद मिल रहा है। गर्मी-सर्दी भूख प्यास आदि से व्याकुल होते हुए अवश्य ही तुम्हारे ऊपर दांत पीसते होंगे। यदि ऐसे समय राज्य की बागडोर उनके हाथों समर्पण कर दी तो वह हाथ धो कर तुम्हारे पीछे पड़ेंगे। आश्चर्य नहीं उस समय हमें ही राज्य से हाथ न धोने पड़ जायें। इस लिये भले बनने की धुन में कहीं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी न मार बैठना। बात सम्भालते हुए

है कि कही प्रजा विद्रोह न कर बैठे। हम लोक निन्दा और अपयश पात्र तो हो ही चुके हैं पर कही हस्तिनापुर से भी हाथ न धोना पड़ जाय। इस लिए अब भी समय है कि तुम पाडवों से प्रेम स्थापित कर लो। इसमे तुम्हे यश भी प्राप्त होगा और निश्चित रूप से आनन्द मंगल भी।

पिता के मुख से पाडवों की प्रशसा सुन कर दुर्योधन के हृदय मे एक बार फिर टीस सी पैदा तो हुई। परन्तु अवसर की अनुकूलता नहीं थी। अतः जहर की सी घूट पीते हुए, अपने रचे हुए जाल मे फसाने के लिए प्रत्यक्षतः स्वर में कोमलता प्रदर्शित करते हुए बोला —

पिता जी मैं इस से नही घबराता कि कौन पाडवों का साथी है। और कितनी उनमे शक्ति है। हमारे भी मित्रों की कमी नही मुझे अपनी शक्ति का पूर्ण विश्वास है। मैं जब चाहे पाडवों को सदा की नीद सुला सकता हू। परन्तु मुझे दुख तो इस बात का है कि मैं जैसे २ पाडवों को चाहता हू वे त्यों त्यों प्रजाजनों मे अधिक सन्मान के पात्र बनते जाते हैं। और हमे प्रतिष्ठा के स्थान पर अपयशकाभागी बनना पडता है। इस लिये कोई ऐसी युक्ति सुझाइये कि जिस से हमे भी ससार आदर की दृष्टि से देखने लगे और आप का सर्वत्र जय जयकार होवे।

बेटा तुम ने आज मेरे हृदय को अमृत से सीच दिया। भगवान तुम्हे सदा ही सबुद्धि देवे। पुत्र स्मरण रक्खो, यश रूपी वैभव से जो सम्पन्न है वह तीनो काल मे सुखी और अजर अमर है और अपयशभागी त्रैलोक्येश्वर होकर भी दीनहीन और मृत प्राय होता है। अतः सर्वदा वह कार्य करो जिस से तुम्हारे यश की वृद्धि हो। दूसरे को बढाने से ही मनुष्य बृद्धि पाता है। जितना किसी को सुख प्रदान करोगे उतनी ही तुम्हारी वृद्धि होगी। यश प्राप्ति होगी! जितना किसी को सताओगे, रुलाओगे, गिराओगे, उतना ही तुम्हे भी कष्ट उठाना पड़ेगा, रोना पड़ेगा और ससार की दृष्टि मे गिर जाओगे। इस लिए पुत्र यदि तुम यशस्वी

एवं सुखी बनना चाहते हो, तो सबसे प्रथम अपने भाई पांडवों के दुखों का निराकरण करो कि जिनको तुमने राजराजेश्वर की गद्दी से दीनहीन भिक्षुकों की सी दयनीय स्थिति में ला पटका है यदि तुम उन्हें सुख सुविधाएं प्रदान करो, तो प्रजा तुम्हारा अवश्य अभिनन्दन करेगी। और वत्स, मैं तो यह समझता हूं कि यदि उनका राज्य तुम उन्हें समर्पण करदो, समस्त विसंवाद ही समाप्त हो जाये और संसार भर में तुम्हारा जय जयकार गूंज उठे। प्रेम से दुलारते हुए अन्धे राजा ने दुर्योधन को सन्मार्ग पर लाने की चेष्टा की।

पिता जी आप का कथन धर्म नीति अनुमोदित है। सभी अन्य एवं वृद्धजन यही कुछ समझाते हैं परन्तु मैं तो राजनीतिज्ञों के इस कथन को प्राथमिकता प्रदान करता हूं कि शत्रु एवं कांटों को जब भी समय मिले मसल डालना चाहिये। परन्तु देखता हूं कि इस पथ पर अग्रसर होते हुए प्रत्येक अवसर पर मुझे लाञ्छित ही होना पड़ा है। अतः हृदय से न चाहते हुए भी, मात्र आप की आज्ञा को शिरोधार्य कर, एक बार इस शिक्षा की भी परीक्षा करके देख लेता हूं। यदि इसमें कुछ हृदय को समाधान एवं लोक में सफलता प्राप्त हुई, तो फिर जैसे भी आप की आज्ञा होगी उसे बिना ननुनच के स्वीकार करता रहूंगा। परन्तु वर्तमान में मुझे यह उचित नहीं जचता कि मैं पांडवों को सहसा राज्य प्रदान कर दूं। दुर्योधन ने कहा।

हां, दुर्योधन तुम्हारा कथन सोलह आने सत्य है। यदि इस समय पांडवों को राज्य लौटाया गया तो लोग समझेंगे कि दुर्योधन पांडवों से डर गया है। दूसरे इस समय वे लोग अपने किये का भोग रहे हैं। जो उन्होंने महाराज का अपमान किया था अब उसका उनको स्वाद मिल रहा है। गर्मी सर्दी भूख प्यास आदि से व्याकुल होते हुए अवश्य ही तुम्हारे ऊपर दांत पीसते होंगे। यदि ऐसे समय राज्य की बागडोर उनके हाथों समर्पण कर दी तो वह हाथ धो कर तुम्हारे पीछे पड़ेंगे। आश्चर्य नहीं उस समय हमें ही राज्य से हाथ न धोने पड़ जायें। इस लिये भले बनने की धुन में कहीं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी न मार बैठना। बात सम्भालते हुए

शकुनि ने कहा—

यही तो दुविधा है। एक तरफ तो पिता जी की प्रतिष्ठा को स्थापित करने का महाप्रश्न है दूसरी तरफ कुए से बचते हुए खाई में गिरने का पूरा भय है। दुःशासन ने रंग जमाया। यह सब ठीक है। परन्तु मैंने निर्णय कर लिया है कि एक बार पिता जी के सुझाये हुए पथ पर भी चल कर परीक्षा करूंगा कि क्या परिणाम निकलता है। आज्ञाकारिता का नाटय करते हुए दुर्योधन ने कहना आरम्भ किया— परन्तु आपहितैषियों की चेतावनी को भी झुठला नहीं सकता। इस लिए मेरे तो विचार में यही जंचता है कि पांडवों को वनवास से तो बुलवा लिया जाये और अपने आस-पास के किसी छोटे नगर मे उनके निवास का, खान पान आदि सुविधाओं का भी प्रबन्ध कर दिया जाये। और देखा जाय कि हमारे इस कदम का प्रजा पर और पांडवों पर क्या प्रभाव पड़ता है।

ठीक है ठीक, कर्ण ने कहना शुरु किया- इससे एक तो उन की गति विधि पर भी नियंत्रण रखा जा सकेगा दूसरे हो सकता है कि आपके सद्व्यवहार से पांडव हृदय से आप को स्नेह करने लग जायें और हमारे महाराजा की इच्छा भी पूर्ण हो जाये।

मेरे विचार में इस कार्य के लिए वारणावत का चुनाव अच्छा रहेगा। यहां से उन पर निगाह भी आसानी से रखी जा सकेगी और वहां कोई विशेष सहायक भी उन्हें नही मिल सकेगा। हां, यह भी उचित है। यदि पिता जी आज्ञा दें तो वहां एक आवतगृह बनवाये देता हूं जिस में वे लोग राज्य कर्मचारियों से पृथक के पृथक आराम से रह सकें। यदि उन्होंने भाई चारे का सबूत दिया तो वनवास की अवधि के पूर्ण हो जाने के पश्चात् राज्य लौटाने का कार्य-क्रम भी बनाया जा सकेगा। दुर्योधन ने कहा—

धृतराष्ट्र जो दत्तचित्त हो इनकी बात-चीत के उतार चढाव को जांच रहे थे, बोले— पुत्र, मैं तो यही चाहता हूं कि इस परीक्षा के चक्कर मे न पड़ कर सरलता पूर्वक पांडवों का राज्य उनके समर्पण करदो। वे धर्मात्मा एवं कृतज्ञ हैं। कभी स्वप्नों में भी

तुम्हारे अहित को नही सोचेंगे।

नही, नहीं पिता जी आप भूलते हैं। मैंने धर्म नीति का परीक्षण करने का निर्णय किया है इसका अभिप्राय यह नहीं कि हम राजनीति को ताक पर ही रख दें। हमें फूक २ कर इस पथ पर कदम रखना होगा। उस समय आप तो सिर्फ इतनी ही आज्ञा दीजिये कि जल्दी से जल्दी एक आवास गृह वारणावत में बनवा दूं और तब आप पांडवो को जैसे भी उचित समझें वैसे उसमें निवास करने के लिये बुलवा भेजिये। बस।

पुत्र, पाप का फल सदा बुरा होता है। राज्य के प्रलोभन में कोई ऐसा कार्य न कर बैठना जिससे तुम्हें नरकों के दुख भोगने पड़ें। और यह संसार भी तुम्हारे लिये नरक बन जाये। धृतराष्ट्र अभी तक दुर्योधन की तरफ से सशंकित थे। परन्तु उनमें उसे ललकारने की शक्ति नही थी।

पिता जी, विश्वास रखिये, ऐसी कोई बात मैं करने वाला नही हूं कि जिसमें आपको किसी प्रकार का कष्ट उठाना पड़े। दुर्योधन ने आश्वासन देना प्रारम्भ किया और अपने कार्य मे पूर्ण सहायता का वचन ले कर खुशी २ यह मडली अपने महल आई और पूर्व निश्चयानुसार कार्य मे दत्तचित्त हो कर जुट गई।

× + × × ×

दुर्योधन ने अपने कुचक्र संभालन के लिए मुह मांगा धन प्रदान कर अपने पुरोहित पुरोचन को, जिसे कि पाडव भी श्रद्धा एव विश्वास की दृष्टि से देखते थे, अपना अभिन्न हृदय बना लिया था। उसी की देख रेख में वारणावत मे लाख, ओम आदि तुरन्त अग्निग्राह्य पदार्थों के सम्मिश्रण से एक महल का निर्माण कराना प्रारम्भ किया, और धृतराष्ट्र का सन्देश लिखवा कर सदल बल युधिष्ठिर के पास वन मे भेज दिया। जहां पर उसने येन केन प्रकारेण पाडवो को वारणावत मे निवास करने के लिये और अपने साथ चलने के लिए तैयार कर धूम धाम से प्रवेश कराने के लिए वारणावत में कार्य कर रहे राजकीय कर्मचारियों एव निवासियो को आगमन

की तिथि का समाचार भेज दिया।

× × × × × × ×

जहां एक तरफ दुर्योधन पांडवों के विनाश का कुचक्र रच रहा था वहां दूसरी तरफ धर्मात्मा विदुर भी शान्त न बैठे थे। धृतराष्ट्र के द्वारा पांडवों को वारणावत निवास कराने आदि का समस्त समाचार उन्हें ज्ञात हो चुका था। और दुर्योधन यह सब सदाशयता से कर रहा होगा यह उनका हृदय मानने के लिए तैयार न था। अतः चतुर दूतों को वारणावत भेज कर महल में प्रयुक्त की जा रही विशेष सामग्री आदि के द्वारा वह वास्तविकता को समझ चुके थे। अतः वारणावत में इस महल में ठहराने का दुर्योधन का क्या आशय है, और कैसे उससे अपनी रक्षा करनी चाहिये इत्यादि समस्त बातें उन्होने सांकेतिक भाषा में लिख कर अपने विश्वस्त पुरुष को युधिष्ठिर के पास वारणावत में देने के लिए प्रेषित कर दिया।

* एकादस परिच्छेद *

वारणावत के लोगों ने जब पाण्डवों के आगमन का समाचार सुना वे बड़े प्रसन्न हुए। और उनके स्वागत की तैयारियां ज़ोर शोर से होने लगी। सभी लोग पाण्डवों के गुणों से परिचित थे, अतः वे उनका स्वागत करना अपना कर्तव्य समझते थे।

जब पाण्डवों ने वारणावत में प्रवेश किया, सहस्रों नर नारी उनके ऊपर पुष्पों की वर्षा और जय जयकार करने लगे।

युधिष्ठिर और सती द्रौपदी के प्रति बहुत श्रद्धा दर्शाई गई। सारा नगर सजा हुआ था।

वारणावत के नागरिकों की ओर से किए गए अभूत पूर्व स्वागत से पाडवों का मन भी खिल उठा।

लाख का महल अभी तैयार नहीं हुआ था अतएव पुरोचन ने उन्हें दूसरे स्थान पर ठहराया। इसी समय विदुर द्वारा प्रेरित समाचार युधिष्ठिर को मिला, जिसे जानकर वे आश्चर्यचकित रह गये और भविष्य के चौकन्ने बन गये। कुछ दिनों पश्चात महल तैयार हो जाने पर पुरोचन बड़े आदर पूर्वक उन्हें महल में ले गया।

महल की सुन्दरता को देख कर सभी प्रसन्न हुए।

भीमसेन ने कहा— "भ्राता जी ! महल बड़ा सुन्दर है। दुर्योधन ने वास्तव में हमारे लिए कितना अनुपम महल बनवाया है। लगता है अब उनके मन में भ्रातृ स्नेह जागृत हो गया है।"

नकुल ने आगे बढ़ कर दीवार के प्लास्तर को स्पर्श करके प्रसन्न हो कर कहा— "और इसमें मिट्टी कितनी चिकनी लगी है। पता नहीं चलता कि यह दर्पण है या चिकनी मिट्टी।"

उसी समय युधिष्ठिर बोल उठे—"पर है यह सारी धोखे की टट्टी।"

सहदेव ने आश्चर्य चकित होकर कहा—"भ्राता जी ! आप तो कभी ऐसी बातें कह जाते है कि आश्चर्य होता है। इतना बहुमूल्य सुन्दर महल है और आप कहते हैं इसे धोखे की टट्टी।"

अर्जुन बोल उठे—"कई लाख की लागत से तैयार हुआ होगा। वाह रे पुरोचन, जी चाहता उसकी कला की प्रशंसा किए जाऊं।"

"हां, यह लाख का ही बना है। युधिष्ठिर बोले शिकारी ने शिकार करने के लिए नयनाभिराम व चित्ताकर्षक जाल बिछाया है।"

चारो भाई युधिष्ठिर का मुह ताकने लगे। भीम बोल पडा—"क्या कहते हैं भ्राता जी ! इस मे लाख की ही लागत है, यह तो कई लाख का है।"

"हा हा, है लाख का ही।"

द्रौपदी भी युधिष्ठिर के शब्दों पर चकित थी। उस ने कहा—"इतना सुन्दर महल है कि सभी इस की प्रशसा कर रहे है और महाराज बता रहे है इसे जाल ? बात क्या है ?"

भीम आग्रह करने लगा युधिष्ठिर से उनकी बात जानने का। तब युधिष्ठिर बोले—यद्यपि मुझे यह ज्ञात हो गया है कि

यह स्थान खतरनाक है। यह शीघ्र आग पकडने वाली वस्तुओं को विशेषतया, लाख को मिट्टी में मिलाकर बनाया गया है. फिर भी हमे इस रहस्य को अपने मन में छुपाकर रखना चाहिए। विचलित नहीं होना चाहिए । पुरोचन को भी यह ज्ञान न हो कि हमें महल का भेद ज्ञात हो गया है। विदुर चाचा ने यहां पहुंचने के समय ही मुझे महल का रहस्य सांकेतिक भाषा में बता दिया है । परन्तु अभी शीघ्रता में हम से कोई ऐसी बात न करे जिस से पुरोचन को तनिक सा भी सन्देह हो जाय।"

युधिष्ठिर की इस सलाह को सभी ने मान लिया और उसी लाख के भवन में रहने लगे। इतने मे विदुर जी का भेजा हुआ सुरंग बनाने वाला एक कारीगर वारणावत नगर में आ पहुंचा। उस ने एक दिन पाण्डवों को एकान्त में पाकर के अपना परिचय देते हुए कहा—"आप लोगों की भलाई के लिए हस्तिनापुर से अपने इनके द्वारा विदुर ने युधिष्ठिर को सांकेतिक भाषा में जो उपदेश दिया है उसको मैं जानता हूं। यही मेरे सच्चा होने का प्रमाण है। आप मुझ पर भरोसा रक्खें । मैं आपकी रक्षा का प्रबन्ध करने के लिए ही यहां आया हूं।"

इसके पश्चात वह कारीगर महल में पहुंच गया और गुप्त रूप से कुछ दिनों मे ही उस ने एक सुरंग बना दी। इस के रास्ते पाण्डव महल के अन्दर से नीचे ही नीचे महल की चहार दीवारी और गहरी खाई को लाघ कर और बच कर बेखटके बाहर निकल सकते थे। यह काम इतने गुप्त रूप से हुआ कि पुरोचन को अन्त तक इस बात की खबर न होने पाई।

पुरोचन ने लाख के भवन के द्वार पर ही अपने रहने के लिए स्थान बनवा लिया था। इस कारण पाण्डवों को सारी रात हथियार लिये चौकन्ना रहना पड़ता था। कभी कभी वे सैर करने के बहाने आसपास के वनों में घूम कर आते और वन के रास्तों को अच्छी प्रकार देख लेते। इस प्रकार पड़ोस के प्रदेश और जगली रास्तो का उन्होंने खासा परिचय प्राप्त कर लिया

वे पुरोचन से ऐसे हिलहिलकर व्यवहार करते जैसे उस पर कोई सन्देह ही नही है, बल्कि वह उनका अपना व्यक्ति है। सदा हसते खेलते रहते। उनके व्यवहार को देख कर किसी को तनिक सा भी सन्देह नहीं हो सकता था कि उन के मन में किसी प्रकार की शका, अथवा चिन्ता है।

उधर पुरोचन भी कोई शीघ्रता नही करना चाहता था उस ने सोचा कि ऐसे अवसर पर, इस ढग से भवन को आग लगाई जाये कि कोई उसे दोषी न ठहरा सके। दोनों ही पक्ष अपने अपने दाव खेल रहे थे। इसी प्रकार दिन बीतते रहे।

एक दिन पुरोचन ने सोचा कि अब पाण्डवों का काम तमाम करने का समय आगया. पाण्डवों को मुझ पर पूर्ण विश्वास है। महल को बने महीने बीत गए। इस समय आग लगाने पर कोई भला क्या सन्देह कर सकेगा? बुद्धिमान युधिष्ठिर उस के रग ढग से ताड़ गए कि वह अब क्या सोच रहा है। उन्होंने अपने भाइयों से कहा—पुरोचन ने अब हमे जलाकर मार डालने का निश्चय कर लिया मालूम होता है। यही समय है कि हमे भी अब यहा से भाग नि लना चाहिए।"

युधिष्ठिर के परामर्श से द्रौपदी ने उस रात को एक बड़े भोज का प्रबन्ध किया। नगर के सभी लोगों को भोजन कराया गया। बड़ी धूम धाम रही मानो कोई उत्सव हो। खूब खा पी कर भवन के सभी कर्मचारी सो गए। पुरोचन ने भी छक कर खाया था वह भी शैय्या पर पड़ते ही खर्राटे भरने लगा।

आधी रात के समय भीम सेन ने भवन में कई जगह आग लगादी और फिर पाचों भाई सती द्रौपदी के साथ सुरग के रास्ते अधेरे मे रास्ता टटोलते हुए बाहर निकल आये। वे भवन से बाहर निकले ही थे कि अग्नि ने सारे भवन को अपनी लपेट में ले लिया। पुरोचन के रहने के मकान मे भी आग लग गई।

आग की लपटें आकाश की ओर उठ रही थी, ऐसा मालूम होता था कि आकाश को छूलेंगी। लपटों का प्रकाश सारे नगर

पर छा गया। निद्रामग्न लोग जाग उठे। सारे नगर में खलबली मच गई। लोग तुरन्त महल की ओर भागे। पर जब तक कोई वहां पहुचे, तो आग सारे महल में लग चुकी थी, भवन का काफी भाग भस्म हो चुका था। हतप्रभ लोग हाहाकार करने लगे। रुई की भांति जलते भवन को देख कर लोग समझ गए कि महल किसी शीघ्र आग पकड़ने वाली वस्तु का बना है। वे उसे दुर्योधन का षड्यन्त्र समझने लगे और सभी कौरवों के अन्याय की आलोचना करने लगे। सभी समझ रहे थे कि पाण्डव इसी भवन मे भस्म हो गए। यह सोच कर उनकी छाती फटने सी लगी, सभी के नेत्रों से अश्रु और क्रोध की चिनगारियां निकल रही थी।

कोई कहता—"पाण्डवों की हत्या करने के लिए ही पापी कौरवों ने यह षड्यन्त्र रचा था।"

दूसरा कहता—"हम भी सोच रहे थे कि आखिर पाण्डवों के लिए कुछ दिन रहने के हेतु इतना विशाल भवन क्यों बनाया जा रहा है। लो यह षड्यन्त्र था इस भवन की पृष्ठ भूमि में।"

तो कोई कहता— 'पाण्डवो के शत्रुओं ने ऐसा अन्याय किया है, जिसका उदाहरण कही भी नहीं मिलता।"

इसी प्रकार क्षुब्ध जनता अनाप शनाप कहती रही। जो जिसके मन मे आया क्रोध वश वही कहता। चारो ओर हाहाकार हो रहा था। लोगो के देखते देखते सारा भवन जल कर खाक हो गया। पुरोचन का मकान और स्वय पुरोचन भी आग की भेंट हो गया।

पाण्डवों की मृत्यु का भ्रम होने से सारा नगर विह्वल हो गया। सारे नगर में लोग पाण्डवो के गुणो को याद कर कर के रोते रहे। लोगों ने तुरन्त ही हस्तिनापुर मे खबर पहुंचा दी कि पाण्डव जिस भवन में रहते थे, वह जल कर राख हो गया और महल का कोई भी व्यक्ति जीता नही बचा।

यह समाचार सुनकर वृद्ध धृतराष्ट्र को शोक तो हुआ पर मन ही मन उन्हे आनन्द भी हो रहा था कि उन के बेटों के शत्रु समाप्त हुए और झगडा समाप्त होगया। ग्रीष्म ऋतु में जैसे गहरे तालाब का पानी सतह पर गरम किन्तु गहराई में ठण्डा रहता है, ठीक उसी तरह धृतराष्ट्र के हृदय में शोक भी था और आनन्द भी। धृतराष्ट्र और उनके बेटों ने पाण्डवों की मृत्यु का वडा शोक मनाया। सब आभूषण और सुन्दर वस्त्र उतार दिए और एक एक मामूली कपडा पहन कर पाण्डवो तथा द्रौपदी को जलांजलि दी। फिर सब मिल कर बड़े जोर जोर से रोने और विलाप करने लगे। उनका यह शोक प्रदर्शन अपने षड़यन्त्र पर परदा डालने और लोगों की शकाओ को निर्मूल सिद्ध करने के लिए था।

सारा हस्तिनापुर रो रहा था, परन्तु दार्शनिक विदुर ने यह कह कर कि जीना मरना तो प्रारब्ध की बात होती है, इस में किसी का क्या चारा ? अधिक शोक न दर्शाया। उन्हे मन ही मन मे यह विश्वास था कि पाण्डव अवश्य ही बच निकले होंगे। अतः दूसरों के सामने तो वे भी कुछ रोये पर मन ही मन यह अनुमान लगाते रहे कि पांडव किस रास्ते से किस ओर गए होगे और इस समय कहाँ पहुचे होंगे ? इत्यादि पितामह भीष्म तो मानो शोक के सागर मे डूब गए थे। परन्तु अन्त मे उन्हे भी विदुर जी ने समझाया और पाण्डवों की रक्षा के लिए उनके द्वारा किए गए प्रबन्धों का वृत्तांत बता कर उन्हे चिन्ता मुक्त किया।

× × × × × × ×

लाख के महल को जलता छोड कर सुरंग के द्वारा निकल कर द्रौपदी सहित पाण्डव जगल में पहुचे। बनों के बीहड़ रास्ते को रातो रात तय करते रहे। प्रातः होने तक वह चलते रहे और बीहड़ पथ पर पैदल चलते चलते थक गए। द्रौपदी तो बुरी तरह थक कर चूर हो गई थी। उस के लिए एक भी पग उठाना दूभर हो रहा था, अतः वह यह कह कर भूमि पर गिर पड़ी और बोली कि मुझे आत्म शान्ति है पर मुझ से नही चला जाता, मैं तो

यही पड़ी रहूंगी।"

समस्त पाण्डव भी प्यास मे व्याकुल थे अतः भीम के अतिरिक्त सभी बैठ गए भीम जलाशय की खोज मे गया। एक स्थान पर टक्करें खाकर उसे जलाशय मिल गया। उसने कमल के पत्तों मे पानी भर लिया और जल मे अपना दुपट्टा भिगो लिया और लाकर चारो भाइयों तथा द्रौपदी को पानी पिला कर सचेत किया। फिर भीम ने ढारस बंधाई। प्रोत्साहन दिया और सती को कंधे पर उठा लिया। चारो भाई साथ हो लिए। भीम उन्मत्त हाथी की भांति आगे आगे रास्ता साफ़ करता चला, अन्य भाई पीछे पीछे चलते रहे।

गंगा तट पर पहुंच गए। एक नाव के द्वारा उन्होंने गंगा पार की और फिर चलने लगे। कभी कभी किसी भाई के थक जाने पर भीम उसे भी उठा लेता और झूमता झामता चलता रहता। चलते चलते रात्रि हो गई सभी भाई और द्रौपदी थक कर सो गए, पर भीम उस बीहड़ वन मे अकेला ही जागता रहा। हिंसक पशुओं की भयानक आवाजें आ रही थी, पर भीम निश्चिंत हो कर बैठा था, वह समस्त वृक्षो व पक्षियो को देख कर मन में सोचता—"वन के यह वृक्ष, और पक्षी एक दूसरे की रक्षा करते हुए कैसे मौज से रह रहे हैं, पर धृतराष्ट्र और दुर्योधन मानव होते हुए भी शांति पूर्वक प्रेम भाव से नही रह सकते। उनसे तो यह वृक्ष और पक्षी ही भले।"

प्रातः हुई फिर वे चल पडे।

पांचो भाई और द्रौपदी अनेक विघ्न बाधाओं को झेलते हुए रास्ते पर बढते रहे। वे कभी द्रौपदी को उठा कर चलते, कभी धीरे धीरे बढते। कभी विश्राम करने लगते और कभी आपस में होड लगा कर रास्ता नापते। भूख प्यास से व्याकुल पाण्डव आगे बढते ही गए।

रास्ते मे उन्हे एक कर्म सिद्धान्त का ज्ञाता मिला और उनकी परस्पर बातें हुई। पाण्डवों को इस प्रकार वनो में भटकते हुए देखकर उस निश्चय व्यवहार के ज्ञाता ने उन से पूछा कि 'महलों

मे वास करने वाले इस प्रकार निर्धनों और निस्सहायों की भांति कहा जा रहे हैं ?"

उत्तर मे युधिष्ठिर ने अपनी समस्त बिपदाएं कह सुनाईं। द्रौपदी रोने लगी और उसने कौरवों के अन्याय की शिकायत की। तब सिद्धान्तज्ञाता बोले—ससार में प्रत्येक व्यक्ति पाप भी करता है, धर्म भी, जो पाप नही करता वह निवृति मार्गी है। लक्ष्मी, सम्पत्ति और राज्य के लिए लोग नीच से नीच कार्य भी कर डालते हैं, पर संसार मे पुण्य पाप का चक्र चलता रहता है, जो सुख भोगते है वह अपने पुण्य से। आप का जितना पुण्य है उतना ही सुख आप को मिलेगा। न ससार मे कोई किसी को सुख देता है न दुख, यह मनुष्य के अपने कर्म है जिनका फल सुख या दुख के रूप मे मिलता है। बाकी सब निमत मात्र बन जाता है। आप जो भोग रहे हैं वह आप के पूर्व कर्मों का फल है, जो भोगना ही होगा। ऐसा ही सर्वज्ञ देव का सिद्धान्त कहता है। दुख के समय आप को विचलित नही होना चाहिए और किसी के अन्याय से पथ विमुख भी नही होना चाहिए।"

सिद्ध पुरुष के उपदेश से द्रौपदी को बहुत सान्त्वना मिली। और अपनी विपदाओ तथा दुर्योधन के अन्याय पूर्ण व्यवहार को अपने तथा पाण्डवों के पूर्व जन्मों के कर्मों का फल समझकर वह अपने भाग्य को तदबीर से बदलने के लिए पाण्डवों के साथ पुन. चल पडी।

आगे जाकर जब बन समाप्त होने को था, पाण्डव भ्राताओं ने आपस में विचार विमर्श किया कि भावी कार्य क्रम क्या हो ? युधिष्ठिर बोले—"अच्छा हो कि हम अभी कुछ दिनो दुर्योधन की आँखों से ओझल रहे। उसे इसी हर्ष में फूलता छोड दे कि हम सब अग्नि की भेट हो गए है। इस के लिए यह आवश्यक है कि हम अपना वेष बदल कर घूमे।"

अर्जुन ने युधिष्ठिर की बात का समर्थन किया और सभी ने एक मन होकर निश्चय किया कि वे गुप्त वेष धारण कर लें। अतएव उन्हो ने राजकुमारो के वस्त्र उतार डाले और साधारण वस्त्र पहन लिए। पथ कर वेषधारी पाण्डव वन से निकल कर वस्ती की ओर चले।

* द्वादस परिच्छेद *
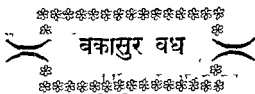
द्रौपदी के साथ पांचों पाण्डव एक चक्री नगर में पहुंचे। वे एक ब्राह्मण के घर ठहर गए और भिक्षा माग कर अपनी गुज़र करने लगे। कहते हैं भिक्षा से जो मिलता, उस मे से आधा भीम को दे देते और शेष मे चारो भ्राता तथा द्रौपदी गुज़र करते। क्यों, कि भीम सेन मे जितनी अमानुषिक शक्ति थी उतनी ही अमानुषिक भूख भी थी। यही कारण था, कि लोग उसे वृकोदर भी कहते थे। वृकोदर का अर्थ है भेडिये के से उदर वाला। भेडिये का पेट छोटा सा प्रतीत होने पर भी मुश्किल से ही भरता है। भीम सेन के पेट की भी यही दशा थी। भिक्षा से जो मिलता था उस मे से आधा उसे मिलने पर भी उस से उसका पेट न भरता, उसे सन्तोष न होता। हमेशा ही भूखा रहने के कारण वह दुबला होता जा रहा था। भीम सेन का यह दशा देख कर द्रौपदी और युधिष्ठिर बडे चिन्तित रहने लगे।

जब थोडे मे अन्न से भीम की पूर्ति न होती और वह बुरी तरह परेशान रहने लगा तो उस ने एक कुम्हार से मित्रता कर ली और उसे मिट्टी खोदने आदि में सहायता देकर प्रसन्न कर लिया। कुम्हार उस से बहुत प्रसन्न था उसने एक बडी हाण्डी बना कर उसे दी। भीम जब हांडी को लेकर भिक्षा लेने जाता तो उसके

भीम-काय शरीर और विलक्षण हाडी को देख कर बालक हंसते-हंसते लोट पोट हो जाते।

जब कभी पाण्डवों को भिक्षा लेकर घर लौटने में देरी हो जाती तो सती द्रौपदी बुरी तरह अशंकाओं से पीड़ित हो जाती। बड़ी चिन्ता से उनकी बाट जोहती रहती। वह बेचैनी में सोचने लगती कि कहीं दुर्योधन के दूतों ने उन्हें पहचान न लिया हो, कहीं कोई विपदा न खड़ी हो गई हो।

एक दिन चारों भाई भिक्षा के लिए गए, अकेला भीम सेन घर पर रहा। इतने में ब्राह्मण के घर के भीतर से बिलख बिलख कर रोने की आवाज आई। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो कोई बहुत ही शोक प्रद घटना घट गई हो। भीम का जी भर आया। वह इसका कारण जानने के लिये घर के भीतर गया। अन्दर जा कर देखा कि ब्राह्मण और उसकी पत्नी आंखों में आंसू भरे सिसकियां लेते हुए एक दूसरे से बातें कर रहे हैं।

ब्राह्मण बड़े दुखी हृदय से अपनी पत्नी से कह रहा था— "अभागिनी! कितनी ही बार मैंने तुझे समझाया कि इस अन्धेर नगरी को छोड़ कर कहीं और चले जायें, पर तुम ने न माना। कहती रही कि इसी नगर में पैदा हुई, यहीं पली तो यहीं रहूंगी। मां बाप तथा भाई बहनों का स्वर्ग वास हो जाने पर भी तू यही हठ करती रही कि यह मेरे बाप दादे का नगर है, यहीं रहूंगी। मैंने बहुत समझाया पर तेरी समझ में एक न आई। अब बोलो क्या कहती हो?"

ब्राह्मण की पत्नी अपनी भूल पर पश्चाताप करती हुई बोली—'मुझे क्या पता था कि यह दिन हमें भी देखना पड़ेगा। अपनी मातृ भूमि से किसे प्रेम नहीं होता? हां आज अवश्य पछताती हूं। सोचती हूं कहां चली गई थी तब मेरी बुद्धि। आज सिर पर आ बनी तो हाथ मलती हूं। .. ... पर अब क्या किया जाय। बस यही कर सकती हूं कि मेरी ही हठ से आज इस परिवार पर यह विपत्ति पड़ी, आज मुझे ही इसका दण्ड भोगने दें। आप बालकों को सम्भालें और मुझे जाने दें।"

ब्राह्मण द्रवित हो कर बोला—"तुम मेरी धर्म-कर्म की सगिनी हो, मेरी सन्तान की माँ हो और मेरी पत्नी हो। मैंने सदा ही तुम्हारे प्रेम की ऊष्णता से अपने सरद पडते विचारों तथा भावों को गरमी प्राप्त करी है। तुम ने जीवन के हर क्षण में मेरे साथ सच्चे मित्र की भाति मेरा साथ दिया है। तुम ने निर्धनता में भी मुस्कान का हाथ नही छोडा। मेरा जीवन सर्वस्व तुम्ही हो। तुम्हें मृत्यु के मुंह मे भेज कर मैं अकेले कैसे जीवित रह सकता हूं?"

"पिता जी! आप मुझे ही भेज दें। मैं ऐसे मुसीबत के समय आप के काम आ सकू और माता पिता के ऋण से मुक्त हो सकू तो अहोभाग्य!" ब्राह्मण की कन्या बोली।

ब्राह्मण अवरुद्ध कण्ठ से बोला—"हाय मैं अपनी बेटी की बलि कैसे चढा दूं? यह तो मेरे पास एक धरोहर है, जिसे सुयोग्य वर को व्याह देना मेरा कर्तव्य है। हमारे वश की बेल को चलाए रखने के लिए हमें जो कन्या मिली है, भला इसे मौत के मुह मे कैसे भेज सकता हू? यह तो घोर पाप होगा।"

पुत्र तुतला कर बोला—"पिता जी! तो मैं जाताहूं।"

'नही, नही मेरे लाल! मेरे कुल के तारे! यह कदापि नही हो सकता। ब्राह्मण कहने लगा और फिर अपनी पत्नी को सम्बोधित करके बोला—तुम ने मेरा कहना न माना, उसी का फल अब भुगतना पड रहा है। यदि मैं शरीर त्यागता हूं तो फिर इन अनाथ बालकों का पालन पोषण कौन करेगा? हा देव! अब मैं क्या करू? और कुछ करने से तो अच्छा यही है कि हम सब एक साथ मृत्यु को गले लगा लें। यही श्रेयस्कर होगा।"—कहते कहते ब्राह्मण सिसक सिसक कर रो पड़े।

ब्राह्मण की पत्नी अवरुद्ध कण्ठ से बोली—"प्राण नाथ! पति को पत्नी से जो कुछ प्राप्त होना चाहिए, वह मुझ से आप को प्राप्त होगया। पुरुष स्त्री के विवाह का उद्देश्य है वह पूर्ण हो गया। क्योंकि मेरे गर्भ से एक पुत्र तथा एक कन्या उत्पन्न हो

चुके है। मेरा कर्तव्य पूर्ण हुआ। अब मेरे न रहने पर भी आप इनका पालन-पोषण कर सकते है। परन्तु आप के बिना मुझ से यह सम्भव नही है। इसके अतिरिक्त दुष्टों से भरे इस ससार में अनाथ स्त्री का जीवन दूभर हो जाता है। जिस प्रकार मांस के टुकड़े को चील कौए उठा ले जाने की ताक में मण्डराते रहते हैं, उस प्रकार इस नगर मे दुष्ट पुरुष विधवा स्त्री को हड़प ले जाने के ताक मे लगे रहते हैं। जैसे घी लगे टुकडे पर कितने ही कुत्ते झपट पडते है उसी प्रकार किसी अनाथ स्त्री पर बदमाश लोग झपट पडते है। आप न रहे तो अपनी लाज की रक्षा और इन बाल बच्चों का लालन पालन कैसे मुझ से होगा ? आप के बिना यह बच्चे तड़प तड़प के जान दे देंगे। इस लिए नाथ मुझे ही उस नर भक्षक के पास जाने दीजिए। पति के जीते जी पत्नी का स्वर्गवास हो जाय इस से बढकर और स्त्री के सौभाग्य की बात क्या हो सकती है ? मै पतिव्रता नारी के समान आपकी सेवा-सुश्रुषा करती रही। अपने धर्म का पूर्णतया पालन किया, अब मुझे मरने में कोई दुख न होगा। अतः आप मुझे सहर्ष आज्ञा दे दीजिये कि अपने परिवार के लिए मै अपने प्राण दे दूं।"

पत्नी की व्यथा पूर्ण बातें सुन कर ब्राह्मण से न रहा गया। उसने अपनी पत्नी को छाती मे लगा लिया और असहाय सा हो कर दीन स्वर में अश्रुपात करने लगा। अपनी पत्नी को प्यार करते हुए बोला— प्रिये ! ऐसी बातें मत कहो। पति का कर्तव्य है कि वह अपनी पत्नी की रक्षा और उसके जीते जी उसका साथ न छोड़े, इस लिए मैं अपने प्राण बचा कर तुम्हें भेजू तो मुझ से बडा पापी कौन होगा ? नही, नही मैं यह घोर पाप नही कर सकता। मैं तुम्हारा वियोग सहन नही कर सकता।"

माता पिता की बाते सुन कर पुत्री ने दीनता पूर्वक कहा—

"पिता जी ! आप मेरी बातें भी तो सुनें, इस के पश्चात आपकी जो इच्छा हो सोचें। मुझे तो कभी न कभी इस परिवार से चले ही जाना है। अपने परिवार के काम में आ सकू तो इस से अच्छी मेरे लिए सदगति और क्या हो सकती है ? आप

चले गए तो हम बिलख बिलख कर उसी प्रकार मर जायेंगे जिस प्रकार सरिता के सूखने पर मछलियां । मेरा छोटा भाई मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा । मेरी मां पर न जाने कितनी विपत्तियों का पहाड टूट पड़े । मां मर गई तो बिना मां के हमारा जीवन दूभर हो जायेगा । अतः जिस प्रकार नाव द्वारा नदी को पार किया जाता है इसी प्रकार मुझे उस मनुष्य भक्षी के पास भेज कर आप विपत्ति से पार उतरें । इस से मेरा जीवन भी सार्थक हो जायेगा । और नहीं तो मेरी ही भलाई को दृष्टि मे रख कर आप मुझे भेज दे ।"

बेटी की बातें सुन कर माता पिता दोनों के आंसू उमड़ आये उन्होंने बेटी को अपने कलेजे से लगा लिया और बारम्बार उसका माथा चूम कर अश्रुपात करने लगे लडकी भी रो पड़ी । सबको इस प्रकार रोते देख कर ब्राह्मण का नन्हा सा बेटा अपनी बडी बड़ी आंखों मे माता पिता और बहन को देखते हुए उन्हे समझाने लगा और बारी बारी से उनके पास जाता और अपनी तोतली बोली में "रोओ मत, रोओ मत, मा रोओ मत, दीदी रोओ मत, पिता जी रोओ, मत" कह कर उन्हे चुप कराने लगा और फिर एक सूखी सी लकडी उठा कर बोला— "पिता जी आप मुझे जाने दें, मैं इस लकड़ी से ही उसको इस जोर से म र डालूगा ।" बालक की तोतली बोली और वीरता का अभिनय देख कर इस सकट पूर्ण घडी में भी सब को हसी आ गई । कुछ क्षण के लिए वे अपना दुख भूल गए ।

भीम खड़ा खड़ा यह सारा दृश्य देख रहा था, उस ने सभी की बातें सुन ली थी । ब्राह्मण परिवार को दुखित होते देख कर उसका मन भर आया । अपनी बात कहने का यह सुन्दर अवसर देख कर वह आगे बढ़ा और बोला— "हे ब्राह्मण देवता ! क्या आप कृपा करके मुझे बता सकते हैं कि आप को इस समय क्या दुख है । मुझ से बन पड़ा तो मैं आप को उस दुख से छुड़ाने का प्रयत्न अवश्य करूगा ।

"देव ! आप इस सम्बन्ध में भला क्या कर सकेंगे हताश हो कर ब्राह्मण बोला ।

"फिर भी बताने मे तो कोई दोष नही है ।" भीम ने आग्रह

किया ।

"हां, बताने मे क्या हर्ज है, ब्राह्मण ने कहना आरम्भ किया- सुनिये ! इस नगर के निकट ही एक गुफा मे एक मनुष्य भक्षी पिशाच रहता है । पिछले तेरह वर्ष से वह नगर वासियों पर भांति भांति के अत्याचार कर रहा है । इस नगर का राजा इतना निकम्मा है कि वह उसके अत्याचारो से नगर वासियो की रक्षा नही कर सकता । वह पिशाच पहले जहाँ किसी मनुष्य को पाता मार कर खा जाता था, क्या स्त्रियां, क्या बच्चे, क्या बूढ़े कोई भी उस के अत्याचार से न बच सके । इस हत्या काण्ड से घबरा कर नगर वासियों ने मिल कर उससे बड़ी अनुनय-विनय की कि कोई नियम बना ले । लोगो ने कहा— इस प्रकार मनमानी हत्या करना तुम्हारे भी हक में ठीक नही है । अन्न, दही, मदिरा आदि तरह तरह के खाने की वस्तुए जितनी तुम चाहो उतनी हांडियों में भर कर व बैल गाडियों में रख कर हम तुम्हारी गुफा में प्रति सप्ताह पहुंचा दिया करेंगे । गाड़ी हाकने वाले आदमी और बैल भी तुम्हारे खाने के लिए होंगे । इन को छोड़ कर अन्य किसी को तंग न करने की कृपा करो ।" बकासुर ने लोगों की यह बात मान ली और तब से इस समझौते के अनुसार यह नियम बना हुआ है कि लोग बारी बारी से एक एक आदमी और खाने पीने की वस्तुए प्रति सप्ताह उसके पास पहुंचा देते है । और इसके बदले मे यह बलशाली पिशाच बाहरी शत्रुओं और हिंस्र पशुओं से इस नगर की रक्षा करता है ।

"जिस किसी ने भी इस मुसीबत से इस नगर को बचाने का प्रयत्न किया, उसको तथा उसके बाल बच्चों को इस पिशाच ने तत्काल ही मार कर खा लिया । इस कारण किसी का साहस नही पडता कि कुछ करे । तात ! इस देश का राजा इतना कायर है कि उससे कुछ नही होता जिस देश का राजा अपनी जनता की रक्षा नही कर सकता, अच्छा है उस देश के नागरिकों के बच्चे ही न हो । अब हमारी व्यथा यह है कि इस सप्ताह मे उस नर पिशाच के खाने को आदमी और भोजन भेजने की हमारी बारी है । किसी गरीब आदमी को खरीद कर भेजना चाहूं तो इतना धन भी मेरे पास नही है, धनवाण तो ऐसा ही करते हैं । मैं इन बच्चों को छोड़

कर चला जाऊं या स्वयं बच कर पत्नी या बालकों में से किसी को भेजूं यह मुझ से नहीं हो सकता, अतएव अब तो मैंने यही निश्चय किया है कि हम सभी एक साथ उस पिशाच के पास चले जायेंगे।' यही हमारी व्यथा है, आप ने पूछी सो बता दी देव, भला आप इस संकट में हमारी क्या सहायता कर सकते हो। भीम ने यह सुन कर मुस्कराते हुए उत्तर दिया—प्रिय वर ! आप इस बात की चिन्ता छोड़ दें। तुम्हारे स्थान पर उस नर भक्षक बकासुर के पास आज भोजन ले कर मैं चला जाऊंगा।

भीम की बातें सुन कर ब्राह्मण चौंक पड़ा और बोला— "आप भी कैसी बात कहते हैं। आप हमारे अतिथि हैं। आपको मृत्यु के मुंह में भेजूं, यह कहां का न्याय है ? देव, मुझ से यह नहीं हो सकता।"

ब्राह्मण को समझाते हुए भीम बोला— द्विज वर ! घबराइये नहीं। मैं ऐसे मंत्र सीखा हुआ हूं कि जिसके बल से इस अत्याचारी पिशाच की एक न चलेगी. उसका भोजन बनने की बजाय उसे ही मार करके लौटूंगा। कई बलिष्ट पिशाचों व राक्षसों को इन हाथों से मारे जाते मेरे भाईयों ने स्वयं देखा है। इस लिए आप चिन्ता न करें। हां इस बात का ध्यान रक्खे कि इस बात की किसी को कानोंकान खबर न हो, क्योंकि यह बात फैल गई तो फिर मेरी विद्या अभी काम न देगी।"

भीम को डर था कि यह बात फैल गई तो दुर्योधन और उस के साथियों को पता चल जायेगा कि पाण्डव एक चक्रा नगरी मे छुपे हुए हैं। इसी लिए उसने इस बात को गुप्त रखने का आग्रह किया था। ब्राह्मण को जब विश्वास हो गया कि वास्तव मे इस के पास एक विचित्र विद्या है, जिसके बल से वह पिशाच को मार सकता हैं, और उसका बाल बांका भी न होगा, तो उसने भीम की बात मान ली। इस से ब्राह्मण परिवार की सारी व्यथा का अन्त हो गया और अपने अतिथियो के प्रति उन्हें बड़ी श्रद्धा हो गई।

भीम को जब निश्चय हो गया यह बकासुर के पास भोजन सामग्री ले कर जा सकता है तो वह फूला न समाया। उसके अंग

वन में विचरने को छोड़ गए। जब चारों भाई भिक्षा ले कर लौटे तो उन्होंने देखा कि भीमसेन के मुख पर असाधारण आनन्द की झलक है। युधिष्ठिर ने तत्काल ताड़ लिया कि भीमसेन को कोई बड़ा कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ है। उन्होंने पूछा—"आज भीमसेन बड़े प्रसन्न चित्त प्रतीत होते हो, क्या कारण है? क्या आज तुमने कोई भारी काम करने की ठानी है?

भीम ने उत्तर में सारी बात कह सुनाई। युधिष्ठिर ने सुन कर कहा—यह तुम कैसा दुस्साहस करने चले हो? तुम्हारे ही बलबूते पर तो हम निश्चिन्त रहते हैं। तुम्हारे अपार साहस से हम लाख के महल से जीवित यहाँ तक चले आये। तुम्हारे ही बल पर हम दुर्योधन से अपना राज्य छीनने की आशा लगाए बैठे हैं। ऐसे साहसी व बलिष्ट भाई को हम कैसे हाथों से गवा सकते हैं। गवाने की बात को खूब सूझी?

युधिष्ठिर की इन बातों के उत्तर में भीम बोला—"जिस ब्राह्मण के घर में हम इतने दिनों से आश्रय पाये हुए हैं। जिसके घर हम रहते हैं, जिसने सदा ही हम से प्रेम प्रदर्शित किया, जब उस के परिवार पर विपत्ति पड़ी तो क्या मनुष्य के नाते हमें उसके दुख को दूर करना नहीं चाहिए? भाई साहब हम उस के उपकारों से उऋण इसी प्रकार हो सकते हैं। मुझे अपने बल पर गर्व है। मैं अपनी शक्ति को खूब जानता हूं। तुम इस बात की चिन्ता मत करो जो वारणावत से आप को यहां उठा लाया, जिस ने हिडिंब का वध किया, उस भीम के बारे में आप को न कुछ चिन्ता करनी चाहिये और न भय। मेरा बकासुर के पास जाना ही कर्तव्य है।

इसके पश्चात नियमानुसार नगर वासी मदिरा, अन्न, दही आदि खाने पीने की वस्तुएं गाड़ी में रख कर ले आये। उस गाड़ी में दो काले बैल जुड़े हुए थे। भीमसेन हंसता हुआ उछल कर गाड़ी में बैठ गया। ब्राह्मण परिवार मन [illegible] मन, उसकी विजय की कामना करने लगा। नगर वासी [illegible] ते हु[illegible] र तक उसके पीछे चले। एक निश्चित [illegible] भीमसेन [illegible] ता [illegible]

शेष चारों भाई भीम को हसरत भरी नज़रों से देख रहे थे।

गुफा के निकट पहुंच कर भीमसेन ने देखा कि चारों ओर स्थान स्थान पर हड्डियां ही हड्डियां बिखरी पड़ी हैं। रक्त के चिन्ह, मनुष्यों व पशुओं के बाल खाल इधर उधर पड़े हुए हैं। चारों ओर बड़ी दुर्गंध आ रही है। आकाश में गिद्ध और चीलें मण्डरा रही हैं।

इस का भी भरत हृदय की तनिक भी चिन्ता न करते हुए भीम ने गाड़ी वहीं खड़ी करदी। और सोचने लगा कि—"गाड़ी में बढ़ा स्वादिष्ट भोजन लगा है ऐसा खाना फिर कहां मिलेगा। बकासुर का वध करके यह भोजन खाना ठीक नहीं होगा, क्योंकि मार धाड़ में क्या पता यह वस्तुएं बिखर कर खराब हो जायें और किसी काम की भी न रहें। इस लिए यही ठीक है कि इन्हें यहीं सफा चट कर जाऊं"

उधर बकासुर मारे भूख के तड़प रहा था। जब बहुत देर हो गई तो बड़े क्रोध के साथ गुफा से बाहर आया। देखता क्या है कि एक मोटा सा आदमी बड़े आराम से बैठा हुआ भोजन कर रहा है। यह देख कर बकासुर की आंखें लाल हो गईं। इतने में भीम सेन की नजर भी उस पर पड़ी। हसते हुए उसे पुकार कर कहा—"बकासुर कहो, चित्त तो प्रसन्न है।"

भीमसेन की इस ढिठाई को देख कर बकासुर क्रोध में जल उठा और तेजी से भीमसेन पर झपटा। उस का शरीर बड़ा लम्बा चौड़ा था, सिर और मूछों के बाल भी आग की तरह लाल थे। मुह इतना चौड़ा था कि लगता था इस कान से उस कान तक फटा हुआ है। स्वरूप इतना भयानक था कि देखते ही रोंगटे खड़े हो जायें।

भीमसेन ने जब बकासुर का आती और आते देखा तो उसकी ओर से पीठ फेर ली और कुछ भी परवाह किए बिना खाने में ही लगा रहा। बकासुर ने निकट आ कर भीम सेन की पीठ में जोर से एक मुक्का मारा। पर जैसे उसे तो कुछ हुआ ही नहीं। वह

शांति पूर्वक बैठा हुआ दही खाता रहा। तब बकासुर को और भी अधिक क्रोध आया और उस ने अधिकाधिक जोर से प्रहार करने आरम्भ कर दिये। भीम सेन जब दही खा चुका तब पलट कर उसकी ओर रुख किया, हंस कर बोला—"बकासुर! तू तो थक गया होगा, कुछ आराम करले।" बकासुर इस उपहास से चिढ़ गया और एक सूखे वृक्ष को उठा कर उस के ऊपर दे मारा। परन्तु भीम सेन विद्युत गति से ऐसा छिटका कि वृक्ष की एक टहनी भी उसके शरीर को न लगी। उलटा बकासुर ही वृक्ष के साथ पृथ्वी पर आ गिरा। भीम सेन ने दौड़ कर एक ऐसी ठोकर मारी कि बकासुर औंधे मुंह भूमि पर गिर पड़ा। भीम ने कहा—"ले अब कुछ देर आराम से सुस्ताले।" बकासुर थक गया था, कुछ देर तक वह न उठ सका। तब भीम ने उसे ठोकर मार कर कहा—"अब उठ और सामना कर।"

बकासुर उठा और उस पर आक्रमण करने को बढा पर भीम ने पहले हो प्रहार कर दिया, वह बार बार उस के प्रहारों को रोकने का प्रयत्न करता, पर लड़खड़ा कर गिर पड़ता। आखिर एक बार भीम ने उसे पकड़ कर सिर से ऊपर उठा लिया और कहने लगा "बकासुर तू खाता तो बहुत है। इस नगर के कितने ही निरपराधी मनुष्यों को तू खा चुका। नगर से आये हुए स्वादिष्ट भोजनों से तू वर्षों से पेट पूजा करता रहा है। पर तुझ में न वजन है और न बल। बिल्कुल गिद्ध ही रहा। ले अपनी नर्क गति को जा।"—और उसे इस जोर से एक शिला पर पटखा कि बकासुर के प्राण पखेरु उड़ गए। उस के मुह से रक्त की धारा बह निकली।

कुछ लोगों का मत है कि भीम ने अपने घुटने से उसकी रीढ की हड्डी तोड दी थी जो भी हो भोमसेन की मारसे उस नर भक्षी का प्राणान्त हो गया। तब भीमसेन ने उसे बार बार उलट पलट कर देखा और जब उसे विश्वास हो गया कि बकासुर ससार से चल बसा तो उसने शव को घसीट लिया और नगर के फाटक पर ले जा कर पटक दिया। फिर घर जा कर स्नान किया और भाइयों से सारा वृतान्त कह सुनाया। वह आनन्द और गर्व के मारे फूले न समाये

नगर पर बकासुर का शव पड़ा देख कर सारे नगर वासी प्रसन्न हो कर उसे देखने एकत्रित हो गए। उसकी भैंस सी विशाल काया को क्षत विक्षत देख कर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वह कौन महाबली है जिसने इस नर पिशाच से हमें अभय प्रदान किया? यह प्रश्न सब की जिह्वा पर थिरक रहा था। आज किसकी बारी थी इस राक्षस के पास जाने की इस बात की अन्वेषण करते २ नगर निवासी उसी ब्राह्मण के घर पहुंचे। जहां पाण्डव भीम के शरीर को मर्दन कर रहे थे। हो रही चेष्टा को और भीम को देखते ही वे पहचान गये कि यही वीर पुरुष है जिसे पक्वान्नादि देकर विदा किया था। और इसी के महापराक्रम से आज समस्त नगर वासियों को जीवन दान प्राप्त हुआ है। हर्षोन्मत हुए नागरिकों ने पाण्डवों को घेर लिया और नाचने कूदने एवं जय जयकारों से आकाश को गुंजायमान करने लगे।

युधिष्ठिर भीम आदि पांडव जिस स्थिति में बचे रहने के प्रयत्न में वेश परिवर्तन रूप पटाक्षेप किये हुए थे दुर्दैव कहिए अथवा सद्भाग्य प्रकृति के एक संकेत ने ही उस छद्मवेश को समाप्त कर दिया।

एक चक्री नगर के निवासी अपने उपकारी के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन तो कर रहे थे परन्तु अभी तक उन्हें यह पता नहीं था कि यह समर्थ पुरुष वास्तव में है कौन? इसी समय वहां के युवराज ने वृद्ध सेवकों सहित वहां पदार्पण किया, जो कि इसी अन्वेषण में निकला था। कि अन्ततः ऐसा कौन पराक्रमी है जिसने चिरकालीन हमारे मस्तक कलंक को दूर कर यशस्वी बनाया है?

नगर वासियों के आश्चर्य एवं हर्ष का पारावार उमड़पड़ा जब कि युवराज ने पांडवों को देखते ही पहचान कर राजराजेश्वर युधिष्ठिर धर्मराज की जय! के नारे लगाये एवं भुक २ कर नमस्कार करना प्रारम्भ कर दिया। बेशक पांडवों ने वेष बदला हुआ था परन्तु राजसूय यज्ञ के समय अच्छी प्रकार से परिचय प्राप्त किये हुए युवराज को, पांडवों को पहचानने में देरी न लगी। पांडवों के वनवास आदि घटना से युवराज पूर्ण परिचित था अतः उसे

वस्तुस्थिति के परखने में देर नही लगी। नाना प्रकार से कृतज्ञता प्रगट करने के पश्चात अनुरोधपूर्वक द्रौपदी सहित पांडवों को राज भवन में ला कर उनकी सब प्रकार से सेवा सुश्रुषा करने में राज परिवार ने अपना परम सौभाग्य समझा। इस प्रकार पाडवों की सेवा प्राप्ति एव वकासुर के उपद्रव निवृति रूप दुहरे हर्ष मे एक चक्री नगरी आनन्द मे तन्मय था।

कोई नही चाहता था कि पाडव यहा से जायें परन्तु युधिष्ठिर ने समझाया कि हम प्रतिज्ञानुसार वन मे ही निवास करना चहते हैं। कौरवो की विना अनुमति के, कि जिन मे हम वचन बद्ध हैं; अधिक समय तक नगर में निवास करना नैतिकदृष्टि से हमारे लिए ही हानिप्रद होगा। और कुछ दिवस आतिथ्य ग्रहण कर समस्त राज परिवार राज कर्मचारी एवं नगर निवासियो की साश्रुपूर्ण विदाई ले द्रौपदी सहित पाडवों ने वन-प्रस्थान किया।

प्रश्न यह है कि वकासुर कौन था ?

आइये उस का सक्षिप्त वृतांत सुनाएं। वह एक नरेश था, पर अपन मूर्ख और पापी परामर्शदाताओ, सखाओ और मित्रों के सगति से उसमे मांस भक्षण का दुर्व्यसन पड गया था। एक बार उसकी रसोई के कर्मचारियों ने उस के लिए मास का प्रवन्ध न देख कर श्मशान भूमि से एक मृत बालक का मास ला कर पका दिया। उस दिन के मास का स्वाद भिन्न पा कर उस ने रसोइया से इसका रहस्य पूछा। जब उसे पता चला कि यह मांस बालक का था तो उसने भविष्य मे मनुष्य का मास खाने का ही निश्चय कर लिया। वह बालको को पकड़वा मगवाता और उनका मांस खा जाता। उसके इस घोर अन्याय से प्रजा विद्रोही हो गई। अन्यायी नरेश का सिहासन पर आरूढ रहना देश के लिए कलक की बात है। उसे सिहासन च्युत कर देना ही जनता का धर्म है इस सिद्धान्त के अनुसार जनता ने विद्रोह किया और उसे मार भगाया। तब वह एका चक्री नगर के पास की एक गुफा मे रहने लगा और इक्के दुक्के व्यक्तियो का वध करके खा जाता। कुछ दिनो पश्चात वह इतना वलिष्ट हो गया कि सारा नगर मिल कर भी उसे न पछाड़ पाया।

इधर सिंहासन पर एक निकम्मा शासक विराजमान हुआ, उसकी दुष्टता से कभी भी प्रजा एक हो कर उस दुष्ट बकासुर के विरुद्ध न लड़ पाती। अकेला एकाचक्री नगर उस पर काबू न पा सकता था।

अन्य नगरों की जनता खामोश थी, उसे इस निकम्मे शासक की कुनीतियों के चक्र से ही फुरसत न मिलती थी। और शासक इस बात को समझता था कि यदि नगर से प्रति सप्ताह एक व्यक्ति ले कर बकासुर शत्रुओं से मेरे राज्य की रक्षा करता रहे तो घाटे का सौदा नहीं है। इस प्रकार बकासुर एकाचक्री नगर के रहने वालों के सिर पर लदा हुआ था। जिस का नाश अन्त में महाबली भीमसेन के हाथों हुआ।

...वीर पुरुष अपने पौरुष से प्रजा के दुखों को दूर करने में कभी नहीं हिचकते। वे दूसरों की रक्षा के लिए अपने को भी संकट में डालने पर हर्ष अनुभव करते हैं।—

—एक विचारक

निकम्मे, अन्यायी और मदांध शासन को उखाड़ फेंकना जनता का कर्त्तव्य है।.........

...क्रूर और जन द्रोही अन्त में विनाश को प्राप्त होते हैं ...।

मुनि शुक्ल चन्द्र

* एकादश परिच्छेद *

गंधर्वों से मित्रता

अनेक कष्ट हंसते—हसते सहन करते हुए पाण्डव वन में जीवन व्यतीत कर रहे थे। एक ओर तो उन्हें हिंसक पशुओं से अपनी रक्षा और जीवनयापन की समस्या को सुलझाने में सदैव सजग और सतत्त प्रयत्नशील रहना पडता, दूसरी ओर उनकी ख्याती एक चक्री नगर के प्रकरण को ले कर दूर—दूर तक फैल चुकी थी। लाक्षाभवन के दाह के कारण पाण्डवो के दाह की जो भ्रान्ति चारो तरफ फैलाई थी, वह दूर हो गई थी, जिस के कारण अनेक ब्राह्मण, मित्र श्रद्धालु भक्त आदि उन के पास पहुंच जाते। अतिथि सत्कार उन के लिए कई बार तो बड़ी ही विकट समस्या बन जाती। पर युधिष्ठिर कभी पीछे न हटते, स्वय भूखा रहना पसन्द करते, पर अतिथि का समुचित सत्कार करते। कहते हैं एक बार दुर्योधन ने कुछ लोगों को यह कहला दिया कि वन में युधिष्ठिर मुक्त हस्त से दान दे रहे हैं। भिक्षा माँग कर उदर पूर्ति करने वाले, दरिद्री और दान से जीवन यापन करने वाले ब्राह्मणों का एक बडा दल दान के लोभ में पाण्डवो के आश्रम पर पहुच गया और उस ने अपने आने का कारण कह सुनाया।

युधिष्ठिर क्रुद्ध नहीं हुए. बल्कि उन्हों ने जो भी सम्भव हो सका, जो उनके उस समय पास था, दान में सब कुछ दे दिया। बनवास में भी उन्हों ने अपने स्वभाव का परित्याग नहीं किया।

उधर एक चक्री नगर का समाचार जब दुर्योधन को मिला, तो जैसे उसके स्वप्नों पर भयंकर वज्रपात हुआ हो। वह बहुत चिन्तित हो गया। उसके लिए लाख के महल से पाण्डवों का बच निकलना और इतने दिनों तक पता भी न लगना, एक अद्भुत बात प्रतीत हो रही थी। वह जितना ही इस रहस्यमयी बात पर विचार करता था, उतना ही उसे अपने सहयोगियों और अपने भाग्य पर अविश्वास होता जाता था। वह मन ही मन में पुरोचन को गालियां देने लगा। और अपनी योजना की असफलता का उत्तरदायित्व उसी के सिर थोपने लगा। दुःशासन और दुर्योधन, दोनों भाई अपने भाग्य पर अश्रुपात करने लगे।

उन्हों ने अपना दुखड़ा शकुनि को सुनाया—"मामा! अब बताओ क्या करें? दुष्ट पुरोचन ने हम कहीं का भी नहीं छोड़ा। लाक्षाभवन की घटना को लेकर संसार का प्रत्येक विचारशील व्यक्ति हमें घृणा की दृष्टि से देखेगा। इससे हमें लाभ होने की अपेक्षा पांडवों को ही लाभ हुआ है। इत्यादि अनेक प्रकार से पछताते हुए अपने सिर को पीटने लगे।

पांडवों के प्रति दबी हुई ईर्षा की अग्नि उस के हृदय में और भी प्रबल हो उठी। और पुरातन शत्रुता फिर से जाग उठी। फन कुचले सर्प की तरह दुर्योधन भयकर रूप से विषवमन एवं चोट करने की सुविधा में घूमने लगा।

\+ × + × + + ×

एक बार अर्जुन गाण्डीव धनुष को हाथ में लेकर वन की सैर को निकला और सुर प्रेरणा से एक पहाड़ पर चला गया। अर्जुन एक शिला पर बैठकर मुस्काने लगा कि तभी एक विकराल

मूर्ति दीर्घ कृष्ण काम भील दूसरी ओर से आ निकला। उस के हाथ में प्रचन्ड धनुष बाण था, नेत्र चढ़े हुए थे। अर्जुन ने व्यंग करते हुए कहा—'हे वनवासी ! इस धनुष को क्यों उठाये फिरता है। यह तो किसी रण वीर के हाथ में ही शोभा देता है।' तू क्यों व्यर्थ ही बोझ ढो रहा है।"

"तो मैं क्या रण वीर नहीं हूं ?" क्रुद्ध होकर भील ने पूछा।
अर्जुन उसकी बात पर हस पड़ा।
भील को बहुत क्रोध आया।

"रे युवक ! साहस है तो मेरा सामना कर, मेरा रण कौशल देख, मेरी वीरता का स्वाद चख। क्षण भर में यम लोक पहुंच जायेगा, तब तुझे मेरे शौर्य का ज्ञान होगा ?" भील बोला— और उस ने धनुष पर बाण चढाना आरम्भ कर दिया।

अर्जुन ने कहा— "जा, जा क्यों अपनी शामत बुलाता है, अपना रास्ता नाप।"

परन्तु भील तो अपना धनुष सम्भाल चुका था, अर्जुन को भी गाण्डीव उठाना पड़ा। दोनो मे भयकर युद्ध होने लगा। दोनों ओर से चलने वाले तीरों का एक मण्डप सा बन गया। उस समय क्रोध युक्त होकर अर्जुन ने जितने तीर छोड़े; भील ने सभी को निष्फल कर दिया। धनुष युद्ध को व्यर्थ समझ कर अर्जुन ने मल्ल युद्ध आरम्भ कर दिया। भील ने भी अपनी भुजा और ताल ठोंक कर सामने आ गया। दोनों परस्पर भिड़ गए। खूब गुत्थम गुत्था हुए, परन्तु अन्त मे इस युद्ध में भी अर्जुन ने उस भील को परास्त करने का उपाय उसकी समझ न आया, परन्तु उसने साहस नही छोडी। वह उदासीन न हुआ, साहस का दामन अभी तक उसने न छोड़ा था। इतने में उसका दाव लग गया और उसने भील के दोनों पैर पकड़ कर चारों ओर चक्र की भांति इस ज़ोर से घुमाया कि बेचारा भील अर्धमृत समान हो गया। अर्जुन उसे पृथ्वी पर पटकना ही चाहता था, जिस से किसी शिला से टकरा कर उस के प्राण पखेरू उड़ जायें, कि अनायास ही वह भील आभूषण आदि

से भूषित हो दिव्य रूप में दिखाई दिया। अर्जुन अनायास ही उस के इस विचित्र परिवर्तन को देख कर आश्चर्य चकित रह गया। तुरन्त उसे छोड दिया और इस परिवर्तन के रहस्य पर विचार करने लगा।

उसी समय उस ने अर्जुन को पृथ्वी तक मस्तक झुका कर विनय पूर्वक प्रणाम किया और बोला—हे पार्थ ! मैं आप की वीरता साहस और असीम बल से बहुत ही प्रभावित हुआ हूं। आप के दर्शन करके मुझे जो प्रसन्नता हुई है, उसे कह नही सकता इस हर्ष के समय आप मुझ से जो चाहे माग लें, आप की प्रत्येक कामना को पूर्ण करके मैं प्रसन्नता अनुभव करूगा।

अर्जुन उसकी इस बात को सुन कर चकित हो रह गया, वह उसे बडी विचित्र बात दिखाई दी, सोचने लगा कि इस से क्या मांगू ? पता नही कितनी शक्ति है इसके पास ? कहां तक यह मुझे दे सकता है। यह बात उसकी समझ मे न आई। तदापि उसने इस अवसर को भी हाथ से न जाने दिया, वह बोला—"यदि आप मुझ पर इतने दयालु हैं तो कृपया आप मेरे सारथी बन जाइये।"

"तथास्तु"—वह बोला।

"आप अपना परिचय तो दें। नाम, धाम और यहां आने का कारण सभी कुछ बताइये।" अर्जुन ने कहा।

उत्तर मे वह कहने लगा— 'मैं कौन हूं, यहां क्यों आया और क्या चाहता हू ? यह एक बडी कथा है। आप बैठ जाइये और ध्यान पूर्वक सुनिये।

इतना कह कर वह स्वय भी बैठ गया, अर्जुन बैठ कर उसकी कथा सुनने लगा—उस ने कहना आरम्भ किया— हे पार्थ ! इसी भरत क्षेत्र मे विजयार्द्ध नामक एक सुन्दर पहाड है उसकी दक्षिण श्रेणी मे इयनू पुर नामक एक नगर है, जो कि अपने विशाल कोट आदि से अत्यन्त शोभायमान है। वहां का राजा विद्युत प्रभ था वह नमि के वंश का एक गुणवान एव सुशील पुरुष था। अपने कौशल

और शुद्ध चरित्र के कारण वह विद्याधरो का अधिपति था। उसके दो पुत्र थे, एक का नाम इन्द्र और दूसरे का विद्युन्माली था। विद्युत प्रभ ससार से विरक्त हो गया, उसने अपना राज्य इन्द्र को सौंप दिया और विद्युन्माली को युवराज पद से विभूषित कर दिया।

युवराज विद्युन्माली ने कुछ दिनो पश्चात् प्रजा पर अत्याचार करने आरम्भ कर दिये। वह नगर वासियों की सुन्दर स्त्रियां और युवा कन्याओं का अपहरण कर लेता, धनिको को दिन दिहाड़े लूट लेता, इसी प्रकार के अन्य जघन्य अत्याचार वह करता। जिसके फल स्वरूप सारे नगर मे उपद्रव होने लगा। जनता विद्रोही हो गई। वह राज वंश को अपना शत्रु समझ कर उसे उखाड़ फेंकने का उपाय करने लगी। परिस्थिति का मूल्यांकन करके इन्द्र बहुत चिन्तित हो गया। उसने अपने भाई को एकान्त मे बुला कर समझाया कि—"जनता ही जनार्दन होती है। राज्याधिकारी जब प्रजा को अपनी पाप कामनाओं का शिकार बनाने लगते हैं, तो वही प्रजा जो पहले उनके प्रत्येक आदेश को सहर्ष स्वीकार करती रहती है, अन्त मे अपना शत्रु समझ कर उन पर टूट पड़ती है। कोई भी राज प्रजा की इच्छा बिना जीवित नही रह सकता। इस लिए तुम अपने इस पापाचार को बन्द करो, प्रजा को सन्तुष्ट करो और सुपथ पर आ कर प्रजा की सेवा में तन, मन, धन लगाओ। यही कल्याण मार्ग है।"

परन्तु जिस जीव का भवितव्य ही अच्छा न हो उस को शुभ शिक्षा भी रुचिकर नही होती। वह तो कुपथ छोड़ कर सुपथ पर आने की अपेक्षा इन्द्र को ही अपना वैरी समझने लगा। वह समझता था कि वह राजा है, तो उसे अपनी प्रजा पर मन इच्छित अत्याचार करने का पूर्ण अधिकार है और इन्द्र जो उसे ही जनता के विद्रोह का कारण समझता है, उस जनता का हिमायती है जो अपने युवराज के विरुद्ध विद्रोह करने का दुस्साहस कर रही है।

रहे। अपनी करतूतो को बन्द करो, वरना मुझे राजा का कर्तव्य पालन करते हुए कुछ करना होगा।"

विद्युन्माली भला इन्द्र की बात का कोई उचित मूल्य क्यों आंकता? वह तो मदान्ध था. पाप ने उस की बुद्धि हर ली थी। क्षुब्ध हो कर महल से भाग गया और बाहर रह कर लोगों को लूटने खसोटने लगा। कुछ दिनों पश्चात वह खर दूषण के वंशजों के साथ स्वर्णपुर चला गया और उनके साथ रहने लगा।

अब वह खर दूषण के वंशजों को साथ ले कर बार बार राज्य पर आक्रमण कर देता है, जनता को लूटता है, लोगो की बहू बेटियों की लाज लूटता है, राज्य को क्षति पहुंचाता है और वापिस चला जाता है। राज्य की शांति भंग हो गई है, लोग चिन्तित हैं। शत्रुओ ने इन्द्र को मिटा डालने की कसम खा रक्खी है।

मैं उसी इन्द्र के सेनापति विशालाक्ष का पुत्र हू, नाम है चन्द्र शेखर। मेरे पिता का स्वामी शत्रुदल से सदा ही भयभीत रहता है, मैं उसकी यह दशा न देख सका और एक निमित्तज्ञ से पूछा कि इन्द्र की मुसीबतों को दूर करने वाला, शत्रुदल का संहारक कौन होगा? उस ने मुझे बताया कि जो मनोहर गिरि पर तुम्हें परास्त कर देगा वही इन्द्र की समस्त विपदाओं का अन्त कर सकता है। वही, रथनुपुर की जनता के कष्टों का निवारण करेगा।

बस मैं उसी भविष्यवक्ता के वचन पर विश्वास करके भेष बदल कर यहा रहता था, अहो भाग्य! आज आपके दर्शन हो गए। आप से प्रार्थना है कि मेरे साथ चलिए और इन्द्र को संकटों से उबारने का प्रयत्न कीजिए क्योंकि आप ही इस मे समर्थ हैं।

चन्द्रशेखर की बातों को सुन कर अर्जुन बोला— "यदि मेरे द्वारा कोई व्यक्ति सुखी हो सकता है, तो मैं उसे सुखी देखने के लिए अपने प्राणों पर भी खेल सकता हू।

वे दोनो एक वायुयान द्वारा वहा से चल दिए और कुछ ही समय में विजयार्द्ध महागिरि पर पहुंच गए। चन्द्रशेखर ने जा कर

इन्द्र को अर्जुन के आने का शुभ समाचार सुनाया। इन्द्र स्वयं अपने साथियों सहित स्वागत को आया, उसने बहुत ही आदर सत्कार किया।

दूसरी ओर शत्रुदल को भी किसी प्रकार यह समाचार मिल गया कि प्रसिद्ध धनुर्धारी अर्जुन इन्द्र के यहां विराजमान है। अतः उन्होने तुरन्त वायुयानो से आ कर सारे नगर को घेर लिया। रण भेरी बज उठी अर्जुन भी इन्द्र के साथ मोर्चे पर आ डटा। चुनौती स्वीकार कर ली और युद्ध के लिए तैयार हो गया।

दोनो ओर से महा भयानक युद्ध होने लगा। कुछ ही देर में अर्जुन समझ गया कि विकट शत्रुदल का सामना है। उसे साधारण बाणों से नही जीता जा सकता। अतः उसने दिव्यास्त्रों को सम्भाला कितने ही शत्रुओ को उसने नाग पाश मे बांध लिया, कितनों को अग्नि बाण से भस्म कर डाला, और अनेक को अर्धचन्द्र बाण से छिन्न भिन्न कर डाला। इस प्रकार तीन दिन घमासान युद्ध में अर्जुन ने शत्रुदल को समाप्त कर दिया और विजय के बाजे बजा कर, जय घोष के साथ इन्द्र सहित महल को वापिस आ गया।

सारे नगर मे हर्ष छा गया, नर नारी अर्जुन की प्रशसा करने लगे, समस्त गधर्व उसके सामने नत मस्तक हो कर उसकी सेवा में लग गए। सभी गधर्व उसका गुणगान करने लगे और उसके मित्र हो गए। गधर्वों का प्रमुख नेता चित्रागद अर्जुन का घनिष्ठ मित्र हो गया। चित्रागद के साथ अर्जुन ने विजयार्द्ध की दोनो श्रेणियो का भ्रमण किया।

धनुर्विद्या-विशारद चित्रांगद अपने सह योगियो सहित अर्जुन की सेवा मे रहता। अन्त मे अर्जुन अपने भाईयों के पास वापिस चला आया। चित्रागद अन्य गधर्वों सहित उसके साथ था, इन सभी ने कितने ही दिनो तक पाण्डवों की सेवा की और हर प्रकार से सहायता करते रहने का वचन दिया।

* द्वादश परिच्छेद *

पांसा पलट गया
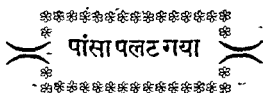
पाण्डवों के पास कितने ही ब्राह्मण और दर्शनाभिलाषी लोग आते रहते थे, जो भी हस्तिनापुर पहुचता, उसी से दुर्योधन पाण्डवों की दशा के सम्बन्ध मे पूछता। जो कोई उससे कहता कि पाण्डव बहुत दुखी हैं, बडे कष्ट उठा रहे हैं, दुर्योधन बडा प्रसन्न होता। यह सुन कर उसे सन्तोष मिलता कि पाण्डव श्रमित हैं। वे दुखों में हैं, असह्य कष्टो का सामना कर रहे है।

धृतराष्ट्र जब किसी से सुनते कि पाण्डव वन मे, आंधी पानी और धूप में तकलीफें उठा रहे हैं, बडी यातनाए वे सहन कर रहे हैं, तो उनके मन मे चिन्ता होने लगती। सोचने लगते कि इस अनर्थ का अन्त क्या होगा? इस के फल स्वरूप कहीं मेरे कुल का सर्वनाश न हो जाय।

वह सोचते—"भीम का क्रोध यदि अब तक रुका हुआ है तो युधिष्ठिर के समझाने बुझाने मे। वह कब तक अपना क्रोध रोक सकेगा? सन्तोष की भी तो सीमा होती है। किसी न किसी दिन पाण्डवों का क्रोध सन्तोष का बांध तोड़ कर ऐसा तूफान की भांति निकलेगा कि जिसमें सारे कौरव-वंश का सफाया हो जायेगा।

यह सोचते ही धृतराष्ट्र का हृदय कांप उठता।

कभी कभी वे सोचने लगते कि— "भीम और अर्जुन जरूर बदला लेंगे। पर दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि न जाने क्यों उस तूफान के बारे मे कुछ नही सोचते। वे तो अपनी क्रूरता की पराकाष्ठा करने पर उतारू हैं। वे क्यों नही देखते कि भीम जैसा काला नाग उनके वंश को ही डस जाने को तैयार है।"

वे कभी अपनी ही भूल के लिए अपने को धिक्कारते। कभी दुर्योधन को दोषी ठहराते, कभी शकुनि और कर्ण को। वे इसी चक्कर मे चिन्तित रहते। पर वे कोई उपाय ऐसा नही ढूंढ पाते कि जिससे इस द्वेष के दावानल को शान्त किया जा सके।

किन्तु दुर्योधन और शकुनि बहुत प्रसन्न थे और यदि कभी कुछ सोचते भी पाण्डवो को दुख देने के उपाय। एक बार कर्ण और शकुनि दोनो दुर्योधन को चापलूसी की बातें करके शब्दो द्वारा पृथ्वी से उठा कर आकाश पर रख रहे थे, और बारम्बार उसकी बुद्धि की सराहना कर रहे थे कि उसने ऐसा विचित्र उपाय किया जिस से युधिष्ठिर की राज्य-श्री अब उस की तेज और शोभा बढा रही है। तभी दुर्योधन बोला- "तुम लोगो के सहयोग से ही मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। पर मैं पाण्डवो को मुसीबतों मे पड़े हुए अपनी आखों से देखना चाहता हूं और यह भी चाहता हूं कि दुखो से पीडित पाडवो के सामने अपने सुख भोग और ऐश्वर्य का भी प्रदर्शन करूं, जिससे उन्हे अपनी दयनीय दशा का कुछ पता तो चले। झोपडी मे रहने वाला पीडित व्यक्ति अपनी पीडा का सही मूल्यांकन तब तक नही कर सकता जब तक वह किसी ऐश्वर्यवान, वैभवशाली महल के निवासी के ठाठ को नही देखता। जब तक शत्रु के कष्टों को हम अपनी आखो से नही देख लेगे तब तक हमारा आनन्द अधूरा ही रह जायेगा। कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे हमारी यह इच्छा भी पूर्ण हो जाये।"

शकुनि ने उत्साहित हो कर कहा—"उपाय........? उपाय की इस मे क्या बात है। - चलो चलें ठाठ बाठ के साथ।- यह भी

कोई बड़ी बात है ?

कर्ण ने कहा— "दुर्योधन ! यदि मेरी बात मानो तो सैन्य बल के साथ चलो और वन मे उन्हें जा कर घेर लो। बड़ा आनन्द आयेगा। थोड़े से ही बल से काम चल जायेगा।"

दुर्योधन गम्भीरता पूर्वक बोला— "तुम लोग उसे जितना आसान समझते हो, उतनी आसान बात नही है। बात यह है कि पिता जी पाण्डवों में हम से अधिक तबोबल समझते हैं। इसी से वे पांडवों से कुछ डरते हैं। इसी कारण वन में जाकर पाण्डवों से मिलने की आज्ञा देने में वे वे झिजकते हैं। वे डरते हैं कि कहीं इससे हम पर कोई आफत न आ जाये। लेकिन मैं कहता हूं कि यदि हम ने द्रौपदी और भीम को जगल में पड़े कष्ट उठाते न देखा तो हमारे इतने करने-धरने का लाभ ही क्या हुआ ? मुझे बस इतने से सन्तोष नहीं है कि पांडव वन में कष्ट उठा रहे हैं और हमें उनका इतना विशाल राज्य मिल गया है। मैं तो अपनी आंखों से उनका कष्ट देखना चाहता हू। इस लिए कर्ण ! तुम और शकुनि कोई ऐसा उपाय करो कि जिससे वन में जा कर पांडवों को चिडाने की आज्ञा हमें मिल जाय।"

कर्ण ने इस उपाय की खोज निकालने का उत्तरदायित्व ले लिया।

दूसरे दिन पौ फटते ही कर्ण दुर्योधन के पास गया और बड़े हर्ष से बोला— "लो, उपाय मिल गया। द्वैत वन में कुछ ग्वालों की बस्ती है जो आपके आधीन है। प्रत्येक वर्ष वन में जा कर पशुओं की गिनती लेना राजकुमारों का काम है। बहुत काल से यह प्रथा चली आ रही है। अत. उस बहाने हमें अनुमति मिल सकती है। और वहा जा कर......

कर्ण ने बात पूरी भी न की थी कि दुर्योधन और शकुनि मारे खुशी के उछल पड़े। बोले—"बिलकुल ठीक सूझी है, तुम को।" कहते कहते दोनों ने कर्ण की पीठ थपथपाई।

ग्वालों की बस्ती के चौधरी को बुला भेजा और उस से बातें भी कर ली गई।

चौधरी ने धृतराष्ट्र से जाकर कहा—"महाराज! गांव तैयार है। वन के एक रमणीक स्थान पर राजकुमारों के लिए प्रत्येक प्रकार का प्रबन्ध कर लिया गया है। प्रथा के अनुसार राजकुमार उस स्थान पर पधारें, और जैसा कि सदा होता आया है, चौपायों की सख्या, आयु, रग, नस्ल इत्यादि जाच कर खाते में दरज कर लें और बछडों पर चिन्ह लगाने का काम पूर्ण कर के वन में कुछ देरी खेल कर थोडा मन बहला लें। चौपायों की गणना का काम भी पूर्ण हो जायेगा और उनका मन भी बहल जायेगा।"

राजकुमारों ने भी धृतराष्ट्र से जाने की अनुमति माँगी पर धृतराष्ट्र ने उत्तर दिया—"नहीं, द्वैत वन में पाण्डवों का डेरा है। तुम्हारा बनवास के दुखों से क्षुब्ध पाण्डवों के निकट भी जाना ठीक नहीं है। मैं भीम और अर्जुन के निकट पहुचने की अनुमति नहीं दे सकता। चौपायों की गणना का ही प्रश्न है तो वह कोई और भी कर सकता है।"

तब शकुनि ने समझाया—"महाराज! अर्जुन और भीम चाहे कितने भी क्रुद्ध हों, पर वे युधिष्ठिर की आज्ञा बिना कुछ नहीं कर सकते और युधिष्ठिर १२ वर्ष से पूर्व कोई भी कुकर्म न होने देंगे। आप विश्वास रखें कि कौरव उनके पास भी न जाय गे। मैं स्वय उन के साथ जाऊगा और कोई बखेड़ा न खडा होने दूगा। आप इन्हें आज्ञा दीजिए।"

इस प्रकार शकुनि ने समझा बुझा कर अनुमति ले ली। परन्तु धृतराष्ट्र ने चेतावनी देते हुए कहा—"खबरदार जो पाण्डवों के पास भी गए।"

अनुमति मिलने पर कर्ण ने शकुनि को बधाई दी और दुर्योधन से बोला—"अब चलो और अवसर मिले तो पाण्डवों का सफाया करदो"

एक बड़ी सेना और अनेक नौकर चाकर लेकर कौरवों ने द्वैत वन की ओर प्रस्थान किया। दुर्योधन और कर्ण यह सोच कर फूले न समाते थे कि पांडवों को कष्ट में पड़े देख कर बहुत आनन्द आयेगा और वे हमारे शाही ठाठ-बाठ देख कर जल उठेंगे।

वन पहुच कर ऐसे स्थान पर अपने डेरे लगा दिए जो कौरवों के आश्रम से चार कोस की दूरि पर था। कुछ देर विश्राम करके वे ग्वालों की बस्तियों में गए और चौपायों की गणना की रस्म अदा की। इसके बाद ग्वालों के खेल और नाच देख कर कुछ मनोरंजन किया। फिर वन घूमने की बारी आई। घूमते घूमते वे एक जलाशय के पास जा पहुंचे वहा का स्वच्छ जल और रमणीक दृश्य देखकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ। जब इसे ज्ञात हुआ कि पाण्डवों का आश्रम निकट ही है, तो उसने अपने नौकरों को आदेश किया कि डेरे इस जलाशय के तट पर ही लगा दिए जायें उसने सोचा था कि एक तो यह स्थान रमणीक है दूसरे यहा से पांडवों के हाल चाल भी भलि प्रकार देखे जा सकेंगे।

× × × × × ×

जब दुर्योधन के नौकर चाकर जलाशय के तट पर डेरे लगाने गए, तो गन्धर्व राज चित्रांगद ने, जिस के डेरे जलाशय के निकट ही लगे हुए थे डेरे लगाने से रोक दिया। नौकरों ने जाकर दुर्योधन से कहा कि कोई विदेशी नरेश जलाशय के पास पड़ाव डाले है, उसके नौकर हमें डेरे नहीं लगाने देते। दुर्योधन को यह सुन कर बहुत क्रोध आया और गरज कर बोला—"किस राजा की मजाल है कि हमारे डेरे लगाने से रोक दे। जाओ किसी की मत सुनो कोई रोके तो उसे मार कर भगा दो।"

आज्ञा पा कर दुर्योधन के अनुचर फिर गए और तम्बू गाड़ने लगे गंधर्व राज के नौकरों ने आकर उन्हें रोका जब न माने तो दुर्योधन के नौकरों को उन्होंने बहुत मारा, वे बेचारे अपने प्राण ले कर भाग आये।

दुर्योधन को जब पता चला तो उसके क्रोध की सीमा न रही, अपनी सेना ले कर जलाशय की ओर चल पड़ा।

वहा पहुचना था कि गन्धर्वों और कौरवों मे युद्ध हो गया। घोर सग्राम छिड़ गया। आमने सामने के युद्ध मे कौरवों की सेना न रुक सकी। यह देख कर गधर्व राज को बहुत क्रोध आया और उसने माया युद्ध आरम्भ कर दिया। ऐसे ऐसे भयानक और विचित्र माया अस्त्र उसने बरसाये कि कौरवों की उनके सामने एक न चली। यहा तक कि कर्ण जैसे महारथियो के भी रथ और अस्त्र चूर चूर हो गए और भागते ही बना। अकेला दुर्योधन युद्ध मे डटा रहा। गधर्व राज चित्रागद ने उसे पकड़ लिया और रस्सो से बाधकर अपने रथ मे डाल लिया। फिर विजय घोष किया। कौरवा की सेना के सभी प्रधान वीर रस्सों मे बध चुके थे, सेना तितर बितर हो गई थी। बचे खुचे सैनिको ने पाण्डवों के आश्रम मे जा कर दुहाई मचाई और रक्षा की प्रार्थना की। बेचारे दुर्योधन का पासा पलट गया, वह गया था ठाठ दिखाने, और पाण्डवों का उपहास करने, बन गया बन्दी और स्वय उपहास का विषय।

दुर्योधन और उसके साथियों के इस प्रकार अपमानित होने का समाचार सुन कर भीम को बडी प्रसन्नता हुई युधिष्ठिर से बोला– "भाई साहब! गधर्वों ने वही कर दिया जो हमे करना चाहिए था। दुर्योधन अवश्य ही हमारा मजाक उडाने आया होगा। सो उसे ठीक ही सजा मिली। गधर्व राज को उनके इस कार्य के लिए बधाई भेजनी चाहिए।"

युधिष्ठिर बोले –"भैया! दुर्योधन के गधर्वों के हाथों बन्दी होने पर तुम्हे प्रसन्न नही होना चाहिए। आखिर को तो अपना भाई ही है उसे गधर्वराज की कैद से छुडाना ही चाहिए। अपने कुटुम्ब के लोग कद मे पड़े हो और हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें यह कैसे हो सकता है। तुम्हे इसी समय दुर्योधन और उसके साथियो को मुक्त कराने जाना चाहिए।"

भीम झल्ला उठा, बोला– 'वाह भाई साहब! आप तो देवताओ जैसी बातें करते है यह बात तो उसके लिए होनी चाहिए जो हमे अपना भाई मानता हो। दुर्योधन तो हमे अपना बैरी समझता है। जिसने विष दे कर और गगा मे डुबा कर मुझे मार

डालने का प्रयत्न किया, जिसने हमें लाख के महल में जला मारने का षड़यन्त्र रचा, जिसने सती द्रौपदी को भरी सभा मे अपमानित किया, जिसने कपट से आपका राज्य छीन लिया, उस नीच को भला हम कैसे अपना भाई मानें ?"

"नही भीम ! हमें अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। तुम तो धर्म का ज्ञान रखते हो, वह अन्धा हो गया, तो क्या हम भी अन्धे बन जायें। वह जो कर रहा है, अपने लिए ही बुरा कर रहा है। जो दूसरे के लिए गड्ढा खोदता है, वही उसमे गिरता भी है। उस ने हमें चिढाने का प्रयत्न किया, उसे इसका फल मिल गया। हमे अपने कर्तव्य से नही चूकना चाहिए" —युधिष्ठिर ने शांति पूर्वक कहा।

भीम और युधिष्ठिर की बातें हो ही रही थी कि बन्दी दुर्योधन और उसके साथियों का आर्तिनाद सुनाई दिया। युधिष्ठिर व्याकुल हो उठे और अपने भाईयों से बोले—'भीमसेन की बात ठीक नही है। भाईयो ! हमे अभी ही जा कर दुर्योधन को छुड़ा लाना चाहिए।"

युधिष्ठिर के आग्रह पर भीम और अर्जुन दौड़ पड़े और जाते ही गधर्वों की सेना पर टूट पड़े। चित्रागद ने जब अर्जुन को देखा तो उसका क्रोध शात हो गया। उसने कहा—"मैंने तो दुरात्मा कौरवों को शिक्षा देने के लिए ही यह किया था। यदि आप चाहते है तो मैं इन्हें अभी हो मुक्त किए देता हू।"

यह कह कर चित्रागद ने उन्हे तुरन्त बन्धन मुक्त कर दिया और साथ ही आज्ञा दी कि वे इसी समय हस्तिनापुर लौट जायें। अपमानित कौरव तुरन्त हस्तिनापुर की ओर चल पड़े। कर्ण जो पहले ही भाग चुका था, रास्ते में दुर्योधन को मिला।

\+ \+ \+ \+ \+ \+

दुर्योधन बडा ही दुखित था, उसे अपने अपमान का, इस अपमान का कि इतने विशाल राज्य के उत्तराधिकारी को गंधर्व राज

ने वन्दी बना लिया, और उसके शत्रु पाण्डवो के कारण उसकी मुक्ति हुई, बहुत ही दुख था। उसने कर्ण को लक्ष्य करके कहा – "कर्ण भाई ! अब मेरा जीवन व्यर्थ है। इस से तो अच्छा था कि गधर्व राज मुझे मार डालता या पाडवो द्वारा मुक्त होने से पहले ही मैं युद्ध मे मारा जाता। मुझे जितने भयकर अपमान को सहन करना पड रहा है, वह मेरे लिए असह्य है। मेरे शत्रु पाडवो ने मुझ पर एक अहसान कर दिया, वे कितने प्रसन्न होंगे और इस घटना को ले कर मेरा कितना उपहास कर रहे होंगे। मेरी तो इच्छा है कि मैं अब हस्तिनापुर हो न जाऊ, बल्कि यही अनशन करके प्राण लगा दू।"

दुर्योधन को इतना दुखी देख कर कर्ण ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—"दुर्योधन ! आखिर इतनी सी बात को ले कर तुम इतने निराश हो गए—

'गिरते हैं शहसवार मैदाने जग मे'

इस मे कौन अपमान की बात है। पाडवो ने आकर तुम्हे मुक्ति भी दिलादी तो क्या हुआ ? तुम स्वय थोड़े ही उन से सहायता की याचना करने गए थे। मैं तो समझता हूं कि यह सारा काण्ड पाडवो की इच्छा से ही हुआ। अपने ही फैलाए जाल मे उन्होंने तुम्हे फासा और स्वय बड़े भारी दयावान बनने के स्वप्न मे मुक्त करा बैठे उनमे बुद्धि होती तो क्यों वे तुम्हें मुक्त कराते ? तुम्हे तो उनकी इस मूर्खता से लाभ उठाना चाहिए।"

दुर्योधन के मन मे बात नही बैठी, उस ने कहा—"नही, नही उनका बिछाया जाल भी हो तो भी मेरी सारी शक्ति उनके सामने हेच हो गई, यह क्या कम अपमान है। अभी से जब उन की इतनी शक्ति है तो तेरह वर्ष पश्चात तो और भी बढ जायेगी। फिर वे अवश्य ही राज्य छीन लेंगे।"

शकुनि ने उस समय धैर्य बन्धाते हुए कहा— "दुर्योधन तुम्हें भी उलटी ही सूझा करती है। जब जैसे मैंने छल कपट से मैंने

तुम्हें पाँडवो का राज्य छीन कर दिया और उसे भोगने का समय आया तुम आत्म हत्या करने की सोचने लगे। पाँडवों को नहीं देखते, कितनी विपदाएं पड़ रही हैं, तुम्हारे हाथों उनका कितना घोर अपमान हुआ, पर आज भी वे अपनी शक्ति द्वारा राज्य लेने की सोच रहे है। यदि आप हत्या करके ही मरना था तो मुझ से यह सब क्यों कराया? इस से तो अच्छा है कि तुम हस्तिना पुर चलो और पाण्डवों को वन से बुलाकर उनका राज्य उन्हें वापिस कर के चैन से रहो।"

यह बात सुनते ही दुर्योधन के मन मे पाण्डवों के प्रतिईर्ष्या को आग जाग उठी, दुर्योधन क्रुद्ध होकर बोला—"नही, पाँडव चाहे जो करें अब उन्हे राज्य को ओर मुह भी न करने दिया जायेगा। मैं अपनी इस तलवार की सौगंध खाकर कहता हूं कि पांडवों के सामने कभी सिर न झुकाऊगा।"

इस प्रकार क्रोध ने दुर्योधन के मन मे आत्मग्लानि के उठते ज्वार को समाप्त कर दिया।

* त्रिदिम परिच्छेद *

दुर्योधन के मन मे कभी कभी फिर भी अपमान का दुख जाग उठता। उस ने कहा—"मुझे गधर्वों द्वारा बन्दी बनाने का इतना दुख नही है जितना अर्जुन द्वारा मुक्त कराये जाने का। है कोई वीर जो मुझे इस दुख से मुक्त करा सके? जो कोई पाण्डवो को मारकर मेरे इस दुख का निवारण करेगा, उसे मैं अपने राज्य का एक भाग्य दे दूगा।"

दुर्योधन की इस घोपणा को सुन कर कनकध्वज राजा ने कहा—"महाराज! मैं इस काम का बीडा उठाता हू और विश्वास दिलाता हू कि आज से सातवें दिन ही पाण्डवो को काल के गाल मे भेज दूगा। यदि मैं यह काम न कर सका तो प्रतिज्ञा करता हूं कि अग्नि कुण्ड मे गिरकर भस्म हो जाऊगा।"

प्रतिज्ञा कर चुकने के पश्चात वह दुष्ट बुद्धि ऋषियो के एक आश्रम मे पहुचा और कृत्या-विद्या को सिद्ध करने लगा। जब इस बात का पता नारद जी को लगा तो उसी समय पाण्डवो के पास गए उन से कनकध्वज की प्रतिज्ञा तथा उसकी पूर्ति के लिए कृत्या विद्या सिद्ध करने की बात सुनाई।

नारद जी की बात सुनकर युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कहा—"ससार मे एक धर्म ही महान सहयोगी होता है। मनुष्यों

को संकट से उबारने वाला उसका अपना पुण्य है । अतः हम पर जो घोर सकट आने वाला है उस से बचने का एक मात्र उपाय है कि हम सभी अपने को धर्म ध्यान मे लगाएं ।" भाइयो को धर्म ध्यान की प्रेरणा देकर युधिष्ठिर अपनी समस्त इच्छाओं का विषय भोग हटा कर धर्म ध्यान में तल्लीन हो गए । वे मेरु पर्वत सदृश निश्चल खड़े हो नासाग्र दृष्टि कर आत्मा का चिन्तन करने लगे । उनका विश्वास था कि धर्म ध्यान के प्रसाद से जितने भी अमगल है वे सब नष्ट हो जाते हैं और निशिदिन नये मंगल होने लगते है । धर्म के प्रताप से ही दुख सुख रूप परिणमन होता है। जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु की प्रखर किरणों के लगने से वृक्ष फलता है, इसी प्रकार धर्म धारण से इन्द्र तक का आसन कपायमान होता है।

युधिष्ठिर और उनके भाइयों द्वारा धर्म ध्यान व उपधान तप करने से एक देवता का आसन कम्पायमान हुआ और उसने अपने अवधिज्ञान के बल से जान लिया कि पाण्डवों पर कोई आकस्मिक विपदा आने वाली है। उसी के लिये वे घोर तप कर रहे है । वह तुरन्त भू लोक की ओर चल दिया और उसने संकल्प किया कि पाण्डवो को इस सकट से अवश्य ही उबारूगा ।

और प्रकट होकर पाण्डवों से बोला पाडु पुत्रों ! निश्चिंत रहो कि कोई भी शत्रु तुम्हारा कुछ नही कर सकता । कोई भी सकट पडने पर मैं तुम्हारी रक्षा अवश्य करुंगा ।"
महाराज युधिष्ठिर बोले— 'लेकिन कनकध्वज द्वारा विद्या सिद्ध कर लेने पर हमारी रक्षा कैसे हो सकेगी ?"

"धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा । तुम्हारा सहायक तुम्हारा पुण्य है ।"—इतना कह कर वह देव वहा से चल पडा और कुछ दूर पर बैठी द्रौपदी को हर कर ले गया ।

एक भांड की दृष्टि उस ओर पड़ी। पाण्डवों को उस पर बहुत क्रोध आया। युधिष्ठिर ने उसे पकडने के लिए नकुल और सहदेव को आदेश दिया। वे दोनों भ्राता उसी समय धनुष बाण सम्भाल कर उसके पीछे भागे।

तभी एक ब्राह्मण, जो पास ही रहता था, चिल्लाता हुआ आया—"महाराज ! दौड़ो, हिरण मेरी अरणी ले भागा ।"

युधिष्ठिर ने आश्चर्य चकित होकर पूछा—"हिरण अरणी कैसे ले भागा ?"

"महाराज ! मेरी झौंपड़ी के बाहर अरणी की लकड़ी टंगी थी हिरण आया और उस से अपने शरीर की खुजली मिटाने लगा, और खुजली मिटाकर भागने लगा, अरणी उसके सींग में अटक गई। सींग में अरणी अटकने से घबराकर वह बड़ी तीव्र गति से भागा जा रहा है।" ब्राह्मण ने कहा।

काठ के चौकोर टुकड़े पर मथनी जैसी दूसरी लकडी से रगड कर उन दिनो आग सुलगा लेते थे, उसको अरणी कहते थे ।

अर्जुन बोला—"तुझे अपनी अरणी की ही लगी है, द्रौपदी को एक दुष्ट हर ले गया, हमे उसकी चिन्ता है।"

"महाराज मेरी अरणी ......" ब्राह्मण ने फिर पुकार की।

युधिष्ठिर ने अर्जुन को रोकते हुए कहा—"ठीक है, इस ब्राह्मण की सहायता हमारे अतिरिक्त और कौन करेगा। जब ऐसे समय ब्राह्मण ने हमे याद किया है, तो हमें अवश्य ही उस की सहायता करनी चाहिए।"

फिर स्वय उस हिरण का पीछा करने के लिए दौडें। उन्हे दौडता देख कर भीम और अर्जुन भी साथ हो लिए। परन्तु हिरण तो सींग मे अरणी अटक जाने से छलांग लगाता बडी तीव्र गति से दौडा जा रहा था, अत तीनो भाई पीछे भागते भागते थक गए, और हिरण आखों से ओझल हो गया।

तीनों बुरी तरह थक गए थे और प्यास तीनो को बडे जोरो को लग रही थी, वे एक बरगद के पेड़ के नीचे बैठ गए। चारों

ओर दृष्टि डाली पर पानी कही दिखाई न दिया। दूसरी ओर से नकुल और सहदेव आगए।

युधिष्ठिर ने पूछा—"क्यों द्रौपदी कहां है ?"

"महाराज! वह दुष्ट न जाने कहां छुप गया, बहुत ढूंढा दिखाई ही नही दिया। हमें प्यास बड़े ज़ोरों की लगी है, पानी की खोज में इधर चले आये।" वे बोले।

अर्जुन को बड़ी निराशा हुई और वह कहने लगा—"भाई साहब! आप की एक भूल के कारण देखा! हमें कितने दुख भोगने पड रहे है। द्रौपदी का हरण हुआ, अब न जाने उसकी खोज मे कहा कहा लडना मरना पड़ेगा।"

भीम भी बोला—"अधर्म का फल देख लीजिए। आप महाराजाधिराज थे, और आज वन में प्यासे बैठे है, जिह्वा प्यास के मारे ऐंठ रही है। और पानी का कही पता ही नही है।"

नकुल ने कहा—"भ्राता जी! प्यास के मारे हमारा बुरा हाल है, पानी कही नही मिला। मुझे तो ऐसा लगता है कि पानी बिना ही मैं मर जाऊंगा।"

"आओ बैठ कर भ्राता जी की बुद्धि को रोलें।" भीम बोला।

युधिष्ठिर समझ गए कि प्यास के मारे सभी बौखला गए है। असहनी प्यास ने उनके विश्वास को भी झझोड डाला है। उन्होने सहदेव से कहा—"वृक्ष पर चढ कर देखो तो सही कही जलाशय भी दिखाई देता है अथवा नही।"

सहदेव वृक्ष पर चढा और उसने चारो ओर देख कर बतलाया कि कुछ दूरी पर कुछ ऐसे वृक्ष दिखाई देते हैं जो जलाशय के तट पर ही होते हैं। कदाचित वहीं जलाशय है।

युधिष्ठिर ने कहा—'तो फिर तुम जाओ और शीघ्र ही जल लेकर आओ।"

सहदेव उस जलाशय पर गया। उस ने सोचा कि पहले स्वयं पानी पी लूं। फिर कमल के पत्तो मे भ्राताओं के लिए पानी ले जाऊगा। ज्यो ही उस ने पानी मे पैर रक्खा एक आवाज आई—"ठहरो! यह जलाशय मेरे अधिकार मे है। पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो तब पानी पीना।"

सहदेव को यह बात सुनकर बड़ा क्रोध आया। वह बोला —"मै तो प्यास के मारे मरा जा रहा हूं। वहां मेरे भाई प्यास से तडप रहे है और तुझे प्रश्नों की पड़ी है।"

इतना कह कर उसने अपनी शक्ति का विश्वास करते हुए पानी पिया। ज्यों ही पानी पीकर बाहर निकला। वह मूर्छित होकर गिर पडा।

जब बहुत देरी हो गई और सहदेव न लौटा तो युधिष्ठिर ने नकुल को कहा—"सहदेव को गए हुए बहुत देरी हो गई। पर वह अभी तक नहीं लौटा। देखो तो सही क्या बात है?"

नकुल गया, तो उसे अपने भ्राता को अचेत अवस्था में पड़ा देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने बहुत ध्यान से देखा पर उसे वह मृत प्रतीत हुआ वह क्रोध मे भर गया, उसने कहा —"कौन है, जिसने मेरे भाई की हत्या की है। मेरे सामने आ।"

बार बार पुकारने पर भी जब कोई सामने न आया तो उसने सोचा कि पहले पानी पी लू फिर उस दुष्ट का सहार करूगा वह पानी मे उतरने लगा। तो वही आवाज आई—"ठहरो! यह जलाशम मेरे अधिकार मे है, पहले मेरे प्रश्नो का उत्तर दो, तब पानी पीना।"

"अभी ठहर! तुझे बताता हू। तूने ही मेरे भाई की हत्या की है। मैं तुझ से अपने भ्राता की हत्या का बदला लूगा तनिक मुझे पानी पी लेने दे।" नकुल ने पानी पिया, जब वह बाहर आया तो मूर्छित होकर गिर पड़ा।

जब नकुल को गए हुए भी बहुत देरी हो गई, तो युधिष्ठिर

ने अर्जुन को भेजा। अपने दो भाईयों को जलाशय के तत्पर मृतावस्था मे देखा तो वह फूट फूट कर रोने लगा। उसकी छाती शोक से फटी सी जाती थी। कुछ देरी बाद वह उठा, पानी पीने के लिए बढ़ा। तभी आवाज़ आई—"ठहरो। इस जलाशय पर मेरा अधिकार है। पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो............"

अर्जुन ने गर्जकर कहा—"अच्छा तो तुम ही हो मेरे भाईयों के हत्यारे। दुष्ट सामने आ। पाण्डवों पर हाथ उठाने का मज़ा अभी चखाता हू।"

दूसरी ओर से ठहाका मार कर हसने को आवाज आई।

क्रुद्ध अर्जुन ने उसी समय गाण्डीव द्वारा शब्द बेधी बाण चलाने आरम्भ कर दिए। पर ठहाके की आवाज आती ही रही।

अर्जुन ने गर्जना की—"कौन है? छुपा हुआ क्यों है, शक्ति है तो सामने आ।

तब अर्जुन ने सोचा कि पहले पानी पी लूं, फिर इस की खबर लूगा। वह ज्यों ही पानी पीकर बाहर आया तट पर आते ही मूर्छित होकर गिर पड़ा।

जब अर्जुन को गए हुए भी बहुत देरी हो गई तो यह देखने के लिए कि माजरा क्या है? यह सब कहा खो गए, भीम आया। जलाशय पर तीनों को मृतावस्था में देखा तो भ्राताओं से लिपट लिपट कर रोने लगा। और फिर कडक कर बोला—"किसने मेरे भ्राताओं की हत्या की है। सामने आये। मैं अभी हो उसे बतादूगा कि पाण्डवों पर हाथ उठाने का मतलब है अपनी मृत्यु को निमत्रण देना।"

परन्तु कोई उत्तर न मिला। कोई सामने न आया। प्यास से व्याकुल भीम पानी पीने के लिए बढा। तब फिर वही आवाज आई—"ठहरो! इस जलाशय पर मेरा अधिकार है... ...."

भीम कड़क कर बोला—"अरे दुष्ट! हम शक्ति द्वारा भी

पानी पीना जानते है। तेरा साहस हो तो रोक।" "देखो! तुम्हारे भाइयो ने मना करने पर भी पानी पिया था, वह मृत पडे हैं। तुम भी ऐसी भूल मत करो।"—आवाज आई।

भीम की आंखे लाल हो गई, वह बोला—"अच्छा तो मेरे भ्राताओं के हत्यारे तुम्ही हो। छुप क्यो रहे हो, कायर! तुम्हे अपनी शक्ति पर तनिक सा भी अभिमान है तो सामने आओ "

कोई सामने नही आया। तब भीम ने कहा—"तो फिर मैं जल पीता हू। शक्ति हो तो आकर रोक।"

भीम ने पानी पिया और वह भी तट पर आकर बेहोश होकर गिर पडा।

जब चारो मे से एक भी न लौटा, तो युधिष्ठिर समझ गए कि जरूर मेरे भाई किसी सकट मे फस गए है। इसी लिए वे भाइयो की सहायता के लिए चल पड़े। जलाशय के पास आये तो चारो को मृत समान देख कर उन के नेत्रो से गगा यमुना बह निकली। वे कभी सहदेव के शरीर को टटोलते तो कभी अर्जुन के। कभी नकुल के पास बैठकर रोते तो कभी भीम के।

भीम के शरीर से लिपट कर बोले—"भैया भीम तुम ने कैसी कैसी प्रतिज्ञाएं की थी। क्या वे अब सब निष्फल हो जायेगी। बनवास के समाप्त होते होते क्या तुम्हारा जीवन भी समाप्त हो गया। देवता की बातें भी आखिर झूठी ही निकली। हाय अब किसके बल पर मैं गर्व करूगा? किस की गदा के बल पर मै दुष्टो को चुनोती दूगा?"

फिर वे अर्जुन के शरीर से लिपट कर बिलख बिलख कर रोने लगे—"अर्जुन! हाय आज तुम भी मुझे अकेला छोड गए। हाय अब मैं द्रौपदी को कैसे मुह दिखाऊगा? यह तुम्हारा गाण्डीव अब कौन उठायेगा?"

वे नकुल और सहदेव से लिपट कर भी बच्चो की भाति

रोये। वे बार बार सोचते कि ऐसा कौन शत्रु हो सकता है जिसमे इन चारों का बध करने की सामर्थ्य थी ?

वे अपनी भूल को ही भ्राताओं के बध का कारण समझ कर, पश्चाताप करने लगे- "हाय ! मैं ही यदि अधर्म पर पग न बढ़ाता जुआ न खेलता तो दिग्विजय की सामर्थ्य रखने वाले मेरे इन भ्राताओं का बध न होता। शास्त्रों में ठीक ही कहा है कि जुआ नाशकारी खेल है। मैं ही इन की अकाल मृत्यु का कारण बना। परन्तु यदि वास्तव मे मेरी भूल ही के कारण मुझ पर यह विपदा पडी, तो मुझे ही उस अजेय शक्ति ने उस का दण्ड क्यों न दिया ? क्यो मेरे प्रिय भ्राताओ को उसका दण्ड भोगना पडा।"

करुण क्रन्दन करते करते युधिष्ठिर को कितना ही समय व्यतीत हो गया। और वे प्यास से व्याकुल होकर जलाशय की ओर अग्रसर हुए। उन्होंने ज्यो ही पानी पीना चाहा। फिर वही आवाज आई। साथ ही यह भी आवाज आई कि—"युधिष्ठिर महाराज ! पानी न पिओ। तुम ने भी यदि अपने भ्राताओं जैसी ही भूल की, मेरे चेतावनी देने के उपरान्त भी पानी पिया, तो तुम्हारी भी वही दशा होगी, जो तुम्हारे भ्राताओं की हुई है।"

आवाज सुनते ही महाराज युधिष्ठिर रुक गए और वह समझ गए कि यह किसी यक्ष की माया है। फिर भी वे यह सोच कर पानी पीने लगे कि—"जब मेरे भ्राता ही संसार मे नहीं रहे तो मैं जी कर क्या करूंगा।"

दुखित युधिष्ठिर ज्यों ही जल पीकर बाहर आए औ अपने भ्राताओं के पास आते ही अचेत होकर गिर पड़े।

दूसरी ओर कनकध्वज ने कृत्या-विद्या सिद्ध करली। कृत्या उसके सामने पहुची और प्रसन्न होकर उसको मनोकामना पूर्ण करने का वचन दिया।

वह बोला—"यदि तुम मे अतुल्य शक्ति है, तो जाकर अभी ही पाण्डवों का काम तमाम करदो।"

कृत्या वहाँ से चल कर उस स्थान पर आई जहाँ पाण्डव मृत समान पड़े थे। उस ने देखा कि पाण्डव मृत समान पड़े हैं, और एक भील उन्हे उलट पलट कर देख रहा है। उसने भील से पूछा—"इन पाण्डवो को क्या हुआ ?"

वह दुखित होकर बोला—"दीखता नही यह मरे पड़े हैं। इन मे जीवन का एक भी चिन्ह नही है। हाय, हाय, किसी दैत्य ने इन्हे मार डाला।"

"तुम्हे इन के मरने का इतना दुख क्यों है ? क्या तुम इन के दास हो ?"—कृत्या ने पूछा।

आखो मे आसू भर कर भील बोला—"मैं क्या सारा संसार इनकी सेवा करने को तैयार रहता था। मैं दास तो नही, पर उनका भक्त अवश्य हू।"

"ऐसे क्या गुण थे इन मे ?"

"यह दुखियो का दुख हरने वाले, न्याय वत, धैर्यवान' सहन शील, दान वीर, धर्म पर अडिग रहने वाले योद्धा, समस्त ससार का भला चाहने वाले, शत्रु के साथ भी मित्रों जैसा व्यवहार करने वाले और असीम साहसी थे। इनके मरने से दुष्टो को खुल खेलने का अवसर मिल गया। दरिद्रों का अब कोई सहारा ही नही रहा।"—वह भील बोला।

कृत्या ने आश्चर्य से कहा—"अच्छा इतने गुणवत थे पाण्डव ! तो फिर कनकध्वज उन्हे क्यों मारना चाहता था ?" "उसे इन की हत्या करने के पुरस्कार स्वरूप दुरात्मा दुर्योधन अपने उस राज्य का एक भाग देने का वायदा कर चुका था, जो एक दिन पाण्डवों का ही था, छल, कपट और अन्याय द्वारा जिसे उस दुरात्मा ने अपने दुष्ट सहयोगियो के सहारे छीन लिया था।"—भील बोला।

"भील तुम ने मुझे बता कर बहुत ही अच्छा किया। मैं कृत्या हूं। मुझे कनकध्वज ने सात दिन की घोर तपस्या से सिद्ध

करके पाण्डवों की हत्या करने के लिए भेजा था।"—कृत्या बोली।

भील ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"आप कृत्या विद्या हैं। और धर्मराज युधिष्ठिर के परिवार का नाश करने के लिए उस दुष्टात्मा के कहने से चली आई? आश्चर्य की बात है। आप को तो उसी दुष्ट का बध करना चाहिए।"

कृत्या भील की बातें सुन कर तुरन्त वापिस चली गई और जाते ही कनकध्वज के सिर पर वज्र की भांति गिरी जिस से उसका सिर फट गया और कनक ध्वज यमलोक सिधार गया।

भील रूपी देव ने अमृत नीर का छींटा देकर धर्मराज युधिष्ठिर की मूर्छा दूर की। जब वे पूरी तरह सावधान होगए, तो अपने सामने भील को देख कर बोले "—भीलराज! वह कौन शक्ति है, जिसने मुझे मूर्छित किया था। उसी ने मेरे भ्राताओं को अपनी माया से मृत समान कर दिया।"

भील रूपी देव ने कहा—"हे धर्मराज! मेरे प्रश्नों का उत्तर दें तो आप का सब दुख दूर हो सकता है। आप ने उस समय मेरी बात नही मानी और पानी पिया।"

युधिष्ठिर समझ गए कि वह भील नही बल्कि कोई यक्ष है। अतः तर्क वितर्क करना ठीक न समझ उन्होंने कहा—"आप प्रश्न कीजिए।"

तब भील रूपी देव ने प्रश्न किए और युधिष्ठिर उत्तर देने लगे।

प्रश्न—"मनुष्य का कौन सदा साथ देता है?"

उत्तर—"धर्म ही उसका सदा साथ देता है।

प्र०—कौन सा ऐसा शास्त्र (विद्या) है जिसका अध्ययन कर के मनुष्य बुद्धिमान होता है।

उ०—मुनि गण की संगति से ही, मनुष्य बुद्धिमान होता है।

प्र०—भूमि से भी भारी वस्तु क्या है?

उ०—सन्तान को कोख में धरने वाली माता भूमि से भी भारी होती है।

प्र०—आकाश से भी ऊचा कौन है?

उ०—पिता।

प्र०—हवा से भी तेज चलने वाला कौन है?

उ०—मन।

प्र०—घास से भी तुच्छ कौन सी चीज है?

उ०—चिन्ता।

प्र०—विदेश जाने वाले का कौन मित्र होता है?

उ०—विद्या।

प्र०—घर ही मे रहने वाले का कौन साथी होता है?

उ०—पत्नि और धर्म।

प्र०—मरणासन्न वृद्ध का कौन मित्र होता है?

उ०—दान; क्यों कि वही मृत्यु के बाद अकेले चलने वाला जीव के साथ-साथ चलता है।

प्र०—बरतनों मे सब से बड़ा कौन सा है?

उ०—भूमि ही सब से बडा बरतन है जिस मे सब कुछ समा सकता है।

प्र०—सुख क्या है?

उ०—सुख वह चीज है जो शील और सच्चरित्रता पर स्थित है।

प्र०—किस के छूट जाने पर मनुष्य सर्व प्रिय बनता है?

उ०—अहभाव के छूट जाने पर!

प्र०—किस चीज के खो जाने से दुख नही होता?

उ०—क्रोध के खो जाने से।

प्र०—किस चीज को गंवा कर मनुष्य धनी बनता है?

उ०—लालच को।

प्र०—युधिष्टिर! निश्चित रूप से बताओ कि किसी का ब्राह्मण होना किस बात पर निर्भर करता है? उस के जन्म पर विद्या पर या शील स्वभाव पर?

जो लोए बंभणो वुत्तो, अग्गीव महिओ जहा।
सया कुसल संदिट्ठं, तं वयं बूम माहणं॥

जिन्हे कुशल पुरुषो ने ब्राह्मण कहा है, और जो सदा अग्नि के समान पूजनीय है, उन्ही को ब्राह्मण कहता हू ।

जो न सज्जइ आगंतुं, पव्वयंतो न सोयई।
रमए अज्जवयणम्मि, तं वयं बूम माहणं॥

जो स्वजनादि मे आसक्त नही होता और प्रव्रजित होने मे सोच नही करता किन्तु आर्य वचनो मे रमण करता है, उसी को मै ब्राह्मण कहता हू ।

जायरूवं जहा मट्ठं, निद्धंत मल पावगं।
रागद्दोस भयाईयं, तं वयं बूम माहणं॥

जिस प्रकार अग्नि से शुद्ध किया हुआ सोना निर्मल होता है उसी प्रकार जो राग द्वेष और भयादि से रहित है, उसे मै ब्राह्मण कहता हू ।

तस पाणे वियाणित्ता, संग हेण य थावरे।
जो न हिंसइ तिविहेणं, तं वयं बूम माहणं॥

जो त्रस और स्थावर प्राणियो को सक्षेप या विस्तार से जान कर त्रिकरण त्रियोग से हिंसा नही करता, उसी को मै ब्राह्मण कहता हू ।

कोहा वा जइ वा हासा, लोहा वा जई वा भया।
मुसं न वयई जो उ, तं वयं बूम माहणं॥

क्रोध से, लोभ से, हास्य तथा भय से भी जो झूठ नही बोलता, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हू ।

शास्त्रों मे कहा है:—

> कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
> वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह सब कर्म से होते है जिसमे शील नही, वह ब्राह्मण नही, जिस मे दुर्व्यसन हैं, वह चाहे कितना ही पढा लिखा हो, ब्राह्मण नही कहला सकता। चारों वेदो को कण्ठस्थ करके भी यदि कोई चरित्र भ्रष्ट हो तो वह नीच ही है। फिर चाहे उसने ब्राह्मण माता पिता से ही जन्म क्यों न लिया हो।

प्रश्न—सब से अधिक आश्चर्य की क्या बात है ?

उत्तर—प्रति दिन अपनी आंखों के सामने छोटे बड़े जीवों, बडे बडे बलिकण्ठो, महाराजाओं, विद्वानों आदि को मरते देखकर भी मनुष्य भोग लिप्सा मे अपने मनुष्य जीवन को गंवाता है और अपने रूप, रग, शक्ति विद्या, और ज्ञान पर अहकार करता है, यही सब से बडा आश्चर्य है।

इसी प्रकार भील रूपी देव ने कितने ही प्रश्न किए और धर्मराज युधिष्ठिर ने उसके तर्क संगत, धर्मानुसार और शास्त्रों के अनुसार उत्तर दिए।

अन्त मे देव बोला—"राजन्! आपकी धर्म बुद्धि से मैं बहुत प्रसन्न हू। वास्तव मे आप धन्य हैं। मैंने सुना था कि आप धर्मराज है, परन्तु आज मेरे सामने प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित हो गया। फिर भी अभी तक मुझे इस बात पर आश्चर्य है कि आप जैसा व्यक्ति जुए जैसे दुर्व्यसन मे फस गया।"

नतिमस्त होकर युधिष्ठिर बोले—"आप ठीक कहते हैं। मैं राजवंश की रीति का त्याग न कर पाया, और आज अपनी उसी एक भूल का इतना भयकर फल भोग रहा हू।"

"मैं आप के एक भाई को जिला सकता हूं। बताइये आप
ार में से किसे जीवित देखना चाहते हैं ?"—देव ने कहा।

युधिष्ठिर ने पल भर सोचा कि किसे जिलाऊं ? और
क देरि बाद बोले—"मुझे तो सब ही से प्रेम है। फिर भी
आप एक को ही जिला सकते हैं, तो जिसका रंग सांवला
ें कमल सी, छाती विशाल, और बांहे लम्बी लम्बी हैं और
तमाल के वृक्ष सा गिरा पड़ा है, वही मेरा भाई
ल जी उठे"

युधिष्ठिर की बात समाप्त होते ही भील रूपी देव ने अपने
रूप में प्रगट होकर कहा—"युधिष्ठिर ! भीमकाय शरीर
ले, बलिष्ट भीमसेन को छोड़कर नकुल को तुम ने क्यों
लाना ठीक समझा ? मैंने तो सुना था कि तुम भीम को ही
धिक स्नेह करते हो। और नहीं तो कम से कम अर्जुन को ही
ला लो, जिस का रण कौशल सदैव तुम्हारी रक्षा करता रहा।
न दो भाईयों को छोड़कर तुमने नकुल को जिलाने की इच्छा
कट की, इसका क्या कारण है ?

युधिष्ठिर बोले—"देवराज ! मनुष्य की रक्षा न भीम से
होती है न अर्जुन से। धर्म ही मनुष्य की रक्षा करता है और
विमुख होने पर धर्म ही से मनुष्य का नाश होता है। मेरे पिता
की दो पत्नियों में से एक मैं, कुन्ती पुत्र बचा हूं। मैं चाहता हूं
कि माद्री का भी एक पुत्र जी जाये। जिसमे हिसाब बराबर हो
जाए। इसी लिए मैंने नकुल को जिलाने की इच्छा प्रगट की।
धर्म नीति यही कहती है।" पक्षपात से रहित राजन् ! तुम्हारे
सभी भाई जी उठेंगे।—"इतना कह कर उस ने अमृत नीर वर्षाया
और अचेत भ्राताओं में पुनः चेतना लौट आई।

उस के पश्चात देव ने द्रौपदी को लाकर देते हुए कहा—
"द्रौपदी हरण, मृग द्वारा अरणी ले जाना और आप सभी को मूर्छित
करना यह मेरा ही काम था। मैं सौधर्म इन्द्र का प्रीति पात्र एक
एक देव हूं। आप के धर्म ध्यान से मेरा आसन डोला और मैंने

पता लगाया कि क्या कारण है। जब मुझे ज्ञात हुआ कि तुम लोगों पर आपत्ति आने वाली है, मैं वहां से चल कर आया और यह सब माया रची। जब तुम लोग मूर्छित अवस्था मे पड़े थे, तब कनक ध्वज द्वारा सिद्ध कृत्या तुम्हारा वध करने आई। और तुम्हें मृत समझकर, मेरे समझाने से वह वापिस लौट गई और क्रुद्ध हो कर उसने कनकध्वज की ही हत्या करदी।"

इस अवसर पर मैंने जो तुम्हारी परीक्षा ली, इस से मुझे ज्ञात हो गया कि तुम वास्तव में धर्मराज हो। तुम्हें कोई पराम्त न कर सकेगा। अब तुम्हारे बारह वर्ष पूर्ण हो रहे है। तुम्हारा एक वर्ष गुप्त रहने का काल भी ठीक प्रकार व्यतीत होगा। दुर्योधन तुम्हारा पता न लगा सकेगा।"

यह कह कर देव वहां से चला गया।

× × × × × ×

इस प्रकार कितने ही कष्ट सहन करते २ वनवास को बारह वर्ष की अवधि समाप्त हो गई। इस बीच अर्जुन ने पाशुपात विद्या सिद्ध कर ली, मासवर्मा नामक उपाध्याय के पास युधिष्टर की माने दिया जो देव वन गए थे, से भेंट हो गई। अपने भाई दुर्योधन को मुक्त करके अपनी विशाल हृदयता का प्रमाण दे दिया।

यह कथा सुन कर जो कोई अपने आचार विचार को शुद्ध करने का प्रयत्न करेगा, वह अवश्य ही धर्म पथ पर बढ़ सकेगा।

* चौदहवां परिच्छेद * तेरहवां वर्ष
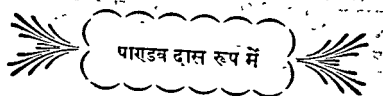
वनवास की अवधि पूर्ण होने पर युधिष्ठिर अपने आश्रम में रहने वाले विद्वानों से बोले —

हे विद्वानो ! धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों के जाल में फस कर हमें अपने राज्य से हाथ धोने पड़े। और महाराज पाण्डु की सन्तान होकर भी वनों में दीन-दरिद्रों की भांति जीवन व्यतीत करना पड़ा। यद्यपि हम बड़ी कठनाई से अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे, परन्तु आप लोगों की कृपा व समय समय पर मुनि राजों के सतसंग से यह दरिद्रय पूर्ण जीवन भी हमने बहुत आनन्द पूर्वक व्यतीत किया। परन्तु अब हमारा वनवास काल समाप्त हो गया और अब हमें शर्त के अनुसार एक वर्ष तक अज्ञात वास में रहना होगा। और कितनी कठोर शर्त है यह आप को ज्ञात ही है, अतः हमारे साथ आप लोगों का रहना ठीक नहीं है। आप के रहते हम अज्ञात वास में नहीं रह सकते। हमें प्रत्येक उस व्यक्ति से छुप कर रहना होगा जो भय से अथवा प्रलोभ में आकर दुर्योधन को हमारा पता बतलादे। अतः आप से विदा चाहते हैं। आप हमें आशीष देकर विदा करें।"

कहते कहते युधिष्ठर की आंखें डब डबा आईं। विद्वानों ने कहा—"महाराज ! आप के स्वभाव, दया भाव और प्रेम के कारण ही हम वन में आप के साथ रहे। आप के मन की व्यथा

को हम समझते हैं। परन्तु विपत्तियां किस पर नहीं पड़ती। जो विश्व विभूतियां होती हैं, उन पर संकट आते ही है, संकटों में ही उनकी परीक्षा होती है। विश्वास रक्खें कि आप शत्रुओं पर अवश्य विजय प्राप्त करेंगे।"

विद्वानों और अन्य मित्रों को इस वार्तालाप के पश्चात महाराज युधिष्ठिर ने विदा दी। वे सभी हस्तिनापुर की ओर चले गए और वहां जाकर लोगों में यह बात फैला दी कि पाण्डव आधी रात को हमें सोता छोड़कर कहीं चले गए। यह बात सुनकर उन लोगों में भान्ति भान्ति की शंकाएं उत्पन्न हो गई जो पाण्डवों के प्रशंसक अथवा भक्त थे। कुछ लोग तो इस समाचार से बहुत ही दुखित हो गए।

विद्वानों तथा अन्य साथियों के चले जाने के उपरान्त पाण्डव एकान्त में बैठ कर भावी कार्य क्रम पर विचार करने लगे। युधिष्ठिर ने अर्जुन को सम्बोधित करके कहा—"अर्जुन! तुम लौकिक व्यवहार में निपुण हो। तुम्ही बताओ कि यह तेरहवां वर्ष किस देश में और कैसे बिताया जाय?"

अर्जुन बोला—"महाराज! स्वयं धर्म देव ने आप को वरदान दिया है, इस लिए मुझे पूर्ण आशा है कि हमारा तेरहवां वर्ष भी सुगमता से कट जायेगा और दुर्योधन हमारा पता न लगा सकेगा चारों ओर पांचाल, मत्स्य, शाल्व, वैदेह, वाल्हिक, दशार्ण, शूरसेन, मगध आदि कितने ही देश हैं। उन में से आप जिसे पसन्द करें वहीं चलकर रहें। हां, मेरी राय यह है कि हम सभी को साथ ही रहना चाहिए। वेष चाहें भिन्न भिन्न हों।

"फिर भी तुम इन सभी देशों में से किसे पसन्द करते हो?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"महाराज! मेरी राय तो यह है कि मत्स्य देश में जाकर रहा जाय। वहां का अधिपति महाराज विराट है, उस की राजधानी बड़ी ही सुन्दर और समृद्ध है। आगे आप की जैसी मर्जी।" —अर्जुन बोला।

"हाँ, विराट राजा से तो मैं भी परिचित हूं, वे बड़े ही शक्ति सम्पन्न, धर्म पर चलने वाले, धैर्यवान और सुलझे हुए वयोवृद्ध हैं, हमें चाहते भी बहुत हैं। दुर्योधन की बातों में भी आने वाले नहीं हैं। इस लिए मेरी भी यही राय है कि उनके यहां ही छुप कर रहा जाय।"—युधिष्ठिर ने अर्जुन की बात का अनुमोदन करते हुए कहा।

"अच्छा, यह तो तय हुआ समझो, पर यह भी तो सोचना है कि हम लोग वहां किस वेष मे रहेंगे और उनका कौनसा काम करेंगे?"—अर्जुन ने प्रश्न उठाया और यह सोच कर उस का जी भर आया कि जिन धर्मराज युधिष्ठिर ने सम्राट पद प्राप्त किया था, वे ही अब विराट के सेवक या दास बन कर रहेंगे। और जिन धर्मराज को छल कपट छू तक भी नहीं गया, उन्हें ही छद्म वेष मे रह कर नौकरी करनी पड़ेगी?

कुछ देर विचार करने के उपरान्त युधिष्ठिर बोले—"लो भाई! मैंने अपने लिए तो सोच लिया। मैं तो महाराज विराट से प्रार्थना करूंगा कि वे मुझे अपने दरबारी काम के लिए रख लें। मैं सन्यासी का सा वेष बना कर कंक के नाम से रहा करूंगा। राजा के साथ मैं चौपड़ खेला करूंगा और इस प्रकार उनका मन बहलाया करूंगा। चौपड़ खेलने के अतिरिक्त मैं राज पण्डित का काम भी कर लूंगा। ज्योतिष शकुन, नीति आदि शास्त्रों तथा जो कुछ ज्ञान मुझे है, उस से राजा को हर प्रकार से प्रसन्न रखूंगा। साथ ही सभा में राजा की सेवा टहल भी कर लूंगा। कह दूंगा कि राजा युधिष्ठिर का मैं मित्र बन चुका हूं। मैं इस प्रकार रहूंगा कि विराट को कोई सन्देह भी नहीं हो पायेगा और दुर्योधन के गुप्तचर भी न समझ पायेंगे कि वास्तव में मैं कौन हूं। अब तुम लोग बताओ कि क्या क्या काम करोगे?"

युधिष्ठिर की बात सुन कर सभी अपने अपने सम्बन्ध मे सोचने लगे। कुछ देरी तक सभी विचार मग्न रहे, पूर्ण शांति व्याप्त रही, तभी शांति भंग करते हुए युधिष्ठिर बोले—"भैया भीम! तुम बताओ कि कौन सा काम करोगे? तुम ने तो आज

तक किसी की बात सहन करनी नही जानी। जिस ने तुम्हारे स्वाभिमान को चोट पहुचाई उसी को तुम ने अपने क्रोध का शिकार बनाया। तुम ने हिडम्बा सुर का वध किया, एक चक्रा नगरी में बकासुर का वध कर के नगरवासियों को चिन्ता मुक्त किया। जब भी हम पर विपदा आई तुम अपने असीम बल की पतवार से हमारी नौका पार लगाते रहे। तुम कसे किसी का सेवक होना स्वीकार करोगे? और कैसे अपने को काबू मे रख सकोगे। वहा तो जिस के आधीन रहोगे उसकी उचित-- अनुचित- सभी बातें सहनी पडेंगी। आह! तुम कैसे अपने को छुपा सकोगे? महाबली कैसे किसी का दास रह सकेगा? मुझ सभी से अधिक चिन्ता तुम्हारी है। जिस प्रकार मुश्क और अगारे को कितना हा छुपा कर रक्खो पर वह छुप नही पाता, इसी प्रकार तुम्हारा गुप्त रहना दुर्लभ है।"

कहते कहते युधिष्ठिर का गला रुध गया। उन्होंने अपने आंसू पीते हुए कहा—"मुझे क्या पता था कि मेरा प्यारा भीम कभी किसी का दास बनने पर भी विवश होगा।"

भीम उन्हे धैर्य बन्धाते हुए बोला—"महाराज! आप क्यों अधीर होते है? मैं परिस्थित को भलि प्रकार समझता हूं। बारह मास की ही तो बात है, जसे तैसे व्यतीत कर लूगा। मेरा विचार है कि मैं राजा विराट का रसोइया बन कर रहूगा। आप जानते ही हैं कि मैं रसोई बनाने मे बडा ही कुशल हू। राजा को ऐसे ऐसे स्वादिष्ट भोजन बना कर खिलाया करूगा, जो उन्होने कभी खाये न हों। मेरे कार्य से वे प्रसन्न हो जायें गे। जगल से लकडिया भी ले आया करूगा, इस के अतिरिक्त राजा के यहा कोई पहलवान आया करेगा, तो उस से कुश्ती लड कर राजा का मन बहलाया करूगा। आप विश्वास रक्खे कि मैं कभी अपने को प्रकट न होने दूगा।"

जब कुश्ती लडने की बात युधिष्ठिर ने सुनी तो उनका मन विचलित हो गया, वे सोचने लगे कि कहो भीम सेन कुश्ती लडते लडते ही मे कोई अनर्थ न कर बैठे जिसके कारण कोई और विपत्ति

खड़ी हो जाय और सारा बना बनाया खेल ही धूल में मिल जाये। युधिष्ठिर की बात भीम ने ताड़ली और शंका समाप्त करने के लिए भीम ने कहा—"भ्राता जी! आप निश्चिन्त रहें। मैं किसी को जान से नही मारूंगा। हां जो अधिक अकड़ फू दिखाया करेगा उसकी हड्डियां अवश्य चटखा दिया करूंगा, पर किसी को प्राण रहित नही करूंगा।"

"हां कहीं कोई नया उत्पात न खड़ा कर देना?"

"आप विश्वस्त रहें। ऐसी कोई बात नही होगी जिस से मेरे कारण आप को किसी विपत्ति मे फंसना पड़े। हंसते हुए भीम ने कहा।

"भैया अर्जुन! तुम्हारी वीरता और कान्ति तो छिपाये नही छिप सकते। तुम कौन सा काम करोगे?" युधिष्ठिर ने भीम से आश्वस्त होकर अर्जुन से पूछा।

अर्जुन ने उत्तर दिया—"भाई साहब! मैं भी अपने को छिपा लूंगा। विराट के रनवास में रानियों और राजकुमारियों की सेवा टहल किया करूंगा।"

"तुम्हें रनवास में भला रखेगा कौन?" युधिष्ठिर हंस कर बोले।

"मैं वृहन्नला बन जाऊंगा। मैं सफेद शंख की चूड़ियां पहन लूंगा, स्त्रियों की भांति चोटी गूंथ लूंगा और कंचुकी भी पहन लूंगा। इस प्रकार विराट के अन्तः पुर मे रह कर स्त्रियों को नाचना गाना भी सिखाया करूंगा। जब कोई मुझ से पूछेगा तो कह दूंगा कि मैंने द्रौपदी की सेवा मे रह कर यह हुनर सीख लिया है।"—अर्जुन यह कह कर द्रौपदी की ओर देख कर मुस्करा दिया।

अर्जुन की बात सुन कर युधिष्ठिर फिर उद्विग्न हो उठे। बोले—"देखो कर्मों की गति कैसी है। हमें कैसे कैसे नाच नचा रहा

है। जो कांति और पराक्रम में वासुदेव के समान है, जो भारत देश का रत्न है; और जो मेरु पर्वत के समान गर्वोन्नित है, उसी अर्जुन को राजा विराट के रनवास में नपुंसक बन कर जाना पड़ेगा और रनवास में नौकरी करने की प्रार्थना करनी पड़ेगी। उफ! हमारे भाग्य में क्या क्या लिखा है?"

इसके पश्चात युधिष्ठिर की दृष्टि नकुल और सहदेव पर पड़ी। दुखित हो कर पूछा—"भैया नकुल! तुम्हारा कोमल शरीर यह दुख कैसे सहन कर सकेगा? तुम कौन सा काम करोगे?"

नकुल जो अब तक अपने सम्बन्ध में पूर्ण विचार कर चुका था बोला—"मैं विराट के अस्तबल मे काम करूंगा। घोड़ों को सधाने और उनकी देख रेख करने मे मेरा मन लग जायेगा। घोड़ों के इलाज का मुझे अच्छा ज्ञान है। किसी भी घोड़े को मैं काबू में भी ला सकता हू। फिर चाहे घोड़ा सवारी का हो, अथवा रथ का, सभी को मैं साध लिया करूंगा। विराट से कह दूंगा कि पाण्डवों के यहां मैं अश्वपाल के काम पर लगा हुआ था। निश्चय ही मुझे अपनी पसन्द का काम मिल जायेगा।"

अब सहदेव की बारी आई। युधिष्ठिर बोले—"बुद्धि मे बृहस्पति और नीति शास्त्र मे शुक्राचार्य ही जिसकी समता कर सकते है, और मंत्रणा देने मे जिसके समान कोई भी नहीं, ऐसा मेरा प्रिय अनुज सहदेव क्या काम करेगा?"—युधिष्ठिर का गला उस समय अवरुद्ध था।

सहदेव बोला "भ्राता जी! जब सभी छोटा से छोटा कार्य करने को तैयार है, आप जैसे महाराजाधिराज, व धर्मराज नौकर बन कर सेवा टहल करने को तैयार हो गए, भीम भैया महाबली रसोइया अर्जुन जैसा धनुर्धारी नपुंसक और नकुल भैया अस्तबल का सेवक बन कर कार्य करेंगे तो फिर मुझे किस बात की परेशानी है। मैं अपना नाम तान्ति पाल रख कर विराट के चौपायों की देख भाल करने का काम कर लूगा। गाय बैलों को किसी प्रकार की बीमारी न होने दूगा और जगली जानवरों से उनकी रक्षा किया

करूंगा कि उनकी संख्या भी बढती जाये, वे हृष्ट पुष्ट हों और दूध भी अधिक देने लगें।"

इस के पश्चात युधिष्ठिर द्रौपदी से पूछना चाहते थे कि तुम कौनसा काम करोगी, पर उसका साहस न हुआ। मुँह से शब्द ही न निकलते थे. वे मूक से बने रहें, जो आदरणीया हैं, देवी के समान जिसकी पूजा होनी चाहिए, वह सुकुमार राज कुमारी किसी की कैसे और कौनसी नौकरी करेगी। युधिष्ठिर को कुछ न सूझा। मन ही मन व्यथित होकर रह गए यह सोच कर भी उनका मन सिहर उठता था कि जिसने सदा ही दास दासियों से सेवा कराई है, जो दूसरों को आदेश देती रही है, वह कैसे किसी की दासी बन कर उसके आदेशों का पालन कर सकेगी?

द्रौपदी समझ गई, और स्वय ही बोली—"महाराज! आप मेरे लिए शोकातुर न हों। मेरी ओर से निश्चिन्त रहें। सैरन्ध्री बन कर मैं राजा विराट के रनवास मे काम करूंगी। रानियो और राजकुमारियो की सहेली बन कर उन को सेवा टहल भी करती रहूंगी। अपनी स्वतन्त्रता और सतीत्व पर भी कभी आंच न आने दूंगी। राजकुमारियों की चोटी गूथने और उनके मनोरजन के लिए हसी खुशी से बातें करने के काम मे लग जाऊंगी। मैं कहूंगी कि महारानी द्रौपदी की कई वर्ष तक सेवा शुश्रुषा करती रही हूं।"

द्रौपदी की बात सुन कर युधिष्ठिर के आनन्द का ठिकाना न रहा। उसकी सहन शीलता की प्रशंसा करते हुए बोले—"धन्य हो कल्याणी! वीर वश की वेटी हो तुम! तुम्हारी यह मंगलकारी बातें और सहन शीलता का आदर्श तुम्हारे कुल के अनुरूप हैं।"

★ ★ ★ ★ ★ ★ ★

विद्याधर, खेचर आदि कितने ही अनेक प्रकार के लोग अर्जुन के मित्र थे। साथ ही महाराज युधिष्ठिर के पास वह अंगूठी भी थी जो उन के पिता पाण्डु को किसी समय एक विद्याधर ने दी

थी। पाठकों को याद होगा कि उसी अंगूठी के सहारे पाण्डु नृप कुन्ती से मिले थे। इस प्रकार की कितनी ही सुविधाएं वेष बदलने और रूप रंग आदि इच्छानुसार परिवर्तित न करने के लिए पाण्डवों को उपलब्ध थी। अर्जुन ने उस समय पाण्डु नृप वाली अंगूठी के सहारे अपना नपुंसक जैसा रूप धारण कर लिया और विराट नृप की राजधानी की ओर चल पड़े।

* पन्द्रहवां परिच्छेद *

कीचक वध
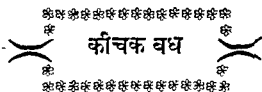
मत्स्य नरेश विराट सिंहासन पर विराजमान थे। एक सेवक ने आकर उन्हें प्रणाम करते हुए कहा—"महाराज की जय विजे हो एक सन्यासी आप के दर्शन करना चाहता है। अपना नाम और आने का तात्पर्य कुछ भी नहीं बताता।"

विराट नृप ने सेवक को आदेश दिया कि उसे दरबार में आने दो।—और कुछ देर बाद एक सन्यासी वेषधारी व्यक्ति विराट के सामने आ उपस्थित हुआ। ब्राह्मण समझ कर विराट ने उस का अभिवादन किया और आने का कारण पूछा।

वह बोला—"मेरा नाम कंक है, मैं महाराजाधिराज युधिष्ठिर का मित्र हूं। चौसर खेलने, ज्योतिष राजनीति आदि में निपुण हूं। जब से सम्राट युधिष्ठिर का राज्य दुर्योधन ने छीन लिया और वे जंगलों में चले गए, तभी से बेकार मारा मारा फिर रहा हूं। सम्राट युधिष्ठिर को मैंने बहुत खोजा, पर कहीं पता न लगा। जीवन यापन का कोई साधन नहीं था। आप के गुणों की प्रशंसा सुनी। युधिष्ठिर भी आप की बड़ी ही प्रशंसा किया करते थे, अतः विवश होकर आप की शरण आया हूं। यदि आप मुझे अपनी सेवा में रख लें तो अति कृपा हो। महाराज युधिष्ठिर द्वारा पुनः सिंहासनारूढ़ होने पर मैं उनके पास चला जाऊंगा।"

विराट ने युधिष्ठिर का नाम सुना तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई वह कह बैठे—महाराजाधिराज युधिष्ठिर का जिक्र करके तुम ने हमारे मन में व्यापक दुख को हरा कर दिया। "ओह! कितना अन्याय हुआ उन के साथ? वे तो वास्तव मे बड़े ही बुद्धिवान, दयावान और धर्म नीति का पालन करने वाले अद्वितीय नरेश है। पर उनकी एक भूल ने ही उन्हें राजा से रंक बना दिया। पर तुम उनके मित्र हो, अपने को चौसर के खेल में निपुण बताते हो, फिर तुम्हारे रहते युधिष्ठिर चौसर में क्यो हार गए?"

"महाराज! उस समय मै उनके पास नही था, उन्हें तो धोखे से हस्तिनापुर बुलाया गया था, यदि मैं उनके साथ होता तो फिर शकुनि की क्या मजाल थी कि वह उन्हे परास्त कर देता।" —कक ने कहा।

"जो भी हो, हम तुम्हे निराश नही करेगे। महाराज युधिष्ठिर के दरबार की भाँति ही इस दरबार को समझो।" विराट बोले।

'महाराज! मुझे आप से ऐसी ही आशा थी। वास्तव मे आप के सम्बन्ध मे महाराज युधिष्ठिर ने जो बताया था, वह अक्षरशः सत्य सिद्ध हो रहा है।—मेरे साथ महाराज युधिष्ठिर के कुछ और सेवक भी है। जो अपने अपने काम में सर्व प्रकार से निपुण है। वे भी जीवन यापन के लिए ही आप की शरण आये है।" कक रूपी युधिष्ठिर ने कहा।

विराट ने उसी समय उन लोगों को भी बुला लिया। भीम से पूछा—"तुम महाराज युधिष्ठिर के यहा क्या काम करते थे?"

"महाराज! मैं उनकी रसोई मे काम करता था, मुझ से वह बहुत प्रसन्न थे।"

"डील डौल से तो तुम्हारे कथन [illegible] नहीं।

"मुझे बचपन से पहलवानी का [illegible] और युधिष्ठिर भी मुझे कभी [illegible] कुश्ती [illegible]

करते थे, बस यह डील डौल उसी की निशानी है।"—भीम बोला।

"तो फिर यहां भी तुम्हें रसोई के साथ साथ कुश्तियां भी दिखानी पड़ा करेंगी।"—विराट ने कहा।

—और भीम को रसोइया रख लिया गया। फिर नम्बर आया अर्जुन का।

"क्या तुम भी महाराज युधिष्ठिर के सेवक थे?"—नपुंसक के रूप में अर्जुन से विराट ने प्रश्न किया।

"जी! मैं सेवक नहीं सेविका थी।"

तुम्हारा यह रूप क्या है, वस्त्र नारियों से, आवाज और शरीर की बनावट पुरुषों सी। आधा तीतर आधा बटेर।"—विराट ने हंसते हुए कहा।

"महाराज! प्रकृति ने मुझे न पुरुष बनाया और न स्त्री। न जाने क्या इच्छा थी प्रकृति की। बस बीच बीच का ही रूप बन गई। मेरा नाम बृहन्नला है।" बृहन्नला रूपी अर्जुन ने कहा।

"तो बृहन्नला! तुम किस कार्य में दक्ष हो?"

"महाराज मैं राजकुमारियों को नाचना, गाना, शृंगार करना आदि आदि बहुत से काम जिनका मरदों से वास्ता नहीं, रानियों और राज कन्याओं से ही सम्बन्ध है, करती रही हूं।"

इसी प्रकार नकुल और सहदेव ने अपने पूर्व निश्चयानुसार अपने अपने योग्य कार्य बताए। विराट ने युधिष्ठिर के नाम पर उन्हें उनकी मन पसन्द काम दे कर नौकर रख लिया। द्रौपदी और बृहन्नला को रनवास में लगा दिया गया।

पांच राज पण्डित बे स्थान पर नियुक्त कर दिये गए थे, वे विराट के साथ चौसर खेल कर दिन व्यतीत करते, समय समय पर

उचित परामर्श देते और नीति सम्बन्धी बातें बता कर विराट के सामने आने वाली समस्याएं सुलझाते। भीम रसोई में जी लगा कर काम करता, विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बना कर राजा को खिलाता और विराट के राज्य के कितने ही पहलवानों से कुश्ती लड़ कर राजा का मनोरंजन करता, इस प्रकार उसने विराट का मन जीत लिया। नकुल और सहदेव अस्तबल व पशुशाला में मन लगा कर काम करते, और घोड़ों तथा पशुओं की उचित प्रकार से देख भाल करके राजा को सन्तुष्ट करने मे सफल हुए।

उधर अर्जुन बृहन्नला के रूप में विराट की कन्या उत्तरा को नाच गाना सिखाता और द्रौपदी सैरन्ध्री के रूप में रानी सुदेष्णा की मन लगा कर सेवा करती। इस प्रकार वे दोनों ही रनिवास में छुपकर रहते रहे।

× × × × × × ×

रानी सुदेष्णा का भाई कीचक बड़ा ही बलवान था, वह अपनी बहन के यहां ही रहता था। उस ने अपने भाईयों को साथ लेकर विराट की सेना को सशक्त बना रक्खा था उसकी वीरता से प्रभावित होकर विराट ने उसे अपनी सेना का सेनापति बना दिया था। वह सारे राज्य पर छा गया था और अपनी चतुरता एवं वीरता से उसने अपना एक ऐसा स्थान पा लिया था कि विराट के राजा होते हुए भी एक प्रकार से मत्स्य देश पर कीचक ही राज्य करता था। उस की बात टालने या उसकी इच्छा विरुद्ध चलने का साहस विराट को भी न होता था। अतएव समस्त प्रजा भी रचनात्मक रूप से कीचक को ही राजा मानती और विराट मन ही मन उससे डरते थे।

कीचक चूलिका नरेश चूलिका का बेटा था। उसे विराट से प्राप्त जो शक्ति प्राप्त थी उस से उसे अहंकार हो गया था। वह जो चाहे कर सकता है, इस का उसे अभिमान था।

कीचक ने जब इन्द्राणी समान सुन्दरी द्रौपदी को देखा तो वह एक ही भलक मे अपना दिल दे बैठा। सैरन्ध्री के रूप पर

वह मुग्ध हो गया और उसे दासी समझ कर आसानी से ही फंसा लेने की आशा करने लगा। सौरन्ध्री के प्रति उसकी आसक्ति की यह दशा हो गई कि सोते जागते, हर समय उस के नेत्रों मे सौरन्ध्री की छवि ही घूमती रहती और वह जैसे तैसे उस से मिलने का प्रयत्न करने लगा।

सौरन्ध्री ने कीचक के नेत्रों मे तैरते विषयानुराग को भांप लिया, वह समझ गई कि यह पापी उसे भूखे नेत्रो से क्यों देखता है और उसके नेत्रों मे उमड़ती वासना की बाढ का क्या परिणाम निकल सकता है, वह उसकी शक्ति को अच्छी तरह समझती थी। अतएव वह सदा ही उस से चौकन्नी रहती, और कोई ऐसा अवसर न आने देती, जिस में कि कभी एकान्त मे कीचक का सामना हो।

पर वह बेचारी दासी जो थी, अपने पति की वर्तमान दशा को भलि प्रकार समझती थी, अत यह जानते हुए भी कि उसका पति इतना महान शक्तिवान है कि कीचक जैसे दुराचारियों को एक ही वार से ठिकाने लगा सकता है, अपने मन मे उठते भय के ज्वार को मन ही मे दफन कर लेती, अपने पति अर्जुन से कभी कुछ न कहती।

वह सोचती, ग्यारह मास बीत चुके, बस एक मास और शेष है, इस समय को जैसे तैसे अपने सतीत्व की रक्षा करते हुए बिता देना ही ठीक है कहीं अर्जुन को इस नीच की दुर्भावना का पता चला गया तो वह आग बबूला होकर इस दुष्ट को दण्डित कर डालेगा और न जाने इस के कारण इसका क्या परिणाम निकले, महाराज युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा पूरी न हो सकेगी और पुनः उन्हे १२ वर्ष के लिए बनवास मिलेगा।

परन्तु कीचक की पाप दृष्टि तो उन कुत्तों की भाति सदा उसका पीछा करती रहती थी, जो कि मांस के एक टुकडे के लिए जीभ निकाले फिरते हैं। सौरन्ध्री रूपी दीप शिखा पर कीचक रूपी पतिंगा जल मरने तक को तत्पर था। जहा यह दीप शिखा पहुचती, वहीं कीचक की भूखी दृष्टि आ जाती। सौरन्ध्री के

एक एक पग पर वह अपने हृदय को न्योछावर करने को तत्पर रहता। उस के लिए अब वह केवल उसकी बहन की दासी नहीं रह गई थी; उसके हृदय की रानी उसका हृदय की एक एक धड़कन में सौरन्ध्री का नाम बस गया था। वह प्रत्येक क्षण उस को अपनी कामवासना का शिकार बनाने की युक्तियां सोचता रहता। वह जब भी सौरन्ध्री को देखता उसके रक्त का ताप मान बढ जाता, हृदय की गति तीव्र हो जाती और उस का मन उसको अपने निकट खींच लेने के लिए उतावला हो जाता, पर सौरन्ध्री कभी ऐसा अवसर ही नहीं आने देती, जब कि वह कामान्ध एकान्त में उसे पा सके।

परन्तु भेडिये की मांद में रह कर भेड़िए का सामना न हो, यह भला कैसे सम्भव है? एक दिन अनायास ही सौरन्ध्री का सामना हो गया। एक सौरन्ध्री थी और दूसरा था कीचक। इनके अतिरिक्त वहा कोई न था।

"सौरन्ध्री!"—कीचक ने पुकारा।

सौरन्ध्री चौंक पडी और कीचक को देखते ही उसका सारा शरीर काप उठा। भय उस के मन पर छा गया। अपनी मनोदशा छुपाने की उस ने लाख कोशिश की पर कीचक भाप गया।

"तुम कुछ भयभीत दिखाई देती हो। क्या बात है?"

"जी, कोई देख ... "

"ओह यह बात है? नहीं नहीं इस बात से भयभीत होने की तुम्हे कोई आवश्यकता नहीं। तुम जानती हो यहाँ मेरा राज्य है, विराट तो नाम मात्र के लिए है।"

सौरन्ध्री ने वहा से खिसकने का प्रयत्न किया तो दुष्ट कीचक बोल उठा—"भागती कहा हो? तनिक मेरी छाती पर तो हाथ धर कर देखो। तुम्हारे लिए मेरे हृदय की धडकने क्या कहती है। सौरन्ध्री! कदाचित संसार में तुम ही एक मात्र सुन्दरी हो; जिसके सौंदर्य ने मेरी आखो से नींद और हृदय मे चैन छीन लिया है।

पर तुम हो कि मै जितना तुम्हारे निकट आने का प्रयत्न करता हूं, उतनी ही तुम मुझ से दूर रहने के लिए प्रयत्नशील रहती हो। आखिर इतनी घृणा का क्या कारण है?"

"आप को किसी पर-नारी से ऐसी बाते करते लज्जा नही आती?"— सौरन्ध्री ने अपने मनोभावों को छुपाने का प्रयत्न किया और कीचक की बातों से उस के हृदय मे उस के प्रति जो घृणा एव क्रोध का तूफान उठा था, उसे रोके रहने का असफल प्रयत्न किया, पर जैसे किसी कटोरे मे मात्रा से अधिक पानी भर देने से पानी छलक पड़ता है, उसी प्रकार सौरन्ध्री का क्रोध भी छलक पड़ा।

"तुम लज्जा की बात कहती हो, पर मेरे हृदय की दशा को नहीं जानती? तुम्हें पता नहीं कि मैं तुम्हारे लिए किस प्रकार तड़प रहा हूं। तुम्हारा सौभाग्य है कि मुझ जैसे सर्व शक्ति सम्पन्न सेना पति ने अपना मन तुम जैसी दासी पर वार दिया है। पर वास्तव में तुम्हारे रूप ने मुझे घायल कर दिया है। और तुम्ही मुझे लज्जा का पाठ पढ़ाती हो। सौरन्ध्री! मेरे हृदय से इतना अन्याय पूर्ण खेल मत करो।"— कीचक ने बहुत ही प्रेम पूर्ण स्वर से कहा।

सौरन्ध्री की आंखों में खून उबल आया, बोली—"कामान्ध होकर यह मत भूलो कि मैं एक बलिष्ठ गंधर्व की पत्नी हूं। मेरे साथ पाप लीला रचाने का विचार भी तुम्हारे लिए नाश का कारण बन सकता है। समझे?"

"सुन्दरी! तुम्हारे रूप में जितनी शीतलता है, तुम्हारे कण्ठ मे भी उतनी ही नम्रता होनी चाहिए। मैं तो समझता था कि तुम मुझे अपने पर आसक्त जानकर हर्षातिरेक से उछल पड़ोगी, पर देखता हूं कि तुम्हारा दिमाग आसमान पर चढ गया है। गीदड़ के विष्ठ की आवश्यकता पड़े तो गीदड़ पहाड़ पर जा चढ़ता है। इसीलिए तो कदाचित किसी ने कहा है।

> गर गदहों के कान मे कह दूं कि मैं तुझ पर फिदा।
> बहुत मुमकिन है कि वह भी घास खाना छोड़ दे॥"

—कीचक ने इतना कह कर सौरन्ध्री की ओर घूर कर देखा।

"मैं यहां दासी के रूप में हूं, पर इसका अर्थ यह नहीं कि मैं तुम्हारी कामाग्नि का शिकार हो जाऊं?" —सौरन्ध्री बोली।

"सौरन्ध्री! जब से मैंने तुम्हें देखा है, मैं तुम्हारे रूप का प्रशंसक और तुम्हारे प्रेम का भूखा हो गया हूं। तुम यदि अपने भाग्य के सितारे को चमकाना चाहो तो मेरे प्रेम का उत्तर प्रेम से दे फिर देखो मैं तुम्हें दासी से रानी बना दूंगा।"

"तेरी रानी के पद पर मैं एक बार नहीं सहस्त्र बार थूकती हूं। धिक्कार है तुम्हारी आत्मा को धिक्कार है तुम्हारे उच्च पद पर। तुम अपनी वासना के मद में इतना भी भूल गये कि मैं किसी की पत्नी हूं। और पतिव्रता नारी स्वप्न में भी किसी पर पुरुष की ओर नहीं देखती?"—अपने क्रोध को नयन्त्रित करते हुए सौरन्ध्री ने कहा।

कीचक का रोम रोम जल उठा, एक बार उसका हाथ खड्ग की मूठ पर गया, पर तत्क्षण सम्भल कर उसने अपने पर नियत्रण किया, क्रोध को पीकर बोला—"कल्याणी! तुम्हारी बातें तो इतनी कटु हैं कि मुझे जैसा वीर उन्हें सहन नहीं कर सकता। पर क्या करू बिना जाने पहचाने ही मैं तुम्हें अपना हृदय दे बैठा हूं। अतएव मैं फिर तुम्हें सुपथ पर आने के लिए अवसर देता हूं। वास्तव में तुम्हारा यह अलौकिक रूप, दिव्य छवि और तुम्हारी यह सुकुमारता ससार में अतुल्य है। तुम्हारा उज्ज्वल मुख तो चन्द्रमा को भी लज्जित कर रहा है। तुम जैसी मनोहारिणी स्त्री इससे पहले मैंने ससार में नहीं देखी। कमलों में वास करने वाली लक्ष्मी की साक्षात मूर्ति को दासी के रूप में देखकर मुझे मानसिक दु.ख होता है। हे साकार विभूति, लज्जा, श्री, कीर्ति और काति जैसी देवियों का प्रति मूर्ति! तुम तो सर्वोत्तम सुख भोगने योग्य हो, पर हाय! तुम जघन्य दु.ख भोग रही हो। मैं तुम्हारा उद्धार कर तुम्हे तुम्हारे अनुरूप स्थान देना चाहता हूं। तुम चाहो तो मैं तुम्हारे लिए अपनी अन्य पत्नियों को त्याग दू, या उन सभी को तुम्हारी सेविकाए बना दू। मेरी प्रेम याचना स्वीकार करो और अपने भाग्य पर गर्व करो कि दासी होते हुए

भी तुम्हारे रूप पर मुझ जैसा शूरवीर आसक्त हो रहा है। वह शूरवीर जिसके शौर्य से मत्सय नरेश तक कांपता है, जिसकी उंगली के इशारे पर सारा मत्सय देश नाचता है। जिसके असीम बल के सामने विश्व के सभी योद्धा सिर झुकाते है। ऐसे वीर की पटरानी बनने का अवसर तुम्हे मिला है, इसे हाथ से जाने देना बुद्धिमानी नहीं है।"

कीचक की इस सीख का भी सौरन्ध्री रूपी द्रौपदी पर कोई प्रभाव न पड़ा, उसने दांत पीसते हुए कहा—निर्लज्ज! अपने इसी पौरुष पर इतराता है जो एक स्त्री के रूप के सामने नतमस्तक हो गया। एक सती की लाज का सौदा करने का साहस करता है। मुझे ज्ञात नही था कि विराट नरेश के राज प्रासाद मे ऐसे नीच लोग भी रहते है, जिन्हें लज्जा, सभ्यता, धर्म और बुद्धि छू तक नही गई। मै अपने सतीत्व के सामने सारे ससार की वीरता, उच्च से उच्च पद और स्वर्ग के वैभव तक को ठुकरा सकती हूं। याद रख कि मुझ जैसी पतिव्रता के सामने तेरे सारे प्रलोभन और भय व्यर्थ सिद्ध होगे। खबरदार! जो भविष्य मे कभी इस प्रकार का विचार भी तेरे मस्तिष्क मे उभरा। .. .."

"ओ दासी! कीचक के नम्र निवेदन को ठुकराने का परिणाम क्या होगा? जानती है?"—कीचक ने क्रोध से जलते हुए कहा।

"जानती हू। तेरा क्रोध उबल पडेगा और तू स्वयंमेव अपनी मृत्यु को आमन्त्रित करने से न चूकेगा?" —सौरन्ध्री बोली।

अपमानित कीचक सौरन्ध्री के उत्तर से तिल मिला उठा। उस ने सौरन्ध्री की ओर हाथ बढाया, पर वह विद्युत गति से वहां से हट गई। क्रोधाग्नि मे जलता कीचक देखता ही रह गया।

★ ★ ★ ★ ★ ★ ★

शास्त्रो मे ठीक ही कहा है कि वासना लिप्सा मे फसे वीर भी कायर हो जाते हैं, उनकी बुद्धि पर वासना परदा डाल देती है और

वह नाश को प्राप्त होते है। यह ऐसा दावानल है जो
भस्म कर डालता है।

मदान्ध कीचक पर सौरन्ध्री के दृढता पूर्वक कहे गए
वचनों का भी कोई प्रभाव न हुआ। सती द्रौपदी के धमकी
चेतावनी भरे वाक्यो से भी उसकी वासना का नशा हिरन न हुआ।
वह स्वयं ही बेचैन रहा और अपनी इच्छा पूर्ति के लिए विभिन्न
उपाय करने पर विचार करने लगा।

एक दिन कामदेव का दास कीचक अपनी वहन रानी सुदेष्णा
के पास गया। वाल उलझे हुए। नेत्रों में लाली ऐसी लाली जो
इस बात का प्रतीक थी कि वह कई दिन से सोया नहीं है। कपड़े
भी कई दिन से नही बदले गए थे। ऐसी अवस्था में गया वह अपनी
बहन के सामने।

सुदेष्णा उसकी इस दशा को देखते ही विस्मित रह गई।

सुदेष्णा ने पूछा—"भैया! यह कैसी दशा बना रक्खी है?
कुशल तो है।"

"कुशल तो तुम्हारे हाथ मे है।"

"क्यो क्या बात है?"

"बहन! चारों ओर से निराश होकर तुम्हारे पास आया हूं।
अब तुम्ही हो जो मुझे जीवन दान दे सको।"

सुदेष्णा का हृदय काप उठा, एक अजीब आशका उस के मन
मे जागृत हो गई। बोली—"क्या मेरे बस की बात है? तो
फिर तुम्हें काहे की चिन्ता है। जो बात है निस्संकोच कहो। मैं
अपने भैया के लिए अपने प्राण तक दे सकती हूं।"

"बहन! मुझे तुम्हारे प्राण नही चाहिए, मुझे अपने प्राण
चाहिएं।"

कौन है ऐसा शत्रु जिसके कारण तुम्हारे प्राणों

या बनी। क्या संसार में ऐसा भी कोई है जिस से तुम इतने भयभीत और निराश हो गए। मत्सय देश में तो ऐसा कोई भी नहीं। तुम साफ साफ़ क्यों नहीं............."

कीचक बीच ही मे बोल उठा। "इस धरती पर ऐसा कोई वीर नही उत्पन्न हुआ जिस से मुझे किसी प्रकार का भय हो।' तुम इस सम्बन्ध में निःशंक रहो। पर

जब आते हैं किस्मत के फेर
मकड़ी के जाल में फंसते है शेर"

"पहेलियां क्यों बुझा रहे हो। साफ साफ बताओ न। मैं तुम्हारी बातों से बेचैन हो उठी हूं।" सुदेष्णा बोली।

"बहन! विवश हो कर लज्जा को ताक पर रख कर अपनी बहन के सामने मैं अपनी बात कह रहा हू। वह जिस की मुट्ठी मे मेरे प्राण हैं, तुम्हारी नई दासी है, सौरन्ध्री।"

कीचक की बात ने सुदेष्णा को और भी चक्कर में डाल दिया यद्यपि एक बार उसकी छाती धड़की, और वह सही बात का अनुमान लगाते लगाते रह गई। शंका को विश्वास में बदलने के लिए पूछ बैठी—"भैया! उस दासी के हाथ मे तुम्हारे प्राण कैसे हो सकते है। वह तो स्वयं हमारी ही कृपाओं की मोहताज है।"

सुदेष्णे! रूप में वह शक्ति है जिसके सामने संसार की समस्त शक्तियां शक्ति हीन हो जाती हैं।"—कीचक ने कहा।

"तो यू कहो न कि काम वासना वह बला है जो सिंह को कुत्ते के रूप में परिणत कर डालती है।"—सुदेष्णा ने सब कुछ समझ कर अपने भाई को एक सीख देने के लिए कहा।

"तुम भी मुझे निराश कर दोगी, ऐसी तो मुझे स्वप्न मे भी आशा न थी। इतना तो सोचो कि तुम्हारे और मेरे शरीर में बहने रक्त मे एक अभिन्न सम्बन्ध है। तुम ने जिस कोख मे पैर पसारे हैं, उसी कोख से मुझे जीवन मिला है। मैं जो भी हूं, जैसा

है, जो उस पर विजय पाता है, वास्तव मे वही वीर है। तुम स्वयं वीर हो, अपने को वीर कहलाना चाहते हो, अपने शौर्य पर तुम्हे गर्व है; फिर तुम काम देव के वशीभूत होकर एक दासी के सामने प्रेम याचना करो, या वासना के लिए अपने शौर्य को कलंकित करो; तुम्ही सोचो यह तुम्हारे लिए लज्जा की बात नही तो और क्या है ?"—

'बहन ! मैं स्वयं अपनी कमजोरी पर लज्जित हूं। परन्तु अब तो बिना सौरन्ध्री को प्राप्त किए मेरा जीवन दुर्लभ है। जो भी हो। अब तो कोई ऐसा उपाय करो जिस से सौरन्ध्री मुझे स्वीकार करे, वरना मैं उसके मोह मे प्राण दे दूंगा।"

"भैया ! सौरन्ध्री जितनी रूपवती है, उतनी ही उच्च विचारो की सती भी। वह किसी बलवान गंधर्व की पत्नी है। पर—स्त्री पर कुदृष्टि डालने का दोष कर रहे हो। जानते हो यह कितना बडा पाप है। पता नही इसके कारण तुम्हे कितने नारकीय दुख भोगने पडे। यदि तुम इस लिए भी तयार हो जाओ तो भी सौरन्ध्री पति व्रत धर्म का उल्लंघन करने को तैयार हो जायेगी, इसकी आशा मैं तो कर नही सकती। वह तो साक्षात सती प्रतीत होती है। इसी कारण बताओ मैं कर ही क्या सकती हू ?" सुदेष्णा ने विवशता प्रकट करते हुए कहा।

कीचक बोला —"सुदेष्णे ! लोग जितने उच्च दीखते है वास्तव मे होते उतने ऊंचे नही। स्त्रियो के स्वभाव से मैं भलि भान्ति परिचित हू। प्रत्येक जीव सुख चाहता है। सुख का मोह मनुष्य से दुष्कृत्य से दुष्कृत्य करा डालता है। वैभव का आकर्षण बड़ा ही भयानक होता है। तुम यदि उसे मेरे द्वारा उपलब्ध सुख का मोह दर्शाओ तो विश्वास रक्खो कि वह अवश्य पिघल जायेगी। तुम प्रयत्न तो करो।"

"उसके ललाट पर चमकता तेज कदाचित तुमने नहीं परखा,—सुदेष्णा ने कीचक को सौरन्ध्री की उच्चता समझाने हेतु कहा—उस के तेज की शक्ति के सामने मैं किसी ऐसी बात

को आशा ही नही कर सकती जिसे स्वयं मैं ही अधर्म समझती हूं। वह तो धर्म के सम्बध मे पारगत है। मैं उस से ऐसा कोई प्रस्ताव नही कर सकती जिसके स्वीकार होने की किंचित मात्र भी आशा नही।"

"ऐसा लगता है कि तुम पर उसकी बातो का जादू चल गया है। वरना तुम तो उसकी मालकिन हो, भला तुम्हारा वह क्या बिगाड सकती है ?"

"हा बिगाड़ तो नही सकती, पर मैं अधर्म मे अपने को सम्मिलित नही करना चाहती।"

"तो फिर यह क्यो नही कहती कि मै तुम्हारे काम मे कोई सहायता ही नही करना चाहती।"

"नही, भैया नही, ऐसी कोई बात नही है। पर तुम तो पत्थर पर जोंक लगवाना चाहते हो।"

"यही तो बात है, तुम जिसे पत्थर समझती हो, वास्तव मे उसका रूप भले ही पाषाण समान हो, है वह अन्दर से पोला ही, बिलकुल मोम समान। तुम एक बार प्रयत्न तो करके देखो।"

रानी सुदेष्णा कीचक के बारम्बार आग्रह के कारण विवश हो गई उसी काम के लिए जिसे करना वह स्वय पाप समझती थी। पर वह पाप करने मे घबराती भी थी। उसने कहा—"भैया! तुम मुझे विवश कर रहे हो, अपनी स्थिति का दुरुपयोग कर रहे हो।—अच्छा! मैं इतना कर सकती हू कि मैं सैरन्ध्री को तुम्हारे पास एकान्त मे अकेली भेज दू। और तुम वहा उसे समझा बुझा कर प्रसन्न कर लेना। बस इस से अधिक की आशा मुझ से मत करो।

कीचक को यह बात माननी पडी।

* * * * * *

एक पर्व के अवसर पर कीचक ने अपने घर बड़े भोज का आयोजन किया और सोम रस तैयार कराया। सौरन्ध्री को फांसने के लिए ही यह षडयन्त्र रचा गया था। रानी सुदेष्णा ने सौरन्ध्री को बुला कर कहा—"कल्याणी! भैया के यहां बहुत ही अच्छा सोम रस तैयार किया गया है। मुझे बडे जोर की प्यास लगी है। तुम भैया के यहा जाओ और एक कलश भर कर सोम रस ले आओ।"

रानी का आदेश सुनकर सौरन्ध्री (द्रौपदी) का कलेजा धडक उठा। बोली—"इस अन्धेरी रात्रि में मैं कीचक के यहां अकेली कैसे जाऊं? मुझे डर लगता है। महारानी आपकी कितनी ही अन्य दासियां है। उन मे से किसी एक को भेज दीजिए। मुझे इस कार्य के लिए क्षमा ही कर दें तो बड़ी कृपा हो।"

"सौरन्ध्री! भैया के घर जाने में तुम्हे डर काहे का? तुम राज महल की दासी हो। तुम्हारे ऊपर कोई निगाह उठा कर भी देख ले तो उसकी आफत आ जाए। जाओ तुम्हे कोई भय की बात नही है।" सुदेष्णा बोली।

"आपने सदा मेरे ऊपर कृपा की है। क्या आज इस आदेश से मुक्त करके मुझे कृतज्ञ न करेंगी? वास्तव में मैं वहा जाते हुए घबराती हू। वरना आज तक मैंने आप के किसी आदेश को टालने की चेष्टा नही की।"—सौरन्ध्री ने नम्र शब्दों मे मे विनती की।

सुदेष्णा ने क्रोध का अभिनय करते हुए कहा—"सौरन्ध्री! तेरा यह साहस कि मेरी ही अवज्ञा करने लगी? भय का बहाना बनाकर क्यों धोखा देती है? साफ साफ क्यो नही कहती कि तू जाना नही चाहती?"

सौरन्ध्री ने नम्रता पूर्वक कहा—"महारानी जी! आप कृपया मेरी नियत पर सन्देह न कीजिए। मैं आपकी दासी हूं और आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य है। परन्तु सत्य यह

है कि सेनापति मुझे कुदृष्टि से देखते है। वे कामदेव के वशीभूत होकर धर्म को भूल जाते है। उनकी आखो मे सदा ही वासना अकित रहती है। वे काम सन्तप्त हो मेरे सतीत्व का हरण करना चाहते है। अतएव इतनी गहन रात्रि मे मैं उनके घर जाती घबराती हू। मैं ने जब के यहा नौकरी की थी, आपको याद होगा कि आपने मेरे सतीत्व की रक्षा का वचन दिया था। अतएव आप मुझे वहा न भेजिए। वे काम से पीड़ित हैं, मुझे देखते ही अपमान कर बैठेंगे।"

"तू तो काम से घबराने के साथ साथ मेरे भाई पर भी दोषारोपण करने लगी?—रानी सुदेष्णा ने बल खाते हुए कहा—क्या तू अपने को इतनी रूपवती समझती है कि कोई उच्चपदासीन राजकुमार अपनी चन्द्र मुखी रानियो को छोड कर तुझ दासी पर कुदृष्टि डालेगा। नही यह सब तेरी बहानेबाज़ी है"

"नही, महारानी! आप ऐसा न कहे मैं आप के आदेश का पालन करने के लिए प्राण तक दे सकती हूं। पर अपने सतीत्व की रक्षा करना भी तो मेरा धर्म है। मै यू ही किसी पर दोषारोपण नही करती।"—सौरन्ध्री ने कहा।

"तो फिर तुझे ही जाना होगा। मैं कहती हू कि मेरे आदेश का पालन करते हुए तुझे कोई आँख उठा कर भी नही देख सकता तू कलश लेकर जा और रस लेकर तुरन्त चली आ।"

रानी की आज्ञा का पालन करना आवश्यक हो गया। सौरन्ध्री रोती और डरती हुई कलश लेकर कीचक के घर की ओर चली। मन ही मन वह जिनेन्द्र व शील सहायक देव का स्मरण करती जाती थी। भयभीत हरिणी की भांति उसने कीचक के रनवास भवन मे पदार्पण किया।

उसे देखते ही कीचक आनन्द विभोर हो उठा। हर्षातिरेक से उछल कर खड़ा हो गया, बोला—सुन्दरी! तुम्हारा हार्दिक स्वागत है। तुम ने मेरे घर पधार कर मेरे लिए जो उल्लास का प्रादुर्भाव किया है, उसके लिए शत शत धन्यवाद! आज की रात्रि

का प्रभाव मेरे लिए बड़ा मंगलमय होगा।"

सौरन्ध्री ने अपने मन में उठे घृणा एवं क्रोध के तूफान को रोक कर कहा—"मुझे महारानी जी ने सोमरस लेने के लिए यहां भेजा है। कृपया कलश भरवा दीजिए। उन्हें प्यास सता रही है।"

"और मुझे जो तुम्हारे सौंदर्य की प्यास सता रही है, क्या तुम्हें उसका तनिक सा भी ध्यान नहीं। इतनी कठोर मत बनो, मृग नयनी!"—कीचक बोला।

"घर पर आये शत्रु का भी अपमान नहीं किया करते। क्या वह रीति भी भूल गए। कामान्ध होकर असभ्य मत बनो। सौरन्ध्री बोली।

"मैं तुम से सभ्यता की शिक्षा नहीं लेना चाहता। मुझे तो प्रेम की तृप्ति की भिक्षा चाहिए।"

"सेनापति! आप राज कुल के हैं और मैं ठहरी एक नीच दासी। फिर आप मुझे क्यों चाहने लगे? यह अधर्म करने पर आप क्यों तुले हुए हैं। मैं पर-नारी हूं। यदि आप ने मेरा स्पर्श भी किया तो आप का सर्वनाश हो जायेगा। स्मरण रखिये कि मैं एक गंधर्व की पत्नी हूं। वे क्रोध में आगए तो आपका प्राण ही लेकर छोड़ेंगे।"—द्रौपदी ने पुनः उसे सावधान किया।

"कल्याणी! तुम जो भी हो, मेरे लिये रानी हो। मैं तुम्हारे प्रेम के लिए प्राण तक न्योछावर कर सकता हूं। हां बस मुझे एक बार तृप्त कर दो। मैं तुम्हारे लिए स्वर्ग समान वैभव के द्वार खोल दूंगा। मैं तुम्हारी इच्छा पर अपना सब कुछ होम करने को प्रस्तुत रहूंगा। मेरा प्रेम ऊपरी नहीं है, इसका सम्बन्ध मेरी आत्मा से है। यदि तुम मेरी हो जाओ तो फिर गंधर्व तो क्या संसार की कोई शक्ति मेरे नाश का कारण नहीं बन सकती। प्रिय रानी! आओ मुझे जीवन दान दो।" कीचक ने फिर वही बेसुरी रागिनी छेड़ी।

"मैं तुम्हारी मूर्खता में अपना समय नष्ट नहीं करना चाहती-

सौरन्ध्री ने आवेश मे आकर कहा—मुझे रानी जी ने आज्ञा दी है कि अविलम्ब सोमरस ले आऊ। अतः रस देते है या चली जाऊ।"

"कल्याणी! रस तो कोई और दासी भी लेजा सकती है—. कीचक ने कामान्ध होकर कहा—तुम आई हो तो मेरी कामना को तृप्त व मुझे सन्तुष्ट करती जाओ। तुम मधुर कण्ठ वाली सौम्य. मूर्ति हो, करुणा की प्रति मूर्ति हो, कठोर मत बनो। आओ जीवन का सच्चा आनन्द लें।"

"पापी! मुझे दासी रूप मे देख कर तेरा मस्तक फिर गया है। मैंने कभी स्वप्न मे भी पर पुरुष की ओर कुदृष्टि से नही देखा, धर्म विरुद्ध आचरण नही किया। अपने धर्म व सतीत्व के प्रभाव से मैं तुझे तेरी मदान्धता का मजा चखा दूंगी।"—सौरन्ध्री ने क्रोध मे आकर कहा।

अनुनय विनय और आग्रह से काम न बनता देख दुष्ट कीचक ने बल पूर्वक अपनी इच्छा पूर्ण करनी चाही और सौरन्ध्री रूपी द्रौपदी का हाथ पकड कर खींच लिया। सौरन्ध्री ने कलश वहीं पटक दिया और झटका मार कर उस से अपना हाथ छुडाकर राज सभा की ओर भागी। क्रोध से भरा और द्रौपदी से मात खाया हुआ कीचक चोट खाये नाग की भांति उसके पीछे दौड़ने लगा। सौरन्ध्री हरिणी की भांति भय विह्वल होकर विराट नरेश की दुहाई मचाती हुई राज सभा मे जा पहुची। वह हाप व काप रही थी। उस ने अवरुध कण्ठ से सारी सभा को सुना कर विराट नरेश के सामने जाकर कहा—"दुहाई है महाराज की! यह कैसा अन्याय है। कैसा आप का शासन है। आपका सेनापति मेरे सतीत्व को नष्ट करने पर तुला है। वह बल पूर्वक मुझे भ्रष्ट कर डालना चाहता है। बचाइये! बचाइये! मेरे सतीत्व की रक्षा कीजिए। वह दुष्ट व्यभिचारी ...."

इतने ही मे कीचक भी वहा आगया। वह क्रोध मे पागल हो गया था। मदांध ने आगे बढ कर सौरन्ध्री को ठोकर मार कर गिरा दिया और अपशब्द कहे। सारे सभा सद देखते रह गए। किसी

का साहस न पड़ा कि उस अन्याय का विरोध करता। मत्सय नरेश को जिस ने अपनी मुट्ठी मे कर लिया था उस के विरुध बोलने का साहस भला कौन करता। उस समय राजसभा में युधिष्ठिर और भीम सेन भी बैठे थे। अपनी आंखों के सामने द्रौपदी का इस प्रकार अपमान होते देख कर दोनो भाई अमर्ष से भर गए। भीम तो उस दुष्टात्मा को मार डालने की इच्छा से क्रोध के मारे दात पीसने लगा। उसकी आखें लाल हो गई, भौहें टेडी हो गई और ललाट से पसीना बहने लगा। वह क्रोधावेश में उठना ही चाहता था कि युधिष्ठिर ने अपना गुप्त रहस्य प्रगट हो जाने के भय से अपने पैर के अगूठे मे उसका अंगूठा दबा कर सकेन पूर्वक उसे रोक दिया।

चोट खाई हुई सिंहनी की भाति सौरन्ध्री रूपी द्रौपदी गर्जना कर उठी।—"मेरे पति समस्त विश्व को मार डालने की शक्ति रखते हैं, मैं उस परिवार की बहू हू जो सारे जगत को अपने अस्त्रो शस्त्रों से भस्म कर सकता है। किन्तु वे धर्म के पाश से बन्धे हैं मैं सम्मानित धर्म पत्नी हूं। तो भी आज एक सूत पुत्र ने मुझे लात मारी है। भरी सभा मे मुझ पर अन्याय किया है, एक पतिव्रता का अपमान हुआ है. और सभी सभासद सब मौन बैठे है, किसी को उस अन्याय पर कुछ कहने का साहस नहीं हो रहा। क्या इसी बिरते पर आप लोग न्याय रक्षक कहलाने का दम भरते है? हाय! जो शरणार्थियों को सहारा देने वाले हैं और इस जगत मे गुप्त रूप से विचरते रहते है वे मेरे पति महारथी व उनके योद्धा भ्राता आज कहां है? अत्यन्त बलवान तथा तेजस्वी होने हुए भी वे अपनी प्रियतमा एव पतिव्रता पत्नी को एक सूत पुत्र के हाथो अपमान होते कैसे कायरो की भाति सहन कर रहे हैं? आज पतिव्रता का अपमान हो रहा है, क्या इन भुजाओ और पैरो पर वज्र नही टूटेगा जिन से मेरे शरीर का स्पर्श हुआ है?"

क्रन्दन करती सौरन्ध्री उठी और निर्भय होकर विराट नरेश को ललकार कर बोली—"मैंने तो सुना था कि मत्सय नरेश न्याय प्रिय व निर्भय व्यक्ति है, पर आज उनकी आखों के सामने यह दुष्कृत्य हुआ है जो किसी हीन से हीन नरेश के दरबार मे भी

नही होता। निरपराध नारी को अपने सामने मार खाते देखकर भी जिसकी भुजाए नही फरकी, जिसकी जिह्वा नहीं हिली, उसे न्यायधीश कहलाने, और किसी देश का राज्य संचालन का क्या अधिकार है। शास्त्र कहते है जो पीड़ितों की रक्षा नहीं कर सकता, न्याय का सरक्षण नही कर सकता जिसकी भुजाएं निरपराधों और निपराधियों की रक्षा मे नही उठ सकती, जो नारी को उस का उचित स्थान नही दिला सकता, व्यभिचारियों को दण्ड नही दे सकता, वह शासनारूढ रहने का अधिकारी नही है, ऐसी नरेश के होने से तो देश को बिना नरेश रहने मे ही भला है। मैं तो समझती थी कि विराट नरेश की व्यवस्था विराट है, हृदय भी विराट है, ज्ञान और क्षमता भी विराट ही होगी पर आज ज्ञात हुआ कि वह नाम मात्र का नरेश है। वरना शासन सत्ता तो अन्यायियो के हाथ मे है।"

कीचक क्रन्दन करती सौरन्ध्री को एक ठोकर मार कर चला गया और कहता गया—मूर्ख! मेरे विरुद्ध कितना ही शोर मचा, कितना ही विलाप कर, इन सब से कुछ होने वाला नहीं है। मैं जो चाहू वह कर सकता हूं। भेड बकरियां सिंह का क्या खाकर सामना करेगी।"

बिलखती सौरन्ध्री विराट और उसके सभासदों को उलाहना देती रही। कीचक के जाने के बाद सभासदो ने उस कलह का कारण पूछा। अवरुद्ध कण्ठ मे सौरन्ध्री ने कीचक के पापाचार का भण्डा फोड किया। विराट ने उसे सान्त्वना देने का प्रयत्न किया, सभासद मन ही मन कीचक को कोसने लगे। विराट भी बिलखती सौरन्ध्री के वृतात को सुनकर दुखित हुए, उन्हें क्रोध भी आया, पर बिल्कुल ऐसे ही जैसे किसी चिड़िया को बाज पर आता है। विराट क्रोध करने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकते थे।

एक सभासद ने सौरन्ध्री (द्रौपदी) की व्यथा सुनकर कहा—"यह साध्वी जिस पुरुष की धर्म पत्नी है, उसे जीवन मे महानतम लाभ मिला है। मनुष्य जाति मे ऐसी सदाचारणी और सती का मिलना कठिन ही है। मैं तो इसे मानवी नहीं देवी मानता

हूं।"

दूसरा बोला—"जिसका धर्म सेनापति जैसे अत्यन्त बलवान उच्चपदासीन, वैभव शाली, सर्व शक्ति सम्पन्न व्यक्ति के प्रलोभनों और धमकियों के सामने भी नहीं डिगा, वह धन्य है, दासी रूप मे देख कर हमें आश्चर्य होता है यह तो किसी उच्च कुल की सन्तान है।"

जब समस्त सभासद मुक्त कण्ठ से द्रौपदी की प्रशंसा कर रहे थे, उसी समय युधिष्ठर ने द्रौपदी को लक्ष्य करके कहा— "सौरन्ध्री! अब यहां क्यों खड़ी हो, विलाप करते और मोती समान अश्रु बिन्दु लुटाने से क्या लाभ? तेरा पति और उसके भाई गन्धर्व अभी समय नहीं देखते। इसी लिए नहीं आ रहे। समय को देख कर, परिस्थिति का सही मूल्यांकन न करके, क्रोध और आवेश में जो कार्य होता है वह दुखदायी ही होता है। अवसर पाकर वे तेरा प्रिय कार्य अवश्य ही करेंगे। तू सन्तुष्ट रह। अपने पति पर और अपने धर्म पर विश्वास रख। महल मे रानी सुदेष्णा के पास जा और प्रतिज्ञा कर। न्याय की रक्षा करने के लिए महाराज विराट भी उत्सुक हैं तेरे पति की तो बात ही न पूछो क्रोध को पी जाना ही श्रेयस्कर है।"

सौरन्ध्री के बाल खुले थे, कमर पर छिटक रहे केश उसके टूक टूक हुए हृदय का प्रतिबिम्ब प्रतीत होते थे, नेत्र अश्रुपूर्ण थे और दहकते अंगारे की भांति जल रहे थे। वह महाराज युधिष्ठिर जो अनुचर रूप मे थे की बात समझ गई और वहां से चली गई।

रानी सुदेष्णा ने जो सौरन्ध्री की दशा देखी तो उनका मन सशंक हो उठा। मन के भाव छुपाते हुए उस ने पूछा—"कल्याणी! तुम्हारी यह क्या दशा हो गई है? तुम तो सोमरस लेने गई थी कलश कहां है? है, हैं, यह तुम्हारे नत्रों मे अश्रुबिन्दु क्यों बिखर रहे हैं? क्या किसी ने कोई अनर्थ कर डाला?"

रानी पर सौरन्ध्री का कोई सन्देह नहीं था, अपनी स्वामिनि समझ कर उसने सिसकियां भर कर, सुबकते हुए, कहा—"महा-

रानी जी ! वही हुआ जिसकी मुझे आशंका थी। उस समय आप ने मेरी एक न सुनी और आज सेनापति ने मेरे साथ घोर अत्याचार किया।"

विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखते हुए रानी ने पूछा—"यह मैं क्या सुन रही हूं। मुझे सब कुछ बताओ कि उस ने तुम्हारे साथ क्या अन्याय किया।"

"उस दुष्ट ने मेरा सतीत्व भंग करने का असफल प्रयास किया—सौरन्ध्री वेष धारिणी द्रौपदी बोली—और जब मैंने उस काम सन्तप्त, कामान्ध और व्यभिचारी का विरोध किया तो उसने बल पूर्वक पाप लीला करनी चाही, मैं उसकी बलिष्ट भुजाओं से मुक्त होकर राज दरबार की ओर भागी। उसने पीछा किया और भरे दरबार मे मुझे मारा। सभी सभासद और यहां तक कि महाराज भी यह सारा दृश्य मौन बैठे देखते रहे। किसी को इतना भी साहस न हुआ कि उस पापी को दुष्कृत्य के विरोध में एक शब्द भी कहता।"

"क्या इतने समय मे यह सब कुछ होगया ?—आश्चर्य प्रकट करते हुए सुदेष्णा ने कहा—तुम्हें वापिस आने मे देरि हुई तभी मेरा माथा ठनका था। हाय ! मुझ ही से भूल हो गई जो तुम्हें विवश करके वहां भेजा। ...... पर अब पश्चाताप से क्या होता है। वास्तव मे कीचक ने यदि ऐसा ही किया है तो यह उसका घोर अपराध है। तुम कहो तो मैं उसे मरवा डालूं।"

बेचारी सौरन्ध्री ने रानी के शब्दों को उसी रूप मे समझा जिस रूप मे कहे गए थे, जबकि रानी भी कदाचित जानती होगी कि कहने को वह कह गई पर यह बात उस के बस के बाहर की थी।

सौरन्ध्री ने उत्तर दिया—'महारानी जी ! आप को कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। उस दुष्ट का वही दण्ड देगे जिनका वह अपराध कर रहा है।"

रानी सौरन्ध्री के शब्दों को सुन कर सिहर उठी। भयानक

आशंका से उसका हृदय कंपित हो गया।

अपमानित सौरन्ध्री (द्रौपदी) लज्जा और क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गई थी। अपनी हीन और असःहाय अवस्था पर उसे बड़ा क्षोभ हुआ, उस का धीरज टूट गया। अपना परिचय ससार को मिल जाने से जो अनर्थ हो सकता था उस की भी चिन्ता न कर के वह मन ही मन कीचक के वध की बात सोचने लगी। कहते हैं कि उस ने सर्व प्रथम अर्जुन से जो उस समय बृहन्नला के रूप मे थे, अपनी व्यथा और कीचक वध का प्रस्ताव कहा। अर्जुन बोले—प्रिये! तुम्हारे अपमान की बात सुन कर मेरे हृदय पर जो बीत रही है उसे मैं शब्दो मे व्यक्त नही कर सकता। मेरा खून खौल रहा है। भुजाएं फड़क रही हैं। बार बार गाण्डीव का स्मरण हो रहा है। मुझे अपने पर नियन्त्रण रखना दुर्लभ हो रहा है। परन्तु फिर भी मुझे महाराज युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा का ध्यान आता है। मैंने तुम ने और मेरे अन्य भाईयों ने उनकी प्रतिज्ञा के कारण जो जो कष्ट उठाए हैं, वे ऐसे हैं जिन के कारण कोई भी स्वभिमानी व्यक्ति विचलित हो सकता है! और तुम ने तो हम सभी से अधिक दुख भोगे हैं और भोग रही हो। पर मैं इस समय भ्राता जी के आदेश से बन्धा हू। विवश हू, बल्कि पशु ही समझो।"

यशस्वी अर्जुन की बात से द्रौपदी को शान्ति न मिली। दुखित होकर बोली—"प्राण नाथ! मैं पाचाल नरेश की पुत्री हू, क्या इन्ही दुरावस्थाओं मे डालने के लिए ही आप मुझे स्वयवर मे जीत कर लाये थे? उस दिन की बात तो आप न भूले होगे जब दुष्ट दु शासन मुझे 'दासी' कह कर, मेरे केश पकड कर भरी सभा मे खींच लाया था। और भरी सभा मे मुझे वस्त्र हीन करने की चेष्टा की थी। आज भी मेरे केशो से मुझे उस पापी के हाथो की दुर्गन्ध आती है। उस अपमान की आग मे मैं सदा ही जलती रहती हू। मेरे अतिरिक्त ससार मे और कौन सी राज कन्या है जो इतने अन्याय सहन कर के भी जीवित हो? वन-वास के दिनों मे दुष्ट जयद्रथ ने मेरा स्पर्श किया, वह मेरे लिए

दूसरा अपमान था वह भी मैंने सहन किया और अब यहां के राजा विराट के सामने भरी सभा मे मैं अपमानित हुई। कीचक ने भरी सभा मे मुझे ठोकर मारी और महाराज युधिष्ठिर तथा भीम सेन बैठे देखते रह गए। इस बात से मेरे हृदय को कितनी चोट पहुंची मैं ही जानती हूं।"

"दुष्ट कीचक कितने ही दिनो से मेरे सतीत्व को नष्ट करने का षडयन्त्र कर रहा है। वह इस देश का वास्तविक नरेश है। विराट तो नाम मात्र के ही नरेश है। उस दिन कामान्ध ही मुझे बल पूर्वक अपनी वासना की अग्नि मे जलाना चाहा, मैं जैसे तैसे बच निकली और अपमानित हुई पर ऐसे कब तक काम चलेगा? प्रति दिन उसके पाप पूर्ण प्रस्तावों को सुन कर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। जब मैं महाराजाधिराज युधिष्ठिर को, जो धर्मराज कहलाते है, अपनी जीविका के लिए कायर नरेश की उपासना करते देखती हूं, तो मेरा हृदय फटा जाता है।"

महाबली भीमसेन को जब मै रसोइया के रूप मे देखती हूं, तो मुझे बहुत दुख होता है। पाकशाला मे भोजन तैयार होने पर जब वे वल्लभ नाम धारी रसोइया के रूप मे विराट की सेवा मे प्रस्तुत होते है तो मेरा हृदय रोने लगता है। और आप जो अकेले ही रथ मे बैठ कर मनुष्यों की तो क्या देवताओं का भी पराजित करने की शक्ति रखते हैं आज रनिवास मे विराट की कन्याओं को वृहन्नला के वेष मे नाच गाना सिखाते दिखाई पड़ते है तो मेरे हृदय मे कितनी वेदना होती है, उसे व्यक्त करना सम्भव नहीं है। और! कितना बडा अनर्थ है कि धर्म मे, सत्य भाषण मे और शूरता मे जो जगत प्रसिद्ध है वही हो जड बने हुए है। आपके छोटे भाई सहदेव को जब मैं गौओं के साथ ग्वालों के वेष मे आते देखती हूं तो मेरे शरीर का रक्त सूख जाता है, बरबस अश्रु छल छला आते है। मुझे याद है जब वन को आने लगी उस समय माता कुन्ती ने रोकर कहा था—"पांचाली! सहदेव मुझे बड़ा प्यारा है, यह मधुर भाषी सभ्य धर्मात्मा तथा अपने सब भाइयों का आदर करने वाला है, किन्तु है बड़ा ही संकोची। तुम इसे अपने हाथ से ही भोजन कराना। देखना! इसे कोई कष्ट न होने पाये।"

आज उसी सहदेव को देखती हू कि गौग्रों के पीछे डण्डा लेकर प्रातः से सायकाल तक घूमता है और रात्रि को कम्बल बिछा कर सो जाता है। जो रूखा सूखा मिलता है उसी मे उदर पूर्ति कर लेता है। यह सब देख देख कर दुखी होती हू, हृदय का रक्त पीती हूं, आंसू मन ही मन पी जाती हू, बोझल मन लिए जीती हूं। यह कैसी समय की विडम्बना है कि सुन्दर रूप, अस्त्र विद्या और मेधा शक्ति इन तीनो गुणों से सम्पन्न है वह प्रिय नकुल बेचारा आज विराट जैसे नरेश की अश्व शाला का सेवक है। मनुष्यों की सेवा न कर के उसे घोडों की सेवा मे लगा देखती हूं फिर क्या मेरा हृदय विदीर्ण नही होता ? न जाने कैसे जी रही हूं।" पूर्व जन्म के दुष्कर्मों का ही फल है।

'देखा, शास्त्रों के प्रति कूल कार्य करने का परिणाम। महाराजाधिराज युधिष्ठिर को यदि जूए का दुर्व्यसन न होता तो सारे परिवार की यह अधो गति क्यों होती ? मेधावी पाण्डु की बहू, पांचाल देश की राज कुमारी, आज किस दशा मे है, सुनने वाले भी रो उठेंगे। मेरे इस क्लेश से पाण्डवों और पाचाल राज्य का भी अपमान हो रहा है। आप के जीवित होते मुझे यह कष्ट भोगने पडे, धिक्कार है ऐसे जीवन को।"

कहते कहते सैरन्ध्री (द्रौपदी) क्रोध से भर गई, पर अपने पर नियंत्रण रखते हुए वह फिर बोली—"एक दिन समुद्र के पास तक की धरती जिसके आधीन थी आज वही द्रौपदी सुदेष्णा के आधीन हो कर सदा भयभीत रहती है। यही नही, कुन्ती नन्दन! पहले मैं किसी के लिए, स्वय अपने लिए भी उबटन नही पीसती थी परन्तु आज राजा विराट के लिए चन्दन घिसना पडता है रानी के लिए उबटन पीसना होता है। देखो! मेरे हाथों मे घट्टे पड गए हैं। क्या ऐसे ही थे पहले मेरे हाथ।

कहते हुए द्रौपदी ने अपने हाथ अर्जुन के सामने फैला दिए। और सिसकती हुई बोली"—न जाने मैंने क्या ऐसा अपराध किया था जिसका फल मुझे इतना भयकर भोगना पड़ रहा है"

अर्जुन ने उसके पतले पतले हाथों को देखा, सच मुच काले काले दाग पड गए थे। उन हाथो को अपने मुह मे लगा कर वे रो पडे। नेत्रो से सावन भादों की झडी लग गई। क्लेश से पीडित हो कर अर्जुन कहने लगे—"पाचाली! मेरे गाण्डीव को धिक्कार है, तुम्हारे काले पड गए हाथों को देख कर मुझे आत्म ग्लानि हो रही है। क्या करू जो मे आता है कि ऐश्वर्य के मद उन्मत्त कामान्ध कीचक का इसी क्षण वध कर डालू, इस कायर नरेश को यमलोक पहुचा दूँ पर क्या करू भ्राता जी की प्रतिज्ञा मेरे रास्ते मे रोडा बन गई है। प्रिये! जहाँ मेरे पास शक्ति है, उत्साह है, विद्या है वही मुझे बुद्धि भी मिली है। भ्राता जी ने धर्म और बुद्धि से काम न लिया तो उन्हे और उन के आश्रित हम सबो को आज का दिन देखने को मिला यदि वही भूल अर्थात बुद्धि से काम न लेने की भूल मैं भी करू तो क्या पता हम पर और क्या विपदाएं पड़ें। तुम बुद्धि मती हो। क्रोध का दमन करो। पूर्व काल मे भी कितनी ही पतिव्रता नारियो ने पतियो के साथ दुख भोगे हैं। सती सीता का उदाहरण तुम्हारे सन्मुख है। अतएव कल्याणी! तुम कुछ दिनो के लिए सन्तोष करो। वह दिन शीघ्र ही आयेगा जब तुम्हारे कष्टो का निवारण करने के लिए मैं स्वतन्त्र हो जाऊगा।"

सौरन्ध्री रूपी द्रौपदी को इसी प्रकार समझा बुझा कर अर्जुन ने शान किया। पर अलग होते ही पुन. कीचक द्वारा किया गया अपमान उसके हृदय को कचोटने लगा। उसे रह रह कर अपमान का तुरन्त बदला लेने की इच्छा सताती। तब उसका ध्यान भीम सेन को ओर गया और उस के हृदय ने कहा—"पाचाली! ऐसे समय भीम सेन, केवल भीम सेन ही तुम्हारी इच्छा पूर्ति के लिए तैयार हो सकता है, बदला लेना है तो उसी के पास चल।"—और उस ने निश्चय कर लिया कि वह भीमसेन से एकान्त मे मिलेगी और अपनी व्यथा सुना कर इस के निवारण का उपाय करने को कहेगी। वह अवश्य ही ऐसे आडे समय पर सब कुछ कर डालने को तैयार हो जायेगा। उसकी भुजाओ मे शक्ति है, उस के रक्त मे गर्मी है, उस के मन मे चचलता है। उत्साह क्रोध और शत्रु पर

विजय पाने को उसकी उत्कंठा ही उसका गुण बनी हुई है। वह अवश्य ही कीचक का वध करने को तैयार हो जायेगा। यदि कीचक का बध न हुआ तो उस का मन सदा ही अपमान से जलता रहेगा और किसी बार भी भयकर घटना घट जाने का भय बना रहेगा।

सभी बातें विचार कर उस ने भीमसेन से मिलने का निश्चय कर ही लिया।

× × × × × × ×

रात्रि अपने यौवन पर है। अल्हड रात्रि का घोर तिमिर व्याप्त है। पहरे दारों के अतिरिक्त सभी निद्रामग्न हैं। कभी कभी कुत्तों के भूँकने से रजनी की निस्तब्धता विदीर्ण हो जाती है। दूर जगलो में सियार अपनी स्वभाविक ध्वनि से वन की शांति को भंग कर देते हैं। पहरे दारों की आवाज और सैनिकों की सीटियों की ध्वनि भी कभी कभी तिमिर में चुभ जाती है। रनिवास में पूर्ण शांति है, सभी खर्राटे भर रहे हैं, पर बेचारी द्रौपदी को नींद कहां, हार्दिक वेदना से वह तड़प रही है।

जब उसे विश्वास हो गया कि अब कोई नहीं है जो उस की गतिविधियों को देख सके। वह उठी और बिल्ली के पैरों से पग रखती हुई रनिवास से बाहर हो गई। पहुंची भीमसेन के पास जाकर भीम सेन को जगाया। उसे इतनी रात्रि को द्रौपदी के आकस्मिक आगमन से आश्चर्य हुआ। आंखें मल कर उस ने देखा और विस्मय पूर्ण शब्दों में बोला—"हैं, यह क्या ? पांचाली तुम यहां, इतनी रात्रि को कैसे ?" "तुम यहां खर्राटे भर रहे हो। पर मुझे नींद कैसे आये। मेरे हृदय में तो विष पूर्ण तीर चुभा है।"—द्रौपदी बोली।

"साफ साफ बताओ ना कि क्या बात है? क्या कोई भयंकर घटना घटी है ?"

"इस से भयकर घटना और क्या हो सकती है कि परम

प्रतापी मेघावी नरेश पाण्डु की वहू, पांचाल की राज कन्या के सतीत्व को राहू ग्रस जाना चाहता है। मैं जिसने कभी कुन्ती माता का भी भय नही माना ग्राज वही द्रौपदी भयभीत हरिणी की भांति अपने को बचाने का प्रयत्न कर रही है। वीर पुरुषों के सग निर्भय होकर जीवन व्यतीत करने वाली नि सहाय अवला की भांति ठोकरें खा रही है। बोलो और क्या भयकर घटना होनी शेष रही है?" सिसकती हुई द्रौपदी बोली।

"क्या हुआ ?" विस्फारित नेत्रों से देखते हुए भीमसेन ने पूछा।

"यह पूछो कि क्या नही हुआ ? क्या उस दिन की बात भूल गए जब भरी सभा में पापी कीचक ने मुझे लात मारी थी।— द्रौपदी ने अपनी व्यथा सुनाते हुए कहा—महाबली ! आखिर मैं यह अपमान पूर्ण जीवन कब तक व्यतीत करती रहू ? मुझ मे यह अपमान नही सहा जाता नीच दुरात्मा कीचक का तुम्हे इसी समय वध करना होगा। महारानी होकर भी यदि मैं विराट की रानियों के लिए चन्दन व उबटन पीसती रही, और दासी बनी तो तुम लोगो की प्रतिज्ञा के लिए। तुम लोगों की खातिर ऐसे लोगों को सेवा चाकरी कर रही हू जो आदर के योग्य नहीं है। मैं आज रनिवास मे थर थर कापती रहती हू। मेरे इन हाथो को तो देखो।"

कह कर द्रौपदी ने अपने हाथ भीमसेन के आगे पसार दिये। भीमसेन ने देखा कि कोमलागनी द्रौपदी के हाथो मे काले काले दाग पड गए है। भीमसेन का मन रो पड़ा। आक्रोश मे आकर बोला—"कल्याणी! धिक्कार है मेरे बाहु बल को, धिक्कार है अर्जुन की शूरता को। हमारे जैसे बलिष्टों के रहते तुम्हारी यह दशा हो हमारे लिए डूब मरने की बात है। अब मैं न तो युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा का पालन करूगा, न अर्जुन की सलाह की ही चिन्ता करूगा। जो तुम कहो गी वही करूंगा इसी घडी जाकर कीचक का बध किए देता हू।"—इतना कह कर भीमसेन उसी क्षण फुरती से उठ खडा हुआ। भीमसेन को इस प्रकार एक दम उठते हुए

देख कर द्रौपदी सम्भल गई और भीमसेन को सचेत करते हुए बोली—"नहीं, नहीं आवेश में कोई ऐसा कार्य मत कर बैठना जिस से कोई नई विपत्ति आने का भय हो। उतावली में कोई काम कर बैठना ठीक नहीं।"

"तो फिर ?"

"तुम्हें सर्व प्रथम यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि मेरे इस प्रकार मिलने को रहस्य में ही रखना होगा। किसी से भी इसका जिक्र न हो। दूसरे कोई ऐसा उपाय करना होगा कि कीचक का वध भी हो जाय पर गुप्त रूप से। किसी को कानों कान पता न चले कि किस ने उसे मारा। कीचक का वध इस लिए आवश्यक है कि वह दुष्ट अपनी नीचता से बाज न आयेगा और समय पाकर फिर अपना कुत्सित प्रस्ताव करेगा। अवसर पाकर बलात्कार करने का प्रयत्न करेगा। परन्तु इस का यह भी तो अर्थ नहीं कि तुम उस पापी को दण्डित करते करते स्वयं ही विपत्ति में फस जाओ ?"—द्रौपदी सम्भल कर बोली।

"तो कोई उपाय ही सोचो।"

"हां तुम भी विचार करो।"

फिर दोनों विचार मग्न हो गए। दोनों सोचने लगे। और बहुत सोच विचार के उपरान्त यह निश्चय पाया कि कीचक को धोखे से राजा की नृत्यशाला के किसी एकान्त स्थान में बुला लिया जाय और वहीं उसका काम तमाम कर दिया जाय।

× × × × × × ×

दूसरे दिन प्रातः काल अनायास ही दुरात्मा कीचक का सामना हो गया। पूर्व योजित योजना के आधार पर सौन्दर्य रूपी द्रौपदी ने उस दुष्ट से बच निकलने की कोई चेष्टा न की। कीचक ने निकट पहुंच कर कहा - "देखा! मेरा प्रभाव। मैंने तुम्हें भरी सभा में विराट के सामने ही लात मार कर गिरा दिया, किसी को चू तक करने का साहस न हुआ। तुम समझती थी कि विराट की

शरण जाकर तुम्हारी रक्षा हो सकेगी, पर मूर्ख सौरन्ध्री क्या तू नही जानती कि विराट तो मत्स्य देश का नाम मात्र का राजा है, असल मे तो मैं ही यहां का सब कुछ हूं। यदि मेरी इच्छा पूर्ति करोगी तो महारानी का सा सुख भोगोगी, और मैं तुम्हारा दास बन कर रहूंगा। वरना तुम्हारा जीवन भी दुर्लभ हो जायेगा। मेरे पजे मे तुम्हे कोई नही बचा सकता। इस लिए मेरी बात मान लो।"

उस समय द्रौपदी ने कुछ ऐसा भाव बनाया मानो कीचक का प्रस्ताव उसे स्वीकार है और वह उस के प्रभाव मे आ गई है। वह बोली।

सेनापति ! मैं आप की बात टालने का साहस भला कैसे कर सकती हू। पर लोकलज्जा मेरे आडे आती है। मैं सच कहती हू कि मुझे अपने पति से बडा भय लगता है। यदि आप मुझे वचन दें कि आप मेरे साथ समागम की बात किसी को मालूम न होने देंगे तो मै आप के आधीन होने को तैयार हूं। लोक निन्दा से मै डरती हू और यह नही चाहती कि यह बात आप के साथी सम्बन्धियो को ज्ञात हो। बस इतनी सी ही बात है।"

कीचक की बाछे खिल गई। आनन्द विभोर हो कर बोला—"बस इतनी सी बात पर तुम परेशान हुई फिरती हो और व्यर्थ ही बात का बतगड बनवा रही हो। तुम्हे विश्वास आये न आये पर वास्तव मे मैं तुम्हारी प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करूगा और इस बात का पता किसी को न चलने दूगा। मैं वचन देता हू कि मै तुम्हारे रहस्य को अपना रहस्य समझ कर अपने हृदय मे दफन कर दूगा। बस मुझे तो तुम्हारी 'हा' की आवश्यकता थी। अब बोलो मैं तुम्हारे लिए और क्या कर सकता हूं।"

"आप की सेवा मे फिर यह दासी भी उद्यत है।"

"तो फिर मधुर मिलन के लिए कोई समय, कोई स्थान ?"

"नृत्य शाला मे स्त्रिया दिन के समय तो नृत्य कला सीखती

रहती है—द्रौपदी ने अपने मन में उठ रहे घृणा तथा क्षोभ के भयंकर तूफान को छुपाते हुए कहा—रात को वे सब अपने घर चली जाती हैं। वहा कोई नहीं रहता। वही स्थान उपयुक्त है आप आज रात्रि को वही आकर मुझ से मिलें। मैं वहीं मिलूगी, किवाड खुले होंगे आप चुप चाप वहा आ जायें। देखिये किसी को कुछ भी पता न चले।"

कीचक के आनन्द का ठिकाना न रहा।

बडी बेचैनी से दिन बीता। बारम्बार कीचक आकाश की ओर देखता रहा, उसके अनुमान से वह दिन द्रौपदी के चीर की भांति बढता जा रहा था। पर द्रौपदी का चीर तो असीम था, दिन तो उतना ही लम्बा था, आखिर किसी तरह रात हुई। कीचक के दिन ढले ही स्नान किया। रात्रि का अंधकार फैलते ही बन ठन कर निकला और दबे पांव नृत्य शाला की ओर बढा। नृत्य शाला के किवाड खुले थे, देखते ही उसका हृदय बासों उछलने लगा। शीघ्रता से वह अन्दर घुस गया ताकि कोई देख न ले।

नृत्य शाला मे अंधेरा था। कीचक ने गौर से देखा तो पलग पर कोई लेटा हुआ दिखाई दिया। उस ने समझा उस के स्वप्नों की रानी पलग पर लेटी है। उस के हृदय ने कहा—

ओह! अपने वचन की कितनी धनी है बेचारी। कदाचित दिन ढले ही आ गई है और मेरी प्रतिक्षा करते करते थक कर पलग पर सो गई है।"

अंधेरे मे टटोलता हुआ पलग के पास पहुचा। और धीरे से फुस फुसाहट में बोला—

"मेरे हृदय की रानी! मृग नयनी! प्रियतमा! तुम आ गई। ओह! मुझे कितनी देर हो गई। क्षमा करना। मैं तुम्हारे वचन की पूर्ति के लिए बहुत छुपकर यहां आया हू।"

कीचक ने पलग पर लेटी हुई आकृति को सौरन्ध्री समझ कर बडे प्यार से उस पर हाथ फेरा। उस समय कामातुर होने के कारण उसका हाथ काप रहा था। उस ने कहा—"कोमलांगनी उठो। मैं आगया। मै तुम्हारा प्रमी! कितने दिनों से जिस कल्पना को मन मे सजोया था आज उसकी पूर्ति हुआ चाहती है। मेरे मन की चाह पूर्ण होगी। तुम जो सारे ससार मे सर्वाधिक सुन्दर हो, आज मुझ मिली। कितना उल्लास है मेरे मन मे? बस क्या बताऊ। मुझ जैसा सौभाग्य शाली और कौन होगा, जिसे तुम जैसी अप्सरा का प्रेम मिला हो।"

उसी समय वह आकृति विद्युत गति से जाग उठी, झपट कर उस ने कीचक दुष्ट का हाथ पकड लिया। जिस प्रकार मृग पर सिंह झपटता है, उस प्रकार वह आकृति झपटी। और कीचक का हाथ दबोच लिया। और इतने जोर का धक्का मारा कि प्रेम विह्वल कीचक धडाम से धाराशायी हो गया। कीचक समझ गया कि आकृति सौरन्ध्री न होकर उस का पति गधर्व ही है। गधर्व से पाला पडा जान कर वह सम्भल कर उठा। कीचक भी कोई कम शक्तिवान न था। वह उठा और भिड गया। दोनो मे मल्ल युद्ध होने लगा। यह इन्द्र बाली और सुग्रीव के युद्ध के समान था। दोनो ही बडे वीर थे। उन की रगड से बास फटने की सी कडक के समान भारी शब्द होने लगा। जिस प्रकार प्रचन्ड आधी वृक्ष का झझोड डालती है उसी प्रकार कीचक से लडने वाले योद्धा ने उसे धक्के दे दकर सारी नृत्य शाला मे घुमाया। बली कीचक ने भी अपने घुटनो की चोट से शत्रु को भूमि पर गिरा दिया। तब वह वीर दण्ड पाणि यमराज के समान बडे वेग से उछल कर खडा हो गया। एक बार क्रुद्ध होकर उसने कीचक को अपनी भुजाओं में कस लिया, जैसे रस्सी से पशु को बाध देते है। अब कीचक फूटे हुए नगारे के समान जोर जोर से डकारने और उसकी भुजाओ से अपने को मुक्त करने का प्रयत्न करने लगा। तनिक सी देरी ही मे कीचक का गला उस वीर के हाथ मे गया और उसने कीचक के सभी अगो को चकना चूर

कर दिया। कीचक की पुतलिया बाहर निकल आई। उसी समय जबकि कीचक अन्तिम सासे गिन रहा था, वह वीर बोला —"दुष्ट कीचक! तेरे पापाचार का दण्ड देने के लिए मैं आया था। याद रख भीम के ससार में रहते किसी की शक्ति नही जो उस सन्नारी की लाज से खिलवाड़ कर सके, जिसे तू सैरन्ध्री समझता है।"

तो वह वीर था भीमसेन। वह भीमसेन जिस के बाहु बल पर महाराजाधिराज युधिष्ठिर और माता कुन्ती को बहुत ही अभिमान था।

भीमसेन ने उस दुष्ट की ऐसी गति बनादी कि उसका एक गोलाकार मास पिंड सा बन गया। फिर द्रौपदी से विदा लेकर भीमसेन रसोई घर में चला गया और आराम से सो रहा।

इधर द्रौपदी ने नृत्य शाला के रखवालों को जगाया और बोली—"तुम्हारा सेनापति दुष्ट कीचक कामांध होकर प्रतिदिन मुझे तंग किया करता था। आज वह मुझ से बलात्कार करने आया था। मेरे पति के भ्राता गधर्व ने अनायास ही यहां पहुंच कर उस दुष्ट को दण्डित किया। जाओ देखो तुम्हारे सेनापति की क्या गति हुई। व्यभिचारी, मदान्ध और अत्याचारियों की यह दशा होती है। देखो तुम्हारे सेनापति वहां मृत पड़े हैं।"

सुनते ही रखवाले कांप उठे। उन्हों ने जाकर देखा कि वहां पर सेनापति नही, बल्कि खून से लथ पथ एक मास पिंड पड़ा था।

× × × × × × ×

कीचक के भाई उपकीचक कहलाते थे। नृत्य शाला के पहरेदारों ने कीचक की मृत्यु का समाचार उपकीचकों को दिया। यह ऐसा समाचार था कि उपकीचकों को सुनते ही बड़ा आघात लगा पर उन्हे तुरन्त ही विश्वास न हुआ कि संसार में कोई ऐसी

भी शक्ति हो सकती है जो कीचक जैसे शूरमा का वध कर सकती है। उनकी समझ में न आया कि सेनापति कीचक क्योंकर मारा गया। इस समाचार की सच्चाई को जानने के लिए वे दौडे दौडे नाट्य शाला गए और जब उन्होने कचक का मास पिण्डी की भाति पडा शव देखा, तो हठात उनकी आंखो से अश्रु धारा बह निकलो। वे सब उस शव के चारों ओर बैठ कर करुण क्रन्दन करने लगे। विलाप करते करते जब उन्हें बहुत देरी हो गई और उधर राज प्रासाद के सभी लोग कीचक के अन्तिम दर्शन करने एकत्रित हो गए तो उपकीचकों मे से एक बोला—"इस प्रकार विलाप करते रहने से क्या लाभ ! अब चलो भ्राता जी का अन्तिम सस्कार कर ले। जो होना था सो तो हो ही गया।"

अपने आंसू पोछ कर एक बोला—"पर अभी तक यह तो पता चला ही नही कि यह दुस्साहस किस मूर्ख ने किया कि सेनापति का वध कर डाला। हम लोगों के रहते वह बदमाश हमारे भाई का वध कर के निकल जाये यह तो हमारे लिए डूब मरने की बात है।"

"हा ठीक है। हम उस मूर्ख दुस्साहसी का सिर काट डालेंगे हम उसे जोवित नही छोड़ेंगे। हम उसे बता देंगे कि कीचक परिवार पर हाथ उठाना अपने नाश को निमन्त्रित करना है।" तीसरे उपकीचक ने कहा।

फिर तो सभी की मुट्ठियां बंध गईं। सभी क्रुद्ध होकर कीचक के हत्यारे को गालिया देने लगे। पहरेदार को बुलाया गया और हत्यारे के बारे में पूछा। जब उस ने बताया कि कीचक का बध सौरन्ध्री के कारण हुआ और हत्यारा गंधर्व सेनापति की हत्या करके निकल गया तो उन सभी को सौरन्ध्री पर बहुत क्रोध आया। उन्होने सौरन्ध्री को पकड लिया।

एक उपकीचक बोला—"इस स्त्री के कारण ही हमारे भ्राता का बध हुआ। यही है कीचक की हत्या की जिम्मेदार।

हम यह किसी प्रकार सहन नही कर सकते कि कीचक का वध करा कर यह पापिन जीवित रह कर हृदय जलाती रहे। इसे भी कीचक के साथ ही जलना होगा।"

ठीक है, ठीक है। इसे भी कीचक के शव के साथ ही जला दो।" समस्त उपकीचकों ने कहा।

राजा विराट कीचक के वध से बड़े दुखित थे क्योंकि अब वे अपने को निस्सहाय समझने लगे। कीचक से वे जहां भयभीत रहते थे, वहीं उसके सहारे वे निश्चिन्त थे। उन्हें अपने वैरियों का कोई भी भय नही रहा था। परन्तु कीचक के वध से उन के सामने पुनः वैरियों का भय उपस्थित हो गया था। और साथ ही वे उस गंधर्व से बहुत ही भयभीत थे जिसने कीचक को मार डाला था। वे सोचते थे कि सौरन्ध्री के कारण आज तो कीचक जैसा बलवान सेनापति मारा गया, कल को कहीं कुछ और न हो जाय।

इस लिए जब उपकीचकों ने सौरन्ध्री को कीचक के शव के साथ ही जला डालने का निश्चय किया तो उन्हों ने कोई विरोध न किया। यद्यपि उसी समय उन्हें यह भी ध्यान आया कि सौरन्ध्री के जला डालने पर यदि गंधर्वों ने मत्स्य देश को ही तहस नहस कर डालने की ठान ली तो क्या होगा? पर उसी समय उन्हे यह भी ध्यान आया कि यदि उपकीचको के आड़े आये और वे रुष्ट हो गए तो क्या होगा। बस इन प्रश्नों मे विराट बड़े असमंजस मे पड़ गए। चक्कर मे पड़े विराट को कुछ न सूझा कि क्या करें। बस वे चिन्तित रहे।

इधर उपकीचकों ने कीचक की अर्थी के साथ सौरन्ध्री को बांध लिया। और श्मशान भूमि की ओर चल पड़े। पांचाल देश की राजकुमारी और परम तेजस्वी धनुर्धारी अर्जुन की जीवन संगिनी द्रौपदी, सौरन्ध्री के वेष मे उस समय उपकीचकों के चंगुल मे फस कर अबला की भांति विलाप कर रही थी। उस ने करुण क्रन्दन करते हुए कहा—"कहां हैं मेरे सिरताज! कहां है मेरे

जीवन साथी वीर ! कहां हैं मेरे रखवारे शूरवीर। हाय ! मुझे अबला समझ कर यह दुष्ट जीवित ही चिता मे जलाने लेजा रहे हैं। दौड़ो ! मुझे बचाओ।"

इसी प्रकार आवाहन करती, विलाप करती, चीखती पुकारती द्रौपदी अर्थी के साथ बंधी हुई श्मशान भूमि में गई। लगता था कि आज द्रौपदी के जीवन का अन्त कायर उपकीचकों के हाथो ही होना है।

श्मशान भूमि में चिता सजाई गई। कीचक का शव रख दिया गया और अग्नि लगाई ही जाने वाली थी, कि द्रौपदी ने बडे करुण शब्दों मे रोकर कहा—"पापियो किसी सन्नारी को जीवित जलाते हुए तुम्हे लज्जा नही आती? क्या वीर पुरुषो का यही धर्म है? एक अबला के साथ इतना अन्याय करते हुए तुम्हारा हृदय नही कांपता? अरे दुष्टो इतना तो सोचो कि तुम भी किसी नारी की ही सन्तान हो। तुम ने भी किसी नारी की कोख से ही जन्म लिया।"

पर उन दुष्टों की समझ में एक बात न आई। तब द्रौपदी ने पुकार कर कहा—"हे नाथ! आप तो दुखियों के सहारे हैं। आप के धनुष मे तो इतनी शक्ति है कि सम्पूर्ण मत्स्य देश को भी नष्ट भ्रष्ट कर डालें ऐसी दशा में आपकी सहधर्मिणी दुष्टों के हाथों अबला की नाई जीवित जलाई जा रही है, तो आप कहा हैं? नाथ! आप ने तो जीवन पर्यन्त मेरा साथ देने और मेरी रक्षा करने की शपथ ली थी।"

कुछ देरी रुक कर बोली—"हे दिशाओ! मेरे सहयोगी उस वीर गधर्व से जाकर कहदो, जिस ने कीचक जैसे बलिष्ट को मार गिराया कि इस समय यदि उस ने सहयोग न दिया तो वह जिसकी आखो से आंसू न बहने देने के लिए वह गंधर्व ससार भर से टक्कर लेने को भी तैयार हो जाता है, इस ससार से चली जायेगी और हृदय मे शिकायत लेकर मरेगी कि जब समय आया तो पाच बलशाली

गंधर्वों में से एक भी काम न आया।"

"इस चुडैल को भौकने दो जी! लगाओ आग। हम ने बहुत धुरंधर गधर्व देखे हैं।" एक उपकीचक ने इतना कहा और आग लगानी चाही।

उसी समय श्मशान भूमि के एक कोने मे आवाज आई—"ठहरो! अभी आग न लगाना।"

देखा तो एक बड़े वृक्ष को कंधे पर रक्खे हुए एक भीमकाय व्यक्ति चला आ रहा है। उसे देखते ही उपकीचक सन्न रह गए। काटो तो शरीर मे रक्त नही। गला सूख गया। हाथ और पैर कांपने लगे। उस आगन्तुक के शरीर और कन्धे-पर रक्खे वृक्ष को देख कर उन्होने समझा कि हो न हो यही वह गधर्व है जिसे सौरन्ध्री पुकार रही थी।

आते ही उस वीर ने देखते ही देखते सभी उपकीचकों को मार डाला। उन में से किसी का साहस न हुआ कि उसका मुकाबला करता। द्रौपदी के उल्लास का ठिकाना न रहा।

बात यह थी कि वह वीर भीमसेन था। जो उपकीचकों से पहले ही श्मशान भूमि मे आ छुपा था।

उपकीचकों को मार कर द्रौपदी को भीमसेन ने नगर को भेज दिया और स्वय दूसरे रास्ते से महल मे चला गया।

× × × × × × ×

विराट चिन्ता मग्न बैठे थे। एक दूत ने प्रवेश करते हुए प्रणाम किया और हकलाते हुए कुछ कहना चाहा।

विराट नरेश ने उसकी ओर देखा। वे समझ गए कि दाल में कुछ काला है। पूछ बैठे—"कहो, कहो क्या बात है?"

"महाराज ग़ज़ब हो गया।"

"क्या बात है?"

"उप..............कीचक मारे गए।" उस ने कांपते हुए कहा।

सुन कर विराट भी कांप उठे। स्वयं कुछ न पूछ सके। कंक ने पूछा—"कैसे मारे गए उपकीचक? किस ने मारा उन्हें?

"महाराज! श्मशान भूमि में जब सौरन्ध्री को कीचक के शव के साथ चिता पर रख कर आग लगानी चाही। उसी समय कोई गंधर्व वहाँ पहुंचा और उसने सभी उपकीचकों को मार डाला।" दूत ने कहा।

कंक रूपी युधिष्ठिर समझ गए कि वह गंधर्व कौन हो सकता है। फिर भी कृत्रिम आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"हैं—क्या ऐसा हो गया—यह तो बडा बुरा हुआ।"

विराट के मुख से कुछ भी न निकला। उनकी आखों के सामने तो महानाश की कल्पना आ गई।

× × × × × × ×

सौरन्ध्री! हम तुम्हारी सेवा से बडे प्रसन्न है। तुम वास्तव मे बडी ही बुद्धि मति सन्नारी हो।" रानी सुदेष्णा ने कहा।

द्रौपदी हाथ जोड कर बोली—"आप मुझ से सन्तुष्ट है यह मेरे लिए बडी सौभाग्य की बात है।"

"परन्तु रुष्ट न होना। अब महाराज को तुम्हारी सेवाओं की आवश्यकता नही रही। मुझे खेद है कि अब मैं तुम्हारी सेवाओं से वंचित रहूंगी।"—रानी बोली।

ऐसी क्या त्रुटि हुई मुझ से?" द्रौपदी ने विस्मित हो

कर पूछा।

"नही त्रुटि तो कोई नही हुई। पर अब हम तुम्हे अपने महल मे नहीं रख सकते।"

"सो क्यो?"

"बात यह है कि महाराज तुम्हारे गधर्वों से घबराते है। और वह नही चाहते कि तुम्हारे कारण कोई नई मुसीबत खडी हो जाय।"—रानी सुदेष्णा ने कहा।

राजा विराट ने पहले ही रानी सुदेष्णा को कह दिया था कि सौरन्ध्री को उचित पुरस्कार देकर विदा कर देने मे ही हमारा कल्याण है। पता नही उसके गधर्व क्या कर डालें। इसी लिए सुदेष्णा ने जो स्वयं ही द्रौपदी से भयभीत हो गई थी, उक्त बात कही थी।

द्रौपदी को बडी ठेस लगी। फिर भी उसने नम्रता पूर्वक कहा—"महारानी जी! केवल १५ दिन मुझे और यहा रहने की आज्ञा दे दीजिए। तब तक मेरे पति का एच्छिक कार्य तथा मन्तव्य पूर्ण हो जायेगा। और वे स्वय ही मुझे यहा से ले जायेंगे। आप ने जहां और बहुत सी कृपाए की हैं इतनी और कीजिए।"

रानी ने यह बात विराट से जा कही। और उन दोनो ने, द्रौपदी के पति के भय से, द्रौपदी की विनती स्वीकार कर ली।

नगर के जो लोग भी द्रौपदी को देखते, कह उठते—"इस का रूप ही इतना आकर्षक है कि कोई वीर उस पर आसक्त होकर अपने प्राण दे तो कोई आश्चर्य को बात नही। पर है यह बडी भयानक। इस की ओर किसी ने कुदृष्टि से देखा और प्राण गए।"

द्रौपदी से सभी घबराने लगे थे। अतएव कोई उसे किसी कार्य को न कहता। बात तक करते हुए घबराते। परन्तु द्रौपदी उसी प्रकार सेवा कार्य करती रही। जबकि रानी सुदेष्णा उसे कहा करती कि वह अधिक काम न किया करे। आराम से रहे।

* मोलहवां परिच्छेद *

दुर्योधन विचार मग्न बैठे थे। उस के पास ही उस समय भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण, कृपाचार्य, त्रिगर्त्त देश के राजा और दुर्योधन के भाई भी उपस्थित थे। विचार इस बात पर हो रहा था कि पाण्डवों का पता कैसे लगाया जाय।

एक गुप्तचर ने प्रवेश किया। दुर्योधन शीघ्रता से पूछ बैठा— "बोलो ! क्या समाचार लाये ? कुछ पता चला पाण्डवों का ?"

वह सिर नीचा कर के खडा हो गया।

"कुछ कहो भी कही सुराग लगा ?"—दुर्योधन ने उत्सुकता से पूछा।

"महाराज ! मैं और मेरे साथियों ने कई देशों मे खोज की। पहाडो की गुफाओ मे, ऊंचे ऊंचे शिखरो पर, जगलो मे, जनता की भीड़ो मे, मेलो में ग्रामो तथा नगरो म, जगलियो और खेत मजदूरो किसानो आदि मे ढूढा पर पाण्डवो का कही पता न चला। उनके इन्द्रसेन आदि सारथि द्वारका पुरी पहुचे है, उन से भी पता चलाया। पर यह पता न लग सका कि वे कहां गए। जीवित

है या मर गए। कुछ समझ मे नही आता कि वे किधर निकल गए।" —उस गुप्तचर ने खेद पूर्वक कहा।

"गाव मे नही, शहरो में नही, पहाडों पर नही, जंगलो में नहीं तो फिर वे कहाँ निकल भागे। उन्हे जमीन खा गई या आस्मान निगल गया? नही, नहीं तुम मूर्ख हो। तुम ने ठीक प्रकार देखा ही नही। वरना वे सूई तो है नही कि कहीं पत्तो या राख मे दुबके पड़े रहे। तुम सब नमक हराम हो।"—दुर्योधन ने गर्ज कर कहा।

उसी समय एक और गुप्तचर आया।

दुर्योधन ने उसकी ओर टेढी नजर डाल कर कहा—"हां, तुम बोलो! तुम ने भी कुछ किया या नही?"

"महाराज! मैंने समस्त साधु सन्तो के उपाश्रय देखे। विद्वानो के आश्रमों मे खोज की। पर पाण्डव कहीं दिखाई न दिए और जब मुझे विश्वास हो गया कि पाण्डव इस धरती पर हैं ही नहीं तो वापिस चला आया।"—गुप्तचर ने कहा।

अभी दुर्योधन उसकी बात पर टिप्पणी भी नहीं कर पाया था कि एक दूत ने आकर कहा—"महाराज मत्स्य देश से जो हमारे गुप्तचर आये हैं उन्होंने बताया है कि मत्स्य का सेनापति कीचक किसी गधर्व के हाथों बड़े रहस्य पूर्ण ढग से मारा गया। और उस के बाद कीचक के सारे भाई भी मार डाले गए।"

इस समाचार से दरबार मे उपस्थित सभी लोग विस्मित रह गए। त्रिगर्त्तराज सुशर्मा समाचार सुन कर उछल पड़ा। उस ने सन्तोष की सास लेते हुए कहा—"ओह कितना शुभ समाचार है। आज मेरे हृदय को शान्ति मिली। कीचक मार डाला गया तो मेरी छाती पर रक्खी एक भारी शिला उतर गई। मत्स्य देश की सेनाओ ने कई बार हमारे ऊपर आक्रमण किए और वे सब आक्रमण दुष्ट कीचक के कारण ही हुए। कीचक ने मेरे बन्धु

बांधवों को बहुत तंग किया था। कीचक बड़ा ही बलवान, क्रूर, असहन शील और दुष्ट प्रकृति का पुरुष था, वह मारा गया अब हम मत्स्य नरेश से अच्छी तरह निबट सकते है।"

दुर्योधन ने कहा—"त्रिगर्त्तराज ! लो तुम्हारी चिन्ता तो समाप्त हुई। अब जब कहोगे तभी तुम्हारे शत्रु से बदला ले लिया जायेगा, पर पहले यह तो सोचो कि पाण्डवों का पता कैसे चले। उनके अज्ञात वास का समय समाप्त होने वाला है। यदि शीघ्र ही उनका पता न चला तो अज्ञात वास काल समाप्त होते ही वे गुर्राते हुए यहां आ पहुंचेंगे और एक बड़ी मुसीबत खड़ी हो जायेगी। यद्यपि वे बेचारे अब हमारा कुछ भी नहीं बिगाड सकते परन्तु फिर भी यह कितना अच्छा हो कि हम अज्ञात वास काल मे ही उन्हे ढूढ निकाले और वे यहा आकर क्रोध को पीते हुए पुनः बारह वर्ष के लिए जंगलो की खाक छानने के लिए चले जायें।"

कर्ण ने परमर्श देते हुए कहा—"मैं आप के विचारों से सहमत हू। मेरी राय से तो अब दूसरे कुशल गुप्तचर भेजे जायें जो भिन्न भिन्न देशों मे जायें, तथा सुरम्य सभाओं मे, सिद्ध महात्माओं के आश्रमो मे, राज नगरो मे, गुफाओं में वहा के निवासियों से बड़े ही विनीत शब्दों मे युक्ति पूर्वक पूछ कर पता लगावें।"

दुशासन बोला—"राजन् ! जिन दूतो पर आपको विशेष भरोसा हो वही शीघ्र ही मार्ग व्यय लेकर चले जायें। देरी करना ठीक नही है।"

दुर्योधन ने तत्वादर्शी द्रोणाचार्य की ओर दृष्टि डाली, तो वे बोले—"पाण्डव शूरवीर, विद्वान, बुद्धिमान, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ और अपने ज्येष्ठ भ्राता धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा से चलने वाले है। ऐसे महापुरुष न तो नष्ट होते हैं और न किसी से पराजित हो। उन मे धर्मराज तो बड़े ही शुद्धचित्त, गुणवान, सत्यवान नीतिमान, पवित्रात्मा और तेजस्वी हैं। अपनी शुभ प्रकृति के कारण उन मे इतनी शक्ति है कि जब वह छुप कर रहना चाहे तो

उन्हे अपनो आंखों से देख कर भी कोई पहचान न सकेगा। अतः इस बात को ही ध्यान में रख कर हमें विद्वान, सेवक, सिद्ध पुरुष अथवा उन अन्य लोगों से, जो कि उन्हे पहचानते हैं, ढूढवाना चाहिए।"

दुर्योधन महाराज युधिष्ठिर की प्रशंसा से चिढ़ता था, उस ने कहा—"गुरुवर! आप तो पाण्डवों को न जाने क्या समझते हैं। आप मुझे पूर्ण प्रयत्न कर लेने दीजिए, जब मेरे गुप्तचर उन्हें खोज निकालेंगे और वे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार पुनः १२ वर्ष के लिए बनों में भटकने चले जायेंगे तब आप का भ्रम टूटे गा।"

द्रोणाचार्य मौन रह गए। उसी समय दुर्योधन ने भीष्म पितामह की ओर देख कर कहा—"पितामह! आप भी तो अपना मत दीजिए। पाण्डवों की खोज कैसे की जाय। अब उनके अज्ञात वास के दिन समाप्त हो रहे हैं। यदि शीघ्र ही कोई उपाय न किया गया तो पाण्डव इस दांव से बच निकलेंगे और फिर युद्ध ठानदेंगे।"

पितामह बोले—"पाण्डवों की प्रशंसा सुनना तुम नही चाहते। अतः मैं उनकी शक्ति का बखान नही करता। हा, इतना अवश्य कहता हू कि जहा धर्मराज तथा उनके शुभ प्रकृति के भ्राता होगें, उस देश मे समृद्धि का राज्य होगा, वहा उत्तरोत्तर उन्नति हो रही होगी। धन धान्य की बाहुल्यता हो गई होगी और वह राज्य सभी प्रकार के आतको से शून्य होगा।"

"इस का तो यह अर्थ हुआ कि हम पहले उस देश की खोज करें जिसमे गत दस ग्यारह मास के भीतर समृद्धि का साम्राज्य हुआ हो।" दुर्योधन बोला।

"दीपक जहा जलेगा, वहा प्रकाश होगा, और जहां प्रकाश है वहीं दीपक को खोज लो।" पितामह बोले।

दुर्योधन ने कहा—"पितामह! आप तो हमें कोई सीधा

सादा उपाय बताइये। समय कम है। आप की राय की हमे आवश्यकता है और आप की कृपा बिना हमारा किसी कार्य मे सफल होना दुर्लभ है।"

तब भीष्म जी बोले—"राजन् ! युधिष्ठिर जैसे धर्मराज, अर्जुन जैसे धनुर्धारी और भीम जैसे बलवान से टक्कर लेनी आसान बात नही है। फिर भी, चूकि तुम टक्कर लेना ही चाहते हो तो इतना करो कि ऐसे महाबली की खोज कराओ जिस ने गत दस ग्यारह मास में कोई विचित्र तथा दुस्साहस पूर्ण कार्य किया हो, जिस को देख कर या सुन कर लोग अचम्भे मे पड़ गए हों। बस समझ लो कि वह भीम ही है। क्योकि भीम शात प्रकृति का व्यक्ति नही है। जैसे रवि मेघ खण्डों के नीचे छुपा होने पर भी अपना अस्तित्व बिल्कुल ही नही छुपा सकता उसी प्रकार भीमसेन लाख छुपने का प्रयत्न करे पर वह कोई न कोई ऐसा दुस्साहस पूर्ण कार्य अवश्य ही कर बैठेगा, जिस से सभी चकित हो जायें। याद रक्खो कि भीम की टक्कर का अब बस एक ही व्यक्ति और शेष है वह है बलराम। कीचक था, पर भीम से कम।"

इतना सकेत पा कर कर्ण ने तुरन्त पूछा—"राजन् ! पितामह ने एक बात बडे काम की कही। कीचक वास्तव में बडा ही बलवान था। तनिक इस बात का पता तो लगाइये कि कीचक का वध कैसे हुआ।"

दुर्योधन ने तुरन्त उस दूत को बुलवाया जिस ने कीचक के वध का समाचार दिया था और उस ने पूछा कि कीचक का वध किस ने और कैसे किया।

वह बोला—'महाराज यह तो ज्ञात नही हुआ कि कीचक को किस ने मारा। पर इतना सुना है कि उसका वध किसी स्त्री के कारण हुआ।"

दुर्योधन ने बात ताड ली। वह एक दम प्रसन्न हो उठा और उल्लासातिरेक मे बोला—"लीजिए पता लग गया। हम ने पाण्डवों को खोज लिया।"

कर्ण के हर्ष का ठिकाना न रहा। पूछा—"कैसे ? कहां हैं वह ? बताइये तो सही।"

"वे मत्स्य देश में है।"

"यह कैसे ज्ञात हुआ ?"

"कीचक को भीम तथा बलराम दो ही वीर मार सकते हैं। बलराम का कीचक से कोई द्वेष नहीं। अवश्य ही उसे भीम ने मारा है और जिस स्त्री के कारण उसका वध हुआ वह द्रौपदी ही होगी।"—दुर्योधन ने उत्साह पूर्वक कहा।

"ठीक है। आप बिल्कुल ठीक कहते हैं।"—कर्ण बोला।

उसी समय त्रिगर्त्त देश के वीर सुशर्मा ने कहा—"तो फिर आप मुझे मत्स्य देश पर आक्रमण करने दीजिए। यदि पाण्डव वहां छुपे है तो वे अवश्य ही विराट की ओर से युद्ध करने आयेगे। तब उन्हें हम पहचान लेंगे और आप अपने मन्तव्य में सफल होंगे।"

दुर्योधन ने सुशर्मा की बात स्वीकार करली और उसने निश्चय किया कि सुशर्मा मत्स्य देश पर दक्षिण की ओर से आक्रमण करे और जब विराट अपनी सेना लेकर सुशर्मा के मुकाबले के लिए जाये तो उसी समय मैं अपनी सेना लेकर उत्तर की ओर से छापा मार दूंगा। दुतर्फा युद्ध के द्वारा हम विराट का सारा गोधन ले आयेंगे। उसे परास्त कर उसका राज्य छीन लेंगे और यदि पाण्डव वहां हुए तो उनका पता लग जायेगा। साथ ही यदि पाण्डव युद्ध करने आये तो उन्हें युद्ध स्थल पर मार कर निर्विघ्न राज्य करने का अवसर पा जायेंगे।

विराट नरेश ने दुर्योधन की मित्रता को सदैव ठुकराया था इस लिए दुर्योधन तो उस पर खार खाये बैठा था और सुशर्मा विराट से बदला लेने का इच्छुक था। कर्ण प्रत्येक दशा में दुर्योधन को प्रसन्न देखना चाहता था। इस लिए तीनों ने मिल कर पूरी योजना बना ली और सेनाओं को तैयार रहने का आदेश दे दिया गया।

× × × × × × ×

योजना अनुसार सुशर्मा ने दक्षिण की ओर से मत्स्य देश पर आक्रमण कर दिया। मत्स्य देश के दक्षिणी भाग से त्रिगर्त राज की सेना छा गई और गायों के झुण्ड के झुण्ड सुशर्मा की सेना ने हथिया लिए, लहलहाते खेत उजाड़ डाले, बाग बगीचों को तबाह कर दिया। ग्वाले तथा किसान जहा तहा भाग खड़े हुए और राजा विराट के दरबार मे दुहाई मचाने लगे। विराट ने जब यह समाचार सुना उसे बड़ा खेद हुआ। उसने कहा -"हा, शोक! ऐसे समय पर शूरवीर कीचक नही रहा। उस की मृत्यु का समाचार पा कर ही सुशर्मा को मत्स्य देश पर आक्रमण करने का साहस हुआ।"

उन्हे चिन्तातुर होते देख कर कक (युधिष्ठिर) ने उनको सान्त्वना देते हुए कहा—राजन्! आप चिन्तित क्यों होते है। कीचक नही रहा तो क्या मत्स्य राज्य अनाथ हो गया? आप सेनाए तो तैयार करवायें। सुशर्मा जैसे लोगो का यह भ्रम आपको तोडना ही चाहिए कि कीचक मारा गया तो विराट नरेश के पास कोई शक्ति ही नहीं रही।"

"यह भ्रम टूटे तो कैसे? मैं स्वयं तो वृद्ध हो चुका हूं। कीचक और उपकीचक सभी मारे गए अब सेना मे ऐसा कोई वीर नही जो सुशर्मा का सामना कर सके। अफसोस कि मैंने सौरन्ध्री को अपने रनिवास मे स्थान देकर स्वय ही अपनी बरबादी को निमन्त्रित किया।"—इतना कह कर विराट बहुत दुखित होने लगे।

उसी समय कक ने कहा—"महाराज! आप घबराइये नहीं। यद्यपि मैं सन्यासी ब्राह्मण हू फिर भी अस्त्र विद्या जानता हू। मैंने सुना है कि आपके रसोइये, वल्लभ अश्वपाल ग्रथिक और ग्वाला तंतिपाल भी बड़े कुशल योद्धा हैं। मैं कवच पहन कर रथा रूढ़ होकर युद्ध क्षेत्र मे जाऊंगा। आप उनको भी आज्ञा देदें। उनके लिए रथों, वस्त्रों तथा अस्त्र शस्त्रों का प्रबन्ध करदें। फिर देखिये कि सुशर्मा का भ्रम कैसे टूटता है।"

'क्या शास्त्र में तुम चारों अस्त्र शस्त्र चलाना जानते हो?"

"हां, महाराज ! आप निश्चिन्त हों।"

"तो क्या तुम्हें विश्वास है कि सुशर्मा को मुह ...."

"हां, हां, सुशर्मा बेचारा किस खेत की मूली है।"

यह सुन विराट बड़े प्रसन्न हुए। उनकी आज्ञा अनुसार चारों वीरो के लिए रथ तैयार होकर आ खड़े हुए। अर्जुन को छोड शेष चारो पाण्डव उन पर चढ कर विराट और उसकी सेना सहित सुशर्मा से लडने चले गए।

राजा सुशर्मा और राजा विराट की सेनाओ मे घोर युद्ध हुआ दोनों ओर के असख्य सैनिक खेत रहे। सुशर्मा तथा उसके साथियो ने राजा विराट को घेर लिया और रथ से उतरने पर विवश कर दिया। अन्त मे सुशर्मा ने विराट को कैद करके अपने रथ पर बिठा लिया और विजय का शख बजाते हुए अपनी छावनी मे चला गया। जब राजा विराट बन्दी बना लिए गए तो उनकी सेना तितर बितर होगई। सैनिक प्राण लेकर भागने लगे। यह हाल देख कर युधिष्ठिर भीम को आज्ञा देते हुए बोले—"भीम! अब तुम्हे जी लगा कर लडना होगा। लापरवाही से काम नहो चलेगा। अभी ही विराट को छुडा लाना होगा। तितर बितर हो रही सेना को एकत्रित करना होगा और फिर अपने बाहुबल से सुशर्मा का हर्ष चूर्ण करना होगा।"

भीमसेन को तो ज्येष्ठ भ्राता के आदेश की देरी थी। अभी युधिष्ठिर की बात पूर्ण भी न होने पाई थो कि भीमसेन दौड कर एक भारी वृक्ष के पास गया और उसे उखाड़ने लगा। युधिष्ठिर ने तुरन्त जाकर उसे रोका और कहा—यदि तुम सदा की भाति पेड उखाडते तथा सिंह की सी गर्जना करने लगे तो शत्रु तुम्हे तुरन्त पहचान लेगा। इस लिए और लोगो की ही भाति रथ पर बैठे हुए धनुष बाण के सहारे लडना ठीक होगा।"

भ्राता की आज्ञा मान कर भीम सेन रथ पर से ही सुशर्मा की सेना पर बाणो की बौछार करने लगा। थोड़ी देरि की लड़ाई के बाद भीम ने विराट को छुड़ा लिया और सुशर्मा

को बन्दी बना लिया। मत्स्य देश की सेना जो सुशर्मा के भय से भाग गई थी पुन. मैदान मे आ डटी और सुशर्मा की सेना से युद्ध करने लगी। भीम सेन के नेतृत्व में विराट की सेना ने सुशर्मा की सेना पर विजय प्राप्त करली।

विराट भीम का ऐसा पराक्रम देख कर बहुत ही प्रसन्न हुआ। युधिष्टर ने कहा—"महाराज ! सुशर्मा का हर्ष चूर्ण करने के लिए ही हम लोग आये थे। वह हो गया। अब सुशर्मा को मुक्त कर दीजिए क्योंकि क्षमा शीलता धर्म का आभूषण है। दया वीरों को शोभा देती है।"

कक रूपी युधिष्ठर की बात महाराज विराट ने स्वीकार कर ली और सुशर्मा को मुक्त कर दिया।

सतारहवां परिच्छेद

दुर्योधन से टक्कर
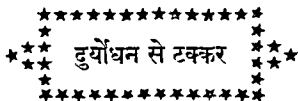
(राजकुमार उत्तर)

उधर राजा विराट, चार पाण्डवों के सहयोग से सुशर्मा से लड रहे थे, इधर उत्तर दिशा से दुर्योधन ने अपनी सेनाओं तथा सहयोगियो सहित आक्रमण कर दिया। उसकी सेनाओ ने लाखो गौए हांक ली; लहलाते खेतो को नष्ट कर डाला। ग्रामीण अपने प्राण लेकर भाग खडे हुए और उन्हो ने जाकर राजकुमार उत्तर के सामने दुहाई मचाई।

बोले- "दुहाई है राजकुमार की हम पर भारी विपदा का पहाड़ टूट पडा हैं। कौरव सेना हमारी गाए भगा लेजा रही है। हमारे खेतो खलिहानों को तबाह कर डाला गया है। हमारे ग्रामो पर मौत मडरा रही है। हम बरबाद हो रहे हैं। हमें बचाइये।"

राजकुमार बोला—"तुम्हारी व्यथा को सुन कर हमारा हृदय शोकातुर हो गया है। हमें तुम्हारे प्रति सहनुभूति है। विश्वास रक्खो कौरव सेनाम्रो का सिर कुचल दिया जायेगा। बस महाराज को वापिस आ लेने दो। वे दुष्ट सुशर्मा को परास्त करने गए हैं। आते ही होंगे।"

"राजकुमार! महाराज तो जाने कब तक लौटे। —ग्वाले और किसान दीनता पूर्वक बोले—युद्ध में न जाने कितना समय लग जाए। उस समय तक तो हमारा सर्वनाश हो जायेगा।

और क्या पता कौरव सेना तबाही मचाती हुई उस समय तक राजधानी तक भी पहुंच जाय। आप हमारे राजकुमार है भावी राजा है। इस अवसर पर आप ही हमारे एक मात्र रक्षक है।"

जिस समय ग्वाले और कृषक अपनी दुख भरी गाथा सुना रहे थे, कितने ही नगरवासी वहा आगए थे और रनिवास की स्त्रिया ऊपर खडी २ सारी बातें सुन रही थी। राजकुमार भला अपने को कायर कहलाने को कब तैयार हो सकता था उसने जोश मे आकर कहा—"घबराने की कोई बात नही है। यदि महाराज नही तो क्या हुआ मैं तो हूं। यदि मेरा रथ हाकने वाला कोई सारथी मिल जाये तो मैं अकेला ही जाकर शत्रु सेना के दात खट्टे कर दूगा और एक २ गाय उन दुष्टो के फदे से छुडा लाऊगा। ऐसा कमाल का युद्ध करूगा कि लोग भी विस्मित होकर देखते रह जायेंगे। कहेंगे—'कही यह अर्जुन तो नही है' मैं महाराज विराट की सन्तान हू। मेरी भुजाओ मे क्षत्रिय रक्त दौड रहा है।"

ग्वाले और कृषक राजकुमार उत्तर की इस उत्साह पूर्ण बात को सुन कर बडे प्रसन्न हुए। उन्होने हाथ जोड कर गद गद कण्ठ से कहा—"धन्य हो राजकुमार! आप वास्तव मे वीर सन्तान हैं। आपके रहते मत्स्य देश वासियो को भला किस का भय? बस कृपा कर जल्दी ही चले चलिए।"

"अरे! तुम बडे मूर्ख हो। बात नही समझे? मै कह रहा हूं कि एक सारथी का प्रबन्ध करदो। यदि रण स्थल मे रथ हाकने का अनुभव रखने वाला कोई सारथी मिल जाय तो मैं अभी, इसी समय चल सकता हू। वरना पैदल थोडे ही युद्ध होता है। और ऐसे सारथी सभी महाराज के साथ गए है। ऐसी दशा में तुम्ही बताओ मैं कर क्या सकता हू?"—राजकुमार उत्तर ने ग्वालों तथा कृषको के सामने एक उलझन उपस्थित करदी। अब भला बेचारे ग्वाले और कृषक कहा से सारथी लायें। उनका मुह फैला का फैला रह गया। विवशता नेत्रो मे झांकने लगी। उन बेचारों का क्या पता कि राजकुमार के पास सारथी हो या न हो पर बल तथा साहस की बहुत कमी है।

उस समय द्रौपदी भी रनिवास की अन्य स्त्रियों के साथ खडी सारी बातें सुन रही थी। उसने राजकुमारी उत्तरा के पास जाकर कहा —"राजकन्ये! देश पर विपदा आई हुई है। ग्वाले और कृषक घबराये हुए राजकुमार के आगे दुहाई मचा रहे है कि कौरवों की सेना उत्तर की ओर से नगर पर आक्रमण कर रही है। और मत्स्य देश की सैकडों हजारों गाएं लूट ली हैं। इस समय महाराज दक्षिण की ओर सुशर्मा से युद्ध करने गए हैं। राजकुमार देश की रक्षा के लिए युद्ध करने को तैयार हैं, किन्तु कोई सुयोग्य सारथी नही मिलता। इसी से उनका जाना अटका हुआ है।"

"तो इस में मैं क्या कर सकती हूं?"

"आपकी बृहन्नला रथ चलाना जानती है। जब मैं पाण्डवों के रनिवास में काम किया करती थी तो उस समय मैंने सुना था कि बृहन्नला कभी कभी अर्जुन का रथ हाक लेती है। यह भी सुना था कि अर्जुन ने उसे धनुर्विद्या भी सिखाई है। इस लिए आप अभी बृहन्नला को आज्ञा दे दें कि राजकुमार उत्तर की सारथी बनकर रणांगण मे जाकर कौरव सेना को रोकें।"

—द्रौपदी के मुख से यह बात सुन कर राजकुमारी के आश्चर्य की सीमा न रही।

"सैरन्ध्री! क्या बृहन्नला इतनी गुणवती है? आश्चर्य है।"

"और जब वह युद्ध मे जाकर अपने कमाल दिखायेंगी तो आपको और भी अधिक आश्चर्य होगा? अर्जुन इसी कारण तो बृहन्नला का बहुत आदर करते थे।"

"कही तू झूठ ही तो नही कह रही?"

"क्या आपने मेरे मुख से आज तक कोई असत्य सुना?"

राजकुमारी निरुत्तर हो गई।

उसने अपने भाई के पास जाकर कहा—भैया! मैंने सुना है कि तुम कौरव सेनाओं का सहार करने जा रहे हो।"

'तो इस में आश्चर्य की क्या बात है ? क्या मैं वीर विराट की सन्तान नही हूं।"

"भैया ! मुझे आज तुम्हारे मुख से यह बात सुनकर कितना हर्ष हो रहा है, बस मैं ही जानती हूं। तुम विजयी होकर लौटो मेरी यही हार्दिक कामना है।"

उत्तरे ! विजय तो मेरी निश्चित है पर मैं जाऊं तो कैसे ? कोई सारथी तो है ही नही।"

"भैया ! मैं तुम्हे यही शुभ सवांद सुनाने आई थी।"

"क्या ?"

"सारथी मिल गया और वह भी अर्जुन का।"

आश्चर्यपूर्वक उत्तर ने पूछा—"कौन है वह ? कहा है ?"

"यह हमारी बृहन्नला है ना। यह अर्जुन का रथ हांका करती थी। इसे अर्जुन ने धनुर्विद्या भी सिखाई है। बस यह तुम्हारे सारथी का काम देगी।"

अपनी बनी बनाई धाक को चोट पहुचने के भय से राजकुमार उत्तर ने कहा—"उत्तरे ! तुम भी कैसी मूर्खता की बातें करती हो। कहा बृहन्नला नपुसक और कहां युद्ध रथ का सारथी। अरे तुम ने भाग तो नही खा ली तनिक सोचो तो कि क्या अर्जुन को यही मिली थी रथ हाकने को ?"

"नही भैया ! सौरन्ध्री कहती है अर्जुन इसे बहुत स्नेह करते थे। तुम युद्ध में जाना चाहो तो बृहन्नला को अपना सारथी बना लो। न जाना चाहो तो दूसरी बात है।"

उत्तरा की इस बात से राजकुमार उत्तर ने अपनी बात बनाए रखने के लिए कहा—"नही ! मुझे तो कोई आपत्ति नही बृहन्नला यदि वास्तव मे रथ हाक सके। तो मेरे साथ चले।"

"तुम अब जवान हो। किसी भी दिन तुम्हें शासन की बागडोर सम्भालनी पड़ सकती है, इस लिए युद्ध मे जाओ और अपनी तलवार के जौहर दिखा कर कीर्ति तथा यश प्राप्त करो।"

जब किसी को वीर कहने लगो तो उसे भी अपने बारे मे भ्रम होने लगता है। फिर उत्तर तो अपने को वीर समझता ही था। यह उसका पहला अवसर था कि अकेला युद्ध के लिए तैयार हो, लड़कपन के उत्साह तथा चचलता ने जोर मारा और वह तैयार हो गया।

राजकुमारी उत्तरा ने रनिवास से जाकर वृहन्नला से कहा —"वृहन्नला! मेरे पिता की सम्पत्ति और मत्स्य देश वासियों की गौओ को कौरव सेनाएं लूट लिए जा रही हैं दुष्टो ने ऐसे समय पर आक्रमण किया है कि जब राजा नगर मे नही है। मेरे भैया उत्तर उन दुष्टो को मार भगाने के लिए युद्ध करने जाने को तैयार है, पर उन्हे कोई सारथी नही मिल रहा। सौरन्ध्री कहती है कि तुम्हें अस्त्र शस्त्र चलाना आता है और तुम अर्जुन का रथ हाक चुकी हो, तो तुम्ही राजकुमार उत्तर का रथ हाक ले जाओ न?"

"वाह राजकुमारी जी!—वृहन्नला रूपी अर्जुन ने कहा —आप भी बहुओ मे चोर सरवाने जैसी बातें करती हैं। कहा मैं और कहा सारथी बनना। आप मेरा बध करवाना चाहती हैं तो अपने आप सिर काट डालिए। पर मुझे कौरव वीरो की तलवार से काटने का दण्ड न दीजिए। ओह! जिस समय युद्ध मे धनुषों की टकार सुनाई देगी। हाथी घोडो की चिघाड़ गूजेगी, मेरी छाती फट जायेगी। मैं तो बिना मारे ही मर जाऊंगी। हाय! उस समय तो मेरे शव को कोई ठिकाने लगाने वाला भी होगा। राजकुमारी जी! मैं सग्राम मे नहीं जाऊंगी।"

वृहन्नला की कृत्रिम घबराहट के भावो को व्यक्त करके भी बात मे राजकुमारी का विश्वास न डिगा। उसने कहा— "वृहन्नला बात बनाने की चेष्टा न करो। ऐसे सकट के समय मे भी यदि तुम काम न आओगी, तो तुम्हारी विद्या और योग्यता का भला क्या लाभ?"

"अजी राजकुमारी जी! योग्यता तो मेरे पास भी नहीं फटकती और विद्या की पूछती हो, तो वह तो एक मील दूर से ही मुझ से नाक सिकोड कर भागती है। हां, कौरव सेनाओं को नाच गा कर रिझाना हो तो फिर बन्दी तैयार है, पर इस के लिये साजिन्दें भी दरकार है।" —बृहन्नला ने आखें मटकाते हुए कहा।

बृहन्नले! तू मुझे निरा मूर्ख क्यो समझती है। बात बना कर बहकाने में क्या लाभ! तुझे मैं भलि प्रकार समझती हू और सौरन्ध्री तो तेरी रग रग से परिचित है।"—राजकुमारी बोली।

"अजी! सौरन्ध्री का क्या ठिकाना। वह नपुसको को भी अर्जुन समझ बैठे? अपना तो काम नाचना गाना है, और बेचारी सौरन्ध्री संग्राम को भी हीजडो का खेल समझ बैठी है। उनसे पहले यह तो पूछिए कि नाट्यशाला और संग्राम भूमि मे दूरि कितने अंगुल की होती है।" बृहन्नला ने अपने को छुपाने का भरसक प्रयत्न करते हुए कहा।

"तू अपनी बहानेबाजी से उस राज्य के सकट के समय काम आने मे मुह छुपाती है, जिसका तूने इतने दिनो तक नमक खाया है और ऐश से रही। आज काम न आयेगी तो क्या मरहम बना कर फोडे पर लगाई जायेगी? ठीक ही है नपुसक से आडे समय पर काम आने की आशा रखना रेत से तेल निकालन के समान है।" राजकुमारी उत्तरा ने क्षुब्ध होकर कहा।

बृहन्नला ने इस ताने से प्रभावित सी होकर कहा—"राजकुमारी! आप तो इतनी सी बात पर रुष्ट हो गई। भला मैं आपके काम न आऊगी तो किस के काम आ सकती हू। मैं तो यह कहती थी कि आप तो ऐसी को सारथी के काम पर नियुक्त कर रही है जो घोडो से इतना घबराती है कि छाती थामो कूदने सी लगती है और घोडो की लगाम तो क्या अपने हृदय की लगाम तक सम्भालने मे सफल नहीं होती। फिर भी सकट आया है तो लीजिए अब यह काम भी कर लूगी। आप रथ जुडवाइये और इन लचकीले हाथों मे घोडो की लगाम दीजिए। इस नजाकत

से हाकूगी। कि मुए कौरव मोहित न होकर रह जायें तो तब कहिए।"

उसी समय द्रौपदी वहा आ गई और उसी के साथ साथ रनिवास की अन्य स्त्रियां भी यह देखने के लिए वहा पहुंची कि वृहन्नला सारथी रूप मे कैसे जा रही है। द्रौपदी ने कहा—"अभी बातें ही हो रही है, तुम्हे तो अब तक नगर से बाहर हो जाना चाहिए था।"

"नगर से बाहर कहा उसे तो महल से निकलने मे ही मौत आ रही है। कहती है कि घोड़ो को हाकना तो यह जानती ही नही।" राजकुमारी उत्तरा बोली।

"क्यों री वृहन्नला! क्या ऐसे समय मे भी तुम्हे हास्य परिहास ही सूझ रहा है।"—द्रौपदी ने कहा।

"नही जी! हास्य परिहास तो आप को सूझा है। भला मैं और युद्ध मे सारथी बन कर जाऊं। स्वामी सुनेगे तो क्या कहेगे?"—वृहन्नला वेषधारी अर्जुन ने द्रौपदी को सकेत कर के कहा।

सकेत को समझ कर द्रौपदी बोली—"स्वामी तो स्वय रण स्थल मे अपने हाथ दिखा रहे हैं। यही समय है जब नरेश को तुम अपना कमाल दिखा सको। और फिर तुम्हे अपने कमाल दिखाने का अवसर भी तो मिल रहा है। एक साल पूर्ण होना चाहता है जब से तुम ने महाराज विराट का नमक खाना आरम्भ किया है। अब भी यदि अपनी वफादारी का प्रमाण देने तथा उचित अवसर से लाभ उठाने का प्रयत्न न किया गया तो वृहन्नला के वास्तविक रूप को कौन जानेगा?"

द्रौपदी का इतना सकेत पाना था कि वृहन्नला की बातों की दिशा ही बदल गई, उसने कहा—"तो फिर सौरन्ध्री! जो थोडा बहुत मैं जान पाई हू उसे अवश्य काम लाऊंगी। पर कोई भूल होगई तो तू जाने।"

"हा, हा तुम जाओ तो सही।"

तो फिर मुझे कोई बढ़िया सी साढी तो दिलवा दीजिए।"

"साढी क्यो?"

कौरव वीरो के सामने जाना है। उन मे राजे महाराजे वहा होंगे राजकुमार होंगे। उन के सामने इन साधारण कपडो मे जाऊगी तो लाज की मारी मर न जाऊगी। कोई क्या कहेगा कि राजा विराट के महल मे रहती है और कपड़े तक........."

द्रौपदी (सौरन्ध्री) ने बात बीच ही मे काट दी—"वृहन्नला। सारथी बन कर जाना है, अथवा नाचने? कुछ सोच कर तो बात करो।"

"हाय राम! सारथी बनूगी तो राजकुमार ही की तो। फिर यह कपडे क्या लजायेंगे नही।"

"वृहन्नले! बात क्यो बनाती हो। कपड़े तो वही पहनो ना, जो अर्जुन की सारथी बन कर पहनती थी। देखो! अब परिहास अच्छा नही। विलम्ब न करो।"—द्रौपदी बोली।

'तो फिर आप यो क्यो नही कहती कि मुझे अर्जुन थी का भेष धरना है।"

'और क्या........."

कवच लाया गया और र
वृहन्नला के वेश मे अर्जुन नाटक
पहनने लगा। देख कर सभी
किसी ने कहा—"फिर तो
समझो। यह क्या वहां पाह
नहीं आता।"

उस समय द्रौपदी को
अर्जुन ने बात दवा कर कवच

तभी वह सभी के सामने नाचने लगा। स्त्रियों की हंसी रोके न रुकती थी। परन्तु जब महल से बाहर आकर उस ने घोड़ों को रथ मे जोता तो वह एक कुशल सारथी प्रतीत हुआ। राजकुमार उत्तर जब रथ में आकर बैठा तो राजकुमारी ने कहा—"भैया! मत्स्य राज की लाज अब तुम्हारे हाथ है।"

उत्तर में वृहन्नला ने कहा—"विश्वास रक्खो कि युद्ध में राजकुमार की विजय अवश्य होगी। और शत्रुओं के अस्त्र शस्त्र हरण करके रनिवास की स्त्रियों को पुरस्कार के रूप मे दे दिए जायेंगे।"

राजकुमार ने इस घोषणा का अपनी गौरवमयी मुस्कान से समर्थन किया और वृहन्नला ने रथ हाक दिया। जैसे ही घोड़ों को चलने का इशारा किया और रथ चल पड़ा तो रनिवास की स्त्रियों के आश्चर्य की सीमा न रही। सिंह की ध्वजा फहराता रथ बड़ी शान से कौरव सेना का सामना करने चल पड़ा। उस समय वृहन्नला की कुशलता, चपलता तथा निपुणता देखकर सभी उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे।

बृहन्नला को सारथी बनाकर राजकुमार उत्तर जब नगर से चला तो उस का मन उत्साह से भरा था वह बार बार कहता—"रथ तेजी से चलाओ। देखो जिधर कौरव सेना गौए भगाए ले जा रही है, उसी ओर भगाओ रथ को।"

राजकुमार का आदेश पाते ही बृहन्नला ने घोड़ो की बाग ढीली करदी और घोड़े बड़े वेग से भागने लगे। हवा से बाते करते हुए अश्व तीव्र गति से राजकुमार को कौरव सेना की ओर लेजा रहे थे। राजकुमार उत्साह के मारे रथ मे बैठा बैठा ही उछल उछल कर कौरव सेना को देखने का प्रयत्न कर रहा था। चलते चलते दूर कौरवो की सेना दिखाई देने लगी। धूल उड रही थी जो पृथ्वी से उठ कर आकाश को स्पर्श कर रही थी। उस धूल के आवरण के पीछे विशाल सागर की भांति चारो ओर कौरवो की विशाल सेना खडी थी। राजकुमार ने तो अपने मस्तिष्क मे कौरव सेना की यह कल्पना की थी कि कुछ व्यक्ति होगे जो भुण्ड बनाए हुए गौए भगा ले जा रहे होगे। परन्तु वहां तो वह विशाल सेना थी जिसका सचालन भीष्म, द्रौण, कृप, कर्ण और दुर्योधन जैसे महारथी कर रहे थे। देख कर उत्तर के रोंगटे खड़े होगए। *कहा उसकी कल्पना और कहां यह वास्तविकता?* उसे कप कपी होने लगी। वह सम्भल न सका। सामने थे हजारो अश्व सवार, रथ सवार, गज सवार और पैदल वीर,

समस्त प्रकार के अस्त्र शस्त्रों से लैस। रथों पर भिन्न भिन्न चिन्हों की पताकाएं फहरा रही थी। जिधर दृष्टि जाती उधर रणवीर ही रणवीर दिखाई देते। और फिर साहस ही के लिए तो वह विशाल सेना क्या थी, सीधा नाश का महासागर उमड़ा था। इस लिए इतनी विशाल सेना को देख कर ही राजकुमार का अंग-अंग कम्पित हो गया। भय विह्वल होकर उसने दोनों हाथों से अपनी आंखें मूंद ली। उस से यह सब कुछ देखते भी न बना।

बोला—"वृहन्नला! रथ रोक लो।"

रथ फिर भी चलता रहा।

कांपती आवाज में राजकुमार ने डूबते स्वर से कहा—वृहन्नले! क्या कर रही है रथ रोको, रथ रोको।"

वृहन्नला ने घोड़ों की बाग खींच ली। पूछा—"कहिए! क्या हुआ?"

"क्यो?"

"मैं नहीं लड़ूंगा मुझे मेरे घर पहुंचा दो। जल्दी करो, कहीं शत्रु ने मुझे देख लिया तो मेरी खैर नहीं।"

वृहन्नला ने राजकुमार की बात सुनी तो उसे इस कायरता पर बड़ा क्रोध आया। फिर भी सावधानी से कहा—"राजकुमार! कैसी कायरता की बात कर रहे हो? तुम तो शत्रु से लड़ने आये हो। विजय प्राप्त करने आये। और कहते हो कि ...... "

"नहीं, नहीं वृहन्नला! इतनी बड़ी सेना से भला मैं अकेला कैसे लड़ सकता हूं?"—भयभीत राजकुमार ने कहा—"वह देखो कितनी बड़ी सेना खड़ी है। लगता है सारी दुनियां को समेट लाये है कौरव।"

"इतनी बड़ी सेना हुई तो क्या बात है। एक सिंह के सामने चाहे लाख भेड़ भी आ जायें, सिंह का क्या बिगड़ता है?"

"तुम नही जानती बृहन्नले ! इस सेना मे बड़े बड़े वीर होंगे। बड़े बड़े अनुभवी सेनानी होगे और मैं ठहरा अकेला और अभी बालक। मुझ में इतनी योग्यता कहा कि इन कौरवों मे पार पा सकू"

'किन्तु तुम तो शत्रुओं से युद्ध करने आये हो, तुम मत्स्य देश के भावी राजा हो। सारे देश का भाग्य तुम्ही हो। मत्स्य देश की लाज आज तुम्हारे ही हाथ मे है।"

"राजा तो मेरे पिता हैं—राजकुमार उत्तर ने कहना आरम्भ किया—और वे ही सेना लेकर सुशर्मा को परास्त करने गए है। सेना भी सारी उनके ही साथ है। फिर भला मैं अकेला इन असख्य शत्रुओं से कैसे लड़ू?

बृहन्नला बोली—"राजकुमार! महल में तो तुम बड़ी डींगे हाक रहे थे। बिना कुछ आगा-पीछा-सोचे मुझे साथ लेकर युद्ध के लिए चल पड़े और प्रतिज्ञा करके रथ पर बैठे थे। नगर के लोग तुम्हारे ही भरोसे पर है। सौरन्ध्री ने मेरी प्रशसा करदी और तुम जल्दी से तैयार होगए मैं तुम्हारी वीरता पूर्ण बातो को सुनकर तुम्हारे साथ चलने को तैयार होगई। अब यदि हम गाए छुडाए बिना वापिस लौट जायेंगे तो लोग हमारी हसी उडायेंगे इस लिए मैं तो लौटने को तैयार हू नही। तुम घबराते क्यों हो। डट कर लडो।"

बृहन्नला ने घोड़ों के रस्से ढीले कर दिए थे। रथ बड़े वेग से जा रहा था। बृहन्नला ने उसे रोकने की कोशिश नहीं की और शत्रु सेना के निकट पहुंच गया। यह देख उत्तर का जी और घबरा गया। उसने सोचा कि मौत के मुहाने पर आगया।

"तुम रथ रोकती क्यों नही ?"

"रथ तो शत्रुओं की सेना मे घुस कर रुकेगा।"

"नही, नही, यह मेरे बसका रोग नहीं। मैं नहीं लड़ूगा। मैं जान बूझकर मौत के मुह मे नही कूदूगा।"

"तुम ने तो शत्रुओं के वस्त्र व शस्त्र हरण करके रनिवास की स्त्रियों को पुरस्कार स्वरूप देने की प्रतिज्ञा की है। सोचो तो सही, तुम उन्हें कैसे मुह दिखाओगे।"—बृहन्नला ने लोक लाज का भय दर्शाकर उसे सम्भालना चाहा।

"कौरव जितनी चाहें गौएं चुरा कर ले जायें—उत्तर कहने लगा—स्त्रिया मेरी हंसी उड़ाएं तो भले ही उड़ाएं। पर मैं लड़ूंगा नहीं। लड़ने से आखिर लाभ ही क्या है? मैं लौट जाऊंगा। रथ मोड़ लो।"

"नही! मैं राजकुमार की हंसी उड़वाना नही चाहती। मुझे अपनी इज्जत का भी तो ख्याल है।"

"भाड़ में जाये तुम्हारी इज्जत। मैं मौत के मुह में नही कूदूंगा। तुम रथ नही मोड़ोगी तो मैं रथ से कूद कर अकेले ही पैदल लौट पड़ूंगा।"

"राजकुमार! ऐसी बातें मुह से न निकालो। तुम वीरों की सन्तान हो। तुम्हारी भुजाओं मे इतनी शक्ति है कि ऐसी ऐसी एक नही हजार कौरव सेनाओं को आन की आन में मार भगाए। और फिर तुम्हारे साथ मैं भी तो हूं। मैं मरूंगी तो तुम मरना वरना कौन भला तुम्हारे मुकाबले पर डट सकता है।"

बृहन्नला के साहस दिलाने पर भी उत्तर अपने को न सम्भाल पाया। उसने आवेश मे आकर कहा—"तुम्हे तो अपनी जान से मोह नही। पर मैं क्यों मरूं? तुम रथ नहीं लौटाती तो न लौटाओ। मैं पैदल ही भाग जाऊंगा।"

कहते कहते राजकुमार उत्तर ने धनुष बाण फेंक दिए और और चलते रथ मे ही कूद पड़ा। भय के मारे वह आपे मे न रहा और पागलों की भांति नगर की ओर भागने लगा।

"राजकुमार! ठहरो भागो मत। क्षत्रिय होकर तुम ऐसा करते हो। छीः छीः। देखो शत्रु क्या कहेंगे। नगरवासी क्या कहेंगे?" कहते हुए बृहन्नला ने भागते राजकुमार का पीछा

किया। उसकी चोटी नागिन सी फहराने लगी। साड़ी अस्त व्यस्त होकर हवा मे उड़ने लगी। आगे आगे उत्तर पीछे पीछे बृहन्नला। उत्तर बृहन्नला की पकड़ में नही आ रहा था और रोता हुआ इधर उधर भाग रहा था। सामने कौरव सेना के वीर आश्चर्य चकित हो यह दृश्य देख रहे थे। उन्हे हंसी भी आ रही थी।

आचार्य द्रोण के मन में कुछ शंका जागृत हुई। सोचने लगे—"कौन हो सकता है यह? वेष भूषा तो स्त्रियों सी पर चाल ढाल पुरुषों के समान प्रतीत होती है। ...... पर नपुंसक सा व्यक्ति रण स्थल मे क्यों आया?"

दूसरे वीर भी कुछ ऐसी ही बातें सोच रहे थे। प्रकट रूप में आचार्य द्रोण बोले—"इसका भागना तो प्रकट करता है, कि यह कोई बलिष्ट व्यक्ति है। आगे वाला व्यक्ति रोता हुआ भाग रहा है और पीछे वाला उसे पकड़ने दौड़ रहा है। आखिर चूहे बिल्लो की दौड़ इन में आपस मे क्यों हुई? कही स्त्री वेष मे कोई योद्धा तो नही? और कही अर्जुन ही हो तो ....?"

"अर्जुन नही हो सकता—कर्ण ने कहा—और अगर हुआ भी तो क्या? अकेला ही तो है। दूसरे भाईयो के बिना अर्जुन हमारा कुछ नही बिगाड सकता। पर इतनी दूर की क्यों सोचें?"

"तो फिर यह नपुंसक रूपधारी कौन हो सकता है?" —द्रोणाचार्य ने प्रश्न उठाया।

"बात यह है कि राजा विराट अपनी समस्त सेना लेकर सुशर्मा के मुकाबले पर गया मालूम होता है। नगर मे अकेला राजकुमार ही होगा। कोई कुशल सारथी मिला न होगा तो रनिवास मे सेवा टहल करने वाले हीजड़े को सारथी बना लिया और हम से लड़ने चला आया है।"—कर्ण ने उत्तर दिया।

इधर यह बातें हो रही थी उधर बृहन्नला राजकुमार उत्तर को पकड़ने का प्रयत्न कर रही था। जा तोड़ कर इधर उधर

भागने वाले राजकुमार को भाग दौड़ करके बृहन्नला ने पकड़ ही लिया। राजकुमार हाथ जोड़कर बोला —"बृहन्नला! मैं तेरे पैरों पड़ता हूं। मुझे छोड़ दे। मैं युद्ध नहीं करूगा। मेरी शेखियों पर न जा। मुझे मेरी माता के पास चला जाने दे।"

"राजकुमार! तुम्हे मैं लाई हूं। मुझे अपने साथ तुम लाये हो। दोनों साथ आये हैं तो साथ ही वापिस जायेंगे। शत्रुओं से क्यों हसी उड़वाते हो। क्षत्रिय कभी पीठ दिखाकर नही भागा करते। तुम इतना डरते क्यों हो?"

कहते कहते बृहन्नला ने उसे बलपूर्वक ले जाकर रथ पर बैठा ही तो दिया। बेचारे उत्तर ने बहुत प्रयत्न किया कि बृहन्नला से छूटकर भाग जाये। पर वह अपने को छुड़ा न सका। परन्तु वह था तो बहुत ही घबराया हुआ। कांप रहा था। उसने बृहन्नला से कहा "मुझ छोड़ दो। मैं तुम्हे बहुत धन दूगा, सुन्दर सुन्दर वस्त्र दूगा। तुम जो चाहो मुझ से मांग लेना। मुह मागी वस्तु दे दूगा। तुम तो बड़ी अच्छी हो। देखो, तुमने मेरा कहना कभी नही टाला। इस समय मेरी इतनी सी बात मान लो। मुझे नगर मे ले चलो। कही युद्ध मे मुझे कुछ हो गया तो मेरी मा रो रो कर मर जायेगी। उसने मुझे बड़े प्रेम से पाला है। मैं बालक ही तो हूं। बचपने मे बडी २ बाते कर गया था। मैंने कोई लड़ने वाली सेना देखी थोड़े ही थी। अब कौरवों की सेना देखकर तो मेरे प्राण ही निकले जा रहे हैं। बृहन्नला! मुझे इस सकट से बचाओ। मेरी अच्छी बृहन्नला! मैं जीवन भर तुम्हारा उपकार मानूगा।"

इस प्रकार राजकुमार उत्तर को बहुत घबराया हुआ जानकर बृहन्नला ने उसे समझाते हुए तथा उसका साहस बढाते हुए कहा— —"राजकुमार! घबराओ, नही। तुम्हारा कुछ नही बिगडेगा।"
"नही, नही मर जाऊंगा मैं तो। मुझ से नहीं लड़ा जायेगा।"
"तुम तो बस घोड़ों की रास सभाल लो। इन कौरवों से मैं अकेली ही लड़ लूंगी। तुम केवल रथ हांकते रहना। इसमें जरा भी न डरो। इस प्रकार निर्भय होकर डटे रहोगे तो मैं अपने प्रयत्न से

ही कौरवों को मार भगाऊगी, गौओं को छुड़ा लूगी। और तुम यशस्वी विजेता के नाम से प्रसिद्ध होगे।"—बृहन्नला ने कहा।

सुनकर राजकुमार के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। क्या कह रही हो हजारों वीर एक ओर और तुम अकेली दूसरी ओर नहीं, नहीं भला यह कैसे सम्भव है ?"

"तुम घोड़ों की रास तो सभालो। देखो पानी की काई की भांति क्षण भर में इस सेना को बीच से ही काटती हूं।"

"नहीं, नहीं। तुम तो स्वय ही मर जाओगी और साथ ही मुझे ले मरोगी। ना ऐसी मूर्खता मैं नहीं करूगा। मेरी मानो तो विलम्ब न करो, भाग चलो। प्राण है तो सब कुछ है। वरना ......"

"राजकुमार! मुझ पर विश्वास करो। मैं तुम्हारा बाल भी बाका न होने दूगी।"

बड़ी कठिनाई से राजकुमार घोड़ो की रास संभालने को तैयार हुआ। तब बृहन्नला ने कहा—"नगर के बाहर जो श्मशान है, उसके पास वाले शमी के वृक्ष की ओर रथ को ले चलो।"

—और रथ उस ओर तेजी से चल पड़ा।

उधर आचार्य द्रोण उनकी गतिविधियो को सावधानी से देख रहे थे उन्हे शका हो रही थी कि नपुसक के वेष मे कहीं अर्जुन न हो। सकेत से यह बात उन्होने भीष्म को भी बतादी।

यह चर्चा सुन दुर्योधन कर्ण से बोला—"हमे इस बात से क्या मतलब कि नपुसक के वेष मे कौन है। मान लिया कि अर्जुन है फिर लाभ ही लाभ है। शर्त के अनुसार पाण्डवों को फिर बारह वर्ष के लिए वनवास भुगतना पड़ेगा।"

उधर शमी के वृक्ष के पास पहुच कर बृहन्नला ने उत्तर से कहा—"राजकुमार! तुम्हारी जय हो। बस अब एक काम और करो, इस शमी के वृक्ष पर चढ जाओ। उपर एक गठरी टगी है,

उसे उतार लाओ।"

"क्यों ?"

"उस में कुछ हथियार बधे है।"

"नही, इस वृक्ष पर तो लोग कहते हैं, किसी बुढ़िया की लाश टगी है। मैं नही चढूगा।"

"राजकुमार! तुम क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर भी इतने डरपोक क्यो हो? वृक्ष पर चढ जाओ और देखो तो सही वह लाश है, अथवा शस्त्रों की गठरी।"

'माना कि उस मे शस्त्र ही हैं, तो भी. रथ मे किन शस्त्रों की कमी है? जो मुझे बेकार वृक्ष पर चढाते हो।"

"तुम नही जानते राजकुमार! रथ के अस्त्र शस्त्र मेरे काम के नही। वृक्ष पर टगी गठरी में ही मेरे काम के अस्त्र शस्त्र है। तुम चढो भी।"

"आखिर उस गठरी मे ऐसे कौन से अस्त्र शस्त्र है जिन के बिना तुम्हारा काम न चलेगा।"

'मैं जानता हू कि उस गठरी मे पाण्डवो के अस्त्र शस्त्र हैं।"

यह बात और भी आश्चर्य जनक थी, उत्तर के लिए। उस ने कहा—"तुम तो ऐसी पहेलिया बुझा रहे हो कि अपनी तो समझ मे खाक नही आता।"

बृहन्नला ने एक बार आखे तरेर कर उसकी ओर देखा और कहा—"राजकुमार! तुम इतने कायर होगे, मुझे स्वप्न में भी आशा नही थी।"

लाचार होकर उत्तर को उस वृक्ष पर चढना पड़ा। उस पर जो गठरी थी, उसे खूब देखभाल के पश्चात उतारा और मुह बनाते हुए नीचे उतर आया। बृहन्नला ने ज्योंही गठरी खोली उस में से सूर्य की भाति जगमगाने वाले दिव्यास्त्र निकले।

उन अस्त्रों की जगमगाहट देखकर उत्तर की आंखें फैली की फैली रह गई। जगमगाहट की चकाचौध से अंधा सा होकर कुछ देर वह यूही देखता रहा। फिर सम्भल कर बोला—"बृहन्नला! यह तो बडे विचित्र अस्त्र है।"

"इसी लिए तो इनकी मुझे आवश्यकता थी।"

राजकुमार ने इन दिव्यास्त्रों को एक एक करके बड़े कौतूहल के साथ स्पर्श किया। इन दिव्यास्त्रों के स्पर्श मात्र से राजकुमार उत्तर का भय जाता रहा और उसमें वीरता की बिजली सी दौड़ गई। उत्साहित होकर पूछा—"बृहन्नला! सचमुच क्या यह धनुष बाण और खड्ग पाण्डवो के है? मैंने तो सुना था कि वे राज्य से वंचित होकर जगलो मे चले गए थे और फिर १२ वर्ष बाद उनका कुछ पता न चला कि मर गए या जीते हैं। क्या तुम पाण्डवों को जानती हो? कहा हैं वे?"

तब बृहन्नला ने कहा—"राजा विराट की सेवा करने वाले कक ही युधिष्ठिर है।"

राजकुमार को असीम आश्चर्य हुआ। पूछा—"क्या सच?"

"हा, हा महाराज युधिष्ठिर वही है।"

"अरे?"

"और रसोइया बल्लभ वास्तव मे भीमसेन है। और जिस का अपमान करने के कारण कीचक को मृत्यु का ग्रास बनना पड़ा वही सैरन्ध्री पांचाल नरेश की यशस्वनी राजकुमारी द्रौपदी है। अश्वपाल ग्रंथिक, और ग्वाले का कार्य करने वाला तंतिपाल और कोई नही, नकुल तथा सहदेव ही हैं।"—बृहन्नला ने कहा, जिसे सुनकर जहाँ राजकुमार को आश्चर्य हुआ, वहा हर्ष भी।

वह पूछ बैठा—"तो फिर वीर अर्जुन कहा है?"

"अर्जुन तुम्हारे सामने उपस्थित है।"

राजकुमार उत्तर ने आंखें मल मल कर अपने सामने इधर उधर दूर तक देखा और फिर बोला—"कहाँ है वीर अर्जुन?"

"वह मैं ही हूं।"

बृहन्नला की यह बात सुनकर राजकुमार खोया सा रह गया। बृहन्नला वेषधारी अर्जुन बोला—"राजकुमार! घबराओ नहीं। अभी अभी मेरी बात की सत्यता का प्रमाण मिल जाता है। भीष्म, द्रोण, और अश्वत्थामा के देखते देखते कौरव सेना को मैं अभी ही हरा दूंगा, सारी गौएं छुड़ा लाऊंगा और तुम्हें यशस्वी बना दूंगा।"

यह सुनते ही उत्तर हाथ जोड़कर अर्जुन को प्रणाम करके बोला—"पार्थ! आपके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हुआ। क्या सचमुच ही मैं इस समय यशस्वी धनजय को अपने सामने देख रहा हूं? जिन्होंने मुझ कायर में वीरता का संचार किया क्या वे विजयी अर्जुन ही हैं? नादानी के कारण यदि मुझ से कोई भूल हुई तो आप इस के लिए मुझे क्षमा करदें"

कौरव सेनाओं को देखकर कहीं फिर उत्तर घबरा न जाय और उसे विश्वास हो जाय कि वास्तव में अर्जुन वही है, अर्जुन ने पूर्व युद्धों की कुछ मुख्य मुख्य घटनाएं सुनाना आरम्भ करदी। इस प्रकार उत्तर को सन्तुष्ट करके तथा उसका साहस बढ़ाकर अर्जुन ने रथ कौरव सेना के सामने ला खड़ा किया। चूड़ियां उतार फेंकी और अंगुलि त्राण पहन लिये। खुले खुले केश सवार कर कपड़े से कस कर बांध लिए। जिन प्रभु का ध्यान लगाया और गाण्डीव धनुष सम्भाल लिया। इस के पश्चात गाण्डीव पर डोरी चढ़ाकर तीन बार टंकार किया। जिसे सुनकर कौरव सेना के कुछ वीरों के दिल दहल गए और कुछ हठात चीख उठे—"अरे यह तो अर्जुन के गाण्डीव की टंकार है।"

कौरव सेना टंकार की दशों दशाओं को गुंजा देने वाली ध्वनि से स्वस्थ भी न होने पाई थी कि अर्जुन ने खड़े होकर अपने देव दत्त नामक शंख की ध्वनि की, जिससे कौरव सेना थर्रा उठी। उस में खलबली मच गई कि अर्जुन आगया।

उन्नीसवां परिच्छेद

कौरवों के वस्त्र हरण
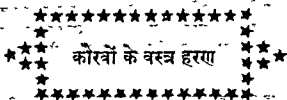
अर्जुन का रथ जब धीर-गंभीर घोष करता हुआ आगे बढ़ा तो धरती हिलने लगी। गाण्डीव की टंकार सुनकर और अर्जुन का मुकाबले पर आना जानकर कौरव वीरो का कलेजा कांप उठा।

उस समय द्रोणाचार्य बोले:- "सेना की व्यूह रचना सुव्यवस्थित ढंग पर कर लेनी होगी। इकट्ठे होकर सावधानी से लड़ना मालूम होता है सामने अर्जुन आगया है जिसके सामने आना जान कर ही हमारे सैनिक भयभीत होगए है।"

आचार्य की शंका और घबराहट दुर्योधन को न सुहाई। वह कर्ण से बोला—"पाण्डवों को अपनी शर्त के अनुसार १२ वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञात वास मे व्यतीत करना था। परन्तु अभी तेहरवां वर्ष पूरा नहीं हुआ और अर्जुन प्रकट हो गया! हमारे तो भाग्य खुल गए। आचार्य को तो चाहिए कि वे आनन्द मनावें पर वे तो भय विह्वल हो गए हैं। बात यह है कि पाण्डवो का स्वभाव ही ऐसा होता है। उनकी चतुरता तो दूसरो के दोष निकालने मे ही दिखाई पड़ती है। अच्छा यही होगा कि इन्हे पीछे रख कर हम आगे बढ़े और स्वयं सेना का संचालन करे।"

कर्ण तो ठहरा दुर्योधन का घनिष्ट मित्र। उसकी हां में हां मिलाता हुआ बोला—"विचित्र बात है कि सेना के नायक तथा

मुख्य योद्धा तक भयभीत है, कांप रहे हैं जब कि उन्हे दिल खोल कर लड़ना चाहिए। आप लोग यही रट लगा रहे है कि सामने जो रथ आ रहा है उस पर धनुष ताने अर्जुन बैठा है। पर वहां अर्जुन के स्थान पर परशुराम भी हो तो हमें क्या डर है? मै तो अकेला ही उसका सामना करूंगा और आपको उस दिन जो वचन दिया था उसे आज पूर्ण करके दिखाऊंगा। सारी कौरव सेना और उस के सभी सेना नायक भले ही खड़े देखते रहें, चाहे गायों को भगा ले जायें, मैं अन्त तक डटा रहूंगा और यदि वह अर्जुन ही है तो अकेला ही उस से निबट लूंगा।"

कर्ण को यों दम भरते देख कर कृपाचार्य झल्ला उठे। बोले—"कर्ण! मूर्खता की बातें न करो। हम सब को मिल कर अर्जुन का मुकाबला करना होगा, उसे चारों ओर से घेर लेना होगा। नहीं तो हमारे प्राणों की खैर नहीं। अर्जुन की शक्ति को मैं अच्छी प्रकार जानता हू। तुम अकेले ही उसके सामने जाने का दुस्साहस मत कर बैठना।"

कर्ण को यह बात अपने गर्व तथा मान पर आघात प्रतीत हुई उसने चिढ़ कर कहा—"आचार्य जी तो अर्जुन को प्रशंसा करते ही नहीं थकते। इन्हें अर्जुन की शक्ति बढ़ा चढ़ा कर दिखाने की आदत सी होगई है। न जाने उनको यह बात भय के कारण है अथवा अर्जुन के साथ अधिक प्रेम होने के कारण है। जो हो, जो डरपोक है अथवा केवल उदर पूर्ति के लिए ही दुर्योधन के आश्रित हैं वे भले ही हाथ पर हाथ धरे खड़े है न करें युद्ध या वापिस लौट जाय। मैं अकेला ही डटा रहूंगा। जो शत्रु की प्रशंसा करते है या उसके भय के मारे होश हवास खो रहे है भला उनका यहां क्या काम।"

जब कर्ण ने आचार्य पर इस प्रकार अभियोग लगाया और ताना मारा तो उनके भानजे अश्वत्थामा से न रहा गया। उस ने झल्ला कर कहा—"कर्ण! अभी तो गाएं लेकर हम हस्तिना पुर नहीं पहुंचे हैं। किया तो तुम ने अभी तक कुछ नहीं और डींगे हांक रहे हो दुनिया भर की। हम भले ही क्षत्रियत्व हो, शास्त्र

रटने वाले तथा शिक्षा देने वाले हो हो, पर राजाओं को जुए में हराकर उनका राज्य छीनने तथा वनों में भटकने के लिए भेजने की बात हमने न क्षत्रियोचित धर्म में देखी है और न शास्त्रों में पढ़ी है। फिर जो लोग युद्ध के द्वारा राज्य जीतते हैं वे भी अपने मुह से अपनी डींगे नहीं हांका करते। तुम लोगों ने कौनसा भारी पहाड़ उठा लिया जो ऐसी शेखी बघार रहे हो? अग्नि चुप चाप सब चीजों को पकाती है, सूर्य चुप चाप सब जगह प्रकाश करता है और पृथ्वी अखिल चराचर का भार वहन करती है। फिर भी यह सब अपनी प्रशंसा आप नहीं करते। तब जिन क्षत्रिय वीरों ने जुआ खेलकर राज्य छीन लिया है, उन्होंने कौन सा ऐसा पराक्रम किया है जो अपने मुह मियां मिट्ठू बनकर फूले नहीं समाते? जैसे शिकारी जाल फैला कर भोली तथा निरपराधी चिड़ियों को फंसा लेता है, इसी प्रकार तुम लोगों ने पाण्डवों को फंसाकर राज्य छीना, फिर इतनी लज्जा तो होनी ही चाहिए कि अपने मुह से अपनी प्रशंसा न करो।"

दुर्योधन तिलमिला कर बोला—"अश्वस्थामा! ठीक ही तो कह रहा था कर्ण। हम पाण्डवों से किस बात में कम हैं? कर्ण की टक्कर का पाण्डवों में है कौन? हम ने किसे धोखा दिया जो हम लज्जित हों?"

अश्वस्थामा ने तुरन्त उत्तर दिया—"ऐसे शूरवीर हो तो बताओ किस युद्ध में पाण्डवों को हराया है आप लोगों ने? एक वस्त्र में द्रौपदी को भरी सभा के बीच खींच लाने वाले वीरो! बताओ तुम ने उसे युद्ध में जीता था? लेकिन सावधान हो जाओ आज यहां चौपड़ का खेल नहीं है जो शकुनि के द्वारा चालाकी से कोई पासा फेंका और राज्य हथिया लिया। आज तो अर्जुन के साथ रणांगण में दो दो हाथ करने का सवाल है अर्जुन का गाण्डीव चौपड़ की गोटें नहीं फेंकेगा, बल्कि अपने बाणों की बौछार करेगा। कर्ण की धौंस से काम चलने वाला नहीं है। यहां जिह्वा की नहीं बल की लड़ाई है।"

कर्ण क्रोध के मारे जलने लगा। गरजकर बोला—"अश्व-

स्थामा ! अर्जुन तो अर्जुन उसके साथ तुम जैसे उसके प्रशंसक भी आ जायें तो कर्ण उनका डट कर मुकाबला करने वाला है। चौपड के खेल की बात उठाकर, पाण्डवों की मूर्खता के प्रति सहानुभूति दर्शाने वाले योद्धा ! राजा दुर्योधन की सेना में खड़े होकर शत्रु का पक्ष लेते हुए तुम्हें लज्जा नही आती।"

"लज्जा तो उसे आये जो दुर्योधन की चापलूसी करते हुए न्याय अन्याय में भेद करना ही भूल गए। अथवा लम्बी चौड़ी डींगें हांक कर युद्ध जीतने का स्वप्न देखे। मुझे लज्जा क्यों आने लगी है?"—अश्वत्थामा ने क्रुद्ध होकर कहा।

दुर्योधन को अश्वत्थामा की खरी खरी बातों ने विचलित कर दिया। क्रोध के मारे कांपते हुए उसने कहा—"अश्वत्थामा ! आचार्य जी के कारण मैं तुम्हारी बातें सहन कर रहा हूं। वरना अभी ही इस मूर्खता का मजा चखा देता। तुम यह भी भूल गए कि अपनी बातो मे किसे अपमानित कर रहे हो। स्मरण रक्खो कि मैं अपमानित होने के लिए कभी तैयार नही हूं। जिस समय हस्तिना पर राज्य के धन से तुम आनन्द लूटते हो उस समय तुम्हें यह क्यों नही याद आता कि यह वही धन है जो उसी दुर्योधन की सम्पत्ति है जिस ने पाण्डवों को जुए में हराया है। ऐसे लज्जाशील हो तो पाण्डवो के साथ जाकर भीख मागते क्यों नहीं घूमते ?"

"जिनके बल पर तुम अकड़ते हो, उनके लिए ऐसी बातें मुह से निकालते समय यह मत भूलो कि तुम सौभाग्य शाली हो कि आचार्यों के शुभ कर्मों के प्रताप से तुम्हारा पाप का घड़ा अभी तक तिर रहा है।"—अश्वत्थामा ने बिगड़ कर कहा।

"देखते हो, आचार्य जी ! अश्वत्थामा का दिमाग कितना बिगड़ गया है ?"—दुर्योधन ने कृपाचार्य की ओर देखकर कहा।

कौरव वीरों को इस प्रकार आपस मे झगड़ते और परिस्थिति चिन्ता जनक होते देख भीष्म पितामह बड़े खिन्न हुए। वे हस्तक्षेप करते हुए बोले—बुद्धि मान व्यक्ति कभी अपने आचार्य का अपमान नही करते। योद्धा को चाहिए कि देश तथा कालको

देखते हुए उसके अनुसार युद्ध करे। कभी कभी बुद्धिमान भी भ्रम मे पड जाते है। समझदार दुर्योधन भी क्रोध के कारण भ्रम मे पड गया है और पहचान नही पा रहा है कि सामने खडा वीर, अर्जुन है। अश्वस्थामा ने कर्ण ने जो कुछ कहा, मालूम होता है, वह आचार्य को उत्तेजित करने के लिए ही था। तुम उसकी बातो पर ध्यान न दो द्रोण, कृपा तथा अश्वस्थामा कर्ण तथा दुर्योधन को क्षमा करें। सम्पूर्ण शास्त्रो का ज्ञान एव क्षत्रियोचित तेज आचार्य कृप, द्रोण, और उनके यशस्वी पुत्र अश्वस्थामा को छोड कर और किस मे एक साथ पाया जा सकता है। परशुराम को छोड कर द्रोणाचार्य की बराबरी करने वाला और कौनसा ब्राह्मण है? यह आपस मे लडने झगडने तथा वाद-विवाद करने का समय नही है। अभी तो हम सब को एक साथ मिलकर शत्रु का मुकाबला करना है। शत्रु सामने धनुष ताने खडा है और तुम सब लोग आपस मे झगड रहे हो, यह लज्जा की बात है।"

पितामह के इस प्रकार समझाने पर आपस मे झगड रहे दुर्योधन, अश्वस्थामा आदि कौरव वीर शात होगए।

उस समय दुर्योधन ने कहा—'पितामह! आज बडे हर्ष का अवसर है। पाण्डव अपनी मूर्खता से फिर शिकार हुए। अर्जुन अज्ञात वास की अवधि पूर्ण होने से पूर्व ही प्रकट होगया।"

"बेटा दुर्योधन! अर्जुन प्रकट होगया वह ठीक है। पर उनकी प्रतिज्ञा का समय कल ही पूर्ण हो चुका। इस लिए तुम्हारा प्रसन्न होना व्यर्थ है।" —भीष्म जी ने कहा।

"—नही पितामह अभी तो कई दिन शेष है।"

"—तुम भूलते हो, दुर्योधन! पाण्डव कभी ऐसी भूल नही करने वाले।"

"—परन्तु हमारे हिसाब से अभी तेहरवा वर्ष पूरा हुआ ही नही।"

"—बेटा! चन्द्र और सूर्य की गति, वर्ष, महीने और पक्ष

विभाग के पारस्परिक सम्बन्ध को अच्छी प्रकार जानने वाले ज्योतिषी मेरे कथन की पुष्टि करेंगे। तुम लोगों को हिसाब में कहीं-भूल हुई है। इसी लिए तुम्हें भ्रम हुआ है। ज्यों ही अर्जुन ने अपने गाण्डीव की टंकार की, मैं समझ गया कि प्रतिज्ञा की अवधि पूर्ण होगई।"

—भीष्म पितामह ने ऐसी बात कह कर दुर्योधन की प्रसन्नता पर धूल फेर दी।

वह बोला—"पितामह! खेद कि हम पाण्डवों का पता न लगा सके। और अब अवधि पूर्ण होते ही हमें अर्जुन से लड़ना पड़ रहा है। जिसकी मुझे आशंका थी वही हुआ। आज तो उस भयंकर युद्ध का श्री गणेश समझिये जो वे मेरे विरुद्ध राज्य छीनने के लिए करेंगे।"

—"मेरा विचार है कि युद्ध प्रारम्भ करने से पहले यह सोच लेना चाहिए कि पाण्डवों के साथ सन्धि कर लें या नहीं,—भीष्म पितामह गंभीरता पूर्वक बोले—यदि सन्धि करने की इच्छा हो तो उस के लिए अभी समय है। बेटा, खूब सोच विचार कर बताओ कि तुम न्यायोचित सन्धि के लिए तैयार हो या नहीं।"

"पूज्य पितामह! मैं सन्धि नहीं चाहता। राज्य तो रहा दूर मैं तो उनका कोई अंश भी उन्हें नहीं दे सकता। इसी लिए संधि की बात छोडिये अब तो लड़ने की तैयारी कीजिए। देखिये! कितना सुन्दर अवसर है कि हमारी इतनी विशाल सेना का सामना अकेला अर्जुन करेगा। यही उन में सब से अधिक वीर है। यदि युद्ध में हम इसे मार भगाए या इसका वध हो जाये तो फिर शेष चार भाइयों को कभी भी लड़ने का साहस नहीं हो सकता। "—दुर्योधन ने कहा।

"पाण्डवों ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की है तो तुम्हें भी अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करना ही श्रेयस्कर है। वरना रक्त पात होगा और उसका परिणाम चाहे जो हो, परन्तु उसका उत्तर दायित्व तुम पर आवेगा। इस लिए यदि मेरी राय मानो तो सन्धि के लिए उद्यत

हो जाओ।"—भीष्म पितामह ने अपनी राय प्रकट करते हुए कहा।

दुर्योधन ने बात टालना ही लाभ प्रद जानकर कहा—"पितामह! शत्रु हमारे सिर पर खड़ा है; और हम ऐसे समय युद्ध न करके सन्धि की बात चलाए यह अच्छी बात नही है। आप इस समय तो युद्ध की ही योजना बनाइये।"

यह सुन द्रोणाचार्य बोले—"भीष्म जी की राय ठीक होते हुए भी चूंकि हम तुम्हारी सहायता के लिए आये है, इस लिए तुम्हारी इच्छा पूर्ति के लिए हमारा कर्तव्य है हम युद्ध की योजना बनायें। अच्छा तो फिर सेना का चौथाई भाग अपनी रक्षा के लिए साथ लेकर दुर्योधन हस्तिना पुर की ओर वेग से कूच करदें। एक हिस्सा गायो को भगा ले जाये। शेष जो सेना रहेगी उसे हम पाच महारथी साथ लेकर अर्जुन का मुकाबला करें। ऐसा करने से ही राजा की रक्षा हो सकती है।"

आचार्य की योजना कुछ वाद विवाद के पश्चात स्वीकृत हुई और फिर उनकी आज्ञानुसार कौरव वीरों ने व्यूह रचना की।

उधर अर्जुन राजकुमार उत्तर से कह रहा था—"उत्तर! सामने की शत्रु सेना मे दुर्योधन का रथ दिखाई नही दे रहा है। अभी अभी वह कही गुम होगया। कवच पहने जो खड़े है वे तो भीष्म पितामह है, लेकिन दुर्योधन कहां चला गया। इन महारथियो की ओर से हट कर तुम रथ को उस ओर ले चलो जहा दुर्योधन हो।"

दुर्योधन भाग रहा होगा, भागता है तो भागने दो। आप को तो गौओ से मतलब।"—उत्तर बोला।

"मुझे भय है कि कही दुर्योधन गौओ को लेकर हस्तिना पुर की ओर न भाग रहा हो।"—अर्जुन ने उत्तर दिया।

उत्तर की समझ मे बात आगई और उसने रथ उसी ओर हाक दिया जिधर से दुर्योधन वापस जा रहा था। जाते जाते

अर्जुन ने दो दो वाण आचार्य द्रोण और पितामह भीष्म की ओर इस प्रकार मारे कि जो उनके चरणों में जाकर गिरे। इस प्रकार अपने बड़ों की वन्दना करके अर्जुन ने दुर्योधन का पीछा किया।

पहले तो अर्जुन ने गायें भगा ले जाने वाली सेना की टुकडी के पास जाकर वाण वर्षा की। तीव्र गति से हो रही वाण वर्षा के कारण सेना तनिक सी देर मे ही इस प्रकार तितर-बितर हो गई जैसे मिट्टी के ढेलो की मार से काई। सैनिक प्राणो को लेकर भागने लगे और अर्जुन ने उनके अधिकार से गौओं को मुक्त करा लिया। फिर ग्वालों को गायें विराट नगर की ओर लौटा ले जाने का आदेश देकर अर्जुन दुर्योधन का पीछा करने लगा।

अर्जुन को दुर्योधन का पीछा करते देख कर भीष्म आदि सेना लेकर अर्जुन का पीछा करने लगे और शीघ्र ही उसे घेरकर वाणों की बौछार करने लगे। अर्जुन ने उस समय अद्भुत रण-कुशलता का परिचय दिया। सब से पहले उसकी कर्ण से टक्कर हुई। कितनी ही देरी तक कर्ण अबाध गति से वाण वर्षा करता रहा। अर्जुन तथा कर्ण का युद्ध देखकर कितने ही सैनिको के होश जाते रहे। कुछ ही देर बाद अर्जुन ने एक ऐसे दिव्यवाण का प्रयाग किया कि कर्ण घायल हो गया और फिर उसे सभलने का तनिक सा भी अवसर न दे वाणो पर वाण मारता रहा। कर्ण बुरी तरह घायल हुआ और अन्त मे उसे भागते ही बना।

तब द्रोणाचार्य ने उसे ललकारा—"अर्जुन! अब सम्भलो। सावधानी से युद्ध करो।"

अर्जुन ने वाण छोडकर प्रणाम किया और बोला—"गुरुदेव! आप भी सावधानी से सामने आइये।

दोनो मे भयंकर युद्ध होने लगा। कितनी ही देर तक दोनो ओर से वाण वर्षा होती रही। अन्त में द्रोणाचार्य ने दिव्यास्त्रो का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया, पर उन अस्त्रो को अर्जुन बीच ही मे अपने अस्त्रों द्वारा प्रभाव हीन कर देता। फिर अर्जुन ने दिव्यास्त्रों का आक्रमण किया, जिसे द्रोणाचार्य सभाल न पाये और

उनकी बुरी गत होने लगी। हाथ पांव कांप उठे। यह देखकर अश्वस्थामा आगे बढ़ा और अर्जुन पर बाण बरसाने लगा। अर्जुन स्वय नही चाहता था कि उसके हाथों गुरुदेव द्रोणाचार्य के साथ कोई अशुभ घटना घटे, इस लिए उनकी ओर से हटकर अश्वस्थामा की ओर ध्यान प्रकट करके उसने द्रोणाचार्य को खिसक जाने के लिए मौका दे दिया। आचार्य भी ऐसे अवसर को खोना न चाहते थे, वह सुअवसर समझ शीघ्रता से खिसक गए।

उनके चले जाने के पश्चात अर्जुन अश्वस्थामा पर टूट पड़ा। दोनो मे भयायक युद्ध होता रहा। द्रोणाचार्य के दोनों ही शिष्य थे, और अश्वस्थामा तो ठहरा उनका पुत्र। पर अर्जुन को आचार्य ने पुत्रवत शिक्षा दी थी। दोनों हीं धुरन्धर योद्धा थे। इस लिए प्रत्येक एक दूसरे को पछाड़ने के लिए प्रयत्न शील रहा। परन्तु जब अर्जुन ने गाण्डीव द्वारा दिव्यबाणो की वर्षा आरम्भ की, तो अश्वस्थामा के लिए मुकाबले पर टिक पाना असम्भव होगया। —और कुछ ही देर मे अश्वस्थामा परास्त होगया।

तब कृपाचार्य की बारी आई। वे आते ही क्रुद्ध होकर अर्जुन पर टूट पड़े। पर जिस वीर ने द्रोणाचार्य का साहस हर लिया था उसके सामने बेचारे कृपाचार्य क्या कर सकते थे। वे पूरी शक्ति से लड़े। जो भी अस्त्र शस्त्र उनके पास थे, पूरी शक्ति से उन्हे प्रयोग किया। परन्तु जब तक वे स्वय अपने सभी अस्त्र शस्त्रों को अदल बदल कर प्रयोग नही कर चुके, अर्जुन ने अपना वार न किया। अन्त मे कुछ देर के लिए अर्जुन ने अपने अस्त्र आक्रमण के रूप मे प्रयोग किए और कृपाचार्य हार खा गए।

अर्जुन को युद्ध कला की अच्छी शिक्षा मिली थी और था उस मे अद्भुत बल। वह निशाना मारने मे कभी चूकता नही था, उसके हाथों मे बडी फुर्ती थी और उसके बाण बहुत दूर तक मार कर सकते थे। जिसके कारण वह अपने शत्रुओ के बाणो का अपने पास तक पहुचने से पहले बीच हीं मे तोड डालता था। अतएव वह उन सभी वीरो को परास्त करने मे सफल हुआ जो उस के सामने आये।

युद्ध कर सको। तुम ने अब तक जो साहस दर्शाया है वह प्रशंसनीय है।"

इस प्रकार अर्जुन ने उत्तर को धीरज बधाया। और फिर उत्तर साहस पूर्वक रथ को उसी ओर ले चला, जिधर भीष्म पितामह अपने अंग रक्षकों, सहयोगियों तथा साथी योद्धाओं के बीच खड़े थे। अपनी ओर अर्जुन को आते देख कर निष्ठुर पराक्रम दिखाने वाले शातनु नन्दन भीष्म जी ने बड़े वेग से अर्जुन पर बाण वर्षा आरम्भ करके धीरता पूर्वक उसकी गति रोकदी। अर्जुन उन के बाणों को बीच ही में काटता रहा और कुछ ही देरी बाद एक ऐसा बाण मारा कि भोष्म जी के रथ की ध्वजा कट कर गिर पड़ी इसी समय महाबली दुःशासन, विकर्ण, दुःसह, और विविशति इन चार ने आकर धनजय को चारो ओर से घेर लिया। दुःशासन ने एक बाण से विराट नन्दन उत्तर को बींधा और दूसरे से अर्जुन का छाती पर चोट की। इस से क्रुद्ध होकर धनजय ने एक ऐसा तीखा बाण मारा जिस से दुःशासन का सुवर्णजटित धनुष काट दिया और फिर एक के बाद दूसरा लड़ातड़ पांच बाण उसकी छाती को निशाना बनाकर मारे। उन पांच पैने बाणो की मार से कराहता ~ दुःशासन युद्ध छोड कर भाग खडा हुआ। परन्तु तभी अर्जुन पर बाण वर्षा करने लगा। ... समय तो अर्जुन ... प्रहार से अपनी रक्षा करने के ... का ... पर एक बार उस के ललाट ... जिसके लगते ही घायल होकर ... दुःसह और विविशति अपने ... बाणो की वर्षा करने लगे। अर्जुन तनिक सा भी विचलित ... की ओर दांव लगा कर ऐसे ... को तोड़ते हुए उन के घोड़ो, ... बींधने में सफल हुए।

वीर अर्जुन द्वारा ... विविशति के घोड़े मारे गए ... तो उनके सेवक उन्हें युद्ध ...

युद्ध कर सको। तुम ने अब तक जो साहस दर्शाया है वह प्रशंसनीय है।"

इस प्रकार अर्जुन ने उत्तर को धीरज बधाया। और फिर उत्तर साहस पूर्वक रथ को उसी ओर ले चला, जिधर भीष्म पितामह अपने अंग रक्षकों, सहयोगियों तथा साथी योद्धाओं के बीच खड़े थे। अपनी ओर अर्जुन को आते देख कर निष्ठुर पराक्रम दिखाने वाले शांतनु नन्दन भीष्म जी ने बड़े वेग से अर्जुन पर बाण वर्षा आरम्भ करके धीरता पूर्वक उसकी गति रोकदी। अर्जुन उन के बाणों को बीच ही में काटता रहा और कुछ ही देरी बाद एक ऐसा बाण मारा कि भीष्म जी के रथ की ध्वजा कट कर गिर पड़ी। इसी समय महाबली दुःशासन, विकर्ण, दुःसह, और विविंशति इन चार ने आकर धनंजय को चारों ओर से घेर लिया। दुःशासन ने एक बाण से विराट नन्दन उत्तर को बींधा और दूसरे से अर्जुन की छाती पर चोट की। इस से क्रुद्ध होकर धनंजय ने एक ऐसा तीखा बाण मारा जिस से दुःशासन का सुवर्णजटित धनुष काट दिया और फिर एक के बाद दूसरा तड़ातड़ पांच बाण उसकी छाती को निशाना बनाकर मारे। उन पांच पैने बाणों की मार से कराहता हुआ दुःशासन युद्ध छोड़ कर भाग खड़ा हुआ। परन्तु तभी विकर्ण अर्जुन पर बाण वर्षा करने लगा। कुछ समय तो अर्जुन ने उसके प्रहार से अपनी रक्षा करने के लिए ही गाण्डीव का प्रयोग किया, पर एक बार उस के ललाट पर अर्जुन ने एक तीखा बाण मारा, जिसके लगते ही घायल होकर विकर्ण रथ से गिर पड़ा। तदनन्तर दुःसह और विविंशति अपने भाई का बदला लेने के लिए अर्जुन पर बाणों की वर्षा करने लगे। पर दोनों के एक साथ प्रहार से भी अर्जुन तनिक सा भी विचलित न हुआ, उसने कुछ देर अपनी रक्षा की ओर दांव लगा कर ऐसे बाण चलाये, जो उन दोनों के बाणों को तोड़ते हुए उन के घोड़ों, सारथी और स्वयं उनके शरीरों को बींधने में सफल हुए।

वीर अर्जुन द्वारा चलाए गए बाणों से जब दुःसह और विविंशति के घोड़े मारे गए और उनका शरीर लोहू-लुहान होगया, तो उनके सेवक उन्हें युद्ध भूमि से हटा कर उचित चिकित्सा के

युद्ध ठाना है, वह बड़ा ही दुष्कर कार्य है। अर्जुन बलवान है, करुण है रण कुशल और फुर्तीला है, तभी तो डटा हुआ है, वरना कौन है जो भीष्म जी के प्रहारों के आगे इस प्रकार ठहर सके।"

उस समय अर्जुन तथा भीष्म दोनो ने ही प्राजापत्य, ऐन्द्र, आग्नेय, रौद्र, वारुण, कौबेर, याम्य और वायव्य आदि दिव्यास्त्रो का प्रयोग कर रहे थे। कभी भीष्म जी किसी अस्त्र से अग्नि वर्षा करते तो उसके उत्तर मे अर्जुन बिना मेघ के ही सावन भादों सी झडी लगा देते, वर्षा होने लगती और भीष्म जी एक अस्त्र मार कर उस वर्षा को तुरन्त वायु के वेग से समाप्त कर देते। कभी अर्जुन मूर्छित कर डालने वाला अस्त्र चलाता तो भीष्म जी उस की प्रभाव हीन करने के लिए कोई अस्त्र प्रयोग करके तुरन्त ऐसा बाण मारते कि चारो ओर धूल ही धूल के बादल दिखाई पडते।

अर्जुन तथा भीष्म जी सभी अस्त्रो के ज्ञाता थे। पहले तो इन मे दिव्यास्त्रों का युद्ध हुआ, इसके बाद बाणो का सग्राम छिड़ा। अर्जुन ने भीष्म का सुवर्णमय धनुष काट डाला। तब महारथी भीष्म जी ने एक ही क्षण मे दूसरा धनुष लेकर उस पर प्रत्यचा चढा दी और क्रुद्ध होकर वे अर्जुन के ऊपर बाणो की वर्षा करने लगे। एक बाण अर्जुन की बायी पसली मे लगा। परन्तु अर्जुन के मुह से, कोई चीत्कार न निकला। उस ने हसते हुए तीखी धार वाला एक बाण मारा और भीष्म जी का धनुष दो टुकडे होगया।, उसके बाद दस बाण मार कर भीष्म जी की छाती पर प्रहार किया, छाती पर कवच टूट गया और भीष्म जी को इतनी पीड़ा हुई कि वे रथ का कूबर थाम कर देर तक बैठ रह गए। भीष्म जी को अचेत जान, कर सारथी को अपने कर्तव्य की याद आ गई और वह रथ को युद्ध भूमि से दूर ले गया।

युद्ध ठाना है, वह बड़ा ही दुष्कर कार्य है। अर्जुन बलवान है, करुण है रण कुशल और फुर्तीला है, तभी तो डटा हुआ है, वरना कौन है जो भीष्म जी के प्रहारों के आगे इस प्रकार ठहर सके।"

उस समय अर्जुन तथा भीष्म दोनों ने ही प्राजापत्य, ऐन्द्र, आग्नेय, रौद्र, वारुण, कौबेर, याम्य और वायव्य आदि दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर रहे थे। कभी भीष्म जी किसी अस्त्र से अग्नि वर्षा करते तो उसके उत्तर में अर्जुन बिना मेघ के ही सावन भादों सी झड़ी लगा देते, वर्षा होने लगती और भीष्म जी एक अस्त्र मार कर उस वर्षा को तुरन्त वायु के वेग से समाप्त कर देते। कभी अर्जुन मूर्छित कर डालने वाला अस्त्र चलाता तो भीष्म जी उस को प्रभाव हीन करने के लिए कोई अस्त्र प्रयोग करके तुरन्त ऐसा बाण मारते कि चारो ओर धूल ही धूल के बादल दिखाई पड़ते।

अर्जुन तथा भीष्म जी सभी अस्त्रों के ज्ञाता थे। पहले तो, इन मे दिव्यास्त्रों का युद्ध हुआ, इसके बाद बाणो का संग्राम छिड़ा। अर्जुन ने भीष्म का सुवर्णमय धनुष काट डाला। तब महारथी भीष्म जी ने एक ही क्षण मे दूसरा धनुष लेकर उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी और क्रुद्ध होकर वे अर्जुन के ऊपर बाणो की वर्षा करने लगे। एक बाण अर्जुन की बायीं पसली मे लगा। परन्तु अर्जुन के मुह से, कोई चीत्कार न निकला। उस ने हसते हुए तीखी धार वाला एक बाण मारा और भीष्म जी का धनुष दो टुकड़े होगया।, उसके बाद दस बाण मार कर भीष्म जी की छाती पर प्रहार किया, छाती पर कवच टूट गया और भीष्म जी को इतनी पीड़ा हुई कि वे रथ का कूबर थाम कर देर तक बैठे रह गए। भीष्म जी को अचेत जान, कर सारथी को अपने कर्तव्य की याद आ गई और वह रथ को युद्ध भूमि से दूर ले गया।

* बीसवां परिच्छेद *

दुर्योधन की पराजय

भीष्म जी संग्राम का मुहाना छोड कर रण से बाहर हो गए, उस समय अर्जुन का रथ दुर्योधन की ओर बढा। दुर्योधन भी क्रुद्ध होकर हाथ मे धनुष ले अर्जुन के ऊपर चढ आया। उस ने कान तक धनुष खीच कर अर्जुन के ललाट मे तीर मारा, और वह वाण ललाट मे धुस गया, जिस से गरम गरम रक्त की धारा बह निकली। अर्जुन के ललाट को ही चोट नही पहुची, बल्कि उस के मान को भी ठेस पहुची। उसकी भुजाओ का रक्त उबल पडा और विपाग्नि के समान तीखे वाणो से दुर्योधन को बीधने लगा। इस प्रकार दोनो मे भीषण युद्ध होता रहा। तत्पश्चात अर्जुन ने एक पैने वाण द्वारा दुर्योधन की छाती बीध डाली और उसे घायल कर दिया। तभी दुर्योधन के अग रक्षक वीर चारो ओर से टूट पडे परन्तु अर्जुन ने सभी मुख्य मुख्य योद्धाओ को मार भगाया। योद्धाओ को भागते देख दुर्योधन ने सभल कर आवाज लगाई—"वीरो ! भागते क्यों हो ? ठहरो मैं अभी ही इस दुष्ट को ठिकाने लगाता हू। ठहरो, हम सब मिल कर इसे मार भगायेंगे।" तभी अर्जुन ने एक दिव्यास्त्र छोड़ा जिससे चारो ओर धुआ ही धुआ छागया ! इस अद्भुत पराक्रम को देख कर कौरव वीरो के और भी पांव उखड़ गए और वे दुर्योधन को चिल्लाता छोड कर अपने प्राणों की रक्षा के लिए भागते ही रहे। तब दुर्योधन ने अपने को अकेला पाया और उसी समय अर्जुन ने एक ऐसा अस्त्र प्रयोग किया कि आग की लपटें

बरसने सी लगी। दुर्योधन ने भी, तब तो अपने वीरों का अनुकरण श्रेयस्कर समझा और वह भी वहा से निकल भागा।

अर्जुन ने देखा कि दुर्योधन घायल हो गया है और वह मुह से रक्त वमन करता बडी तेजी के साथ भागा जा रहा है। तब उसने युद्ध की इच्छा से अपनी भुजाए ठोंक कर दुर्योधन को ललकारते हुए कहा---"धृष्टराष्ट्रनन्दन ! युद्ध मे पीठ दिखा कर क्यो भाग रहा है ? अरे, इस से तेरी विशाल कीर्ति नष्ट हो जायेगी। तेरे विजय के बाजे कैसे बजेगे ? तूने जिन धर्मराज युधिष्ठिर का राज्य छीन लिया और अपनी इस कपट पूर्ण विजय पर फूला नहीं समाता, उन्ही का आज्ञाकारी यह माहयम पाण्डव, तो इम ओर खड़ा है, तनिक मुह तो दिखा। राजा के कर्तव्य का तो स्मरण कर। तुझे डूब मरने को कदाचित उधर कोई ताल न मिले, आ मैं मौत का रास्ता दिखाऊ।··· ·· ·····अरे, तू तो भागा ही जा रहा है। हा, तेरा कोई रक्षक नही रहा, जल्दी भाग, मेरे हाथो क्यों मरता है।"

कह कर अर्जुन ने एक व्यग्य पूर्ण अट्टहास किया।

इस प्रकार युद्ध मे अर्जुन द्वारा ललकारे जाने पर दुर्योधन को बडी लज्जा आई। उसके सम्मान को धक्का लगा था जिसे वह यूही सहन नही करने वाला था। वह चोट खाये हुए नाग की भाति पीछे लौटा। अपने क्षत विक्षत शरीर को किसी प्रकार संभाल कर वह अर्जुन के मुकाबले पर आया और उस ने अपने वीरो को पुकार कर कहा—कौरव वीरो ! तुम्हे अपने पौरुष की सौगंध ! आज अर्जुन का गर्व चूर्ण किए बिना गए तो तुम्हे जीने का कोई अधिकार नही। लौटो और युद्ध करो। दुर्योधन का जो भी मित्र, सहयोगी अथवा साथी हो, आडे समय पर काम आने की इच्छा रखता हो, यदि वह अभी तक जीवित है तो आये और मेरा साथ दे।"

इस पुकार को सुन कर युद्ध भूमि से दूर विश्राम करता, कर्ण दुर्योधन की सहायता के लिए दौड़ पड़ा। उत्तर को [illegible] कर्ण

को आते देख, पश्चिम दिशा से भीष्म जी धनुष चढाये लौट पड़े। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विविंशति और दुःशासन भी अपने अपने धनुष लिए दुर्योधन की रक्षार्थ युद्ध भूमि में आ गए। इन सभी ने चारों ओर से अर्जुन को घेर लिया और जसे मेघ गिरि पर जल बरसाते हैं, इसी प्रकार यह सभी अर्जुन पर बाण तथा दिव्यास्त्र बरसाने लगे। अर्जुन अपनी रक्षा के लिए अपने दिव्यास्त्रों को तीव्र गति से प्रयोग करने लगा और अन्त में, यह समझ कि उन सभी का, जो प्राणों का मोहत्याग कर अपनी सम्पूर्ण शक्ति से आक्रमण कर रहे हैं, ऐसे ही सफल सामना दुर्लभ है, उस ने तुरन्त कौरवों को लक्ष्य करके सम्मोहन नामक अस्त्र प्रकट किया, जिसका निवारण होना कठिन था। उसी समय उस ने अपने हाथों में भयंकर आवाज़ करने वाले अपने शंख को थाम कर उच्च स्वर में बजाया उसकी गंभीर ध्वनि से दिशा-विदिशा, भूलोक तथा आकाश गूंज उठे उस समय बहुत सभलते सँभलते भी कौरव वीर मूर्छित होगए, उनके हाथों से धनुष और बाण गिर पड़े तथा वे सभी परम शांत—निश्चेष्ट हो गए।

तब उसे अपनी उस घोषणा का ध्यान आया, जो उसने राजकुमार उत्तर की ओर से रनिवास की स्त्रियों के सम्मुख की थी, और जिसका समर्थन स्वयं राजकुमार उत्तर ने अपनी गौरव पूर्ण मुस्कान से किया था। अतः उत्तर से कहा—"राजकुमार! जब तक कौरव वीर सचेत नहीं हो जाते, तुम इनके बीच से निकल जाओ और द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा तथा दुर्योधन आदि प्रमुख वीरों के ऊपरी वस्त्र उतार लो। मैं समझता हूँ कि पितामह भीष्म सचेत हैं क्यों कि वे इस सम्मोहनास्त्र का निवारण करना जानते हैं अतः उनके घोड़ों को अपनी बायीं ओर छोड़ कर जाना, क्योंकि जो होश में हैं, उन से इसी प्रकार सावधान होकर चलना चाहिए।" ...... और हां दुर्योधन तथा कर्ण के वस्त्र भी ले आना।"

अर्जुन के ऐसा कहने पर राजकुमार उत्तर घोड़ों की बागडोर छोड़ कर रथ से उतर पड़ा और कौरव वीरों के वस्त्र उतार लाया। उन दिनों प्रथा के अनुसार वस्त्र हरण करना जीत का चिन्ह समझा जाता था।

उत्तर जब लौट कर रथ पर आ बैठा और अर्जुन का रथ रण स्थल से चलने लगा तो भीष्म पितामह ने सचेत होकर जाते अर्जुन पर, बाण वर्षा की। अर्जुन ने उनके प्रहार के जवाब में पुनः बाण वर्षा आरम्भ कर दी और उनके सारथी को मार गिराया। अश्व भी मारे गए और अन्त में भीष्म जी भी बुरी तरह घायल हुए।

कुछ देर बाद दुर्योधन की चेतना लौटी तो उसने अर्जुन को रण स्थल से जाते देखकर, कहा—"पितामह! देखिये अर्जुन बिजयी होकर जा रहा है। आप के सामने से शत्रु इस प्रकार निकल जाय आश्चर्य की बात है। कुछ न कुछ तो कीजिये।"

पितामह बोले—"दुर्योधन! अपनी शक्ति पर अभिमान से क्या लाभ। अर्जुन से तो कुछ सीख सको तो सीखो। जब तुम बेहशो पड़े थे तो चाहता तो वह तुम्हारी हत्या कर सकता था। युद्ध में कितनी ही बार ऐसे अवसर आये कि अर्जुन चाहता तो हम में से कितने ही महारथी मार देता, परन्तु उस ने जान बूझ कर हम में से किसी को नही मारा, जब कि हम उसके शत्रु रूप मे थे। वीरो को मर्यादा से प्रतिकूल कार्य शोभा नहीं देता। सूर्य को धूल मे नही छुपाया जा सकता। अब तो अच्छा यही है कि तुम हस्तिनापुर को लौट चलो।"

दुर्योधन बुरी तरह घायल था और उस के साथी वीर युद्ध से ऊब गए थे और वे जानते थे कि जितनी भी बार नया आक्रमण अर्जुन पर हुआ है उसकी वीरता अधिक ही भडकी है, इस लिए कोई भी युद्ध के पक्ष मे न था। अतएव हस्तिनापुर लौट चलने के लिए सभी तैयार होगए। बचे खुचे सैनिक इकट्ठे लौट पड़े।

इधर युद्ध से लौटते हुए अर्जुन ने अपने शख की एक ऊंची ध्वनि की और विजयोल्लास से नया झण्डा रथ पर फहराया। उत्तर से कहा—"उत्तर! अपना रथ नगर की ओर ले चलो। तुम्हारी गाए छुड़ा ली गई। शत्रु भी भाग गए। इस विजय-का यश तुम्ही को मिलना चाहिए। इस लिए पुष्प मालाएं पहन कर नगर मे प्रवेश करना।"

रास्ते में शमी के वृक्ष पर अपने अस्त्र शस्त्रों को एक कपड़े में बाध कर ज्यों का त्यों लटकाया और अर्जुन ने पुन: बृहन्नला का रूप धारण कर लिया। राजकुमार उत्तर को रथ मे बैठाया और स्वयं सारथी का स्थान लिया। विराट नगर की ओर सूचना भिजवादी कि राजकुमार उत्तर की विजय हुई।

* इक्कीसवां परिच्छेद *
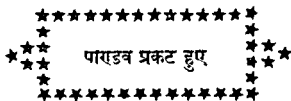
जब राजा विराट चार पाण्डवों की सहायता से त्रिगर्त-राज सुशर्मा को परास्त करके नगर में वापिस आये तो पुरवासियों ने उनका बडी धूमधाम से स्वागत किया। सारा नगर सजा हुआ था, जिधर से सवारी निकली पुष्प तथा मुद्राओं की वर्षा हुई। लोगों ने जय जयकार मनाई। विरुदावली गाई गई। अन्तःपुर में तो उनका बहुत ही उल्लास पूर्ण स्वागत किया गया। पर जब उन्होंने राजकुमार उत्तर को वहां न पाया तो उस के बारे में पूछ ताछ की। स्त्रियों ने बताया कि राजकुमार कौरवों से लडने गए हैं। उन स्त्रियों की आंखों में तो राजकुमार उत्तर कौरव सेना की कौन कहे सारे विश्व पर विजय पाने योग्य था, और इसी लिए बडे उल्लास से उन्होंने राजा को यह शुभ समाचार सुनाया था परन्तु राजा तो इस समाचार को सुन कर ही एक दम चौंक पड़े। उनके विशेष पूछने पर स्त्रियों ने सारा वृत्तांत, कौरव सेना का आक्रमण, गाएं चुराना, ग्वालों की टेर, और बृहन्नला को सारथी बनाकर राजकुमार उत्तर का युद्ध के लिए जाना यह सभी कुछ बताया।

राजा चिन्तित हो उठे। दुखी होकर बोले—"राजकुमार उत्तर ने एक हीजडे को साथ लेकर यह बडे दुस्साहस का कार्य किया है। इतनी बडी सेना के सामने आंख मूंद कर ही कूद

पड़ा। कहां कौरवों की विशाल सेना, उसके यशस्वी रणकुशल वीर सेनानी और कहां मेरा सुकोमल प्यारा पुत्र? अब तक तो वह कभी का मृत्यु के मुह मे पहुंच चुका होगा। इस मे कोई सन्देह ही नही है।"—कहते कहते बूढ़े राजा का कण्ठ रुध गया।

स्त्रियो को यह देख कर बड़ा ही आश्चर्य हुआ।

राजा ने अपने मन्त्रियो को आज्ञा दी कि सारी सेना ले जायं और यदि राजकुमार जीवित हो तो उसे सुरक्षित यहा ले आये। मन्त्रियो ने तुरन्त आदेश का पालन किया। सेना चल पड़ी, राज कुमार को खोजने.

राजा का हृदय पुत्र प्रेम मे फटा जाता था, वे बड़े बेचैन थे। उन्होने कहा—"हाय! दुख एक साथ किस प्रकार टूटा है कि उधर सुशर्मा ने आक्रमण किया और इधर कौरवों ने। मैं तो किसी प्रकार बच आया पर हाय मेरा पुत्र मेरे हाथों से गया।"

इस प्रकार शोकातुर होते देख कर सन्यासी वेष धारी कंक ने उन्हे दिलासा देते हुए कहा—"आप राजकुमार की चिन्ता न करे। बृहन्नला सारथी बन कर उन के साथ गई हुई है। उसे आप नही जानते, मैं भलि भाति जानता हू। जिस रथ की सारथी बृहन्नला होगी, उस पर चढ़ कर कोई भी युद्ध मे जाय, उसकी अवश्य ही जीत होगी। इस लिए आप विश्वास रक्खें, राजकुमार बिजेता होकर ही लौटेंगे। इसी बीच सुशर्मा पर आपकी विजय का समाचार पहुंच गया होगा, उसे सुन कर भी कौरव सेना में भगदड़ मच गई होगी। आप चिन्ता न करें।"

"नही, कंक! मेरा बेटा अभी बड़ा कोमल है, वह इतने वीरों के सामने भला क्या कर सकता है। और बृहन्नला कुछ भी क्यो न हो, है तो हीजड़ा ही। उस के बस की क्या बात है।" राजा ने कहा।

"आप क्या जानें? बृहन्नला कितनी रणकुशल है?"

"कितनी भी हो अकेला बना क्या भाड़ फोड़ेगा ?"

इसी प्रकार कंक तथा राजा के मध्य वार्ता चल रही थी कि उत्तर का भेजा हुआ समाचार मिला—"राजन् ! आप का कल्याण हो। राजकुमार जीत गए। कौरव सेना भाग गई। गायें छुड़ा ली गई।"

यह सुन कर विराट आंखे फाड़ कर देखते रह गए। उन्हें विश्वास ही न होता था कि अकेला उत्तर सारी कौरव सेना को जीत सकेगा। वह अपने पुत्र के वास्तविक बल को जानते थे। और उन्हें यह भी विश्वास था कि जिस सेना का संचालन जगत विख्यात रण विद्या शिक्षक गुरू द्रोणाचार्य, देवता स्वरूप महान तेजस्वी भीष्म, साहसी रण कुशल कृपाचार्य महाबली दुर्योधन और असीम साहस के धारणकर्ता दानवीर कर्ण के हाथों में हो उसे परास्त करना, असम्भव' को सम्भव कर दिखलाने के समान है। वे जानते थे कि यह वीर अर्जुन के अतिरिक्त और किसी के बस की बात नहीं है परन्तु उन्होंने अपने कानों से ऐसी बात सुनी थी, जिस पर कदाचित कोई विश्वास न करेगा। इस लिए उन्हें अपने कानों पर अविश्वास होने लगा।

पूछ बैठे—"क्या कहा ? क्या मेरे पुत्र उत्तर ने कौरव वीरों को परास्त कर दिया ? क्या यह सही है ?"

दूत बोला "जी महाराज ! आप के राजकुमार ने कौरव सेना को मार भगाया। युद्ध में भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण, विकर्ण, दुर्योधन विविंशति, दुःशासन, दुःसह आदि सभी महारथी बुरी तरह घायल हुए। उन्हों ने जितनी गौएं हांक ली थी, सभी छुड़ा ली गई और अब राजकुमार कौरव वीरों के वस्त्र हरण करके विजय पताका फहराते हुए नगर लौट रहे है।"

राजा विराट इस समाचार को पुनः सुन कर मारे उल्लास के उछल पड़े और अपने मन्त्रियों को सम्बोधित करते हुए बोले—जाओ राजकुमार के स्वागत के लिए सारा नगर दुल्हन की भांति सजवा दो। निर्धनों को मुंह मांगा दान दो। जेलों में सड़ रहे

बन्दियों को मुक्त कर दो। नगर वासियों से कहो कि वे दीप मालिका का उत्सव मनाए। राज प्रसाद का शृंगार कराओ और राजकुमार का अभूत पूर्व स्वागत करो।"

मन्त्रियों ने आज्ञा पाकर समस्त प्रबन्ध कर दिया।

कक ने उस समय कहा—"राजन्! देखिये मैंने कहा था ना, कि राजकुमार के साथ बृहन्नला है तो फिर आपको चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। बृहन्नला के होते कौरव वीरों की क्या मजाल कि जीत सकें। आप नहीं जानते राजन्! कि बृहन्नला रण कौशल में कितनी प्रवीण है। वह तो शत्रुओं के लिए पराजय का सन्देश समझिए।"

किन्तु विराट तो अपने लाडले के पराक्रम पर गर्व कर रहे थे, उन्होंने कहा—"कक, बृहन्नला तो नपुसक है, उसे रण कौशल की क्या तमीज, और यदि वह कुछ जानती भी हो तो भी उसे तो रथ ही हाकना था, युद्ध तो राजकुमार ने ही किया होगा। इस विजय में बृहन्नला का क्या हाथ है?

"राजन्! मैं फिर कहता हूं बृहन्नला के सामने तो देवराज इन्द्र तथा श्रीकृष्ण के सारथी भी नहीं ठहर सकते। और यदि कहीं युद्ध में उसके मुकाबले पर देवता भी उतर आयें तो भी विजय बृहन्नला की हो। उसी महाबली बृहन्नला के कारण आपके पुत्र की विजय हुई—"कक ने बृहन्नला को विजय का श्रेय देते हुए जोरदार शब्दों में कहा।

"नहीं, नहीं शिशु सिंह उत्तर का मुकाबला अब कोई नहीं कर सकता, यह प्रमाणित हो गया—"राजा विराट ने कहा और तभी एक दासी को बुला कर उन्होंने कहा—"आज हम बहुत प्रसन्न हैं। यह समझ में नहीं आता कि हम अपनी प्रसन्नता को कैसे प्रकट करें। जाओ जरा चौपड की गोटें तो ले आओ, इस खुशी में कक से दो दो हाथ ही हो जायें। आज खुशी के मारे मैं पागल हुआ जा रहा हूं।"

दासी ने तुरन्त आदेश का पालन किया। दोनों खेलने बैठ गए

और खेलते समय भी बाते होने लगी।

"देखा, राजकुमार का शौर्य ? विख्यात कौरव वीरों को अकेले मेरे बेटे ने ही परास्त कर दिया। भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण और दुर्योधन, अहा, हा, हा सब की वीरता, ख्याति तथा निपुणता धरी की धरी रह गई—' विराट ने कहा।

"नि.सन्देह आप के पुत्र भाग्यवान है, नही तो उन्हे बृहन्नला जैसी सारथी कैसे मिलती ? राजकुमार की वीरता और उस पर भी बृहन्नला जैसी सारथी का साथ, दोनो ने मिल कर कौरवो का अभिमान भग कर डाला—"कक बोले।

विराट झुंझला कर बोले—"ब्राह्मण ! आपने भी क्या बृहन्नला बृहन्नला की रट लगा रखी है ? मैं अपने महावीर राज कुमार की बात कर रहा हू और आप है कि उस हीजड़े के सारथीपन की बड़ाई कर रहे है।"

कक ने गम्भीरता पूर्वक धीरज से कहा—"राजन् ! आपको सत्य के मानने मे कोई आपत्ति नही होनी चाहिए। बृहन्नला को आप साधारण सारथी न समझें वह जिस रथ पर बैठेगी उस पर कोई साधारण से साधारण रण योद्धा चाहे क्यो न सवार हो, पर विजय उसी की होगी। आज तक उसके चलाए रथ पर युद्ध मे जाकर कोई विजय प्राप्त किये लौटा ही नही। यह उसके शुभ कर्मों, ज्ञान तथा निपुणता का प्रभाव है, जिसे वे सभी मानते है जो उसकी वास्तविकता से परिचित है।"

कक की बात पर राजा विराट को बहुत क्रोध आया और उसने अपने हाथ का पासा कक (युधिष्ठिर) के मुह पर दे मारा और बोला —कक ! खबरदार जो फिर ऐसी बातें की। जानते हो तुम किस से बाते कर रहे हो?"

पाँसे की मार से युधिष्ठिर के मुख पर चोट आई और खून बहने लगा। सौरन्ध्री उस समय वहा उपस्थित थी, उस ने जब कक (युधिष्ठिर) के बदन से रक्त बहते देखा तो दौडकर अपनी साडी से उसे साफ करने लगी। पर साड़ी का वह कोना, जिस से रक्त

पोंछा गया था, रक्त से तर हो गया। तब पास ही में रक्खे एक सोने के प्याले में उस ने रक्त लेना आरम्भ कर दिया, ताकि रक्त की धारा फर्श तथा कपडो को न खराब करदे। यह देख राजा विराट ने आवेश में आकर कहा - "सौरन्ध्री! यह क्या कर रही है। सोने के प्याले में रक्त भर रही है? क्यो?"

सौरन्ध्री बोली—"राजन्! आप नही जानते कि आप ने —कितना भयकर अनर्थ कर डाला। जिनके वदन से रक्त बह रहा है, वे कितने महान व्यक्ति हैं, आप को नही मालूम। यह इसी योग्य है कि इनका रक्त सोने के प्याले मे लिया जाय।"

राजा विराट को सौरन्ध्री की बात अच्छी न लगी। वे दांत पीसने लगे। उसी समय एक दूत ने आकर सूचना दी कि राजकुमार उत्तर रण भूमि से वापिस आगए हैं। और उसी समय राजा ने स्वय राजकुमार के स्वागत में बजा रहे मागलिकवाद्य यन्त्रों की ध्वनि सुनी। जय जयकार की ध्वनि गूंज रही थी। और बाजों के स्वर चारो ओर सुनाई दे रहे थे। राजा उल्लास पूर्वक अपने बेटे का स्वागत करने के लिए उठ और बाहर चल दिए, परन्तु उसी समय राजकुमार उत्तर वहाँ पहुच गया। उसने पिता को सादर प्रणाम किया। राजा ने उसे अपनी छाती से लगा लिया।

राजकुमार की दृष्टि कक की ओर गई। उनका मुह लहू-लुहान देख कर उस ने कहा—"पिता जो! इन्हें क्या हुआ? "बेटा! तुम्हारी विजय की सूचना पाकर जब हम अपना हार्दिक उल्लास प्रकट कर रहे थे, उस समय यह महाशय वार वार बृहन्नला की प्रशसा के पुल बाध रहे थे। इन का विचार था कि विजय बृहन्नला के कारण हुई. इस मे तुम्हारी वीरता का कोई हाथ नही। जब यह बात सुनते सुनते मेरे कान पक गए तो मैंने इनकी जबान बन्द करने के लिए आवेश मे आकर इनके मुह पर पांसा फेंक दिया। बस उसी से रक्त बह निकला। और कोई बात नही है।"—राजा ने कहा।

पिता की बात सुनकर राजकुमार उत्तर भय के मारे कांप उठा। उसकी चिन्ता की सीमा न रही। क्योंकि वह तो जानता

था कि कक्ष वास्तव मे कौन है। बोला—पिता जी ! आपने इन धर्मात्मा के साथ यह व्यवहार करके घोर पाप कर डाला। ऐसा पाप किया है आप ने कि इसका फल आपको क्या भोगना होगा, मैं नही जानता कि यह दास रूप मे आज भले ही हैं.पर वह है एक महान आत्मा। आप अभी ही इनके पैर पकड़ कर क्षमा याचना कीजिए, अपने किए पर पश्चाताप कीजिए, वरना ऐसे शुभ कर्मों वाले महा पुरुष के साथ अन्याय करने के फल स्वरूप, सम्भव है हमारा वंश ही समाप्त हो जाये।"

पुत्र की बात सुन कर राजा को बडा आश्चर्य हुआ। अपने से कंक के प्रति ऐसी पुत्र की भावना का रहस्य उनकी समझ मे न आया। बोले—"तुम कैसी बातें कर रहे हो। मेरी तो समझ मे कुछ नही आता। कक भले ही विद्वान हो पर इस का यह अर्थ तो नही कि अपने स्वामी की बातो को झुटलाए और तुम जैसे वीर के शौर्य को एक हीजडे के सामने नगण्य सिद्ध करें।"

"पिता जी ! आप नही जानते कि कंक कौन है। जब आप जानेंगे तो स्वय लज्जित होंगे। आप मेरे कहने से ही इन से क्षमा याचना करें।"

उत्तर की बात सुनकर राजा सोच में पड़ गए। परन्तु जब से उन्होने राजकुमार की कौरव वीरो पर विजय का समाचार सुना था तभी से वे राजकुमार का हृदय से आदर करने लगे थे, इस लिए जब बार बार उत्तर ने आग्रह किया तो उन्होंने कक से क्षमा याचना की।

× × × ×

राजा विराट ने बडे प्रेम तथा आदर से उत्तर को अपने पास बिठा लिया और बोले—"बेटा ! अब तुम बताओ कि तुमने कौरव वीरो के साथ कैसे युद्ध किया ? उन्हे कैसे परास्त किया ? युद्ध में क्या क्या हुआ ? मैं तुम्हारी वीरता की सारी कथा सुनने को लालायित हू।"

उत्तर ने कहा—"पिता जी ! वास्तविकता यह है कि मैंने

कोई सेना नही हराई। मैंने कोई गौ नही छुड़ाई।

राजकुमार की बात सुन कर राजा की आंख फैल गई।

"क्या कह रहे हो तुम ?"

"ठीक ही कह रहा हूं पिता जी।"

"तो फिर कौरव सेना को किस ने मार भगाया ?"

"वह तो किसी देव कुमार का चमत्कार था। उन्हों ने ही कौरव सेना को तहस नहस करके गौए छुडा ली। मैं तो बस देखता ही रहा।"

बडी उत्कंठा के साथ राजा ने पूछा—"कौन था वह देव कुमार ? कहा है वह ? उसे अभी ही बुला लाओ। मैं उस के दर्शन कर अपनी आख धन्य करना चाहता हू, जिसने मेरे पुत्र को मृत्यु के मुह मे बचाया और मेरे शत्रु को परास्त कर के हमारा गोधन उन से मुक्त करा लिया। मुझे बताओ वह कौन है। मैं स्वय उसके दर्शन करूगा।"

"पिता जी ! वह महान आत्मा अचानक प्रकट हुए और अपना चमत्कार दिखा कर अनायास ही अन्तर्धान होगए। सम्भव है शीघ्र ही पुन. यही प्रकट हो।"—राजकुमार बोला। उस ने यह बात इस लिए कही कि अर्जुन ने उस से उसके बारे मे कुछ न बताने का वचन ले लिया था।

× × × ×

राजकुमार की विजय के उपलक्ष मे राज्य मन्त्रियो ने एक विशेष उत्सव का आयोजन किया, जिस मे राजा के सभी प्रमुख व्यक्तियो, सेना के मुख्य नायको और मुख्य कर्मचारियो को निमन्त्रित किया। उस विशेष दरबार मे राज्य के कोने कोने से प्रसिद्ध प्रसिद्ध कलाकार निमन्त्रित किए गए थे। सभास्थल बहुत ही मनमोहक एव आकर्षक ढग से सजाया गया था। नृत्य तथा अन्य कला प्रदर्शनो का भी प्रबन्ध था। वह उन्मत्र राज्य के इतिहास मे

अभूतपूर्व ही था।

नगर के मुख्य व्यक्ति अपने अपने लिए नियुक्त आसनों पर विराज मान थे कि कक, वल्लभ, ततिपाल, ग्रंथिक और बृहन्नला ने सभा स्थल में प्रवेश किया। सभी उपस्थित लोगों की दृष्टि उन पाचों की ओर गई। वे सभा मे उपस्थित लोगों, नगर के प्रमुख व्यक्तियों, राज्य कर्मचारियों, सेना नायको तथा अन्य उपस्थित प्रतिष्ठित लोगो के बीच से निकलते हुए राजकुमारो के नियत आसनो पर जा बैठे। इस बात को देख कर सभी उपस्थित सज्जनो मे खलबली सी मच गई। यह एक अनहोनी घटना थी। कहा सेवक और कहा राज कुमार? राजकुमारो के आसन पर सेवको के बैठ जाने से सभी का आश्चर्य स्वभाविक ही था। सभी आपस मे कानाफूसी करने लगे। कोई उनकी आलोचना कर रहा था तो कोई कह रहा था—"भई, इन लोगो की सेवाओं से राजा बहुत प्रसन्न होगे। क्या पता सुशर्मा को परास्त करने मे इन से मिले सहयोग तथा युद्ध मे इनकी वीरता से प्रसन्न होकर राजा ने उन्हे इस आसन पर बैठने की अनुमति दे दी हो। राजाओं का क्या है जिसको सम्मानित करना हो उसे किसी प्रकार भी सम्मान दे सकते है।"

परन्तु उन पाँचो के इस प्रकार निर्भय होकर राजकुमारों के स्थानो पर बैठ जाने से सभी उपस्थित व्यक्ति उनके विषय मे कुछ न कुछ चर्चा अवश्य ही करने लगे। पर वे थे कि अपने आसनो पर ठाठ से बैठे थे। मानो वे उन पर बैठने के पूर्ण रूपेण अधिकारी हो।

कुछ ही देर बाद चोबदारो ने आवाज लगाई—"सावधान, अनुशासन, मत्स्य राज्य के नरेश यशस्वी, कर्मवीर, न्यायी, प्रतापी विराट महाराज पधार रहे हैं। सभी उपस्थित व्यक्ति उनके सम्मान मे सिर झुका कर खड़े होगए। राजा आये और उपस्थित सज्जनो का अभिवादन स्वीकार करके अपने लिए नियत उच्च आसन पर विराजमान हुए। समस्त लोग अपने अपने आसनो पर बैठ गए। राजा ने चारो ओर विराजित निमंत्रित व्यक्तियो पर दृष्टि डाली।

और जब उनकी नजर उन पांचों (पाण्डवों) पर पड़ी। उन के क्रोध का ठिकाना न रहा। रोम रोम में चिनगारियां जल उठीं। बड़ी कठिनाई से वे अपने को नियन्त्रित कर पाये। जी में आया कि वे उन से इस धृष्टता के लिए सारे दरबार के सामने ही उत्तर मांगें और दण्ड स्वरूप धक्के देकर वहां से निकलवा दें। पर उसी समय उन्हे उन पाचो की सेवाओं का ध्यान आया। उन्हे सुशर्मा के मुकाबले पर इनका पराक्रम स्मरण हो आया। इस लिए वे स्वय अपने आसन से उठे और उनके पास जाकर पूछा:

आप लोग जानते हैं कि यह आसन किन के लिए है ?"

भीमसेन बोल उठा—"जी।"

"तो फिर आप लोग इन आसनो पर कैसे आ बैठे ?"

क्यों कि यह हमारे जैसो के लिए ही हैं।"—भीम ने उत्तर दिया।

"क्या आप लोग नही जानते कि यह राज कुमारों के बैठने का स्थान है ?"

'ज्ञात है।"

"तो फिर आप का यह साहस कैसे हुआ कि सेवक होकर राज कुमारों का स्थान ग्रहण करें।"

"क्यो कि हमे इन स्थानों पर बैठने का अधिकार है।"

वह कैसे ?"—आवेश में आकर राजा ने पूछा।

"हम राजकुमार जो ठहरे।"—भीम बोला।

"दिमाग तो खराब नहीं हुआ ?"

'दिमाग खराब हो हमारे शत्रुओं का। हम तो अपना स्थान स्वय पहचानते हैं।"

"मैं आप लोगो की सेवाओं से सन्तुष्ट हू। इस लिए आप को

इस धृष्टता के लिए क्षमा करता हूं और आदेश देता हूं कि आप तुरन्त यह स्थान रिक्त करलें।"

"और यदि हम ऐसा न करें तो········ ?"

राजा दांत पीसने लगा।

क्रुद्ध न होइये। आप यह बताइये कि यदि कोई अपना उचित स्थान स्वयं ग्रहण करले, तो क्या वह अपराध करता है ?"

"लेकिन आप लोग सेवक है राजकुमार नहीं।"

"आप की सेवा करते रहे तो इसका यह अर्थ तो नहीं कि हम राजकुमार ही नहीं रहे।"

"अच्छा आप ऐसे नहीं मानेंगे ?"

"देखिये आप हमें सेवक समझना ही छोड़ दें तो अच्छा है।"

"तो क्या समझूं आप को ?"

"यही कि हम पाँचो राजकुमार हैं।"

"भाँग तो नहीं खाली है ?"

"यदि यही प्रश्न कोई आप से करे ?"

"तो उसका उत्तर बल पूर्वक दिया जायेगा। आप लोग मुझे बल प्रयोग के लिए विवश न करें।"

इस प्रकार बातों-बातों में ही झंझट खड़ा होते देख युधिष्ठर (कंक) ने बीच में हस्तक्षेप करना आवश्यक समझा और वे बोले—राजन् ! आप रुष्ट न हों। भीमसेन ठीक कहता है।"

भीम का नाम सुन कर राजा विराट आश्चर्य चकित रह गए। बोले—"भीमसेन कौन ?

"आप भीम सेन को नहीं जानते ?"

"क्यों नहीं ? परन्तु क्या यह भीमसेन हैं ?"

"जी हां।"

भीमसेन ने कक की ओर सकेत करके कहा--"और यह है महाराज युधिष्ठिर।"

फिर तो महाराज युधिष्ठिर ने अपने सभी भ्राताओं का परिचय दिया और यह भी बता दिया कि इतने दिनों सेवकों के रूप मे वे सब क्यो रहे -

अर्जुन ने फिर सारी सभा को अपना परिचय दिया। जब लोगों को पता चला कि सेवकों के रूप मे पाण्डव हैं तो सारी सभा मे कोलाहल मच गया। सभी के चेहरे खिल उठे। चारों ओर आनन्द एव उल्लास छा गया। पाण्डवो की जय जयकार मनाई गई.

राजा विराट का हृदय कृतज्ञता, आनन्द तथा आश्चर्य से तरगित हो गया वे सोचने लगे, पाचो पाण्डव और राजा द्रुपद की पुत्री मेरे यहा सेवा टहल करते हुए अज्ञात होकर रहे, इन्हो ने मेरे तथा मेरे पुत्र के प्राणो की रक्षा की, मैंने उन्हे साधारण सेवको की भाति रक्खा, फिर भी कभी भी उन्हों ने मेरी अवज्ञा न की मैं कैसे इन सबका बदला चुकाऊ ? मैंने महाराज युधिष्ठिर के मुह पर पासा फेंक कर मारा, फिर भी वे आज्ञाकारी सेवक की भाति सहन कर गए, द्रोपदी के साथ कीचक तथा उपकीचको ने अन्याय किया, पर मैंने उस की सहायता न की और फिर भी पाण्डव सब कुछ सहन कर के आज्ञाकारी सेवक बने रहे, इन सब बातो के लिए कैसे उन के प्रति कृतज्ञता प्रकट करू ? यह सोच कर राजा विराट का जी भर आया। वे युधिष्ठिर से बार बार गले मिले और गद गद होकर कहा—"मैं आप का ऋण कैसे चुकाऊ ? मेरा यह सारा राज्य आपका है। मैं आपका अनुचर बन कर कार्य करूगा। यदि मुझ से कोई भूल होगई हो तो क्षमा करें।

युधिष्ठिर ने प्रेम पूर्वक कहा--"राजन् ! मैं आपका बहुत

...भागी हूं। राज्य तो आप ही रखिये। आप ने अर्जुन हमें जो आनन्द दिया, वही लाखों राज्यों के बराबर है।"

विराट ने कुछ सोचने के बाद अर्जुन से ... राजकन्या उत्तरा से विवाह करलें।

अर्जुन ने उत्तर दिया—"राजन्! आप का बड़ा अनु... परन्तु मैं आप की कन्या को नाच तथा गाना सिखाता रहा हूं वह तो मेरे लिए बेटी के समान है। अतएव मेरे लिए यह नहीं कि अपनी शिष्या के साथ विवाह करूं।"

'लेकिन मैं तो चाहता हूं कि अपनी कन्या का विवाह आप के परिवार में सम्पन्न करके एक भार से मुक्त हो जाऊं, आप के परिवार से एक सशक्त सम्बन्ध स्थापित करके धन्य हो जाऊं और ... सेवा करके अपने को कृतकृत्य करलूं"—राजा विराट ने ... भाव से कहा। अर्जुन कुछ देरी के लिए विचार विमग्न हो गया ... अन्त में कहा—"यदि आप की यही इच्छा है तो आप अपनी ... को मेरे पुत्र अभिमन्यु की सहधर्मिणी बना सकते हैं। इस सम्बन्ध को मैं सहर्ष स्वीकार कर लूंगा।"

राजा विराट ने अर्जुन का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लि... और इस के लिए हार्दिक आभार प्रगट किया।

अभी यह बातें हो ही रही थीं कि एक चोबदार ने प्रवेश किया। राजा तथा पाण्डवों का अभिवादन कर के उसने कहा—'महाराज! हस्तिना पुर नरेश दुर्योधन की ओर से एक दूत कोई विशेष सन्देश लेकर आया है। और महाराज युधिष्ठिर से मिलना चाहता है।"

"उसे सादर व ससम्मान यहां ले आओ" युधिष्ठिर ने आज्ञा दी।

दूत ने आकर राजा विराट तथा पाण्डवों को प्रणाम किया।

युधिष्ठिर ने पूछा—"कहिये, आप कहां से पधारे?"

"मुझे महाराज दुर्योधन ने एक सन्देश लेकर भेजा है।" उसने कहा।

'क्या सन्देश है"?

"गाधारी पुत्र ! महाराज दुर्योधन का कहना है कि ग्राप को प्रतिज्ञा के ग्रनुसार १२ वर्ष बनवास तथा १ वर्ष ग्रज्ञावास करना था। पर उतावली के कारण प्रतिज्ञा पूर्ति के पहले ही ग्रर्जुन पहचाने गए हैं। ग्रतएव शर्त के ग्रनुसार ग्राप को बारह वर्ष के लिए ग्रौर बनवास करना होगा।"

दूत की वात सुन कर महाराज हंस पड़े ग्रौर बोले– "ग्राप शीघ्र ही वापिस जाकर दुर्योधन से कहे कि वे पितामह भीष्म ग्रौर ज्योतिष शास्त्रों के जानकारो से पूछ कर इस वात का निश्चय करे कि ग्रर्जुन जब प्रकट हुग्रा तब प्रतिज्ञा की ग्रवधि पूर्ण हो चुकी थी ग्रथवा नही। मेरा यह दावा है कि तेहरवा वर्ष पूर्ण होने के उपरान्त ही ग्रर्जुन ने गाण्डीव धनुष की टकार की थी।"

ग्राज्ञा पाकर दूत हस्तिना पुर की ग्रोर लौट पडा।

राजा विराट ने सभी उपस्थित व्यक्तियों को सुनाकर घोषणा की कि वास्तव मे कौरव सेना का विजेता वीर ग्रर्जुन है ग्रौर यह उत्सव उसी हर्ष के उपलक्ष में मनाया जायेगा।

फिर क्या था, मंच पर चुने हुए कलाकार ग्राये। उन्हों ने ग्रपनी कला का प्रदर्शन ग्रारम्भ कर दिया। उल्लास पूर्ण गीतों तथा नूपुरो की ध्वनि गूंज उठी ग्रौर हर्ष का वातावरण मस्ती मे झूम उठा।

* बाईसवां परिच्छेद *

अज्ञात वास की अवधि पूर्ण हो चुकने के कारण पाचों पाण्डव द्रौपदी सहित प्रकट रूप मे रहने लगे। एक दिन युधिष्ठिर ने अपने सभी भ्राताओ को अपने पास बुलाकर कहा:—

हमारी प्रतिज्ञा कभी की पूर्ण हो चुकी। शर्त के अनुसार अब हमे हमारा राज्य मिल जाना चाहिए। परन्तु लक्षण बता रहे हैं कि दुर्योधन सीधी तरह से हमें राज्य वापिस नहीं देने वाला। उसने हम से १३ वर्ष तक बनवास व अज्ञात वास करवा लिया, पर अब भी उसकी इच्छा हमे राज्य हीन रखने की ही हैं। ऐसी दशा मे अब हमें सोचना है कि क्या करें? आप सभी विचार करें कि भावी कार्यक्रम क्या हो?"

अर्जुन ने कहा—"धर्मराज! हम तो सदा आप के आज्ञाकारी रहे हैं। पूज्य पिता जी के उपरान्त आप ही हमारे सरक्षक है। आप ने जुआ खेला, हम चुप रहे। आप ने राज्य हार दिया, हम कुछ न बोले। द्रौपदी का अपमान हुआ हम खून का घूट पी कर रह गए। आप ने बनवास और अज्ञात वास की शर्त मानी, हम ने उसे स्वीकार कर लिया। जो जो विपदाए हम पर आ ई, हम ने सहर्ष सहन किया। और अब भी आप ही की इच्छा के दास हैं। हम तो पहले ही अनुभव करते थे कि १२ वर्ष का बनवास तथा एक वर्ष का अज्ञात वास तो दुष्ट दुर्योधन का एक बहाना है।

वरना वह हमे टरकाना ही चाहता है पर आप ठहरे धर्मराज। आप ने अपनी जबान की भांति ही उसकी जबान को समझा और उसकी बात मान ली। पर वह चाहता था कि १२ वर्ष तक तो हम चुप चाप बनों में पडे रहे और एक वर्ष की अज्ञात वास की अवधि मे वह हमारा पता लगा कर १३ वर्ष के लिए और बनों मे भेज दें। फिर एक वर्ष का अज्ञात वास करें और इसी प्रकार हम जीवन भर करते रहे। परन्तु उस की वह योजना सफल नही हुई, अब उस के पास राज्य देने से इन्कार करने के सिवाय और कोई चारा नहीं है। इस लिए अब जो कुछ आप आज्ञा दे हम वही करें।"

भीमसेन बोला—"भैया अर्जुन ठीक कहते हैं। तेरह वर्ष पश्चात भी हमारे सामने वही एक मात्र रास्ता है: राज्य पाने का कि हम अपने बाहुबल का प्रयोग करे। दुष्ट बुद्धि दुर्योधन इस प्रकार नही मानने वाला। इतना भला मानुस होता तो जुए मे कपट से राज्य न छीनता।"

युधिष्ठिर जानते थे कि उनके भाइयो का मत अक्षरशः सत्य है, फिर भी वे धर्म नीति का उल्लघन न कर सकते थे, बोले—"अभी से युद्ध की ही बात सोच लेना भूल है। हम ने जो कुछ किया उस से हमारा पक्ष दृढ हुआ और दुर्योधन को अन्यायी सिद्ध करने में हम सफल हुए। अब सारा ससार हमारे पक्ष का समर्थन करे गा। इस लिए किसी निष्कर्ष पर पहुचने से पूर्व हमे अपने सहयोगियो, मित्रो तथा सम्बन्धियो से परामर्श करना चाहिए। हम उनकी सहायता बिना कुछ कर भी तो नही सकते।"—महाराज युधिष्ठिर ने कहा।

"आप ठीक कहते हैं राजन् हमे अपने स्नेही मित्रों तथा सहयोगियो मे मत्रणा करनी चाहिए।" - नकुल बोला।

सहदेव ने भी उस समय अपनी राय प्रकट करते हुए कहा —'मेरा विचार है कि अब समय नष्ट करने से कोई लाभ नही हमे अपने सभी मित्रो कृपालु सहयोगियो विचारवान तथा विद्वान सम्बन्धियो को बुला कर परामर्श करना चाहिए और वे जो कुछ कहे वैसा ही करना उचित है।'

* बाईसवाँ परिच्छेद *

अज्ञात वास की अवधि पूर्ण हो चुकने के कारण पाचो पाण्डव द्रौपदी सहित प्रकट रूप मे रहने लगे। एक दिन युधिष्ठिर ने अपने सभी भ्राताओ को अपने पास बुलाकर कहा:—

हमारी प्रतिज्ञा कभी की पूर्ण हो चुकी। शर्त के अनुसार अब हमे हमारा राज्य मिल जाना चाहिए। परन्तु लक्षण बता रहे हैं कि दुर्योधन सीधी तरह से हमें राज्य वापिस नहीं देने वाला। उसने हम से १३ वर्ष तक बनवास व अज्ञात वास करवा लिया, पर अब भी उसकी इच्छा हमे राज्य हीन रखने की ही है। ऐसी दशा मे अब हमे सोचना है कि क्या करे? आप सभी विचार करे कि भावी कार्यक्रम क्या हो?"

अर्जुन ने कहा—"धर्मराज! हम तो सदा आप के आज्ञाकारी रहे हैं। पूज्य पिता जी के उपरान्त आप ही हमारे सरक्षक है। आप ने जुआ खेला, हम चुप रहे। आप ने राज्य हार दिया, हम कुछ न बोले। द्रौपदी का अपमान हुआ हम खून का घूट पी कर रह गए। आप ने वनवास और अज्ञात वास की शर्त मानी, हम ने उसे स्वीकार कर लिया। जो जो विपदाएं हम पर आई, हम ने सहर्ष सहन किया। और अब भी आप ही की इच्छा के दास हैं। हम तो पहले ही अनुभव करते थे कि १२ वर्ष का बनवास तथा एक वर्ष का अज्ञात वास तो दुष्ट दुर्योधन का एक बहाना है।

वरना वह हमे टरकाना ही चाहता है पर आप ठहरे धर्मराज। आप ने अपनी जबान की भांति ही उसकी जबान को समझा और उसकी बात मान ली। पर वह चाहता था कि १२ वर्ष तक तो हम चुप चाप वनों मे पडे रहें और एक वर्ष की अज्ञात वास की अवधि मे वह हमारा पता लगा कर १३ वर्ष के लिए और वनों में भेज दें। फिर एक वर्ष का अज्ञात वास करें और इसी प्रकार हम जीवन भर करते रहे। परन्तु उस की वह योजना सफल नही हुई, अब उस के पास राज्य देने से इन्कार करने के सिवाय और कोई चारा नही है। इस लिए अब जो कुछ आप आज्ञा दे हम वही करें।"

भीमसेन बोला—"भैया अर्जुन ठीक कहते हैं। तेरह वर्ष पश्चात भी हमारे सामने वही एक मात्र रास्ता है; राज्य पाने का कि हम अपने बाहुबल का प्रयोग करें। दुष्ट बुद्धि दुर्योधन इस प्रकार नही मानने वाला। इतना भला मानुस होता तो जुए मे कपट से राज्य न छीनता।"

युधिष्ठिर जानते थे कि उनके भाइयो का मत अक्षरशः सत्य है, फिर भी वे धर्म नीति का उल्लघन न कर सकते थे, बोले—"अभी से युद्ध की ही बात सोच लेना भूल है। हम ने जो कुछ किया उस से हमारा पक्ष दृढ हुआ और दुर्योधन को अन्यायी सिद्ध करने मे हम सफल हुए। अब सारा ससार हमारे पक्ष का समर्थन करे गा। इस लिए किसी निष्कर्ष पर पहुचने से पूर्व हमे अपने सहयोगियो, मित्रो तथा सम्बन्धियो से परामर्श करना चाहिए। हम उनकी सहायता बिना कुछ कर भी तो नही सकते।"—महाराज युधिष्ठिर ने कहा।

"आप ठीक कहते हैं राजन् हमें अपने स्नेही मित्रों तथा सहयोगियो से मत्रणा करनी चाहिए "- नकुल बोला।

सहदेव ने भी उस समय अपनी राय प्रकट करते हुए कहा —"मेरा विचार है कि अब समय नष्ट करने से कोई लाभ नही हमें अपने सभी मित्रो कृपालु सहयोगियो विचारवान तथा विद्वान सम्बन्धियो को बुला कर परामर्श करना चाहिए और वे जो कुछ कहें वैसा ही करना उचित है।'

इस प्रस्ताव को सभी ने स्वीकार किया और निश्चयानुसार अपने भाई बन्धुओं एवं मित्रों को बुलाने के लिए दूत भेज दिए गए।

\+ + + + + + ×

भाई बलराम, अर्जुन की पत्नी सुभद्रा तथा पुत्र अभिमन्यु और यदुवंश के कई वीरों को लेकर श्री कृष्ण पाण्डवों के निवास स्थान पर आ पहुंचे उनके आगमन का समाचार पाकर पाण्डवों तथा राजा विराट ने उनका हार्दिक स्वागत किया।

इन्द्र सेन, काशी राज, और वीर्सैव्य भी अपनी अपनी सेनाओं के मुख्य नायकों सहित वहां पहुच गए। पांचाल राज द्रुपद के साथ शिखण्डी और द्रौपदी का भाई धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदी के पुत्र भी वहा आ पहुंचे। और भी कितने ही राजा अपनी अपनी सेनाएं लेकर युधिष्ठिर के पास आगए।

सर्व प्रथम विधि पूर्वक अभिमन्यु के साथ उत्तरा का विवाह किया गया। इस के पश्चात विराट राजा के सभा भवन में सभी आगन्तुक राजा लोग एकत्रित हुए।

विराट राजा के पास श्री कृष्ण तथा युधिष्ठिर बैठे, द्रुपद के पास बलराम तथा सात्यकि। और द्रुपद के पुत्र, अन्य पाण्डव तथा पाण्डवों के पुत्र स्वर्ण जटित सिंहासनों पर जा बैठे। समस्त प्रतापी राजाओं के अपने अपने आसनों पर विराज मान होने के उपरान्त श्री कृष्ण युधिष्ठिर से कुछ बातचीत करने के पश्चात उठे और कहने लगे —

"सम्मान्य बन्धुओ तथा वीर मित्रो ! सबल पुत्र शकुनि ने कपट द्यूत में हराकर महाराज युधिष्ठिर का राज्य जिस प्रकार हथिया लिया और उन्हें बनवास तथा अज्ञात वास के नियम में बाध दिया, यह सब तो आपको ज्ञात ही है। पाण्डवों ने अपनी प्रतिज्ञा निभाने के लिए कितने प्रकार की दुःसह कठनाईयों को झेला, और तेरह वर्ष तक कैसे कैसे दारूण दुख भोगने पड़े, इसे बताने की आवश्यकता नहीं है। पाण्डव उस समय भी अपना राज्य वापिस लेने में समर्थ थे, परन्तु वे सत्यनिष्ठ थे, उन्हें बल से अधिक धर्म

नीति का पालन किया। अब हम यहां इस लिए एकत्रित हुए हैं कि कुछ ऐसे उपाय सोचें, जो युधिष्ठिर तथा राजा दुर्योधन के लिए लाभ प्रद हो; कर्मानुकूल हो और कीतिकर हो, न्यायोचित हो और जिन से पांण्डवों एव कौरवों का सुयश बढे। जिसकी वस्तु है उसे मिल जाये, क्योंकि अधर्म के द्वारा तो धर्मराज युधिष्ठिर देवताओं का राज्य भी नहीं लेना चाहेंगे। यद्यपि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने उन्हें धोखा दिया और भांति भांति की यातनाएं पहुचाईं, फिर भी युधिष्ठिर तो उनका भला ही चाहते हैं। आप को कौरवों के अन्यायों तथा पाण्डवों की न्याय प्रियता, दोनो पर ही ध्यान देना है। हां, धर्म न्याय तथा अर्थ से युक्त हो तो युधिष्ठिर को एक गांव का आधिपत्य भी स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नहीं। परन्तु यह सर्वविदित है कि जिस राज्य को इनसे छीना था, वह इन के परम प्रतापी पिता और स्वय इनके बाहुबल के द्वारा विजित हुआ था। यह लोग दुर्योधन से अपना हक मांगते हैं। इसलिए इनकी मांग सर्वथा धर्मानुकूल है। आज लोग यह भी जानते हो हैं कि कौरव बाल्यकाल से ही पाण्डवों के विरुद्ध भिन्न भिन्न प्रकार के षडयन्त्र रचते रहे हैं। और उन्ही षडयन्त्रों की एक कडी थी जुए की बाजी। जुए मे युधिष्ठिर को हराया गया और हारी हुई सम्पत्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए जो शर्त रक्खी गई। उसे पाण्डवों ने पूर्ण किया। इसलिए दुर्योधन को अब शर्त के अनुसार इनकी सम्पत्ति लौटा देने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। पर चूंकि इस समय दूसरे के पक्ष के विचारों का पता नहीं है। इसलिए सबसे पहले, मेरे अपने विचार मे एक ऐसे व्यक्ति को दूत बनाकर भेजना होगा, जो धर्मात्मा, परिमचित्त, कुलीन, सावधान और सामर्थ्यवान हो। ताकि वह दुर्योधन को समझा बुझाकर उसके कर्त्तव्य का बोध करा कर उसकी इच्छा जान सके दुर्योधन की राय जानने पर ही कोई कार्यक्रम स्वीकार किया जाना चाहिए। आप सभी नीतिवान, विद्वान, न्याय प्रिय लोग यहाँ उपस्थित हैं; अतः इस सम्बन्ध में दोनो पक्षों के गुणों को ध्यान में रखकर सोचिए कि अधिकारी को उसका अधिकार दिलाने के लिए क्या किया जाना चाहिए।"

यह थी श्री कृष्ण की वह बात जिसके आधार पर उस दिन

की मत्रणा होनी थी। श्री कृष्ण ने अपना वक्तव्य समाप्त करके बलराम की ओर देखा।

तब बलराम उठे और बोले—"कृष्ण ने जो मत व्यक्त किया वह मुझे न्यायोचित लगता है और राजनीति के अनुकूल भी श्री कृष्ण ने जो मत व्यक्त किया वह जैसा धर्मराज के लिए हितकर है, वैसा ही कुरुराज दुर्योधन के लिए भी है। वीर कुन्ती पुत्र आधा राज्य कौरवो के लिए मांगते है। अतः यदि दुर्योधन इन्हें आधा राज्य दे दे तो वह बडी आनन्द से रह सकता है। बिना किसी युद्ध के; सन्धि से, शान्ति पूर्ण ढग से ही यह समस्या सुलझ जाये तो उससे न केवल पाण्डवो की ही बल्कि दुर्योधन और उसकी सारी प्रजा की भी भलाई होगी। सब सुख चैन से रह सकेंगे और व्यर्थ का रक्तपात भी बच जाएगा। क्योकि मैं इस बात का मानने वाला हू कि अहिंसा के सिद्धान्त से जो मिलता है, कल्याण उसी से होता है। यदि केवल एक राज्य के लिए निरपराधी मनुष्यो का रक्त बहे तो यह हम सभी के लिये बडे कलक की बात होगी। अतः इसके लिए यह आवश्यक है कि महाराज युधिष्ठिर की ओर से कोई नीतिवान दूत जाये और वह युधिष्ठिर का विचार वहाँ जाकर सुनाये तथा महाराज दुर्योधन का विचार सुने। वहाँ जो दूतजाए उसे, जिस समय सभा मे भीष्म, धृतराष्ट्र, द्रोण, अश्वस्थामा विदुर, कृपाचार्य शकुनि कर्ण तथा शास्त्र और शास्त्रो मे पारगत दूसरे धृतराष्ट्र पुत्र उपस्थित हो और जब सब वयोवृद्ध तथा विद्या वृद्ध पुरवासी भी वहाँ आ जाएं, तब उन्हें प्रणाम करके वे बातें कहनी चाहिए जिन से महाराज युधिष्ठिर के पक्ष का प्रतिपादन हो और दुर्योधन को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हो। किसी भी अवस्था मे कौरवो को कुपित नही करना चाहिये। उसे बडी नम्रता से अपनी बात कहनी होगी और चाहे कैसा भी उत्तेजना का अवसर आये पर वह क्रोध मे न आये। जरा झुकने से जो काम आसानी से निकल आता है वह तनने से कठिनाई से ही निकलता है। हमे यह याद रखना चाहिए कि दुर्योधन ने सबल होकर ही इन का राज्य छीना था। युधिष्ठिर की जुए मे आसक्ति थी, यह धर्म विरुद्ध लत के शिकार थे। जिन भाषित धर्म के प्रतिकूल चल कर इन्हो ने जुआ खेला था, फिर यदि शकुनि ने इन्हे जुए मे हरा दिया

तो केवल इसी बात से उसे अपराधी नहीं ठहराया जा सकता। युधिष्ठिर स्वय जानते है कि स्वय इनके भाइयों ने ही उन्हे जुआ खेलने से रोका था और इन्हे पहले से ही मालूम था कि शकुनि एक मजा हुआ खिलाडी है और वे उनके सामने खेल में ठहर नही सकते। शकुनि की निपुणता और अपने नौसिखये पन को ध्यान में रखते हुए और अपने भ्राताओं के मना करने पर भी युधिष्ठिर ने जुआ खेला और अपना राज्य हार गए। यह तो आंखों देखे अपने पैरों पर स्वय ही कुल्हाडी चलाना था। इस लिए दुर्योधन के पास युधिष्ठिर का राज्य चला जाना, दुर्योधन का अन्याय पूर्ण कार्य नही कहा जा सकता। अब तो उस खोये हुए राज्य को प्राप्त करने के लिए बहुत नम्रता पूर्वक ही कहा जा सकता है। एक ही रास्ता है राज्य वापिस लेने का, कि बहुत ही झुक कर प्रार्थना की जाये। इस लिए दूत बन कर जाने वाला व्यक्ति मृदु भाषी हो, युद्ध प्रिय न हो। उस का उद्देश्य किसी न किसी प्रकार समझौता करना ही हो। यह बात आप को स्पष्ट कर देना चाहता हू कि पाण्डवों ने जो दुःसह, दारुण दुख भोगे है, वे महाराज युधिष्ठिर के धर्म के प्रति कूल कार्य के कारण ही भोगने पड़े। इस लिए हे राजा गण! दुर्योधन की मीठी बातों मे ही समझाने का प्रयत्न कीजिए। शाति पूर्ण ढग से जो सम्पत्ति मिल जाये वही सुख प्रद होगी। युद्ध चाहे जिस उद्देश्य से किया जाये, उस मे अन्याय तथा हिसा होती ही है और इस की हिसा मे जहा तक बचा जा सके उतना ही अच्छा है। यद्यपि गृहस्थाश्रम मे रह कर विरोधी हिसा मे बचना असम्भव है, राष्ट्र तथा धर्म के लिए ऐसी हिसा करनी पडती है, फिर भी जान बूझ कर युद्ध करना और हिसा तथा निरपराधियो का रक्त बहाना, अधर्म है। युद्ध के द्वारा न्याय की स्थापना होना असम्भव है। वैर से वैर निकालने मे वैर बढता है। तीर्थङ्करों का उपदेश है कि हिसा दूसरी हिसाओं की जननी होती है। हिसा किसी भी समस्या का पूर्ण समाधान नही कर सकती। पाण्डवों ने स्वय अपनी आत्मा के साथ अन्याय किया है और दुर्योधन यदि शाति वार्ता के द्वारा समस्या नहीं सुलझाता तो वह स्वय अपनी आत्मा के साथ अन्याय करेगा। केवली भगवान ने कहा है कि एक पाप

दूसरे पाप को जन्म देता है जो धर्म के प्रति कूल कार्य करते है वे विपदाओ मे फसते है। इस लिए दुर्योधन को अन्यायी बताने से पहले हमे अपने पक्ष की त्रुटियों को भी अपने सामने रखना चाहिए और वही उपाय अपनाना चाहिए जिस से शांति स्थापित हो।"

बलराम के कहने का सार यह था कि युधिष्ठिर ने जान बूझ कर अपनी इच्छा से जुआ खेल कर राज्य गंवाया है। यह ठीक है कि शर्त के अनुसार उन्होंने १२ वर्ष और एक वर्ष का अज्ञात वास भी भोग कर अपना प्रण निभा दिया। इस से वे दासता से मुक्त होकर स्वतन्त्र रहने के अधिकारी हो गए और खोये हुए राज्य को वापिस भी मांग सकते है. परन्तु इसका अर्थ यह नही कि दुर्योधन यदि उन्हे राज्य वापिस न दे तो वे बल पूर्वक उसे वापिस लेने का उन्हें अधिकार हो गया। क्योंकि राज्य वापिस करने की दुर्योधन से याचना की गई थी और उसने एक शर्त रख दी थी, अब दुर्योधन का अपना कर्तव्य है कि वह राज्य वापिस करे। पर इस का यह अर्थ नही हो जाता कि यदि वह स्वेच्छा से राज्य वापिस न करे तो उसे ऐसा करने के लिए बाध्य किया जाय। हा, हाथ जोड कर उस से अपना वचन पूर्ण करने की प्रार्थना की जा सकती है। जुआ खेलना अधर्म है और जान बूझ कर अपनी सम्पत्ति को उस मे गवाना बहुत ही बडी नादानी है, लेकिन ऐसी नादानी करने वाले को यह अधिकार कदापि नही है कि वह अपनी भूल सुधारने के लिए बल प्रयोग करे।

इस के अतिरिक्त एक ही वश के लोगो का आपस मे लड मरना भी बलराम को अच्छा न लगा। बलराम की राय थी कि युद्ध अनर्थ की जड़ होता है। उस से कभी भलाई नहीं हो सकती।

परन्तु बलराम की बातो को सुन कर पाण्डवो का हितैषी सात्यकि आग बबूला हो गया। उस से न रहा गया। उठ कर कहने लगा—"बलराम जी की बात मुझे तनिक भी तर्क सगत प्रतीत नही होती। वाक पटुता से उन्होंने अपने विचार को न्यायोचित भले ही सिद्ध करने का प्रयत्न किया हो, पर न्याय को अन्याय सिद्ध

करने का उनका प्रयास मुझ तनिक भी अच्छा नही लगा। हर किसी बात का सुन्दरता से समर्थन किया जा सकता है और शब्द जाल के द्वारा अन्याय को न्याय सिद्ध करने की चेष्टा भी की जा सकती है। किन्तु जो स्पष्ट अन्याय है वह कदापि न्याय नही हो सकता, न अधर्म धर्म ही हो सकता है। बलराम जी की बातो का मैं जोरो से विरोध करता हू। क्यो कि यह ठीक है कि धर्म राज जुआ खेलना नही जानते थे और शकुनि इस क्रिया मे पारगत था। किन्तु इनकी उस मे श्रद्धा नही थी। ऐसी स्थिति मे यदि उस ने इन्हें जुए के लिए निमन्त्रित कर के, जब कि यह उस निमन्त्रण को राजाओ की रीति के अनुसार अस्वीकार नही कर सकते थे, इन की सम्पत्ति को जीत लिया तो वह धर्मानुकूल जीत नही हो जाती। अजी! कौरवो ने तो इन्हें जुए के लिए कपट पूर्वक बुलाया था, फिर उनका यह कार्य न्यायोचित कैसे हो सकता है? कौन नही जानता कि खेल मे बारम्बार महाराज युधिष्ठिर को ललकारा गया। और खेल मे हारने के पश्चात दुर्योधन ने राज्य वापिस करने के लिए एक शर्त रक्खी। वह शर्त धर्मराज ने पूर्ण करदी। अब दुर्योधन की ओर से चीख पुकार हो रही है कि अर्जुन १३वें वर्ष की अवधि पूर्ण होने से पहले ही प्रकट हो गया। उन की यह बात सरासर झूठ है। बात यह है कि दुष्ट दुर्योधन वास्तव मे हर प्रकार से अन्याय पर अडा हुआ है। वह नीच बिना बल प्रयोग के मानेगा ही नही। एक नही हजार दूत भेजिए वह दुरात्मा तो तभी मानेगा जब वह और उस के भाई युद्ध मे मेरे तीरो के सामने अपने को मृत्यु का ग्रास होते पायेंगे। मैं युद्ध मे अपने बाणो से उस नीच को बाध्य कर दूगा कि वह धर्म राज के चरणो मे सिर रख कर अपने अन्यायों के लिए क्षमा याचना करे और यदि ऐसा नही होता तो उसे, उसके मन्त्रियों सहित यमपुरी पहुचा दूगा। उस दुष्ट को शान्ति की वार्ता से अकल नही आयेगी, उसको बुद्धि तो युद्ध मे ही ठिकाने आयेगी। भला ऐसा कौन है जो सग्राम भूमि मे गाण्डीव धारी अर्जुन, चक्र पाणि श्री कृष्ण, दुर्धर्ष भीम, धनुर्धर नकुल, सहदेव, वीरवर विराट, द्रुपद तथा उन के पुत्रों, अभिमन्यु आदि पराक्रमी वीरो का वेग सहन कर सके। मैं अकेला ही अपने बाणो से कौरवों के होश ठिकाने लगा दूगा। धर्म राज

युधिष्ठिर भिख मगे नहीं है जो दुर्योधन से याचना करते फिरें। वे अपने राज्य के अधिकारी हैं, उनकी यही कृपा काफी है कि उन्होंने अपने साम्राज्य के दो भाग सहन कर लिए। उनकी यही धर्मनिष्ठा तथा न्याय प्रियता पर्याप्त है कि वे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए इतने कष्ट उठाते फिरे। तेरह वर्ष तक वनों की खाक छानना और सेवक बन कर दूसरों की चाकरी करना हंसी खेल नहीं है। यदि पाण्डवों ने यह स्वीकार कर लिया तो इसका यह अर्थ नहीं होगया कि कौरव कुल कलंकियों के सामने माथा रगड़ते फिरें। ठीक है एक ही वृक्ष की दो शाखाएं होती हैं, एक फलों से लदी होती है और दूसरी पर फल आता ही नहीं। एक ही कोख से जन्मे दो व्यक्ति भी इसी प्रकार दो भिन्न मनो वृति के होते हैं। अब आप श्री कृष्ण तथा बलराम को ही लें, आपस मे भाई भाई है, पर एक न्याय का पक्ष पाती हैं तो दूसरा अन्याय का। परन्तु हम लोग जो यहा इकट्ठे हुए है, दुर्योधन के अधर्म के पक्षपाती नहीं। हम धर्म राज को उनका अधिकार दिलाने पर विचार करने आये है, इस लिए हमारा धर्म है कि हम न्याय के पक्ष मे कोई भी पग उठाने से न घबराये। तलवार लेकर सामने आये शत्रु से लड़ना अधर्म नही है। अन्यायी को उसके अपराध का दण्ड देना अधर्म नहीं है। और कपट से जुए मे हरा कर किसी की सम्पत्ति को हड़प जाने वाले की प्रशंसा करना धर्म नहीं है। मेरा विचार है कि अब बिलम्ब करने से कोई लाभ नही होगा हमे तुरन्त रणभेरी बजाने को तैयार होना चाहिए और धृतराष्ट्र के बेटों को उन के अन्याय का मजा चखा देना चाहिए।"

सात्यकि की दृढता पूर्ण और जोर दार बातों से राजा द्रुपद बड़े प्रसन्न हुए वे अपने आसन से उठे और बोले:—

"सात्यकि ने जो कहा वह बिल्कुल ठीक है मैं उस का समर्थन करता हू। जिस व्यक्ति की आखो पर लोभ की पट्टी बांधी जाती है, वह न्याय तथा धर्म नीति की बातें पहचान हा नहीं सकता। दुर्योधन को आधा राज्य मिला, वह उस से ही सन्तुष्ट न हुआ, उस ने षडयन्त्र करके पाण्डवों का समस्त राज्य छीन लिया। अब वह किसी भी प्रकार मीठी मीठी बातों से मानने वाला नहीं।

लातों के भूत बातों से नहीं माना करते। दुर्योधन से महाराज युधिष्ठिर को उनका अधिकार दिलाने के लिए युद्ध करना ही होगा। पाण्डवों और कौरवों का फैसला रण भूमि में ही होगा। फिर भी मेरे कहने का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि सन्धि वार्ता चलाई ही न जाय। हमें पहले अपने दूत शल्य, धृष्ट केतु, जयत्सेन, केकय, आदि मित्र राजाओं के पास भेज देने चाहिए; ताकि वे युद्ध की तैयारी करने लगें और दूसरी ओर सधि वार्ता के लिए निपुण विद्वान दूत भेजना चाहिए। जो हर प्रकार से दुर्योधन को समझाये और उसे सन्धि के लिए तैयार करे। यदि दुर्योधन फिर भी सन्धि के लिए तैयार न हो फिर रण के लिए ललकारना चाहिए। आप चाहें तो मेरे दरबार में रहने वाले एक विद्वान शास्त्रज्ञ, नीतिवान राजा पुरोहित को दूत बना कर भेजदें। आप जो कहेंगे उसी के अनुसार वे कार्य करेंगे। इस प्रकार जिस तरह भी हो हमें महाराज युधिष्ठिर को उनका राज्य दिलाने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। मेरी यही सम्मति है।"

राजा द्रुपद की बात समाप्त होने पर श्री कृष्ण उठे और कहने लगे:—

"सज्जनों! पाचाल राज ने जो सलाह दी है वही ठीक है। वह राज नीति के भी अनुकूल है, उसी पर चलना चाहिए। ठीक है दुर्योधन की प्रकृति तथा स्वभाव को देखते हुए उस से यह आशा करना कि वह सन्धि के लिए तैयार हो जायेगा और शांति पूर्वक इस समस्या को सुलझाने का प्रयास करेगा, व्यर्थ है। हमें प्रत्येक सम्भव तथा धर्मानुकूल उपाय करने के लिए तैयार रहना चाहिए, तो भी नीति कहती है कि हम सर्व प्रथम अपनी ओर से शांति पूर्वक सन्धि वार्ता करने का प्रयास करें। महाराज युधिष्ठिर की ओर से एक दूत जाना ही चाहिए। कौन व्यक्ति इस के लिए उपयुक्त है और उसे क्या बातें वहां जाकर कहनी चाहिए, किस प्रकार सन्धि वार्ता उसे चलानी चाहिए, इस सम्बन्ध में राजा द्रुपद ही निर्णय करलें. जिसे वे उपयुक्त समझें उसे ही वे स्वयं समझा बुझा कर भेज दें। दुर्योधन के दरबार में जिन सुलझे हुए तथा वयोवृद्ध लोगों के सामने हमारे दूत को अपनी बातें रखनी हैं, उन

सभी के साथ बाल्य काल मे पांचाल राज सेले है : द्रोण तथा भीष्म आदि सभी के स्वभाव तथा गुणों मे वे परिचित ही हैं और हम लोग तो उन के शिष्य वत है। अतः इस सम्बन्ध में उनका प्रत्येक कार्य हमे मान्य होगा। अब हमे आज्ञा दी जाय कि अपनी अपनी राजधानियो को लौट जाय। क्योकि हम तो अभिमन्यु के विवाह मे ही विशेष रूप से शामिल होने आये थे। पाचाल राज इस सम्बन्ध मे जो करें और अन्तिम निश्चय जो हो, उस मे हमे सूचित कर दिया जाय।"

इस अवसर पर महाराज युधिष्ठिर बोले—"मैंने अब तक सभी सम्मानित बन्धुओं तथा हितैषियो की बातें सुनी। आप सभी के उदगार सुन कर मुझे अनुभव हुआ कि आप सभी हमारी सहायता के लिए तैयार हैं। बलराम जी ने जो भी मत व्यक्त किया, उस से हमे कोई खेद नही हुआ। यदि आप सभी यह अनुभव करते हों कि हमे राज्य वापिस मागने का कोई अधिकार नही है तो हम प्रसन्नता पूर्वक अपना अधिकार छोडने के लिए तैयार हैं। परन्तु यदि आप हमारे पक्ष का समर्थन करते हैं तो मेरी इच्छा है कि यह मामला सन्धि वार्ता द्वारा ही सुलझ जाये। यदि दुर्योधन हमे कुछ भी देने को तैयार हो तो हम युद्ध नही करेगे। फिर भी इस सम्बन्ध मे आप सभी जो निर्णय करेगे हमे स्वीकार होगा।"

अन्त मे सभी उपस्थित सज्जनों ने अपने अपने विचार प्रकट करके एक ओर सन्धि के लिए दूत भेजने और दूसरी ओर युद्ध की तैयारिया करने की राय दी। और इस कार्य क्रम का सचालन राजा द्रुपद को सौंपा गया।

निश्चय हो जाने के पश्चात श्री कृष्ण अपने साथियों सहित द्वारिका लौट गए। विराट, द्रुपद, युधिष्ठिर आदि युद्ध की तैयारिया करने लग गए। चारों ओर दूत भेजे गए। सब मित्र राजाओ को सेना एकत्रित करने और अस्त्र शस्त्र तैयार रखने के सन्देश भेज दिए गए। सन्देश मिलते ही पाण्डवो के पक्ष के राजा गण अपनी अपनी सेना सज्जित करने लगे।

इधर पाण्डवों के समस्त सहयोगी युद्ध की तैयारियों में लगे उधर दुर्योधन को अपने गुप्तचारों द्वारा पाण्डवों की तैयारियों का पता लग गया और उसने भी जोर शोर से तैयारियां आरम्भ कर दी। उसके सहयोगी भी जी जान से तैयारियों में लग गए। अपने मित्र राजाओं के पास दुर्योधन की ओर से सन्देश भेजे गए और सेनाएं इकट्ठी की जाने लगीं। इस प्रकार सारा भारत खण्ड युद्ध के कोलाहल से गूजने लगा। राजा लोग इधर से उधर दौरे करते। सैनिकों के दल के दल जगह जगह आते जाते। सेनाओं में वीर पुरुषो की भर्तियां खुल गई। कारीगर शस्त्र तैयार करने मे जुट गए। रथ, हाथी और घोडों को तैयार किया जाने लगा। दुर्योधन ने अपनी सेनाओ का बकाया वेतन चुकता कर दिया और सैनिकों को प्रसन्न करने के लिए वेतन मे वृद्धि करने के साथ साथ अन्य प्रकार की सुविधाएं दी जाने लगी। सारे देश मे उथल पुथल मच गई और प्रजा को यह समझते देर न लगी कि एक भयकर युद्ध का सूत्रपात हो रहा है। चारों ओर सेनाओ की भीड लग गई और पृथ्वी भिन्न भिन्न प्रकार के अस्त्रो के परीक्षणों मे काप उठी।

\+ + + + + + +

द्रुपद राजा ने अपने महा मत्री पुरोहित को बुला कर कहा— "विद्वानो मे श्रेष्ठ ! आप पाण्डवो की ओर से दूत बन कर दुर्योधन के पास जाए। पाण्डवो के गुणों से तो आप परिचित है ही और दुर्योधन के गुण भी आप से छिपे नही। आप को यह भी ज्ञात है कि किस प्रकार कपट पूर्वक दुर्योधन ने अपने मित्रो के सहयोग से और धृतराष्ट्र की सम्मति से पाण्डवों को जुए के लिए निमन्त्रित करके उनका राज्य छीन लिया। विदुर ने तो न्याय की बात कही थी, किन्तु दुर्योधन ने उसकी एक न सुनी। राजा दुर्योधन का धृतराष्ट्र पर अधिक प्रभाव है। आप वहा जाए और धृतराष्ट्र को नीति की बातें समझाएं। विदुर से भी आप बातें करें। वे तो हमारे पक्ष मे रहेंगे ही, सन्धि वार्ता को वे पसन्द करेंगे। भीष्म द्रोण, कृप, कर्ण आदि से अलग अलग बात करके प्रत्येक को सन्धि

-के लिए तैयार कर। इस प्रकार सम्भव है कि भीष्म, द्रोण, कृप, आदि दुर्योधन के हितैषियो, मन्त्रियो तथा सेना नायको मे परस्पर मतभेद होजाय। यदि उस विषय मे उन सभी मे मतभेद हो जाये तो उन मे फिर एकता होना कठिन है। एकता यदि हुई भी तो उस मे काफी समय लगेगा। इस समय मे उनकी तैयारिया शिथिल पड जायेंगी और पाण्डव-युद्ध की काफी तैयारी कर लेंगे। आप सन्धि की वार्ता इस प्रकार करे कि दुर्योधन आदि उत्तेजित न हो सके और सन्धिवार्ता मे काफी समय लग जाये। इस प्रकार यदि सन्धिवार्ता सफल भी न हुई तो हमे यह लाभ पहुचेगा कि उस समय मे हम अपनी तैयारिया पूर्ण कर लेंगे और दुर्योधन सन्धि वार्ता मे लगा होने के कारण अधिक न कर सकेगा। यह जानते हुए भी दुर्योधन समझौते को तैयार न होगा, हमारे शांति दूत के जाने से हमे काफी लाभ होगा।"

महा मन्त्री ने द्रुपद की सारी बाते सुनी और बोला—"महाराज! आप विश्वास रक्खे, मैं धृतराष्ट्र तथा उसके सहयोगियो को समझौता करने के लिए रजा मन्द करने मे अपनी पूरी शक्ति लगा दूगा और यदि वे समझौते के लिए तैयार न भी हुए तो उन मे दरार तो पड ही जायेगी।"

द्रुपद राजा ने इस प्रकार अपने महा मन्त्री को समझा बुझा कर हस्तिनापुर भेज दिया और स्वय युद्ध की तैयारियो मे लग गया समझौते के लिए इस प्रकार दूत भेजना और इस समझौता वार्ता की आड मे युद्ध की तैयारिया करना तथा शत्रु की तयारिया को मन्द कर देने की कूट नीति ऐसी थी जिसका अनुसरण आज के युग मे भी होता है। फिर भी धर्मराज युधिष्ठिर समझौते के लिए हार्दिक रूप मे इच्छुक थे।

* तेईसवां परिच्छेद *

श्री कृष्ण अर्जुन के सारथी

शांतिचर्चा के लिए दूत भेज देने के उपरान्त पाण्डवों की ओर से युद्ध की तैयारियां जोर शोर से होने लगीं। सभी मित्र राजाओं को युद्ध की तैयारियां करने का सन्देश भेजा जा चुका था, परन्तु श्री कृष्ण जैसे त्रिखण्डी नरेश की सहायता प्राप्त करने के लिए केवल सन्देश ही पर्याप्त न था। क्योंकि श्री कृष्ण जितने पाण्डवों से सम्बन्धित थे, उतने ही कौरवों से। दोनों पक्ष ही उनसे सहायता मांग सकते थे, अतः अर्जुन स्वयं ही सहायता मांगने के लिए द्वारिका पहुंचा।

दूसरी ओर दुर्योधन को पाण्डवों की तैयारी का समाचार मिल चुका था और उसे यह भी पता लग चुका था कि श्री कृष्ण उत्तरा के विवाह से निवृत होकर द्वारिका लौट आये हैं। इस लिये वह भी इस विचार से कि कहीं, पाण्डव उन से सहायता का वचन न लेलें, श्री कृष्ण के द्वारिका पहुंचने का समाचार सुनते ही द्वारिका की ओर चल पड़ा। संयोग की बात कि जिस दिन दुर्योधन द्वारिका पहुंचा उसी दिन अर्जुन भी वहां पहुंच गया। श्री कृष्ण के भवन में दोनों एक साथ ही प्रविष्ट हुए। द्वारपाल ने बताया कि श्री कृष्ण इस समय विश्राम कर रहे हैं। दोनों ही श्री कृष्ण के निकट सम्बन्धी होने के कारण उनके शयनागार में भी पहुंच जाने का अधिकार रखते थे। इस लिए दुर्योधन तथा अर्जुन दोनों ही

शयनागार मे चले गए। आगे दुर्योधन था, पीछे अर्जुन। उस समय श्री कृष्ण सो रहे थे। दुर्योधन जाते ही उनके सिरहाने रक्खे एक ऊंचे आसन पर जा बैठा, परन्तु अर्जुन जो पीछे था, श्री कृष्ण के पैताने ही हाथ जोड़े खड़ा रहा।

कुछ देर बाद श्री कृष्ण की निद्रा भग हुई, तो सामने खड़े अर्जुन को देखा। उठ कर उसका स्वागत किया और कुशल पूछी। बाद मे घूम कर आसन पर बैठे दुर्योधन को देखा तो उसका भी स्वागत किया कुशल समाचार पूछे। उसके बाद दोनो स उन के आने का कारण पूछा।

दुर्योधन शीघ्रता से पहले बोल उठा—"श्री कृष्ण! ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे तथा पाण्डवो के बीच जल्दी ही कोई महा युद्ध छिड ज येगा। यदि ऐसा हुआ तो मैं आप से प्रार्थना करने आया हू कि आप मेरी सहायता करे।"

श्री कृष्ण बोले- 'परन्तु मेरे लिए तो पाण्डव तथा कौरव दोनों ही स्नेही है।"

"यह ठीक है कि पाण्डव तथा कौरव दोनो पर ही आपका समान प्रेम है- दुर्योधन ने कहा—और हम दोनो को ही आप से सहायता प्राप्त करने का अधिकार है। परन्तु सहायता की याचना करने पहले मैं आया। पूर्वजो मे यह रीति चली आई है कि जो पहले आये उसी का काम पहले हो। और आज भी सभी सद्बुद्धि प्रतिष्ठित सज्जन इसी रीति पर अमल करते है। और आप सज्जनो मे श्रेष्ठ है, अत: बड़ों की चलाई रीति के अनुसार आप को पहले मेरी प्रार्थना स्वीकार करनी चाहिए।"

श्री कृष्ण ने अर्जुन की ओर देखा।

अर्जुन बोला "दुर्योधन जिस उद्देश्य को लेकर यहां पधारे है, मैं भी उसी उद्देश्य से आया हू। यदि दुर्योधन ने शांति वार्ता स्वीकार न की तो युद्ध होगा, उस मे आप हमारी सहायता करें।

दुर्योधन ने कहा—"श्री कृष्ण! आप को पहले मेरी याचना

स्वीकार करनी होगी।"

यह सुन श्री कृष्ण दुर्योधन की ओर देख कर बोले—"राजन्! यह हो सकता है कि आप पहले आये हो। पर मेरी दृष्टि तो कुन्ती पुत्र अर्जुन पर ही पहले पड़ी। आप पहले पहुचे जरूर, पर मैंने तो पहले अर्जुन को ही देखा। वैसे मेरी दृष्टि मे आप दोनों ही समान है। इस लिए कर्तव्य भाव से मैं आप दोनों की समान रूप से सहायता करूँगा। पूर्वजो की चलाई प्रथा यह है कि जो आयु में छोटा हो पहले उसे ही पुरस्कार देना चाहिए। अर्जुन आप से छोटा है, इस लिए मैं सब से पहले उसी से पूछता हूं कि वह क्या चाहता है ?"

और अर्जुन की ओर मुड कर वे बोले—"पार्थ! सुनो कौरव तथा पाण्डव मेरे लिए दोनों समान है। दोनों ही मेरे पास सहायता के लिए आये हैं। इस लिए मैंने निश्चय किया है कि दोनों की सहायता करू। एक ओर मेरे परिवार के वीर है, जो रण कौशल में मुझ से किसी प्रकार कम नही। जो बडे साहसी और वीर हैं। उनकी अपनी एक सेना भी है और सभी यादव वीरों को एकत्रित करके उनकी एक बड़ी सेना बनाई जा सकती है। यह सब एक ओर है और दूसरी ओर मैं स्वयं हू। अकेला ही। और मेरी प्रतिज्ञा है कि पाण्डवो तथा कौरवो के बीच होने वाले किसी युद्ध मे शस्त्र नही उठाऊगा। अर्थात मैं निःशस्त्र हू अब तुम इन दोनों मे जिसे अपनी सहायता के लिए मागना चाहो, माग सकते हो। तुम मुझ निःशस्त्र को चाहते हो अथवा मेरे वश वालों की सेना को ?"

बिना किसी हिचकिचाहट के अर्जुन बोला—"आप शस्त्र उठावें या न उठावें, आप चाहे लडे अथवा न लड़, मैं तो आप को ही चाहता हूं।"

दुर्योधन के आनन्द की सीमा न रही उसने हर्षचित होकर कहा—"बस, मुझे आप अपने वश के वीर तथा अपनी सेना दे दीजिए।"

श्री कृष्ण ने स्वीकृति देते हुए कहा—"अर्जुन ने मुझे मागा है, इस लिए मेरे वश के वीर तथा सेना आप की सहायता के लिए शेष रह गए। आप निश्चिन्त रहिए।"

दुर्योधन मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ। वह सोचने लगा—"अर्जुन निरा मूर्ख निकला, वह बहुत बड़ा धोखा खा गया। निःशस्त्र कृष्ण को लेकर वह क्या कर सकेगा? लाखों वीरों से भरी भारी भरकम सेना सहज ही में मेरे हाथ लग गई।

यह सोचता और पुलकित होता वह बलराम जी के पास गया। हर्षातिरेक में झूमते दुर्योधन को देख कर बलराम ने उस के आनन्द का कारण पूछा। उस ने श्री कृष्ण के पास जाने और पाण्डवों को निःशस्त्र श्री कृष्ण तथा कौरवों को विशाल सेना मिलने की बात सुनाई। ध्यान पूर्वक सारी बात सुनने के बाद बलराम ने पूछा—"आप इस बात से बड़े प्रसन्न है; यह खुशी की बात है। अब आप मुझ से क्या चाहते है?"

"आप तो श्री कृष्ण के वश के वीर ठहरे, और हैं मेरे पक्ष पाती। आप भीमसेन की टक्कर के योद्धा है, आप तो हमारी ओर रहेंगे ही।—"दुर्योधन ने कहा।

"मालूम होता है कि उत्तरा के विवाह के अवसर पर मैंने जो बात कही थी, उसकी सूचना आप को मिल गई। मैंने तो कई बार कृष्ण से कहा कि पाण्डव तथा कौरव दोनों हमारे बराबर के सम्बन्धी हैं, मैंने तुम्हारे सम्बन्ध मे भी बहुत कुछ कहा। पर कृष्ण तो मेरी सुनता ही नहीं। अच्छा होता कि आप लोग आपस मे मिल कर रहते। पर आप लोग लड़ेंगे ही, यह दुख को बात है। हा, मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं इस युद्ध मे तटस्थ रहूगा। क्यों कि जिधर कृष्ण न हो उधर मेरा रहना ठीक नही और मैं सम्पति के लिए व्यर्थ का रक्त पात ठीक नही समझता। मैं जुए को भी धर्म के प्रतिकूल समझता हू और एक ही वश के दो पक्षों का रण क्षेत्र मे उतरना भी अच्छा नहीं समझता। इस कारण मैं तुम्हारी सहायता नही कर सकता। मेरा तटस्थ रहना ही उचित है

—"बलराम ने दुर्योधन को समझाते हुए कहा।"

दुर्योधन बोला—"आप तटस्थ रहने की बात कह कर मुझे निराश कर रहे है; जब कि आप किसी को निराश नही किया करते।"

"दुर्योधन तुम निराश क्यो होते हो। तुम तो उस वश के हो जिसे राजा लोग पूजते हैं। साहस से काम लो, तुम्हें कमी किस बात की है। तुम्हारे पास इतनी विशाल सेना है। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और भीष्म पितामह जैसे रण कुशल वीर हैं। जाओ क्षत्रियोचित रीति से युद्ध करो।—"बलराम बोले।

"किन्तु आप मेरी सहायता न करें यह दुख की बात है।"

मेरी सहायता तो शाति वार्ता मे ही मिल सकती है। मेरे विचार से युद्ध से कोई समस्या हल नही होती। और यदि मुझे युद्ध मे जाना हो पडे तो मैं कृष्ण के विरोध में नही जा सकता।

बलराम का उत्तर सुन कर दुर्योधन मौन रह गया। बलराम ने फिर उसे प्रोत्साहित किया।

हस्तिना पुर को लौटते समय दुर्योधन का दिल बल्लियों उछल रहा था। वह सोच रहा था अर्जुन खूब बुद्धू बना। नि.शस्त्र श्री कृष्ण को माग बैठा। कितना सौभाग्य शाली हू मैं। द्वारिका की विशाल सेना अब मेरी है और बलराम जी का स्नेह मुझ पर ही है। फिर किस बात की कमी है। बेचारे निःशस्त्र श्री कृष्ण मेरे विरुद्ध क्या काम आयेंगे? इसी प्रकार अपने मन मे लड्डू फोडता हुआ वह अपनी राजधानी जा पहुचा।

× × × ×

दूसरी ओर—

दुर्योधन के चले जाने के उपरान्त श्री कृष्ण ने पूछा—"सखे अर्जुन! एक बात बताओ। तुम ने मेरी इतनी विशाल सेना की अपेक्षा मुझ नि शस्त्र को क्यो पसन्द किया?"

अर्जुन बोला—'भगवन्! मैं भी आप ही की भांति यश प्राप्त करना चाहता हू। आप त्रिखण्ड के स्वामी बने, क्योकि आप में इतनी शक्ति है कि इन तमाम राजाओं को युद्ध में परास्त कर सकते है। आप ने अपने बल से जरासिन्ध जैसे त्रिखण्ड पति को कुचल डाला। इधर मुझ मे भी इतनी शक्ति है कि अकेला ही इन सभी को हरादूं। मेरी चिरकाल से यह इच्छा थी कि आप को सारथी बना कर अपने शौर्य से इन सभी राजाओं पर विजय प्राप्त करूं। आज मेरी वह इच्छा पूर्ण हो रही है। अब मैं आप को साथ लेकर आपके समान यश प्राप्त कर सकूगा।"

श्री कृष्ण के अधरों पर मुस्कान उभर आई। बोले—"अच्छा, तो यह बात है, मुझ से ही होड करने के लिए, मुझे ही मांगा? खैर यह तुम्हारे सद्भाव के अनुकूल ही है।"

इस के पश्चात कुछ और बातें हुई और अन्त मे श्री कृष्ण ने अर्जुन को बडे ही प्रेम से विदा किया।

※ चौबीसवाँ परिच्छेद ※

मामा विपत्त में
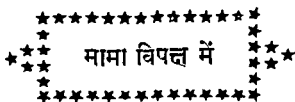
इस प्रकार श्री कृष्ण ने अर्जुन का सारथी बनना स्वीकार किया और पार्थ-सारथी की पदवी पाई।

मद्र देश के राजा शल्य नकुल तथा सहदेव की मा माद्री के भाई थे। उन्हे एक सन्देश वाहक के द्वारा समाचार मिला कि उन के भानजे पाण्डव उप्पलव्य नगर (विराट की राजधानी के निकट) मे अपना खोया राज्य वापिस लेने के लिए युद्ध की तंयारिया कर रहे हैं तो उन्होने एक बडी भारी सेना एकत्रित की और उसे लेकर पाण्डवों की सहायता के लिए उस नगर की ओर चल पडे, जहाँ पाण्डव युद्ध की तैयारिया कर रहे थे।

कहा जाता है कि शल्य की सेना इतनी बडी थी कि रास्ते में चलते हुए वे जहा कहीं भी पडाव डालते; उनकी सेना का पडाव एक योजन से कुछ अधिक (लगभग ½ मील) तक लम्बा फैल जाता। इतनी विशाल सेना के यात्रा करने का समाचार दूर दूर तक फैल गया।

यह बात दुर्योधन तक भी पहुची। वह सोचने लगा: इतनी विशाल सेना का पाण्डवों के पक्ष मे चला जाना संकट का कारण बन सकता है। इस लिए किसी प्रकार शल्य को अपनी ओर मिला

लेना चाहिए। अपने मित्रो मे विचार विमर्श करने के उपरान्त उस ने अपने कुशल कर्मचारियो को आदेश दिया कि जहां कही भी शल्य की सेना डेरे डाले, वही पहुच कर उसे समस्त प्रकार की सुविधाएं पहुचाई जाये। किसी प्रकार का कष्ट सेना तथा राजा शल्य को न होने पाये। साथ ही रास्ते मे जहा तहा विशाल मण्डप बनवाये गए। सारा रास्ता, जिस से सेना को गुजरना था, बहुत ही आकर्षक ढग पर सजवा दिया गया। जहां भी पडाव पडता राजा शल्य और उसकी सेना का बहुत ही सुन्दर ढग से सत्कार किया जाने लगा। राज्य के समस्त साधन शल्य तथा उनकी सेना को प्रसन्न करने मे लगा दिए गए। खाने पीने की वस्तुओं का सुन्दर प्रबन्ध कर दिया गया। प्रत्येक पडाव पर उनकी सेना तथा उन के मन बहलाव के लिए भी अच्छे कलाकारो को नियुक्त किया जाता। रहने, खाने पीने और मनोरंजन का इतना सुन्दर प्रबन्ध देख कर राजा शल्य मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। और जब इस सुप्रबन्ध को उन्होने प्रत्येक पडाव पर पाया तो वे चकित रह गए। इतनी विशाल सेना के लिए इतना सुप्रबन्ध किया जाना वास्तव मे बहुत कठिन था मद्र राज ने सोचा कि उनके भानजे युधिष्ठिर ने इस दशा मे होते हुए भी इतना शानदार स्वागत करके दिखाया है कि वह उनका कितना आदर करता है।

एक बार एक पडाव पर उन्होने आदर सत्कार मे लगे कर्मचारियों को बुला कर कहा—"हमारी सेना और हमारी इतनी खातिर दारी करने वाले लोगो को हम जितनी भी प्रशसा करें कम ही है। इस अभूत पूर्व सत्कार तथा अतिथ्य के लिए हम प्रबन्धको के हृदय से आभारी हैं। हम इस सत्कार के प्रबन्धको को अपनी ओर से उनकी कार्य कुशलता, निपुणता तथा परिश्रम के लिए पुरस्कृत करना चाहते है, आप लोग कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर से हमारी ओर से कहें कि वे इस के लिए बुरा न मानें और हमे अपनी सम्मति दे दें।"

कर्मचारी चाहते थे कि वे उसी समय मद्रराज का भ्रम निवारण हेतु बता दें कि उनका सत्कार दुर्योधन की ओर से किया जा रहा है, पर वे उस समय चुप रहे क्यो कि उन्हें ऐसी कोई आज्ञा दुर्योधन

की ओर से नही मिली थी। अतः उस समय वे चुप रहे और यह बात दुर्योधन से जा कही दुर्योधन गुप्त रूप से मद्र राज की सेवा के साथ साथ चल रहा था, ताकि उचित अवसर पाकर वह मद्र राज से अपनी सहायता का वचन ले सके। जब दुर्योधन ने उक्त बात सुनी तो उसकी बाछें खिल गई। समाचार देने वालों को उसने अच्छा पुरस्कार दिया।

× × × × × × ×

महाराज को उसके निजि मन्त्री ने आकर बताया—"महाराज हस्तिनापुर नरेश दुर्योधन आपके दर्शन करना चाहते है।"

दुर्योधन के अनायास ही आ टपकने का समाचार सुनकर शल्य को बहुत आश्चर्य हुआ। फिर भी उन्हो ने तुरन्त आदेश दिया - "उन्हें ससम्मान ले आओ।" ज्यो ही दुर्योधन को उन्हो ने अपने सामने देखा उन्हो ने पारिवारिक सम्बन्धी होने के कारण उससे स्नेह प्रदर्शित करते हुए बैठाया। बोले—"दुर्योधन! अनायास ही तुम कैसे आ धमके?"

"मुझे ज्ञात हुआ कि आप अपने सत्कार के प्रबन्ध मे बहुत प्रसन्न हुए हैं। इसे अपना सौभाग्य समझकर आप की प्रसन्नता के लिए अपना आभार प्रकट करने के लिए ही मैं चला आया। बात यह है कि आप के सेना सहित उपालव्य नगर की ओर जाने का समाचार मुझे अनायास ही मिला। बस जल्दी मे जो कुछ हो सका किया। अहो भाग्य कि आप उस मे सन्तुष्ट है। सुना है आप सत्कार के प्रबन्धकों को पुरस्कृत करना चाहते है, यह हमारे लिए बहुत ही प्रसन्नता की बात है फिर भी आपकी प्रसन्नता ही हमारे लिए पर्याप्त है, इस सत्कार का इस से बड़ा और पुरस्कार क्या हो सकता है कि आप ने प्रशंसा कर दी।—"दुर्योधन ने अपनी बातो द्वारा अपने कार्य को जिस पर अभी रहस्य का आवरण पड़ा था, निरावरण कर दिया।

दुर्योधन की बात सुन कर शल्य आश्चर्य चकित रह गए। जिस के विरुद्ध लड़ने के लिए वे पाण्डवों के पास इतनी विशाल

सेना लेकर जा रहे है। दुर्योधन ने यह जान कर भी इतना सुन्दर सत्कार किया, यह कितना बड़ा एहसान कर दिया. दुर्योधन ने यह जान कर वे बड़े असमजस मे पड़े। वे सोचने लगे कि यह जानते हुए भी कि उक्त सारी सेना उसी के विरुद्ध काम आयेगी यह सेना उसके नाश का कारण भी बन सकती है इस सेना के बल पर उस से राज गद्दिया छीनी जा सकती है दुर्योधन ने इतना शानदार स्वागत सत्कार किया इतनी उदारता का होना सचमुच एक बडी बात है। सोचते सोचते अनायास ही उन के हृदय मे दुर्योधन के प्रति आदर तथा स्नेह की भावना जागृत हो गई

प्रसन्न होकर बोले—"राजन ! तुमने जो कुछ किया उस के भार मे मैं दबा सा जाता हू। तुम्हारा यह ऋण मैं कैसे चुकाऊ ?

दुर्योधन बोला—"महाराज ! यह एहसान की तो कोई बात नही यह तो मेरा कर्तव्य था। आप जैसे युधिष्ठर के लिए वैसे मेरे लिए। मैने तो कुल रीति अनुसार आप को मामा समझ कर ही यह सत्कार किया।

"फिर भी तुम्हें यह तो ज्ञात ही होगा कि हम अपनी सेना सहित पाण्डवो की सहायता के लिए जा रहे है। मद्र राज बोले।"

"आप मेरे विरोध मे भी जाते हो फिर भी आप का सत्कार करना तो मेरा कर्तव्य है ही।" दुर्योधन ने अपने मन की बात छिपाते हुए कहा।

"जो भी हो हम तुम्हारे, [illegible] कैसे मुक्त हो यही मेरे सामने प्रश्न है।"

"आप वास्तव मे मुझ से [illegible]
अपनी सेन[illegible] मेरी [illegible]
अवसर सं[illegible] की बात[illegible]

बोले।

दुर्योधन ने अपनी बात पर जोर देते हुए कहा—"आप युद्ध आरम्भ होने पर मेरी ओर से अपनी सेना सहित लड़ें, मैं बस यही प्रत्युपकार चाहता हूं।

सुन कर मद्र राज सन्न रह गए।

शल्य को असमंजस मे पड़े देख कर दुर्योधन बोला—"आप के लिए जैसे पाण्डव वैसे ही कौरव। आप से हम दोनों का बराबर ही नाता है इसी लिए मैंने आप से प्रार्थना की है। यदि आप हम दोनों को सम्मान दृष्टि से देखते हैं और केवल कौरवों को इस लिए नही ठुकराते कि हम माद्री की सन्तान नहीं हैं, तो आप को हमारी ओर से लड़ने में क्या आपत्ति है?

दुर्योधन के उपकार से मद्रराज अपने को कुछ दबा-सा अनुभव कर रहे थे, उन्होने विवश होकर कहा—"तुम ने अपनी उदारता से मुझे जीत लिया है। अच्छा ऐसा ही होगा।"

शल्य ने दुर्योधन द्वारा किए गए आदर सत्कार का बोझ तले अपने को दबे हुए अनुभव करके ऐसा कहने को कह तो दिया, पर उनका मन अशात हो गया। उन पर दुर्योधन की उस चाल का कुछ इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वे अपने पुत्रों के समान प्यार करने योग्य भानजों—पाण्डवो—की सहायता को जाते समय अपना निश्चय बदल कर दुर्योधन की सहायता का वचन दे दिया। पर कुछ देर तक वे मन ही मन ग्लानि अनुभव करते रहे। कई बार उन्हें अपने पर लज्जा आई। परन्तु वे अपने दिए वचन से लौट भी तो नहीं सकते थे।

फिर वह सोचने लगे कि अब वह आगे जायें या पीछे लौटें। मन मे एक विचार उठा "कैसे जायेंगे पूर्ववत पाण्डवों के सामने? किस मुह से कहेंगे कि उन्होने आदर सत्कार के मूल्य पर अपने निर्णय तथा पाण्डवो के प्रति प्रेम को बेच डाला? कैसे बतायें उन्हें कि दुर्योधन के द्वारा किए आदर के बदले मे उन्होंने अपने

पाण्डवो के प्रति प्रेम को तिलाञ्जलि देकर पक्ष परिवर्तन कर लिया ?"

फिर एक विचार मन मे उठा—"दुर्योधन को वचन तो दे ही दिया परन्तु युधिष्ठिर से बिना मिले लौट जाना इस से भी अधिक भयंकर भूल होगी।"

"राजन ! मैं तुम्हे वचन तो दे चुका, और उसे निभाऊगा भी, परन्तु जाने से पहले युधिष्ठिर से भी मिल लेना आवश्यक समझता हू। अतः अभी मुझे विदा दो।"

दुर्योधन जानता था कि शल्य जैसे क्षत्रिय राजाओ का वचन झूठा नही हो सकता, इस लिए उसने उन की बात स्वीकार करते हुए कहा—"आप चाहते हैं तो अवश्य ही मिलिए। परन्तु ऐसा न हो कि प्रिय भानजो को देख कर वचन ही भूल जायें।"

दुर्योधन की इस बात से शल्य तिलमिला उठे। उन्हे क्रोध आया, पर अपने आवेश को रोकते हुए कहा "नही, भाई यह शल्य का वचन है। जो कह चुका वह असत्य सिद्ध नही होगा। तुम निश्चिन्त होकर अपने नगर लौट जाओ।"

दुर्योधन ने इस के बाद उनसे विदा ली और शल्य उपप्लव्य की ओर प्रस्थान कर गए।

× × × × × × ×

उपप्लव्य नगर बहुत ही आकर्षक ढग पर सजा था। द्वार पर शहनाइया बज रही थी। स्त्रिया गीत गा रही थी चारो ओर भिन्न भिन्न भाति की सुगन्ध बिखेरी जा रही थी और पाण्डवों की सेना, कर्मचारी, मित्र, सहयोगी, बन्धु बान्धव सभी शल्य के स्वागत में खड़े थे। ज्यों ही शल्य की सवारी नगर के द्वार पर पहुची अस्त्र शस्त्रो से रग बरसी। पुष्प मालाए आकाश की ओर फेंकी गई जो वापस मद्र राज के ऊपर आकर गिरी। शखो तथा नफीरी को मधुर स्वर लहरी गूंज उठी बाजों के द्वारा स्वागत गान गाया गया सेना ने

सलामी दी। पाण्डवों ने चरण रज ली मद्रराज ने सभी पाण्डवो को प्रेम पूर्वक छाती से लगा लिया। हर्षातिरेक और स्नेह के कारण मद्रराज की पलकें भीग गई मामा को सामने देख कर नकुल और सहदेव के आनन्द की तो सीमा ही नही रही।

जब मद्रराज विश्राम कर के पाण्डवों से मिले तो सर्व प्रथम उन्होने पूछा—"युधिष्ठिर ! १३ वर्ष कैसे बीते ?" इस के उत्तर मे पाण्डवों ने १३ वर्ष तक उठाई विपताओ का वृतांत कह सुनाया। सुन कर मद्रराज बोले---"मनुष्य को अपने ही कर्मों का फल कैसा कैसा भयकर भोगना पड़ता है यह तुम लोगों की बातो से ज्ञात हुआ। शास्त्रों की शिक्षाओं के प्रतिकूल कार्य करके, जुआ खेल कर, तुम लोगों को जो फल भोगना पडा, आशा है भावी सन्तानें इस से कुछ शिक्षा ग्रहण करेगी।"

इन बातो के पश्चात भावी युद्ध की बातें चलीं। तब महाराज ने द्रवित होते हुए कहा—"धर्मराज ! मैं तुम्हे यह दुखद समाचार किस मुह से सुनाऊ। कि मैं कौरवो के पक्ष मे रहने का वचन दुर्योधन को दे चुका हू।"

यह बात सुनते ही पाण्डवों के हृदय पर वज्रपात सा हुआ वे सन्न रह गए। बोले कुछ नही एक बार सब के चेहरों पर छाई गम्भीरता को देख कर शल्य स्वय दुखित हुए और वह मार्ग मे आप बीती सुनाई जो यात्रा मे गुजरी थी।

मद्रराज की बात सुन कर महाराज युधिष्ठिर मन ही मन सोचने लगे "जो हुआ, वह हमारी ही भूल के कारण। हा शोक दुर्योधन इस बात मे भी हम से बाजी मार गया।

अपने निकट के रिश्तेदार समझ कर इनकी ओर से हम लापरवाह रहे और इनकी कोई खबर न ली, इसी का यह परिणाम है।"

महाराज युधिष्ठिर को इस बात से बहुत बडा धक्का लगा था, परन्तु उन्होने अपने मन की व्यथा को प्रकट नहीं किया। अपने

मन की भावनाओं को दबा कर बोले—"मामा जी ! आपने दुर्योधन के स्वागत सत्कार के कारण उसे जो वचन दिया है आप उसे पूर्ण करें। परन्तु मैं बस इतनी ही बात आप से पूछना चाहता हूं कि आप रण कौशल मे बहुत निपुण है, अवसर आने पर कर्ण आप को अपना सारथी बना कर अर्जुन का वध करने का प्रयत्न करेगा मैं यह जानना चाहता हू कि उस समय आप अर्जुन की मृत्यु का कारण बनेंगे या अर्जुन की रक्षा का प्रयत्न करेंगे ? मैं यह प्रश्न उठा कर आप को असमंजस मे नहीं डालना चाहता था, पर पूछने को मन कर आया तो पूछ लिया।"

मद्रराज बोले— "बेटा युधिष्ठिर ! मैं धोखे में आकर दुर्योधन को वचन दे बैठा, इस लिए युद्ध तो उनकी ओर से ही करूंगा। पर एक बात बताए देता हूं कि यदि कर्ण अर्जुन का वध करने की इच्छा से मुझे अपना सारथी बनायेगा तो मेरे कारण उस का तेज नष्ट हो जायेगा और अर्जुन के प्राणों की रक्षा हो जायेगी। चिन्ता न करो जुए के खेल में फँसकर तुम्हे और द्रौपदी को जो कष्ट झेलने पड़े अब उनका अन्त आ गया समझो। तुम्हारा कल्याण होगा। इस समय की भूल के लिए मुझे क्षमा करना।

* पचीसवाँ परिच्छेद *

पाचाल नरेश के महामन्त्री जब हस्तिनापुर पहुचे तो एक राजदूत की भांति उनका आदर सत्कार किया गया वे वहा जाकर अतिथि हो गए और ऐसे अवसर की खोज मे रहे जब कि दरबार मे भीष्म, धृतराष्ट्र, द्रोण, विदुर कल्प आदि आदि सभी वयोवृद्ध विद्वान राजनितिज्ञ तथा प्रभावशाली व्यक्ति उपस्थित हो। एक दिन जब उन्हे पता चला कि कौरव वश के सभी प्रमुख व्यक्ति सभा मे उपस्थित है, और हस्तिनापुर के राज्य के समस्त सहयोगी तथा सरक्षक दरबार मे विराजमान हैं तो वे वहाँ पहुचे। यथा विधि सभी को प्रणाम करके तथा कुशल समाचार कहने तथा पूछने के उपरान्त उन्होंने पाण्डवों की ओर से सन्धि प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए कहा —

"अनादि काल से जो धर्म तत्व, रीति तथा नीति प्रचलित है, उससे आप सभी परिचित हैं। आप लोगो के धर्म सम्बन्धी ज्ञान के विद्वान, नीति सम्बन्धी धुरन्धर और विश्व के सुलझे हुए गुरुजन विद्यमान हैं। आप न्याय के रक्षक हैं और रीति रिवाजों के मानने वाले हैं। राजकुल की यह रीति रही है कि पिता की सम्पत्ति पर पुत्रों का समान अधिकार होता है। यह राज्य सिंहासन जिस पर आज महाराज दुर्योधन विद्यमान हैं, कभी इसे पाण्डु नरेश सुशोभित करते थे। उन्होंने अपने बाहुबल तथा पराक्रम से हस्तिनापुर राज्य का

मन की भावनाओं को दबा कर बोले—"मामा जी ! आपने दुर्योधन के स्वागत सत्कार के कारण उसे जो वचन दिया है आप उसे पूर्ण करें। परन्तु मैं बस इतनी ही बात आप से पूछना चाहता हूं कि आप रण कौशल मे बहुत निपुण है, अवसर आने पर कर्ण आप को अपना सारथी बना कर अर्जुन का वध करने का प्रयत्न करेगा मैं यह जानना चाहता हूं कि उस समय आप अर्जुन की मृत्यु का कारण बनेंगे या अर्जुन की रक्षा का प्रयत्न करेंगे ? मैं यह प्रश्न उठा कर आप को असमंजस मे नही डालना चाहता था, पर पूछने को मन कर आया तो पूछा लिया।"

मद्रराज बोले— "बेटा युधिष्ठिर ! मैं धोखे में आकर दुर्योधन को वचन दे बैठा, इस लिए युद्ध तो उनकी ओर से ही करूंगा। पर एक बात बताए देता हूं कि यदि कर्ण अर्जुन का वध करने की इच्छा से मुझे अपना सारथी बनायेगा तो मेरे कारण उस का तेज नष्ट हो जायेगा और अर्जुन के प्राणों की रक्षा हो जायेगी। चिन्ता न करो जुए के खेल मे फंसकर तुम्हें और द्रौपदी को जो कष्ट झेलने पड़े अब उनका अन्त आ गया समझो। तुम्हारा कल्याण होगा। इस समय की भूल के लिए मुझे क्षमा करना।

दूर दूर तक विकास किया और भारत खण्ड में इस खण्ड की इतनी सीमाएं बढाई कि इस क्षेत्र मे सभी इस राज्य से प्रभावित हुए। किसी की भी शक्ति नही हुई कि इस राज्य को चुनौती दे सके। उन के पंच महाव्रती मुनि बाणा स्वीकार करने के उपरान्त पाण्डवो का अधिकार था, और पाण्डवो मे भी ज्येष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर था कि वे इस राज की बागडोर को सम्भाले परन्तु पाण्डव उस समय बाल्यवस्था मे थे और विवश होकर पाण्डु नरेश को राज्य सिंहासन धृतराष्ट्र को सौंपना पडा। लेकिन बिल्कुल इसी प्रकार सिंहासन सौंपा गया, जैसे पाण्डवों का हाथ उन्होंने धृतराष्ट्र के हाथ मे दे दिया था। एक अमानत थी जो धृतराष्ट्र को सौंपी गई। जब उस अमानत के वास्तविक अधिकारी व्यस्क हुए तो धृतराष्ट्र को चाहिए था कि वे उस सिंहासन को उन्हें सौंप देते, जिन कि वह सम्पत्ति थी। परन्तु ऐसा नही हुआ,कौरव पाण्डवों के अधिकार को चुनौती देने लगे और बुद्धिमान धृतराष्ट्र ने पूज्य भीष्म पितामह और महान आत्मा विदुर की सलाह से हस्तिनापुर राज्य को दो भागों में विभाजित कर के एक भाग दुर्योधन को और दूसरा पाण्डवों दे दिया पाण्डवों के दिल पर तनिक भी मैल नहीं आया। उन्होने उजड़े हुए खाण्डव प्रस्थ का जीर्णोद्धार किया। किन्तु वे अभी अपने राज्य के कारोबार को सम्भाल ही पाये थे कि उन पर दूसरी आपत्ति आ पड़ी और हस्तिनापुर के पराक्रमी नरेश पाण्डु की सन्तानें बनकी खाक छानने के लिए भेज दी गई। इस शर्त पर कि १२ वर्ष के बनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास के उपरान्त वे अपनी खोई हुई सम्पत्ति को वापिस लेने के अधिकारी होंगे। उन्होने इसी विश्वास पर कि उक्त शर्त समस्त सुलझे हुए तथा मान हुए वयोवृद्ध तथा नीतिवान लोगों के सामने रखी गई है जो पूर्ण होगी, वह राजा दुर्योधन का एक वचन वह था एक क्षत्रिय राजा का वचन। क्षत्रिय वीरों ने क्षत्रिय राजा के वचन पर विश्वास किया और ज्यों त्यों विभिन्न कष्ट उठा कर उन्होंने १३ वर्ष व्यतीत कर लिए। फिर वह अधिकारी हो गए कि शर्त व वचन के अनुसार अपना राज्य वापिस ले ले लेकिन ऐसा लगता है कि नीतिज्ञों तथा शास्त्रज्ञों के समक्ष दिया गया वचन पूर्ण नहीं होगा। यदि ऐसा है तो यह कहां का न्याय है कि धृतराष्ट्र की सन्ताने तो सम्पूर्ण राज की अधिकारी बनें और पाण्डु नरेश की

और जहा तक अधिकार की बात है स्पष्ट है कि हारी हुई सम्पत्ति पर उन्हे कोई अधिकार नही है। आप उन्हे बता दीजिए कि कौरव किसी धौंस मे नही आने वाले।"

कर्ण के इस प्रकार बात काट कर बीच ही मे बोल उठने से भीष्म को बड़ा क्रोध आया। वे बोले— "राधा पुत्र! तुम व्यर्थ की बातें करते हो। यदि हम युधिष्ठिर के दूत के कहे अनुसार सन्धि न करें तो महायुद्ध छिड़ जायेगा और मैं जानता हू कि महायुद्ध हुआ तो उस मे दुर्योधन आदि सब को पराजित हो कर मृत्यु का ग्रास बनना होगा। इस लिए भावावेश मे ऐसी आग मत भड़काओ जो कौरवों को जला कर भस्म कर डाले। तुम यदि कौरव राज के हित चिन्तक हो तो डींगे हाकनी छोड कर समय की आवश्यकता और वास्तविकता को परखो। याद रखो कि युद्ध कभी भी लाभ दायक नहीं होता। मत्स्य राज्य पर आक्रमण की घटना याद करो और अपने को बुद्धिमान सिद्ध करो।

भीष्म पितामह की बात कर्ण को बडी कडवी लगी वह कुछ बड बडाने लगा। दुर्योधन भी पेंचोताव खाने लगा। द्रोणाचार्य भी कुछ कहने लगे। इस प्रकार सभा मे खलबली मच गई। यह देख कर धृतराष्ट्र बोले—

"पांचाल राज्य के महामंत्री! मुझे यह जानकर बडी प्रसन्नता है कि मेरे प्रिय भतीजे सकुशल है और कौरवो से सन्धि के इच्छुक है। ठीक है हमे शाति भग नही होने देनी चाहिए। मै स्वय भी युद्ध के विरुद्ध हू। आप के द्वारा प्राप्त सन्देश का उत्तर मैं अपने समस्त बुद्धिमान परामर्श दाताओ के साथ मत्रणा करने के उपरान्त सजय द्वारा भेज दूगा। आप युधिष्ठिर से जा कर कहे कि शीघ्र ही हमारा राजदूत उन की सेवा मे उपस्थित हो कर सारी बातें करेगा। आप अनुभव हीन युवको की बात पर न जायें। कौरव वंश के वृद्ध बुद्धिमान लोग अपनी ओर से युद्ध रोकने का पूर्ण प्रयत्न करेगे।"

इसी बीच दुर्योधन बोल पडा— "विद्वद्वर! आप जाकर यह

द्रुपद राज के महामन्त्री ने अन्त में भीष्म पितामह के मुख पर नजरें गटा दीं। भीष्म पितामह उनकी प्रश्न वाचक दृष्टि के उत्तर में बोले—

"आप के द्वारा यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि पाण्डव सकुशल हैं, वे आज शक्ति सम्पन्न हैं. कितने ही पराक्रमी राजा उन की सहायता को तत्पर हैं कितनी ही विशाल सेनाएं उनकी ओर से से युद्ध मे उतरने के लिए तैयार हो रही हैं इतनी शक्ति बटोर लेने उपरान्त भी पाण्डव युद्ध नही चाहते, वे समझौते के उत्सुक हैं, इस बात को जान कर मुझे बहुत सन्तोष हुआ। और इस बात को दृष्टि मे रखते हुए मुझे यही न्यायोचित जँचता है कि उन्हे उनका राज्य वापिस दे दिया जाय तथा परस्पर मैत्री भाव की नीव डाली जाय। यही कल्याणकारी मार्ग है। मैं समझता हू कि अन्य लोग भी.........

अभी भीष्म पितामह की बात पूरी नही हो पाई थी कि कर्ण बीच मे बोल उठा। उसे भीष्म पितामह की बात बडी अप्रिय लगी। बडे क्रोध के साथ वह बोला— विद्वान सज्जन ! आप ने जो बात कही, उस मे कोई नई बात नही है कोई नया तर्क आप ने प्रस्तुत नही किया, प्रत्युत वही राम कहानी बाच रहे है जो पहले भी पाण्डवो की ओर से कही गई और आज कल कही ही जा रही है। युधिष्ठिर दुर्योधन को यह धौंस देकर अपना राज्य वापिस लेना चाहते है कि उन की ओर मत्स्य राज तथा पाचालराज की बड़ी भारी सेनाए है परन्तु उन्हे याद रखना चाहिए कि किसी प्रकार की धौंस के द्वारा वे अपना राज्य वापिस नही ले सकते उन्होने अपना राज्य जुए मे हारा था। हारी हुई वस्तु को वापिस मॉंगने का आज तक किसी को अधिकार नही हुआ और न किसी ने ऐसा साहस ही किया। वे एक ओर शर्त शर्त गाते हैं और दूसरी ओर अपना अधिकार जमाते है। दोनो साथ साथ नही चल सकती। जहा तक शर्त का प्रश्न है, तेहरवें वर्ष के समाप्त होने से पूर्व ही अर्जुन पहचान लिया गया, इस लिए शर्त के अनुसार उन्हे पुनः १२ वर्ष के वनवास और १ वर्ष के अज्ञात के वास के लिए जाना चाहिए। उसके उपरान्त शर्त की बात उठाये

और जहा तक अधिकार की बात है स्पष्ट है कि हारी हुई सम्पत्ति पर उन्हे कोई अधिकार नही है। आप उन्हे बता दीजिए कि कौरव किसी धौंस में नही आने वाले।"

कर्ण के इस प्रकार बात काट कर बीच ही मे बोल उठने से भीष्म को बड़ा क्रोध आया। वे बोले— "राधा पुत्र! तुम व्यर्थ की बातें करते हो। यदि हम युधिष्ठिर के दूत के कहे अनुसार सन्धि न करें तो महायुद्ध छिड़ जायेगा और मैं जानता हू कि महायुद्ध हुआ तो उस मे दुर्योधन आदि सब को पराजित हो कर मृत्यु का ग्रास बनना होगा। इस लिए भावावेश मे ऐसी आग मत भडकाओ जो कौरवों को जला कर भस्म कर डाले। तुम यदि कौरव राज के हित चिन्तक हो तो डीगें हांकनी छोड कर समय की आवश्यकता और वास्तविकता को परखो। याद रखो कि युद्ध कभी भी लाभ दायक नहीं होता। मत्स्य राज्य पर आक्रमण की घटना याद करो और अपने को बुद्धिमान सिद्ध करो।

भीष्म पितामह की बात कर्ण को बडी कडवी लगी, वह कुछ बड बडाने लगा। दुर्योधन भी पेंचोताव खाने लगा। द्रोणाचार्य भी कुछ कहने लगे। इस प्रकार सभा मे खलबली मच गई। यह देख कर धृतराष्ट्र बोले—

"पांचाल राज्य के महामत्री! मुझे यह जानकर बडी प्रसन्नता है कि मेरे प्रिय भतीजे सकुशल हैं और कौरवो से सन्धि के इच्छुक हैं। ठीक है हमें शाति भग नही होने देनी चाहिए। मैं स्वय भी युद्ध के विरुद्ध हू। आप के द्वारा प्राप्त सन्देश का उत्तर मैं अपने समस्त बुद्धिमान परामर्श दाताओं के साथ मत्रणा करने के उपरान्त सजय द्वारा भेज दूगा। आप युधिष्ठिर से जा कर कहे कि शीघ्र ही हमारा राजदूत उन की सेवा में उपस्थित हो कर सारी बातें करेगा। आप अनुभव हीन युवकों की बात पर न जायें। कौरव वश के वृद्ध बुद्धिमान लोग अपनी ओर से युद्ध रोकने का पूर्ण प्रयत्न करेंगे।"

इसी बीच दुर्योधन बोल पड़ा— "विद्वद्वर! आप जाकर यह

अवश्य कह दे कि घमण्ड मे आकर मेरे पौरुष को न ललकारे। उन्हे मुझ से अपने जीवन यापन हेतु कुछ याचना ही करनी है तो याचकों की भांति आयें परन्तु राज्य पर उन का कोई अधिकार नहीं। हम किसी की धौंस सहन करने वाले नही हैं। रण भूमि में उतरेंगे तो हम उन्हे दिखा देंगे कि दुर्योधन की टक्कर लेना तुम जैसे लोगों के बस की बात नही है। दूसरों की सहायता पर राज्य जीतने का स्वप्न देखना छोड दें।"

द्रोणा बोले—' दुर्योधन ! अपने वृद्धजनों के विचार का खुले दरबार में विरोध करते हुए तुम्हें लज्जा आनी चाहिए। युद्ध की चुनौती देकर नाश को निमन्त्रित करना बुद्धि मानी नही है।"

कर्ण फिर भावावेश मे बोला—"हम अभी वृद्ध नही हुए। हमारा रक्त अभी तक जवान है। हम अपनी मर्यादा पर आंच आने देना नही चाहते। राज्य की भीख धौंस देकर मांगनेवालों को हम मुह तोड जवाब देंगे।"

बात पुन बिगडती देख विदुर जी बोले- "शांति पूर्वक जो विवाद हल हो जाता है वह झगडे से नहीं। युद्ध किसी भी समस्या का मानवीय हल नही होता। हम सब जिस धर्म के अनुयायी हैं, अहिंसा तथा शांति उसकी आधार शिलाएं हैं। इस लिए हमें जो कुछ करना है वह ठण्डे दिमाग से सोच समझ कर। पाण्डवों के प्रस्ताव का हम स्वागत करते हैं और मैं समझता हूं धृतराष्ट्र का उत्तर इस सम्बन्ध मे न्यायोचित तथा उपयुक्त ही है।"

धृतराष्ट्र को सहारा मिला और उन्होंने पुनः अपनी बात दोहराई और राजदूत को विदा कर दिया गया।

धृतराष्ट्र ने विदुर तथा भीष्म जी को बुला कर मन्त्रणा की। उन दोनों ने ही पाण्डवों की प्रशंसा और दुर्योधन व कर्ण की नीति की निन्दा की और अपनी ओर से संजय को समझौता वार्ता चलाने के लिए भेजने का समर्थन किया। तब धृतराष्ट्र ने संजय को बुलाया और बोले—

"संजय ! वस्तुस्थिति क्या है तुम भलि भांति जानते हो।

और तुम्हे यह भी ज्ञात है कि पाण्डव बड़े पराक्रमी है अपने पिता के समान ही वे प्रतापी है। उन्होने अपने बाहुबल से राज्य का जो विस्तार किया, वह भी मुझे ही सौंप दिया था। मैने उन में दोष ढूढने का प्रयत्न किया परन्तु कोई दोष न मिला। युधिष्ठिर तो धर्मराज है। उसकी बुद्धिमत्ता, न्यायप्रियता तथा धार्मिकता के आगे तो मेरा सिर भी झुक जाता है। युधिष्ठिर ने दुर्योधन की सारी कुटिलताओं को क्षमा किया। बाल्यकाल से दुर्योधन ने उन्हे मिटाने के षडयन्त्र रचे, फिर भी पाण्डव मुझे पाण्डु के स्थान पर मानते रहे। अब उन्होने दुर्योधन की शर्त पूर्ण कर दी और वे अपने खोए राज्य का पुनः प्राप्त करने के अधिकारी हो गए। परन्तु दुर्योधन और कर्ण जीते जी उनके राज्य को लौटाना नही चाहते जब कि पाण्डवो के साथ एक बड़ी शक्ति है। श्री कृष्ण जैसा प्रकाण्ड विद्वान राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ तथा योद्धा सहायक है। राजा विराट उनका भक्त है। पाचाल नरेश और उसकी समस्त शक्ति, सात्यकि व उसकी समस्त विशाल सेना, कितनी विशाल शक्ति है पाण्डवो की ओर। जब कि स्वय पाण्डव ही एक महान शक्ति हैं। अर्जुन अकेला ही दिग्विजय कर सकता है। उस अकेले ने ही मत्स्य राज्य पर कौरवों के आक्रमण के समय समस्त कौरव वीरो को मार भगाया था। जो कर्ण आज बढ़ बढ़कर बातें करता है वह स्वय अर्जुन के हाथो मुह की खा चुका है। भीम में तो असीम बल है उसकी टक्कर का अब पृथ्वी पर एक ही वीर है, वह है बलराम। नकुल सहदेव आदि भी सुलझे हुए योद्धा हैं। और युधिष्ठिर तो अपने पुण्य शुभ प्रकृति तथा शुद्ध विचारों के कारण इतनी महान शक्ति है कि वे चाहे तो सारे कौरवों को भस्म कर डाले। मुझे युधिष्ठिर से भय लगता है। ऐसी दशा मे कोई भी युद्ध का छिड़ना हमारे नाश का ही कारण बन सकता है अत तुम महाराज युधिष्ठिर के पास जाओ और उन के सहयोगियो से भी मिलो और जिस प्रकार भी हो सन्धि की वार्ता चलाओ। प्रयत्न करना कि वे इधर से कुछ मिले या न मिले, पर सन्धि को तैयार हो जाए। यह भी मालूम करो कि सन्धि कम से कम किन शर्तों पर हो सकती है।

संजय ने उत्तर दिया— "राजन्! आप का विचार बहुत ठीक

ठीक है आप यह कार्य मेरे ऊपर छोड रहे है तो विश्वास रखिये कि मै अपना पूर्ण प्रयत्न करूगा कि किसी प्रकार समझौते का रास्ता निकल आये।"

धृतराष्ट्र ने सारी बाते समझाकर सजय को उपप्लव्य नगर भेज दिया।

× × × × × × ×

उपप्लव्य नगर पहुचते ही सजय का पाण्डवो की ओर से बहुत आदर हुआ। युधिष्ठिर ने सर्व प्रथम उस से हस्तिनापुर का समाचार पूछा। उसके पश्चात सजय बोला— "राजन् बडे सौभाग्य की बात है कि आज आप अपने सहयोगियो के साथ सकुशल है। राजा धृतराष्ट्र ने आपकी कुशलता पूछी है सत्य व्रत का पालन करने वाली राजकुमारी द्रौपदी तो सकुशल है न ?"

"अर्हन्त भगवान की कृपा दृष्टि से हम सभी कुशल है। और सारे कौरव कुल की कुशलता की-कामना करते है '—युधिष्ठिर बोले इसके उपरान्त युधिष्ठिर ने सजय से उपप्लव्य नगर के पधारने का कारण पूछा।

सजय बोला— "मुझे महाराज धृतराष्ट्र ने आपकी सेवा मे एक सन्देश पहुचाने के लिए भेजा है।"

कहिये उनका क्या सन्देश है ?"

वे उनका विचार है कि युद्ध किसी भी दशा मे मानव समाज के कल्याण का साधन नही बन सकता, इस लिए चाहे जो हो आप युद्ध की कामना न करें।' —सजय बोला महाराज धृतराष्ट्र का यह सन्देश हम शिरोधार्य करते हैं और साथ ही यह भी कह देते है कि हम स्वय युद्ध करने के इच्छुक नही हैं। परन्तु अपने ऊपर हो रहे अन्याय का प्रतिकार भी चाहते है। यदि किसी प्रकार भी दुर्योधन सन्धि के लिए तैयार हो जाए तो हम युद्ध नही करेंगे। युद्ध हमारा उद्देश्य नही साधन हो सकता है।"—युधिष्ठिर बोले।

संजय ने फिर कहा—"महाराज धृतराष्ट्र स्वयं अपने पुत्रों को हठ से दुखी है। वास्तव मे धृतराष्ट्र के पुत्र निरे मूर्ख है। वे न अपने पिता की बात पर ध्यान देते है और न वे भीष्म पितामह की ही सुनते है। ये तो अपनी मूर्खता की धुन में ही मग्न है। *फिर भी आप तो धर्मराज है सद्बुद्धि है आप को उनकी मूर्खताओं* मे उत्तेजित नही होना चाहिए। क्योंकि यदि युद्ध छिड़ा तो एक ही वश की सन्तानें मारी जायेंगी। आप युद्ध के द्वारा चाहे पहाड़ो से लेकर सागर तक का राज्य भी जीत ले, पर तलवार तथा धनुष बाण जैसे अस्त्र शस्त्रों से वृद्धावस्था तथा मृत्यु पर विजय नहीं पा सकते। त्याग ही सुख की प्राप्ति का साधन है। इस लिए आप जैसे धर्म बुद्धि व्यक्ति को कभी भी युद्ध की बात नही करनी चाहिए। हठ वादी दुर्योधन अपनी मूर्खता के कारण चाहे एक बार आप को राज्य देने से भी क्यो न इन्कार करदे, फिर भी आप युद्ध की बात न करें। धृतराष्ट्र आप की बुद्धि पर विश्वास करते है। उन्हे आप पर पुत्र वत प्रेम है और आप के प्रति उन्हे दुर्योधन से अधिक विश्वास है। इस लिए वे चाहते है कि आप युद्ध का विचार त्याग कर धर्मानुकूल जीवन बिता कर संसार मे यश प्राप्त करें। यदि दुर्भाग्यवश युद्ध छिड गया तो सब से अधिक दुख धृतराष्ट्र को होगा क्योंकि रक्त चाहे कौरवों का बहे चाहे कुन्ती नन्दनो का उनके लिए एक ही बात है। इस लिए मैं बार बार कह रहा हू उसका तात्पर्य यह है कि आप राज्य से अधिक धर्म की चिन्ता करें"

संजय की बात सुन कर युधिष्ठिर बोले—"संजय! सम्भव है आप को ही बात सच हो। और यह बात तो बिल्कुल सच है ही कि हमें राज्य से अधिक धर्म की चिन्ता होनी चाहिए। क्यो कि केवली प्रभु का भी यही कथन है कि धर्म ही मनुष्य का कल्याण करता है, यही एक मात्र सहारा है। धर्म से ही मनुष्य को वास्तविक सुख प्राप्त होता है। राज्य तथा धन सुख प्राप्ति के साधन नही। फिर भी हम यह समझ कर अन्याय को बढ़ते रहने या फूलने फलने के लिए नहीं छोड़ सकते। हम न्याय के रक्षक है। जब तक गृहस्थ धर्म मे है तब तक अन्याय को रोकना तथा न्याय

के लिए लड़ना हम अपना कर्तव्य समझते है। हां इस सम्बन्ध मे यह अवश्य ही समझते है कि यदि दुर्योधन किसी भी शर्त पर हम से सन्धि करने को तयार हुआ तो हम सन्धि करना ही अच्छा समझेंगे। हम अपने पूरे राज्य को वापिस लेने की जिद नही करते। और अन्त मे निर्णय श्री कृष्ण पर छोड़ते है वे दोनो ही पक्ष के हितचिन्तक है और धर्म के मर्म को भी समझते है।"

श्री कृष्ण उस समय वहां विराजमान थे। बोले "ठीक है जहा मैं पाण्डवों का हितचिन्तक हू वही कौरवो को भी सुखी देखना चाहता हू। परन्तु समस्या इतनी जटिल हो गई है और दुर्योधन उसे इतना जटिल बनाता जा रहा है, कि इसे सुलझाने के बारे मे एक दम कुछ नही कहा जा सकता।"

"फिर भी आप किसी प्रकार इसे सुलझाने का तो प्रयत्न करे ही।"—सजय बोला।

"धृतराष्ट्र शान्ति चाहते है। हम सन्धिवार्ता के लिए पहले ही दूत भेज चुके है। और हमें ज्ञात हुआ है कि भीष्म जी तथा विदुर जी दोनों ही शान्ति व सन्धि के पक्ष मे है। फिर तो समस्या सुलझ जानी चाहिए। श्री कृष्ण जी स्वय ही एक बार प्रयत्न कर के क्यों न देख ले।"—युधिष्ठिर ने कहा।

श्री कृष्ण कुछ सोचने लगे। थोड़ी देर सभी चुप रहे अन्त मे उस चुप्पी को भंग करते हुए श्री कृष्ण ने कहा—"मेरा विचार यह है कि मुझे एक बार स्वयं ही हस्तिनापुर जाना होगा। पर दूसरी ओर मैं यह भी समझता हू कि भीष्म, विदुर तथा धृतराष्ट्र की इच्छा सन्धि के लिए हो सकती है, परन्तु दुर्योधन अपने हठ वादी तथा मूर्ख परामर्श दाताओं की कृपा से सन्धि के लिए कभी तैयार हो सकता है इस मे सन्देह है। फिर भी एक बार मैं उसे अवश्य ही समझाऊंगा। प्रयत्न करूंगा कि वह महायुद्ध छेड़ कर अपनी मृत्यु और अपने परिवार के नाश को निमन्त्रित न करें।"

सजय ने श्री कृष्ण की बात सुनी। उस ने अनुभव किया कि श्री कृष्ण का वात मे कौरवों के लिए एक धमकी भी छिपी है और उन्हे विश्वास है कि महायुद्ध मे पराजय कौरवो की ही होगी। कुछ सोच कर सजय बोला—"आप हस्तिना पुर आकर यदि समझाने का प्रयत्न करेंगे तो सम्भव है आप के कहने व समझाने बुझाने से दुर्योधन मान जाय। परन्तु एक बात का ध्यान आप अवश्य ही रक्खें कि दुर्योधन के मूर्ख सलाह कार उसे भड़काते रहते हैं इस बात को आधार बना कर कि देखो, पाण्डवों की ओर से धमकी दी जा रही है। और दुर्योधन को अपनी शक्ति पर अभिमान है इस लिए आप किसी भी प्रकार दुर्योधन के सहयोगियो को उसे उत्तेजित करने का अवसर न दें।"

श्री कृष्ण सजय के परामर्श पर मुस्करा दिए।

युधिष्ठिर ने कहा—"श्री कृष्ण जी! आप जाकर जिस तरह भी हो सन्धि का उपाय खोजें यदि दुर्योधन हमे हमारा पूर्ण राज्य भी न दें तो हम केवल ५ गांव तक ले कर भी सन्तुष्ट हो सकते है आप चाहें तो यह न्यूनतम माग उस से स्वीकार करा कर युद्ध टाल सकेंगे।"

श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर की उदारता को भूरि भूरि प्रशसा की। अन्त मे बोले युधिष्ठिर! इतनी शक्ति होने और इतनी विशाल सेनाओं का सहयोग प्राप्त कर चुकने के पश्चात भी इतनी न्यूनतम शर्त पर सन्धि करने को तैयार होकर आप ने जो उदारता न्याय प्रियता, धर्म प्रियता और शांति प्रियता दर्शाई है, उसकी कदाचित आप के अतिरिक्त आज के युग मे किसी से भी आशा नहीं की जा सकती। आप की ओर से इतनी छूट देने पर तो सन्धि हो जानी चाहिए। परन्तु यदि इस दशा में भी सन्धि न हुई तो फिर आप का रणभेरी बजा देना पूर्ण तया न्यायोचित होगा।"

सजय को युधिष्ठिर की बात सुन कर बहुत ही सन्तोष हुआ और मन ही मन उस ने युधिष्ठिर की बहुत प्रशसा की। मन ही मन वह युधिष्ठिर की उदारता के प्रति नतमस्तक हुआ और प्रत्यक्ष रूप में कहने लगा—"धन्य; धन्य राजन्! आप वास्तव में धर्म

राज है। आप जैसे उच्च विचारों और शुभ मनोवृत्ति आत्मवादी व्यक्ति की कभी पराजय नहीं हो सकती।"

भीष्म प्रशंसा सुनने के बाद भी युधिष्ठिर गम्भीर ही रहे। उन्हीं के चेहरे पर प्रसन्नता का एक भाव भी दृष्टित न हुआ ठीक है महा पुरुष न अपनी प्रशंसा सुन कर प्रसन्न होते और न अपनी आलोचना से खिन्न ही। वे गम्भीरता पूर्वक बोले—"सजय? आप के द्वारा प्राप्त धृतराष्ट्र के सन्देश से अपार प्रसन्नता हुई है आप उन से जाकर मेरी ओर से कहें कि हमें उन पर विश्वास है हम ने अपने स्वर्गवासी पिता जी के स्थान पर माना है। उन्हों की कृपा से हमें आधा राज्य मिला था और आज यदि वे चाहें और हृदय से प्रयत्न करें तो स्वयं का रक्तपात बच सकता है। यदि दुर्योधन हमें जीवन यापन के लिए पांच ग्राम भी देना स्वीकार कर ले तो हम धृतराष्ट्र की सेवा करते हुए अपना जीवन निर्वाह कर लेंगे। धृतराष्ट्र हमारे लिए सदा आदरणीय रहे हैं और रहेंगे। उन्हीं की कृपा से १२ वर्ष के बनवास व १ वर्ष अज्ञातवास की शर्तें पर हमें राज्य वापिसी का आश्वासन मिला था। यदि वह वचन वे पूर्ण करादें तो अहो भाग्य। हम रण भूमि में उनके पुत्रों के शत्रु रूप में आने की इच्छा नहीं रखते, परन्तु हमें ऐसा करने को विवश किया जा रहा है। श्री कृष्ण जी उनके पास पहुंचेंगे। वे दृढ़ता पूर्वक अपने मनोबल को प्रयोग कर के सन्धि का रास्ता खुलवा दें। हम जीवन भर उनके आभारी रहेंगे।"

"आप भीष्म पितामह से जाकर कहें कि पाण्डवों को उन की न्याय प्रियता पर पूर्ण विश्वास है। उन्हों ने हमारे दूत के साथ जो सौजन्यता दर्शाई है हम उस के लिए आभारी हैं। 'हम जानते हैं। कि वे शान्ति के कितने बड़े समर्थक हैं। वे न्याय प्रिय हैं। वे यदि चाहें तो हम जीवन भर यूं ही बनों में भटकते फिरने के लिए भी तैयार हैं परन्तु उनके रहते कौरव पक्ष की ओर से अपने वचन का उल्लंघन हो यह उन के लिए भी लज्जा की बात है। हमें चाहे किसी रूप में भी रहना पड़े और चाहे अन्त में दुर्योधन की हठ से विवश होकर शत्रु रूप में भी रण भूमि

मे आना पड़े। फिर भी भीष्म हमारे लिए पूजनीय हैं। हम चाहते हैं कि वे इस अवसर पर कौरवों तथा पाण्डवों दोनों के हित के लिए कार्य करें।"

"दुर्योधन से जाकर कहें कि हम उसके भाई हैं यदि केवल राज्य के लिए हम भाई भाई आपस मे लड़ें तो सारा संसार हम पर थूकेगा। हम उस वंश के लोग हैं जो राजकुलों मे पूजनीय रहा है। दुर्योधन ने राज्य के दो भाग कराये, तो भी हमने प्रसन्नता पूर्वक उसे स्वीकार कर लिया। उस ने हमें जुए के लिए निमंत्रित किया, हम ने भाई की भांति स्वीकार कर लिया। उस ने हमें वनवास दिया, हम वनो में चले गए। उस ने १ वर्ष के अज्ञात वास की इच्छा प्रकट की, हम ने राजकुमार होते हुए विराट के दरबार मे सेवा टहल करते हुए अज्ञात वास किया एक बार जब गन्धर्वों ने उसे बन्दी बना लिया था तो हम ने भाई होने के नाते उसे उन से छुड़वाया। मत्स्य राज्य पर आक्रमण के समय अर्जुन चाहता तो उस का बध भी कर सकता था, पर भाई के नाते उस ने ऐसा नही किया। अब समय आया है कि वह हमारे प्रति भ्रातृत्व का प्रदर्शन करे और हमे अपना भाई समझ कर हमारे साथ न्याय करे। राज्य चाहे कितना विशाल हो, वह आदमी की आत्मा को महान नही बनाता, मनुष्य सम्पत्ति अथवा उच्चासन के कारण उच्च श्रेणी प्राप्त नही कर सकता और धन धान्य सच्चिदानन्द की प्राप्ति के लिए व्यर्थ है। मनुष्य की महानता उनके शुभ कर्मों मे उस के चरित्र में निहित हैं। इस लिए वह उदारता का परिचय दे। मनुष्य को कभी अपनी शक्ति पर अहंकार नहीं होना चाहिए। अतः उसे हमारे साथ सन्धि कर के इस समस्या को सुलझा लेना चाहिए। न्याय ही राजा का आभूषण होता है। मित्र, सहयोगी, सेना, सम्पत्ति, बन्धु बान्धव कोई भी अन्त समय में आत्मा का साथ नही देता. काम आता है तो अपना धर्म। मनुष्य योनी में आकर भी अपनी आत्मा के कल्याण के लिए धर्म का मार्ग न अपनाया तो मनुष्य जन्म व्यर्थ चला गया समझो मृत्यु का क्या ठिकाना, कब आकर ढोल बजादे। इस लिए अहंकार को छोड़ कर उसे सन्धि के लिए तैयार हो जाना चाहिए और हमें अवसर देना चाहिए कि

राज है। आप जैसे उच्च विचारों और शुभ मनोवृति आध्यात्मवादी व्यक्ति की कभी पराजय नही हो सकती।"

अंतिम प्रशसा सुनने के बाद भी युधिष्ठिर गम्भीर ही रहे। उन्हीं के चेहरे पर प्रसन्नता का एक भाव भी द्रवित न हुआ ठीक है महा पुरुष न अपनी प्रशसा सुन कर प्रसन्न होते और न अपनी आलोचना से खिन्न ही। वे गम्भीरता पूर्वक बोले—"संजय? आप के द्वारा प्राप्त धृतराष्ट्र के सन्देश मे अपार प्रसन्नता हुई है आप उन से जाकर मेरी ओर से कहे कि हमें उन पर विश्वास है हम ने अपने स्वर्गवासी पिता जी के स्थान पर माना है। उन्ही की कृपा से हमें आधा राज्य मिला था और आज यदि वे चाहे और हृदय से प्रयत्न करें तो व्यर्थ का रक्त पात बच सकता है। यदि दुर्योधन हमे जीवन यापन के लिए पांच ग्राम भी देना स्वीकार कर ले तो हम धृतराष्ट्र की सेवा करते हुए अपना जीवन निर्वाह कर लेंगे। धृतराष्ट्र हमारे लिए सदा आदरणीय रहे हैं और रहेंगे। उन्हीं की कृपा से १२ वर्ष के बनवास व १ वर्ष अज्ञातवास की शर्त पर हमें राज्य वापिसी का आश्वासन मिला था। यदि वह वचन वे पूर्ण करादें तो अहो भाग्य। हम रण भूमि मे उनके पुत्रो के शत्रु रूप मे आने की इच्छा नही रखते, परन्तु हमे ऐसा करने को विवश किया जा रहा है। श्री कृष्ण जी उनके पास पहुचेंगे। वे दृढता पूर्वक अपने मनोबल को प्रयोग कर के सन्धि का रास्ता खुलवा दे। हम जीवन भर उनके आभारी रहेंगे।"

"आप भीष्म पितामह से जाकर कहे कि पाण्डवो को उन की न्याय प्रियता पर पूर्ण विश्वास है। उन्हों ने हमारे दूत के साथ जो सौजन्यता दर्शाई है हम उस के लिए आभारी है। हम जानते है। कि वे शान्ति के कितने बडे समर्थक है। वे न्याय प्रिय है। वे यदि चाहे तो हम जीवन भर यू ही बनों में भटकते फिरने के लिए भी तैयार है परन्तु उनके रहते कौरव पक्ष की ओर से अपने वचन का उल्लघन हो यह उन के लिए भी लज्जा की बात है। हमें चाहे किसी रूप में भी रहना पड़े और चाहे अन्त में दुर्योधन की हठ मे विवश होकर शत्रु रूप मे भी रण भूमि

* छब्बीसवां परिच्छेद *

दुर्योधन का अंहकार

उधर संजय ने हस्तिनापुर से प्रस्थान किया, इधर धृतराष्ट्र उसकी वापिसी की बेचैनी से प्रतीक्षा करने लगे। रात्रि को उन्हें नींद भी न आई। बिस्तर पर पड़े पड़े वे करवट बदलते रहे। जब किसी प्रकार भी उन की मानसिक विकलता शांत न हुई तो उन्होंने विदुर को बुलाया। बोले—"संजय तो शांति दूत बन कर गए हैं, पर मेरा मन बहुत विकल है। मैं सन्धि व शांति चाहता हूं। तुम भी बताओ कि क्या होना चाहिए। दुर्योधन तथा कर्ण तो सन्धि की बात भी सुनना गवारा नहीं करते। क्या किया जाय?"

विदुर जी ने धृतराष्ट्र को समझाते हुए कहा—"राजन्! नीति तो यही कहती है कि पाण्डवों को राज्य वापिस देना ही उचित है। यदि धर्म से घृणा है तो कूट नीति और युक्ति का भी यही तकाजा है क्योंकि स्पष्ट है, श्री कृष्ण चाहे नि:शस्त्र हो कर भी पाण्डवों के साथ हैं, और मत्स्य तथा पांचाल की सेनाएं पांडवों की ओर से युद्ध में उतर रही हैं तो भी हमारा पाण्डवों पर विजय पाना असम्भव है। इस लिए आप किसी भी प्रकार दुर्योधन को समझाएं कि वह हठ न करे। सन्धि करले, यदि वह बड़ा राज्य ही चाहता है, तो अपने बाहुबल से अपने राज्य का विस्तार करे।"

इसी प्रकार विदुर जी गई रात तक धृतराष्ट्र को समझाते

रहे ।

दूसरे दिन संजय भी आ गए।

दरबार लगा था, कौरव कुल के सभी विवेक शील एवं अविवेकी व्यक्ति उपस्थित थे। संजय ने आकर युधिष्ठिर तथा श्री कृष्ण से हुई चर्चा को सविस्तार कह सुनाया। और अन्त में दुर्योधन को सम्बोधित करते हुए कहा—

"विशेषतया दुर्योधन को चाहिए कि अर्जुन की बात ध्यान पूर्वक सुनें।"

बीच ही में दुर्योधन आवेश में आकर बोला—"क्या कहा है अर्जुन ने?"—उस समय दुर्योधन का मुंह तमतमा रहा था।

संजय बोले -

"अर्जुन ने कहा है कि इस में कोई सन्देह नहीं कि मैं और श्री कृष्ण दोनों मिल कर दुर्योधन और उन के साथियों का नाश कर के ही रहेंगे मेरा गाण्डीव धनुष युद्ध के लिए लालायित है। धनुष की डोरी आप ही आप टंकार कर उठती है। तरकस के तीर स्वयं उछल रहे हैं वे तरकश से झांक कर पूछ लेते हैं कि हमें दुर्योधन को मारने के लिए कब प्रयोग करोगे? दुर्योधन का विनाश काल निकट आ गया है इसी लिए वह हमें युद्ध के लिए विवश कर रहा है"

सुनते ही दुर्योधन की आंखों से खून बरसने लगा। परन्तु भीष्म जी बोले—"दुर्योधन! निस्सन्देह अर्जुन तथा श्री कृष्ण दोनों मिल कर युद्ध करें तो उनके सामने देवता भी नहीं जीत सकते। जब वे दोनों एक साथ मिल कर तुम्हारे विरुद्ध लड़ने लग जायेंगे तो तुम्हारा पता भी न लगेगा।"

कर्ण को बड़ा क्रोध आया। वह गरज कर बोला—"जब मैं उस अर्जुन नामक छोकरे की प्रशंसा सुनता हूं तो मेरा रक्त खौलने लगता है। जिसे आप देवताओं से भी अधिक समझ रहे

है, और उसके साथी श्री कृष्ण जिनकी प्रशंसा करते आप नहीं अघाते, वह बेचारे तो कल परसों ढोर चराया करते थे। वे क्या जानें लड़ने की मार। मेरे सामने उन दोनों में से एक भी नहीं ठहर सकता और मेरी बात की सच्चाई आप को रण भूमि में ज्ञात हो जायेगी। आप दुर्योधन को भय विह्वल करने की चेष्टा न करें।"

कर्ण की आत्म प्रशसा का उत्तर उसे ही न देकर भीष्म जी धृतराष्ट्र से बोले—"राजन्? सूत पुत्र कर्ण बार बार यही दम भर रहा है कि मैं पाण्डवों को रण भूमि में खत्म कर दूगा। किन्तु मैं कहता हूं कि पाण्डवों की शक्ति का सोलहवां भाग भी उस में नहीं है। तुम्हारा पुत्र उसी की बातों पर युद्ध के लिए तैयार हो रहा है, और स्वयं अपने नाश का आयोजन कर रहा है। वरना उसमें कितनी शक्ति है यह तो मत्स्य देश पर किए आक्रमण के समय ही ज्ञात हो गया था। यदि उस मे अर्जुन जैसे वीर को परास्त करने की शक्ति है तो मत्स्य देश की चढ़ाई मे उसे क्या हो गया था? अर्जुन के सामने से दुम दबा कर क्यों भागा था। इस काण्ड से पहले भी तो एक बार गन्धर्वों के सामने कर्ण ने मुह की खाई है। उस अवसर पर कर्ण दुर्योधन को शत्रुओं के चगुल में फसा छोड़ कर ही भाग आया था परन्तु उन्हीं अपार शक्ति वान गन्धर्वों से अर्जुन ने ही दुर्योधन को मुक्त करा दिया था। जब दो बार कर्ण अर्जुन से मात खा चुका और दुर्योधन दो बार रण क्षेत्र मे पराजित हो चुका फिर किस बल बूते पर कर्ण दुर्योधन को उकसाता है और दुर्योधन उसकी मूर्खता पूर्ण उत्तेजक बातों पर विश्वास कर रहा है?"

धृतराष्ट्र को भीष्म जी की बात जम गई। बड़े सन्तप्त होकर दुर्योधन को समझाने लगे—"भीष्म जी जो कहते है वही तर्क सगत, युक्ति सगत, न्यायोचित और करने योग्य ज्ञात पड़ता है। हमें सन्धि कर ही लेनी चाहिए। इस से हम अपने राज्य को बचा लेंगे और व्यर्थ ही सकट मोल लेने से बच जायेंगे। परन्तु तुम्हें तो न जाने क्या होगया है कि मेरी सुनते ही नहीं। जिन में विवेक है और जिन्हे अनुभव है तुम उन्ही की बात ठुकरा रहे हो।

मेरी मानो और पाण्डवो से सम्मान पूर्वक समझौता करलो।"

दुर्योधन ने कहा—"पिता जी! आप तो व्यर्थ ही भय विह्वल हो रहे हैं मानो हम सब कमजोर हैं देखिये हमारे पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना है* जब कि पाण्डवों के पास केवल ७ अक्षौहिणी सेना ही है। फिर ग्यारह अक्षौहिणी सेना के सामने पाण्डवों की ७ अक्षौहिणी सेना भला क्या कर सकती है। हमारी इतनी विशाल सेना और कर्ण आदि वीरो के बल से ही तो पाण्डव घबरा गए है और पहले आधा राज्य मागते थे, तो अब भय विह्वल होकर केवल पाच गाव ही मागने लगे। क्या, पाच गाव वाली माग से यह सिद्ध नहीं होता कि उन्हे अपनी पराजय का निश्चय हो गया है और इसी कारण सन्धि व शांति का ढोंग रच कर वे कुछ न कुछ ले मरने के चक्कर मे है। इतने पर भी आपको हमारी विजय पर सन्देह हो तो आश्चर्य की बात है।"

धृतराष्ट्र ने पुन: समझाने की चेष्टा की—"बेटा! जब पाच गाव देकर ही युद्ध टल सकता है और हम एक भयकर सकट से बच सकते हैं तो बाज आओ युद्ध से। पाच गाव देने मे तुम्हे क्या आपत्ति है। तुम्हारे पास तो पूरा का पूरा राज्य रह ही रहा है। यह सौदा सर्वथा लाभप्रद है। अब हठ न करो। मान जाओ।"

धृतराष्ट्र का जब इस उपदेश का दुर्योधन पर उलटा ही प्रभाव पडा। वह चिढ गया और क्रुद्ध हो कर बोला—"मैं तो सूई की नोक बराबर भी भूमि पाण्डवो को नही देना चाहता। आप की जो इच्छा हो करे। पाण्डवो मे शक्ति है तो रण भूमि मे आ कर निर्णय करे।"

यह कहता हुआ दुर्योधन उठ खडा हुआ और सभा भवन के

*नोट – आज कल जैसे विभिन्न दलो को मिला कर सेना मे एक डिविजन बनता है, वैसे ही उन दिनो कई विभाग मिला कर एक अक्षौहिणी बनती थी। एक अक्षौहिणी मे २१,८७० रथ और उसी हिसाब से हाथी, घोडे, पैदल आदि की संख्या होती थी।

द्वार की ओर चल पड़ा। उस समय भीष्म जी बोले—"जब चीटी के पर निकल आते हैं तो समझो कि उसकी मृत्यु निकट आ गई। दुर्योधन के अहंकार की हद हो गई। विनाश काले विपरीत बुद्धि।"

कर्ण भभक उठा और सभा में खलबली मच गई। भिन्न भिन्न प्रकार की आवाजें उठी और सभा भंग होगई।

* सताईसवां परिच्छेद *

युधिष्ठिर विचार मग्न बैठे थे। अभी अभी विराट उनसे कुछ परामर्श लेकर उठे थे। कमरे में पूर्ण शांति थी और दूर से अस्त्र शस्त्रों तथा सैनिकों के परीक्षण की ध्वनियां आ रही थीं। उसी समय श्री कृष्ण ने प्रवेश किया। विचार मग्न युधिष्ठिर की दृष्टि ज्यों ही श्री कृष्ण पर पड़ी, वे अभिवादन के लिए उठ खड़े हुए।

प्रणाम के उपरान्त युधिष्ठिर ने उन्हें ससत्कार आसन दिया। श्री कृष्ण बोले—"राजन्! कौरव पाण्डव दोनों के हित के लिए मैं शांति का दूत बन कर हस्तिनापुर जा रहा हूं। आप कुछ और कहना चाहें तो मुझे बता दीजिए।"

युधिष्ठिर बोले—"आप हमारे लिए जो कष्ट उठा रहे हैं हम उस से कभी उऋण नहीं हो सकते। परन्तु कल से मैं आपके हस्तिनापुर जाने के सम्बन्ध में ही सोचता रहा हूं और अब मैं यह समझ रहा हूं कि आपकी हस्तिनापुर यात्रा से समस्या सुलझेगी नहीं।"

धर्मराज युधिष्ठिर के मुंह से अनायास ही ऐसी बात सुन कर श्री कृष्ण को बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछा—"आपके ऐसा अनुमान लगाने का क्या कारण हो सकता है?"

"वासुदेव ! सजय को धृतराष्ट्र का ही प्रति रूप समझना चाहिए। उन से जो बातें हुई उन्ही के कारण मैं इस निष्कर्ष पर पहुच रहा हूं—युधिष्ठर कहने लगे—पहले तो सजय की मीठी २ तथा धर्मानुकूल बातें सुनकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई थी और मुझे ऐसा महसूस होने लगा था कि सन्धि के लिए उपयुक्त वातावरण बनने की सम्भावना है, पर अन्त मे सजय के मुख से जो निकला उस मे मुझे यह सन्देह हो रहा है कि धृतराष्ट्र चाहते है कि यदि दुर्योधन हमें कुछ भी न दे तो भी हम युद्ध न करें बल्कि शांति तथा धर्म के नाम पर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे। धृतराष्ट्र ने हमारे साथ हुए काण्ड मे जो भूमिका निभाई है उस से स्पष्ट है कि वे मनो बल के सम्बन्ध मे बहुत ही कमजोर आदमी है। वे अपने बेटे दुर्योधन के मोह मे न्याय को भी तिलाजलि दे सकते है। सजय ने कोई बात अपने मन की नही कही जो कही वह धृतराष्ट्र की बात थी। इस लिए मैं तो इस परिणाम पर पहुच रहा हूं कि दुर्योधन सन्धि के लिए तैयार नही है और न उस के तैयार होने की आशा ही है इस सम्बन्ध मे धृतराष्ट्र भी निराश है।"

"क्या पाच ग्राम की माग होने पर भी दुर्योधन नही मानेगा ?—श्री कृष्ण ने पूछा।

"हा, दुष्ट बुद्धि दुर्योधन इस न्यूनतम माग को भी स्वीकार नही करेगा, बल्कि सम्भव है कि इस न्यूनतम माग से उस का अहकार और बढ जाये। इस लिए अब मैं आपका हस्तिना पुर जाना भी उचित नही समझता।"—युधिष्ठिर ने कहा।

"राजन् ! हमारा कर्तव्य है कि शांति तथा सन्धि के लिए अपने अन्तिम प्रयत्न कर ले ताकि कोई यह न कह सके कि हम युद्ध के जिम्मेदार है। यदि हमारे इस प्रयत्न से भी सन्धि वार्ता सफल नही होती तो फिर रण क्षेत्र मे उतरना हमारे लिए न्यायोचित होगा।"—श्री कृष्ण बोले।

"एक शका मेरे मन अन्दर ही अन्दर कचोट रही है कि

आज कल दुर्योधन के सिर पर अहकार सवार है। कर्ण आदि ने उस को उत्तेजित कर रक्खा है। वह अब आप को भी अपना शत्रु समझने लगा है। क्यों कि व्यक्ति गत रूप से आप हमारी ओर आगए हैं। इस लिए शत्रु के पास आप का अकेला इस प्रकार जाना ठीक नहीं है। कही अहकार मे अन्धे हो रहे दुर्योधन ने आप के साथ कुछ अनुचित बात करदी या अपने दरबार को ही रण क्षेत्र समझ लिया तो फिर बहुत बुरा होगा।"—युधिष्ठिर ने अपने मन की बात कही।

बात सुन कर श्री कृष्ण के अधरों पर मुस्कान खेल गई, बोले—"राजन्! आप की चिन्ता व्यर्थ है। मै दुष्ट बुद्धि दुर्योधन और उसके सहयोगियो तथा परामर्श दाताओ के स्वभाव से परिचित हू। शत्रु पक्ष ऐसे अवसर पर क्या क्या कर सकता है। यह मुझे ज्ञात है। मैं स्वयं सावधान रहूंगा। परन्तु मैं किसी के लिए यह कहने का अवसर नही देना चाहता कि जब कौरव व पाण्डवों के बीच युद्ध ठन रहा था तो कृष्ण ने जो उन दोनो के समान हितैषी थे, जो दोनो के सम्बन्धी थे, उस समय अपने कर्तव्य को निभाने मे कोई कसर उठा रक्खी। मैं आप की ओर से शांति व सन्धि का सन्देश ले जा रहा हूं। हर प्रकार से, प्रत्येक सम्भव उपाय प्रयोग कर के दुर्योधन को समझाऊगा। और यदि उसने तथा उस के सहयोगियों ने कुछ षडयन्त्र रचना चाहा या अपमान किया तो मैं उनकी सभा मे ही उन्हें मौत के घाट उतार दूंगा। आप विश्वास रखिये कि उन आतताईयो के किसी जाल मे भी फंसने वाला नहीं।"

"आप की इच्छा को मैं समझ रहा हू—आप अपनी ओर से कोई कसर नहीं चाहते। अपनी अन्तिम कोशिश करना चाहते हैं, परन्तु शत्रु की नीति को ध्यान मे रख कर ही कुछ करना चाहिए। आप उन से सावधान रहें, यही मैं कहना चाहता था, पर लगता है कि जो बात मैं आप से कहना चाहता था, वह आप पहले ही से जानते है।—फिर भी आप जा ही रहे हैं तो मैं हृदय से कामना करता हू कि आप को अपने उद्देश्य मे सफलता प्राप्त हो। आप हम भाइयो

से सन्धि करा दें तो यह काम उस सफलता से सहस्त्र गुना अधिक मूल्यवान तथा हितकारी होगा, जो आप की सहायता से रण क्षेत्र में मिलेगी।"

उसी समय भीम वहां पहुंच गया। जब उसने सुना, कि श्री कृष्ण शांति दूत बन कर हस्तिना पुर जा रहे हैं, तो अपने स्वभाव के अनुसार वह क्रुद्ध नहीं हुआ। उस ने कहा – "सम्पूर्ण राज्य महा युद्ध के द्वारा प्राप्त हो तो भी वह उस से अधिक कल्याण कारी नहीं हो सकता जो कि राज्य का कोई अंश भी सन्धि के द्वारा प्राप्त होने से। आप सन्धि करा दें तो अहोभाग्य।"

अर्जुन को जब श्री कृष्ण के हस्तिना पुर जाने का समाचार मिला, तो वह भी उनके दर्शन करने वहां आ गए और श्री कृष्ण का अभिवादन कर के बोले –"मधुसूदन! हम युद्ध नहीं सन्धि चाहते हैं आप वहां जाकर जैसे भी हो सन्धि वार्ता को सफल बनाने का प्रयत्न कीजिए और विश्वास रखिए कि आप जो भी करा देंगे हमें स्वीकार होगा।

कुछ देर से द्रौपदी दूर खड़ी खड़ी यह सब बातें सुन रही थी, उसे यह बातें पसन्द न आईं। उसके मन में तो प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही थी। जब अर्जुन ने भी सन्धि की ही सराहा तो उस से न रहा गया सामने आ गई और श्री कृष्ण से बोली –"मधुसूदन! मेरे यह खुले हुए केश देख रहे हो?"

श्री कृष्ण समझ गए कि वह क्या कहना चाहती है, तो भी उन्होंने द्रौपदी के प्रश्न का ही उत्तर दिया—"हां द्रौपदी! आज से नहीं १३ वर्ष पूर्व जब तुम वनवास के लिए गई थी तब भी मैंने इन खुले हुए केशों को देखा था।"

"बस हस्तिना पुर जाने से पूर्व मेरे इन बिखरे बालों को तनिक ध्यान से देखो। इन बिखरे हुए केशों में मेरे अपमान की कथा छिपी हुई है। इन को दृष्टि में रखो फिर जो उचित जचे करो। मधुसूदन! आज भीम सेन और धनुर्धारी वीर धनञ्जय मेरे

इन केशों की कहानी भूल सकते है। दुशासन के पापी हाथों में हुआ मेरा अपमान वे भुला सकते है और उन पापियों से मेरे अपमान का प्रतिशोध लेने की उन की प्रतिज्ञा कदाचित उन्हें याद न रही हो, पर आज भी इन बिखरे केशों से मुझे उस पापी के हाथों की गंध आती रहती है। अर्जुन तथा भीम भले ही युद्ध न करें, पर मेरे पिता; जो यद्यपि वृद्ध हो है, फिर भी मेरे पुत्रों को साथ लेकर युद्ध में कूद पड़ेंगे। यदि किसी कारण वश पिता जी भी युद्ध करने न आये तो न सही, सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु तो है। उसी को सेना पति बना कर मेरे पांचों बेटे कौरवों से लड़ेंगे। परन्तु किसी न किसी भांति दुष्टों से मेरे अपमान का बदला अवश्य लेंगे। मेरे हृदय में प्रतिहिंसा को जो आग धु आ दे रही है, उसे धर्मराज की खातिर मैंने १३ वर्ष तक दबाये रक्खा, भड़कने न दिया। परन्तु अब मुझ से सहा नहीं जाता। जिन के कारण मैंने घोर अपमान सहे,—जिन के कारण मैंने दासी बन कर एक वर्ष तक सेवा टहल की, आज जब मेरे अपमान का बदला लेने का प्रश्न आया तो वे सन्धि की बातें करने लगे। आज वे दुष्ट पापी उन के भाई हो गए जिन्होंने मुझे भरी सभा में नंगा करने का प्रयत्न किया था, यह भाई भाई तो पुन. भाई भाई का राग अलापने लगे परन्तु जब मेरे ऊपर अन्याय हो रहा था, तब क्या था? इस लिए मधुसूदन मेरी प्रतिज्ञा की लाज रखना। एक पतिव्रता के ऊपर हुए अन्यायों को न भूलना। क्या मैं जीवन भर इन केशों को यू ही बिखरा रहने दूंगी?" —इतना कहते कहते द्रौपदी की आंखें डब डबा आई। उसका गला रुंध गया।

द्रौपदी को इस प्रकार दुखी देख कर श्री कृष्ण बोले—"रोओ मत, बहन! रोने का तो कोई कारण ही नहीं। शान्ति स्थापना की जो मैं शर्तें रक्खूंगा, उन्हें धृतराष्ट्र के बेटे मानेंगे नहीं, फलत. युद्ध हो कर ही रहेगा। रण स्थल में पड़ी कौरवों की लाशें कुत्तों और सियारों का आहार बनेंगी। आतताईयों का रक्त भूमि पर गन्दे पानी की भांति ढुलता फिरेगा। उनका सर्व नाश हो जाएगा। और पाण्डव पुनः राजसिंहासन के स्वामी बनेंगे। तुम्हारे ऊपर हुए अत्याचार का बदला अवश्य लिया जायेगा। तुम इस बात में निश्चिन्त

रहो।"

इतना कह कर श्री कृष्ण ने पाण्डवों तथा द्रौपदी से विदा ली।

× × × ×

श्री कृष्ण के शांति दूत के रूप में आगमन की सूचना जब धृतराष्ट्र को मिली तो उन्हों ने सारा नगर सजाने की आज्ञा दी। और विदुर जी से बोले—"वासुदेव के लिए हाथी, घोड़े रथ आदि उपहार भेंट आदि करने का प्रबन्ध करो। और भी अनेक उपहार उन्हें भेंट करने का प्रबन्ध किया जाय ऐसी मेरी कामना है, वे प्रसन्न हो जायें कुछ ऐसा करो।"

विदुर जी बोले—"राजन्! आप का विचार ठीक नहीं। वे ऐसे व्यक्ति नहीं जो प्रलोभनों के वश में आ जायं अथवा शल्य की भांति वे चक्कर में आ कर आप के पक्ष में आ जायें। वे तो राज दूत बन कर रह रहे हैं, उन्हें प्रसन्न करने का तो एक ही उपाय है कि वे जो सन्धि वार्ता चलाने आ रहे हैं आप उसे स्वीकार कर लें।"

धृतराष्ट्र को विदुर की बात ठीक जंची और उन्होंने उपहारों का प्रबन्ध करने का विचार त्याग दिया।

परन्तु जब दुर्योधन को श्री कृष्ण के आगमन का समाचार मिला उसने सोचा कि श्री कृष्ण का सन्धि वार्ता के लिए आगमन उस के लिए कुछ अच्छा सिद्ध नहीं होगा क्यों कि उन के आने से कौरवों के समस्त विवेकशील सरक्षक तथा सहयोगी श्री कृष्ण के प्रभाव में आकर सन्धि को तैयार हो जायेंगे। यह भी सम्भव है कि श्री कृष्ण के कारण कौरव वीरों में दो पक्ष बन जायें। एक सन्धि चाहने वाला और दूसरा युद्ध चाहने वाला। कौरव वीरों के दो भागों में विभाजित हो जाने से जो दशा उत्पन्न होगी वह

युद्ध में पाण्डवों की विजय के लिए सहायक सिद्ध होगी। तब क्या किया जाय? दुर्योधन यही सोच रहा था कि कर्ण आगया। बोला—"राजन्! श्री कृष्ण तुम्हारे पक्ष में दरार डालने के लिए आ रहे हैं। वे बड़े कूट नीतिज्ञ हैं और आप इस प्रकार मुंह लटकाए बैठे है?"

"क्या करु मित्र! श्री कृष्ण का यहां सन्धि वार्ता करने के लिए आगमन हमारी युद्ध को योजनाओं पर कहीं पानी न फेर दे। यही मैं सोच रहा हूं"—दुर्योधन ने कहा।

"श्री कृष्ण तो अब शत्रुओं के पक्ष में है। उन्होंने पाण्डवों को सहायता देने का वचन दिया है और हैं वे प्रमुख व्यक्ति जिन के विपक्ष में होने से आप को भयानक हानि उठानी पड़ेगी। एक शत्रु सेनानी आप के यहां आ रहा है आप श्री कृष्ण के आगमन को इस दृष्टि से लें।"—कर्ण ने कहा।

बात सुनते ही न जाने दुर्योधन के मन में क्या आई कि एक हर्ष की रेखा उसके मुख पर खिच गई।

× × × ×

श्री कृष्ण का हस्तिना पुर मे अभूत पूर्व स्वागत किया गया। वे हस्तिना पुर पहुंच कर सब मे पहले धृतराष्ट्र के भवन मे गए। वहा उनका राजोचित सत्कार किया गया। उस के उपरान्त वे अन्य कौरव वीरों से मिले। और अन्त मे दुर्योधन के भवन मे गए। दुर्योधन ने श्री कृष्ण का शानदार स्वागत किया। कुछ बात चीत हुई और जब वे चलने लगे तो दुर्योधन ने उन्हें उचित आदर सत्कार सहित भोजन का निमत्रण दिया। परन्तु जब तक वे दुर्योधन से बात करते रहे उन्हें यह अनुभव होगया कि दुर्योधन सन्धि सम्बन्धी कोई बात नही करता, बल्कि सन्धि चर्चा को वह कानों पर टाल जाता है और अनेक बातें वह दिखावटी प्रशंसा की उनके लिए कर रहा है। इस लिए दुर्योधन की बातों में उन्हें किसी षड्यन्त्र की बू आई और वे बोले—"राजन्! मैं अब राज दूत बन कर आया हूं। राज दूतों का यह नियम होता है कि जब

तक उनका कार्य सफल न हो जाय तब तक भोजन न करें। जिस उद्देश्य को ले कर मैं यहां आया हूं वह पूरा हो जाय तब मुझे भोजन का निमन्त्रण दीजिए।"

दुर्योधन और उसके भाइयों ने बहुत हठ किया परन्तु वे न माने और तुरन्त विदुर जी के निवास स्थान की ओर चल पड़े। जहां जा कर उन्हें कुन्ती माता मिली। श्री कृष्ण को देखते ही माता कुन्ती को अपने पांचों पुत्रों की याद आ गई। उन से न रहा गया और जी भर आया। आंखों से आंसू उमड़ पड़े। श्री कृष्ण ने पाण्डवों की कुशलता का समाचार सुना कर और प्रत्येक ढंग से धैर्य बंधा कर कुन्ती को सान्त्वना दी।

श्री कृष्ण ने विदुर जी के यहां ही भोजन किया और फिर उनसे सन्धि के सम्बन्ध में वार्ता की। विदुर जी तो सन्धि के पक्ष में थे ही, उन्होंने सन्धि के लिए दुर्योधन की इन्कार का रहस्य बताते हुए कहा कि दुर्योधन मदान्ध हो गया है। उस के मित्रों ने उसे चढ़ा रक्खा है। इस लिए सन्धि वार्ता की सफलता में सन्देह है। फिर भी यदि युद्ध हुआ तो विजय पाण्डवों की ही होगी।

× × × ×

कौरव दरबार लगा था। श्री कृष्ण जी पहुंचे, उन का आदर सत्कार करने के पश्चात उन्हें उचित आसन दिया गया। श्री कृष्ण ने अपने आगमन का कारण बताया और धर्म तथा नीति सम्बन्धी बातें बता कर सन्धि करने के लिए जोर डाला। उन्हों ने एक एक करके पाण्डवों पर किए गए दुर्योधन के अत्याचार गिनाए जिन्हें सुन कर दुर्योधन क्रुद्ध हो गया और आवेश में आकर बोला—"आप सन्धि की वार्ता करने नहीं मुझे अपमानित करने के लिए आये हैं। और मैं अपमान सहन करने का आदी नहीं हूं। यदि आप मुझे आततायी और अन्यायी ही समझते हैं तो जाइये मुझे सन्धि की कोई बात स्वीकार नहीं। रण क्षेत्र में ही हमारा और पाण्डवों का फैसला होगा।"

श्री कृष्ण ने शांति पूर्वक कहा—"दुर्योधन आप जानते है मैं आप दोनों का रिश्तेदार हूं। यदि आप मे युद्ध हुआ तो संसार कहेगा कि पाण्डव तथा कौरव यदि युद्ध के मतवाले हो गए थे तो कृष्ण तो धर्म मार्ग को समझते थे, वे तो उन दोनो मे शान्ति करा सकते थे। उन्होंने उन दोनों को क्यों नही समझाया। इस लिये मैं फिर से कहता हू कि यदि आप आधा राज्य वापिस नही करना चाहते तो उन्हे पांच गाव ही दे दो, वे पाच भाई उसी से अपनी गुजर कर लेगे।

पाच गांव की भी आप ने खूब कही। क्या उनका मुझ पर कोई ऋण है जो मैं अदा करता फिरू?"— दुर्योधन बोला।

क्या यह सम्भव नही कि आप अपने राज्य के कोई से निकृष्ट पांच गांव देकर सन्धि करलें। —"श्री कृष्ण ने कहा!

"आप अपने हाथ की निकृष्ट सी उंगली काट कर किसी को दे सकते है! नही। मेरे राज्य का प्रत्येक ग्राम, चांहे वह निकृष्ट ही हो, मेरे लिए उतना ही मूल्यवान है, जितनी कि मेरी राजधानी। और राज्य कभी भीख मागने से नही मिला करता। राज्य भिक्षा मे नहीं दिए जाया करते। यदि पाण्डवों मे शक्ति है तो वे रणभूमि मे लड़कर राज्य ले सकते है।" दुर्योधन ने आवेश मे आकर कहा।

उस समय दुर्योधन की बाते सुनकर भीष्म पितामह, विदुर और धृतराष्ट्र तिलमिला उठे। परन्तु कर्ण बहुत प्रसन्न हो रहा था, श्री कृष्ण बोले "राजन! तुम शक्ति तथा सैन्य बल के मद मे अहकार के शिकार हो गए हो। पांच गाव देने पर भी यदि तुम्हे आपत्ति है तो फिर बताओ कि युद्ध को टालने के लिए पाण्डवो को कुछ देने के लिए भी रजामन्द हो सकते हो अथवा नही?"

दुर्योधन आवेश मे आकर बोला—"श्री कृष्ण इस समय आप मेरे दरबार मे राजदूत के रूप मे आये है। मेरे रिश्तेदार के रूप में नही। इस लिए मैं आप से यह बात स्पष्टतया कहने पर विवश हू कि पाण्डव पाच गाव की बात करते है, आप उनसे जाकर कह दें

कि मैं उन्हें सूई की नोक जितनी भूमि घेरती है, उतनी भूमि भी देने को तैयार नहीं। यदि आप को पाण्डवों के जीवनयापन की इतनी ही चिन्ता है तो आप अपने राज्य में से ही दो चार ग्राम क्यों नहीं दे देते।"

श्री कृष्ण इस अवसर पर दुर्योधन के अहंकार को सहन नहीं कर पाये। बोले—"दुर्योधन! तुम्हें अपनी शक्ति का बड़ा घमण्ड है। पर यह मत भूलो कि तुम्हारा वास्ता रण में उसी अर्जुन से पड़ेगा जिसका मुकाबला तुम तो क्या देवता तक भी नहीं कर सकते। उसके गाण्डीव के पराक्रम को तुम मत्स्य राज पर की चढ़ाई के अवसर पर देख चुके हो। स्मरण रखो कि तुम्हारी हठ, सारे परिवार के नाश का कारण बनेगी। मैं तुम्हारे हितचिन्तक के नाते समझाता हूं कि मान जाओ। वरना फिर पश्चाताप करोगे। गंधारी जैसी सत्यवती को निपूती मत बनाओ।"

इस चेतावनी को सुन कर दुर्योधन के तन में आग सी लग गई और वह उबल पड़ा—"राजदूत! मैंने भी पृथ्वी को पाण्डव विहीन करने की शपथ खा ली है। यदि पाण्डवों की ओर से देव राज इन्द्र भी युद्ध करने आया तो वह भी बच कर न जायेगा। उन भिख मगों पाण्डवों को जा कर कह देना कि दुर्योधन खैरात बांटने के लिए नहीं राज्य करने के लिए उत्पन्न हुआ है।"

इतना कह कर वह राज सभा से बाहर चला गया। उस के साथ कर्ण, दुःशासन आदि भी चले गए। सभा में गड़बड़ मच गई। भीष्म, धृतराष्ट्र तथा विदुर सन्न रह गए सभी विवेकशील व्यक्ति दुर्योधन के व्यवहार की आलोचना करने लगे।

इधर दुर्योधन ने अपने मित्रों के साथ मिल कर श्री कृष्ण को गिरफ्तार कर लेने का षड़यन्त्र रचा। और राज सभा चारों ओर से घेर ली गई श्री कृष्ण पहले ही सावधान थे। उन्होंने उसी समय अपना विराट रूप प्रदर्शित किया अर्थात छुपे हुए अस्त्र सम्भाल लिए चक्र अस्त्र को विशेषतया उन्होंने सम्भाला। उनका

मुख लाल अगारे की भांति हो गया। उन के इस रूप को देख कर सैनिक घबरा गए और जब श्री कृष्ण द्वार से निकलने लगे, किसी का साहस न पडा कि उन्हे रोक सके। वे निकले हुए चले गए और सीधे विदुर जी के निवास स्थान पर गए। जहां कुन्ती ने उन से राज सभा मे हुए वार्तालाप के परिणाम को पूछा और जब श्री कृष्ण ने बताया कि सन्धि वार्ता असफल रही तो वीर क्षत्राणि कुन्ती का रोम रोम जल उठा उस ने श्री कृष्ण से कहा —"तो मधु सूदन ! आप मेरे पांचों सिंह समान पुत्रों से जा कर कह दें कि वे युद्ध के लिए तैयार हो जायं। न्याय के लिए वे अपने प्राणों का भी मोह छोड़ कर युद्ध करें और विजयी हो कर आयें। वे मेरी कोख को न लजाएं और आततायियों को दिखलादें कि कुन्ती की सन्तान कायर नही है।"

कुन्ती को कर्ण का वचन

कुन्ती को जब ज्ञात हुआ कि शांति प्रयत्न असफल हो गए हैं और कुल नाशी युद्ध की आग भड़कने वाली है, तो वह व्याकुल हो उठी। एक बार तो उसे भी क्रोध आया था कि दुर्योधन ने उस के बेटों को सूई की नोक बराबर भी भूमि देने से इंकार कर दिया। परन्तु जब उस ने उस भयंकर युद्ध पर विचार किया जो छिड़ने वाला था, तो उसका रोम रोम सिहर उठा। वह सोचने लगी—"राज्य और सम्पत्ति का मोह भी कितना भयानक होता है कि उस के लिए एक ही कुल के परम प्रतापी वीर एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो गए हैं। कुल-वृद्ध भी नाश लीला को अपनी आखों उभरते देख रहे हैं। तमाम भरत खण्ड के वीर समर भूमि की ओर उमड़ रहे हैं। गंगा नन्दन भीष्म और नीतिज्ञ विदुर तक सन्धि कराने में असफल रहे और शीघ्र ही वह आग कुरुक्षेत्र में धधकने वाली है, जो कुल के तेजस्वी सपूतों को भस्म कर डालेगी।"

यह बात सोचते ही वह कांप उठी। जी चाहता था कि वह इसे रोकने के लिए अपने पाचों पुत्रों को आदेश दे कि वे युद्ध से बाज आयें। पर वह अपने पुत्रों को कैसे कहे कि अपमान का कड़वा घूट पी कर वे रह जायें और युद्ध न होने दें? यदि वह ऐसा कहे भी तो क्या उस के महाबली व स्वाभिमानी पुत्र मानने

को तैयार हो जायेंगे ? एक ओर क्षत्रियों का राष्ट्र धर्म है तो दूसरी ओर युद्ध की विभीषिका है। एक ओर दुर्योधन को हठ के कारण क्रोध है तो दूसरी ओर कुल के नष्ट हो जाने का भय। जब वंश का ही नाश हो जायेगा तो फिर इस राज्य का क्या लाभ ? तबाही के परिणाम स्वरूप कहीं लाभ होता है ? कुन्ती सोच मे पड गई—"हा देव ! यह भी कैसी दुविधा है ? इस से बचूं तो कैसे ?"

माता कुन्ती के मन मे ममता एवं वात्सल्य के बीच खेंचातानी हो रही थी। मन मे एक हूक सी उठती। वह अपने पुत्रों के भविष्य के सम्बन्ध मे सोचने लगी—"भीष्म द्रोण और कर्ण जैसे अजेय महारथियों को मेरे पुत्र कैसे परास्त कर पायेंगे ? इन तीनो महाबलियो का विचार करते ही मन सिहर उठता है। यह तीन ही दुर्योधन के पक्ष मे ऐसे महारथी है जो पाण्डवों के प्राण हारी बन सकते है। हां, द्रोण अर्जुन को अपने पुत्र अश्वस्थामा से भी अधिक चाहते हैं। सम्भव है रणागण में अर्जुन के प्रति उनका स्नेह अर्जुन को मारने से रोक दे। भीष्म के सम्बन्ध में भी यही बात है। वे भी युधिष्ठिर और अर्जुन आदि को चाहते है। सम्भव है उनके बाणो की धार स्नेह के कारण कुण्ठित हो जाये। पर कर्ण तो रण मे पहुच कर पाण्डवों के प्राण लेने से भी कभी न चूकेगा। वह दुर्योधन के मोह के कारण और अर्जुन द्वारा भरी सभा मे अपमानित हो चुकने की वजह से, अर्जुन और उस के भाइयो पर बुरी तरह खार खाये बैठा है। पाण्डव उसे फूटी आखो नही भाते। साथ ही वह दानवीर है। उस में उस के संचित पुण्य कर्मों के कारण महान शक्ति है। वह अपनी दानवीरता के कारण अजेय है। इस लिए वह पाण्डवों के लिए प्राण हारी सिद्ध होगा। मेरा ज्येष्ठ पुत्र ही मेरे पुत्रो के प्राणों का प्यासा बना है, पर मेरे ही पाप का तो फल है। यदि में उस के जन्म को बात को छिपा कर न रखती तो क्यों आज कर्ण अपने ही भाइयो का बैरी बनता ? ओह ! अब क्या हो ? क्या कर्ण अपने भाईयों का वध किए बिना न छोड़ेगा ?"

यह विचार मन मे आते ही वह बहुत परेशान हुई। सोचने

लगी ऐसे उपाय को जिस से वह कर्ण के मन में पाण्डवों के प्रति करुणा जागृत कर सके। उस ने सोचा कि यदि कर्ण यह जान जाय कि जिन्हें वह शत्रु समझ बैठा है, वे उस के सगे भाई हैं तो अवश्य ही वह अपने मन से वैर भाव को निकाल देगा। पर यह हो तो कैसे? कौन बताये उसे यह रहस्य। तभी उस ने निश्चय किया कि वह अपनी भूल को सुधार कर पाण्डवों के प्राणों की रक्षा करेगी।

× × × ×

कर्ण ने देखा कि सामने माता कुन्ती खड़ी है। उस ने उन का अभिनन्दन करते हुए कहा—"राधा पुत्र कर्ण आप को करबद्ध होकर प्रणाम करता है। कहिए माता जी आप ने कैसे कष्ट किया।"

कुन्ती के मन में ममता जाग गई। करुणा की खान कुन्ती की पलकें भीग गईं। उन का निचला होठ कांप गया। बोली—"बेटा! अपने को राधा पुत्र कह कर मुझे लज्जित क्यों करते हो? मैं अपनी भूल को सुधारने आई हूं।"

आश्चर्य चकित रह गया कर्ण। उसने कहा—"आज आप कैसी बातें कर रही हो? मेरी तो कुछ समझ में नहीं आया।"

"बेटा! मैं तुम्हें अपने हृदय से लगा कर एक बार मातृत्व की बलवती इच्छा को पूर्ण करना चाहती हूं। पर आज तक अपनी ही एक भूल के कारण अपनी कामना को पूर्ण न कर सकी। मैं अपने ही पुत्र को अपना न बता सकी। बेटा! मैं आज तुम से अपनी भूल के लिए क्षमा याचना करने आयी हूं।"—कुन्ती ने कहा।

"मैं अब भी नहीं समझा। कि आप........."

"बेटा! तुम मेरे पुत्र हो। मैं तुम्हारी मां हूं। एक लम्बे अर्से से जिस रहस्य पर परदा पड़ा रहा, मैं उसी को बताने आई हूं।"—कुन्ती गदगद स्वर में बोली।

"तो क्या मैं राधापुत्र नहीं हूं ?" कर्ण ने आश्चर्य विमूढ हो कर पूछा।

"नही बेटा, तुमने मेरी कोख से जन्म लिया है। तुम पाण्डवों के ज्येष्ठ भ्राता हो। उन के जिन के प्राणों के तुम शत्रु बन गए हो। मैं ही तुम्हारी वह अभागिन मां हूं, जो तुम्हें जन्म देने के पश्चात भी तुम्हे कभी अपना पुत्र न कह सकी। क्योंकि महाराज पाण्डू के साथ विधिवत विवाह होने से पूर्व ही तुमने जन्म लिया। मैंने तुम्हारे परम प्रतापी पिता की निशानी के स्वरूप कुण्डल पहनाकर नदी मे बहा दिया था। पर शोक कि हमारी योजना पूर्ण नहीं हुई और तुम्हारे पिता के बजाये तुम्हे रथवान ने पकड़ लिया और ससार ने तुम्हें उसी की सन्तान जाना।"—सारा रहस्य बताते हुए कुन्ती ने गदगद स्वर से कहा।

परन्तु कर्ण में कुन्ती की आशा के अनुसार उत्साह जागृत नही हुआ। उस ने कुछ सोच कर कहा—"तो तुम्ही हो वह अन्यायी मां जिसने मुझे जन्म देकर नदी की लहरों में फेंक दिया था। तुम ही हो वह पापिन जिसने अपने पाप को छुपाने के लिए मुझे मौत के मुह में फेंक दिया था। तुम ही वह हो जिस के कारण मैंने अर्जुन द्वारा अपमान के कडवे घूट पिये। यदि यही है तो फिर अब क्यों मेरे पास अपने अन्याय का बखान करने आई हो?"

कर्ण के इन तीक्ष्ण शब्दो से कुन्ती का हृदय बिध गया। उस ने कहा— बेटा ! मुझे क्षमा कर दो। हा मैं ही वह पापिन हूं जिसने कि निर्दोष होते हुए भी लोक निन्दा के डर से तुम्हे तुम्हारे पिता जी की आज्ञानुसार नदी मे इस लिए बहा दिया था ताकि वे तुम्हें नदी मे निकाल कर पुत्रवत तुम्हारा पालन-पोषण करें। तुम्हारे नाना जी उनके साथ मेरा विवाह नही करना चाहते थे क्योंकि उन के प्रति भ्रम था कि वे पाण्डु रोग से पीडित है। परन्तु मैंने उन्हे अपना सिर-ताज मान लिया था। वास्तव मे मैंने कोई पाप नही किया था।

"तो आज तक तुम ने अपने बेटे पर इस रहस्य को क्यो नही खोला ? जब भरी सभा मे अर्जुन मेरा अपमान कर रहा था तब

तुम ने क्यों नही बताया कि मैं रथवान का पुत्र नही बल्कि पान्डु नरेश की सन्तान हू ? तुम ने लोक निन्दा के भय से मुझे सदा अपमानित होते देखा। तुम ने अपनी प्रतिष्ठा के लिए मेरी प्रतिष्ठा की बलि दी। तुम कैसी मा हो ? मैंने आप ही तुम्हारा मातृवत् आदर किया है। पर आज तुम से मुझे घृणा हो गई है। मां के उच्चादर्श को तुम ने कलकित कर डाला है।" कर्ण ने आवेश मे आकर कहा। उस समय वास्तव मे उस के हृदय मे घृणा ठाठे मार रही थी।

कुन्ती तिलमिला उठी। उस के नेत्रो से अश्रु आ रहे थे। वह घुटनों के बल बैठ गई और बडी करुणापूर्ण मुद्रा मे बोली—"बेटा ! मैं जो भी हू तुम्हारे सामने हू। मैं तुम्हारी दशा को देखकर सदा मन ही मन अपने को धिक्कारती रही। परीक्षा के समय जब अर्जुन ने तुम्हारा अपमान किया था, तो मेरा हृदय चीत्कार कर उठा था। जब तुम दोनो मे ठन गई थी तो मैं मूर्छित होकर गिर पडी थी। मैं तुम्हें सदा ही अपनी गोद मे लेने के लिए तडफती रही। मैं मन ही मन आंसू पीती रही। मैंने सारा जीवन तुम पर हुए अन्याय के प्रायश्चित स्वरूप हार्दिक दुःख, पीडा और शोक मे व्यतीत किया है। सोचो तो उस मां के मन मे क्या गुजरती होगी, जिस का लाल अपने बाहुबल और आत्मबल से सारे ससार पर छा रहा हो, जिसकी दानवीरता के कारण देवता भी उसके आगे नतमस्तक हो, पर मा उसे अपना पुत्र कहने का भी अधिकार न रखती हो। बल्कि वह एक परम प्रतापी महाराज की सन्तान होने के पश्चात भी अपने भाइयो के द्वारा ही पग पग पर धिक्कारा जाता है। अपमानित किया जाता हो। यह भी सोचो कि उस समय मेरे हृदय मे कितनी हूक उठती होगी जब मैं अपने सामने ही अपने पुत्रों को अज्ञानवश एक दूसरे का शत्रु, एक दूसरे के प्राणों का प्यासा देखती हूं। बेटा ! यह सभी कुछ मुझे अपने पाप का दण्ड मिला है। तुम्हारी मा, अब तुम्हें अपना प्यार समर्पित करने आई है। तुम से अपनी भूल की क्षमा याचना करने आई है। मेरे लाल ! थूक दो अब अपना क्रोध और मेरी भूल से हो रही अपनी भूल को सुधारने का प्रयत्न करो।"

'कर्ण के मन में भी करुणा जागृत हो गई। पर एक और भी दुःख उसके मन मे उठ खड़ा हुआ था, वह था यह कि परम पराक्रमी पाण्डु की सन्तान होने पर भी वह संसार में रथी की सन्तान कहलाया गया और राजाओं ने उसे नीच समझ कर सदा ही उस का अपमान किया। अपने माता पिता के कारण उसे सदा ही अपमान व निरादर के कड़वे घूंट पीने पड़े। उसने कहा—"मां! तुम ने कोई पाप नही किया। मेरे साथ जो कुछ हुआ, कौन जाने वह मेरे ही कर्मों का फल हो। क्षमा की बात कह कर मुझे लज्जित क्यों करती है। मुझे तो आज अपने पर गर्व होना चाहिए कि मैं उस सन्नारी सती की कोख से जन्मा हूं जिसकी रग-रग को कोर छू भी नही पाता। फिर भी मैं एक स्वाभिमानी व्यक्ति हूं। मुझे खेद है तो इस बात का कि आज से पूर्व तुमने कभी मुझे सच्चाई से अवगत न होने दिया। यही बात रह-रह कर मेरे हृदय मे शूल की भांति चुभ रही है।"

"बेटा! जैसे तैसे मै अपने हृदय पर पाषाण शिला रखते हुए सब कुछ सहती रही। मै लोक निन्दा के भय से मौन रही। पर जब पानी फिर से ऊपर पहुंच चुका तो तुम्हें यह रहस्य बताने आई हूं। मैं तुम्हे बताना चाहती हूं कि तुम जिन्हे अपना शत्रु समझ रहे हो, जिनके प्राणो के तुम प्यासे हो, वह तुम्हारे ही भाई है।"—कुन्ती ने कहा।

उस समय कर्ण के हृदय मे पाण्डवो के प्रति विद्वेष की भावना धूधू कर के ज्वाला की भांति जल उठी। उसने आवेश मे आकर कहा—"तो मां मैं यह समझने पर विवश हूं कि तुम मुझे इस रहस्य को बताने के लिए नही आयीं कि तुम ममता और पुत्र स्नेह को रोक नही पाई। या तुम्हारे हृदय में अपने परित्यक्त पुत्र के प्रति सहानुभूति का ऐसा तूफान आया जिसे तुम्हारे हृदय पर छाया लोक निन्दा का भूत भी रोक न पाया। बल्कि तुम्हारे मन मे पाण्डवों के प्रति भरे हुए असीम स्नेह ने जोर मारा है। तुम मेरे बल मे भयभीत हो गई हो और जबकि सिर पर आ गया है तुम अपने प्रिय पुत्रो के प्रति मेरे हृदय मे भ्रातृत्व उत्पन्न कर के उनको रक्षा करना चाहती हो। अवश्य ही यह बात तुम्हारे पाण्डवो के

लिए घोर पक्षपात पूर्ण है। आज भी तुम्हारे हृदय मे कर्ण के प्रति न ममता है न सहानुभूति बलिक उसके आक्रोश मे अपने प्रिय पुत्रों को बचाने की भावना है।"

बेटा! पाण्डव तुम्हारे ही भ्राता है। तुम उन के ज्येष्ठ भ्राता हो। मैं यह कैसे सहन कर सकती हू कि तुम भाई भाई ही आपस मे एक दूसरे का नाश करने के लिए लडो। मै यह कैसे देख सकती हू कि मेरे प्रिय पुत्र ही आपस मे शत्रुओं के रूप मे रणागन मे जायें। तुम चारो के शरीर मे मेरा ही रक्त है। मुझे तुम से भी उतना ही प्रेम है जितना युधिष्ठिर से अथवा अर्जुन या भीमसेन से।"—कुन्ती ने आर्त स्वर मे कहा।

कर्ण ठहाका मार कर हस पडा। पर वह ठहाका बडा ही व्यंग्य पूर्ण था। कहने लगा—"मा तुम आज भी उन तीन पुत्रों के लिए उतना ही प्रेम रखती हो, जितना तुम ने उन के प्रति पहले से रक्खा है। आज भी तुम्हें मुझ से कोई प्रेम नहीं है। तुम्हें प्रेम है तो उन तीनो से और तुम्हे भय है कि कही मै उन के प्राण न ले लू। मा! तुम्हारी रगो मे कितना पक्षपात है? तुम ने मुझे जन्म दिया, फिर भी क्यो मेरे प्रति मातृत्व नही दर्शा पाती? नगरा रथवान की गोद मे पलने के कारण मुझ से तुम्हें तनिक भी सहानुभूति नहीं? नही, नही मा! तुम ने मुझे कभी भी प्रेम पूर्ण दृष्टि से नही देखा। आज भी तुम्हारी आखो पर युधिष्ठिर, अर्जुन और भीमसेन के मोह की पट्टी बधी है। अभी अभी तुम अपनी भूल का प्रायश्चित करने को तैयार नही हो।"

कुन्ती के नेत्रो से पुनः अश्रुधार फूट पडी। उस ने रोकर कहा—"बेटा! यह बात कह कर मेरे हृदय पर कुठारा घात न करो। मैं अपना हृदय चीर कर कैसे दिखाऊं? आज जब रण की तैयारियां हो रही है। मैं इस रहस्य को बताने केवल इसी लिये आई कि मुझे उन तीनों के प्रति अधिक प्रेम है। बल्कि आई हू इस लिए कि मैं तुम मे से किसी को भी अपने किसी भ्राता का बध करते नही देख सकती। मैं नही चाहती कि अर्जुन जो अभी तक वास्तविकता को न जानने के कारण तुम्हारा भ्रम वश अपमान

करता रहा, रण में तुम्हें मारने के लिए अपना अस्त्र प्रयोग करे अथवा तुम उसको मार डालो। मेरे लिए तुम सभी समान हो। तुम मेरे पुत्र ही नहीं, बल्कि मुझे तो माद्री की सन्तान भी अपनी ही सन्तान लगती है। मैं तुम छः से समान ही स्नेह रखती हूं।"

"नहीं, नहीं तुम नहीं जानती हो कि कर्ण को मार सकना अर्जुन के बस की बात नहीं। इस लिए तुम मेरे लिए भयभीत नहीं हो। यदि होती तो अवश्य ही पहले अपने लाडले अर्जुन से जाकर इस रहस्य को बताती। तुम मुझे बताने आई हो तो इस लिए कि तुम पाण्डवों के भविष्य के प्रति सशंकित हो।"—कर्ण ने कहा।

"बेटा कर्ण! यदि ऐसा भी है तो मुझे तुम से तुम्हारे भाइयों के प्राणों की रक्षा, उन के लिए अभयदान लेने का अधिकार है। मैं तुम से विनती कर सकती हूं कि तुम दुष्ट दुर्योधन के लिए अपने भाइयों के प्राण न लो। तुम उसी महा पराक्रमी स्वर्गवासी पाण्डु की सन्तान हो, जिसकी सन्तान को दुर्योधन ने राज्य च्युत करके दर दर की ठोकरें खाने को बाध्य किया। तुम उसी पाण्डु की सन्तान हो जिस के उत्तराधिकारी अपना अधिकार माग रहे है। तुम उन के भाई हो, और हो तुम न्याय प्रिय। तुम्हारा कर्तव्य है कि जिस स्थान पर तुम्हारे छोटे भाईयों का पसीना गिरे वहां तुम अपना रक्त बहाने को तैयार रहो। तुम्हारे लिए यह शोभा नहीं देता कि तुम यह जानकर भी पाण्डव तुम्हारे भाई हैं, दूसरे के कारण उनके शत्रु के रूप में युद्ध मे जाओ। मैं तुम भाईयों को एक ही शिविर मे देखना चाहती हू।"—कुन्ती ने अपने मन की बात कह दी।

"मा! तुम ने और तुम्हारे पुत्रो ने मेरे साथ जो भी व्यवहार किया हो, पर मैं तुम्हारे आदेश के आगे अवश्य ही सिर झुका देता। मैं तुम्हारे चरणों मे सिर रख कर कहता कि बोलो मा, तुम क्या चाहती हो? पर अब बहुत देर हो चुकी है। तुम बहुत देर में जागी, मैं दुर्योधन के पक्ष मे हू और उसी की ओर से लडने का वचन दे चुका हूं। दुर्योधन ने मेरी उस समय सहायता की थी जब

मुझे अपमानित किया गया था। उसने बिना किसी प्रकार का सौदा लिए ही मुझ अपने राज्य का एक भाग दे दिया था। उसने सदा मेरा आदर किया। तुम जिसे नदी में फेंक आई थी, उसे दुर्योधन ने कूड़े के ढेर से उठा कर सिंहासन पर बैठाया। मैं उसका उपकार कभी नहीं भूल सकता मैं भ्रातृ प्रेम के कारण जिन के साथ विश्वासघात नहीं कर सकता। मैं क्षत्रिय हूं और हूं महा पराक्रमी राजा की सन्तान। मैं अपने वचन को नहीं तोड़ सकता। मुझ क्षत्रिय रीति को तोड़ने के लिए न कहो।"—कर्ण ने उत्तर देते हुए कहा।

"दुर्योधन की मित्रता का कारण तुम्हारे प्रति उसका स्नेह नहीं। वरन वह तुम्हें अर्जुन का मारने के लिये अस्त्र बनाना चाहता है। बेटा! तुम्हें शत्रु की चाल समझना चाहिए।"—कुन्ती ने कहा।

'नहीं मां, मैं यह नहीं मान सकता। रण तो आज हो रहा है, पर मेरे प्रति स्नेह का प्रदर्शन उसने उस दिन किया था जब किसी को यह भी पता नहीं था कि कौरव और पाण्डव एक साथ न रह सकेंगे उसने उन दिनों मेरा आदर किया था जिन दिनों मेरे भाई पाण्डव मुझे सूत पुत्र कहकर मुझ से घृणा किया करते थे। मैं इस अवसर पर अपने परम प्रिय का साथ नहीं छोड़ सकता मैं क्षत्रिय धर्म को कलंकित नहीं करूंगा।"—कर्ण ने जोर देकर कहा -

माता कुन्ती ने बहुत समझाया पर कर्ण ने साफ कह दिया कि वह जिसे वचन दे चुका उसी के साथ रहेगा। उसके निश्चय को कोई भी नहीं बदल सकता। विवश होकर कुन्ती ने कहा—"बेटा! यदि तुम पाण्डवों के पक्ष में भी नहीं आ सकते तो यह वचन तो मुझे दे ही सकते हो कि पाण्डवों में से किसी का वध भी तुम्हारे हाथों नहीं होगा।"

"हां, ऐसा वचन दे सकता था परन्तु ...."

"परन्तु क्या?"

परन्तु मैं अर्जुन का वध करने का निश्चय कर चुका हूं। हां, तुम मेरी मा हो, आज पहली बार तुम मुझ से कुछ मना रही हो। तुम्हें मैं निराश नहीं करूंगा। वचन देता हूं कि अर्जुन के अतिरिक्त अन्य किसी अपने भाई को मैं न मारूंगा।"

"तो क्या अर्जुन के प्राणों को तुम न बख्शोगे?"

"नहीं।"

"यदि मैं इस का दान मागूं तो.........?"

"तुम याचक बनकर नहीं मां बनकर आई हो।"

"तुम मा की आज्ञा का उल्लंघन करोगे?"

"क्षत्रिय धर्म को कलंकित करने वाला आदेश कोई भी हो, किसी का भी हो मैं नहीं मानूंगा।"

इस प्रकार कितनी ही बार घुमा फिरा कर कुन्ती ने चाहा कि कर्ण अर्जुन को भी न मारने का वचन दे दे पर कर्ण न माना।

कर्ण ने अन्त मे कहा—"मा मुझे क्षमा करना कि मैं पाण्डवों के विरुद्ध लडने और अर्जुन के प्राण लेने के अपने व्रत को तुम्हारी इच्छा के बाद भी नही तोड पा रहा। क्योंकि मैने तुम्हारी कोख से जन्म लिया है। हम क्षत्रिय अपने धर्म को किसी दशा मे नहीं छोडते। मुझे आशीर्वाद दो कि मैं धर्म पर अडिग रहूं।"

कुन्ती ने कर्ण को अपने गले से लगा लिया। उस से कुछ न बोला गया, गला रुध गया और आखों से आंसुओं की धारा बह चली। उस ने कुछ देर बाद सम्भल कर कहा—बेटा तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे यश मे वृद्धि हो।"

कर्ण को इस प्रकार आशीर्वाद देकर कुन्ती वापिस चली आई। कर्ण अपने जीवन और परिस्थितियों की विडम्बना पर सोचता रह गया।

※ उन्नतीमवां परिच्छेद ※

सेनापतियों की नियुक्ति

श्री कृष्ण निराश होकर उप्लव्य नगर लौट आये। सभी पाण्डवों के समक्ष उन्होंने हस्तिनापुर की चर्चा का हाल सुनाया। अन्त मे वे बोले :—

"जो भी कह सका। सभी कुछ कहा। सत्य और हित के अनुकूल सारी बाते बताईं। किन्तु सब व्यर्थ हुआ। दुर्योधन ने न मेरी सुनी और न अपने वृद्ध जनों की ही बात मानी।"

"अब क्या किया जाये?" युधिष्ठर ने प्रश्न उठाया।

"अब बस दण्ड से ही काम चलेगा।"—श्री कृष्ण बोले।

"एक ही रास्ता है कि हम इस धूर्त को अपने बाहुबल से समझाएं। लातों के भूत बातों से नही माना करते।"—भीमसेन में आवेश में आकर कहा।

युधिष्ठिर भी बोले—"हां अब शांति की आशा नही रही। सेना सुसज्जित करो और रण भूमि मे जा डटो।"

श्री कृष्ण ने कहा—"बस यही एकमात्र उपाय है। आप लोग अपनी सेनाएं तैयार कीजिए।"

पाण्डवों की विशाल सेना को सात भागों मे विभाजित किया

गया। द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि चेकितान, भीम सेन, सात महारथी, इन सात सैन्य-दलो के नायक बने। अब प्रश्न उठा कि सेनापति किसे बनाया जाये ? सभी की राय ली गई।

युधिष्ठिर ने सब मे पहले सहदेव की राय मागी, बोले—"सहदेव ! इन सात महारथियो मे से किसी एक सुयोग्य वीर को सेनापति बनाना होगा। हमारा सेनापति रण-कुशल हो। शत्रु-सैन्य को दग्ध करने वाला हो। किसी भी विकट स्थिति मे साहस न त्यागे, जो व्यूह रचना मे निपुण हो और भीष्म जैसे महान तेजस्वी का सामना कर सके। तुम बताओ कौन है इन सातो मे शूरवीर, सुयोग्य महारथी ?"

सहदेव सब से छोटा था, इस लिए पहले उससे राय ली गई। क्योकि बडो का आदर करने के कारण छोटे अपने बडो की राय का अनुमोदन कर दिया करते है, इससे उनकी अपनी राय का ठीक ठीक पता नही चलता और न उन मे आत्मविश्वास ही सचार होता है सहदेव ने कहा—"अज्ञातवास के समय हम ने जिन का आश्रय लिया था और जिनकी सहायता से हम यह सारा सैन्य-दल एकत्रित कर सके। जो अनुभवी और वृद्ध है। जिनकी अनगिनत कृपाए हम पर रही है, उन्ही राजा विराट को हमे सेनापति बनाना चाहिए। फिर नकुल से पूछा गया। उसने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा—"मुझे तो यही उचित लगता है कि पाचाल राज द्रुपद जो आयु में, बल मे, बुद्धिमता और अनुभव आदि मे सब मे बडे है उन्हे सेनापति बनाया जाय। क्योकि उन्होने द्रोणाचार्य के साथ साथ अस्त्र विद्या ग्रहण की है। द्रोणाचार्य को परास्त करने की कामना उनके मन मे बरसो से समायी हुई है। वे द्रौपदी के पिता भी है उनके मन पर द्रौपदी के अपमान से जो ठेस पहुची है उससे उनकी रगों में कौरवो के प्रति क्रोध भर गया है। वे भीष्म और द्रोण का मुकाबला भी कर सकते है।"

इस के बाद अर्जुन से पूछा गया। वह बोला "जो जितेन्द्रिय है, द्रोण का वध ही जिन के जीवन का उद्देश्य है, वीर धृष्टद्युम्न हमारे सेनापति बने तो ठीक होगा।

"भीम से जब पूछा गया तो उस ने कहा—भैया अर्जुन की बात ठीक है, पर हमारे लिए द्रोणाचार्य से भी अधिक समस्या भीष्म जी की है। हमें अपना सेनापति ऐसा बनाना चाहिए जो उन्हें मार सके। शिखण्डी का जन्म ही भीष्म जी के वध के लिए हुआ है। अतः शिखण्डी को ही सेनापति क्यों न बनाया जाय?"

अन्त में युधिष्ठिर ने श्री कृष्ण से पूछा। वे बोले—"इन सब ने जिन जिन महारथियों के नाम लिए, सभी सुयोग्य हैं और सेनापति बनने योग्य हैं। पर अर्जुन की राय मुझे ठीक जंचती है। धृष्टद्युम्न को ही सेनापति बनाया जाये।

जिस वीर ने स्वयं द्रौपदी से अर्जुन का परिणयग्रहण कराया था, जो राज्य सभा में हुए द्रौपदी के घोर अपमान और उस पर किए गए घोर अत्याचार की कल्पना मात्र से ही भड़क उठता था, अपनी बहन के अपमान का कौरवों से बदला लेने की प्रतीक्षा मे जिस ने तेरह वर्ष बड़ी बेचैनी से व्यतीत किए थे, जो महान रण योद्धा था, उसी पांचाल राजकुमार धृष्टद्युम्न को सेनापति बनाना सभी ने स्वीकार कर लिया और फिर उसका विधिवत अभिषेक कर दिया गया। उस समय वीरों की सिंह गर्जना, भेरियों के भेरी नाद, शंखों की तुमुल ध्वनि, दुंदुभी के गर्जन आदि से आकाश गूंज उठा। अपने कोलाहल से पृथ्वी को कंपाती और दिशाओं को गुंजाती हुई पाण्डव सेना कुरुक्षेत्र के मैदान मे जा पहुंची।

दूसरी ओर कौरवों की ओर से युद्ध की घोषणा हो चुकने के बाद कौरव सेना को ग्यारह भागों में विभाजित किया गया। उस के बाद प्रश्न आया कि सेनापति कौन बने। दुर्योधन ने अपने सभी उद्दण्ड परामर्श दाताओं को अपने पास बुला कर विचार विमर्श किया। शकुनि ने कहा—"मेरे विचार से भीष्म पितामह को ही सेनापति रखा जाय। सेनापति होने के कारण उन्हें पाण्डवों के विरुद्ध डटकर युद्ध करना पड़ेगा। उनका सामना कर सकने वाला पाण्डवों मे कोई भी नहीं। भीष्म जी पाण्डवों से स्नेह रखते हैं। बस पाण्डवों और भीष्म जी को टकरा देने का एक यही उपाय है।"

शकुनि की बात सभी ने स्वीकार कर ली और दुर्योधन पितामह के पास जाकर बोला –"पितामह ! आपकी कृपा से सभी तैयारियां पूर्ण हो गई है। अब आप ही हमारे सरक्षक हैं। सभी महारथी चाहते हैं कि आप हमारी सेना के सेना नायक बनें। आप के नायकत्व मे हमारी विजय अवश्य होगी।"

पितामह कहने लगे -"तुम ने युद्ध की घोषणा करते समय हम से कोई परामर्श नहीं लिया। फिर तुम्हारे मित्र कर्ण को हमारे ऊपर सन्देह है कि हम पाण्डवो के पक्षपाती हैं। ऐसी दशा मे यही अच्छा है कि तुम कर्ण को ही अपना सेनापति बनाओ। मैं तुम्हारी ओर से लड़ूगा अवश्य पर कर्ण जैसे उद्दण्ड और अभिमानी के रहते मैं सेनापतित्व स्वीकार नहीं कर सकता। मुझे सन्देह है कि मेरे सेनापति होने पर वह मेरी आज्ञाओ का पालन भी करेगा।"

"पितामह ! आपके सहारे पर तो हम ने युद्ध ठाना है। आप ही ऐसी बात करेंगे तो कैसे काम चलेगा। आप कर्ण को भूल जाइये और सेनापतित्व स्वीकार कीजिए,"—दुर्योधन ने विनती की।

"तुम पहले कर्ण से बात करो। मैं जानता हूं कि तुम मेरे परामर्श से अधिक कर्ण की बात मानते हो। उसके रहते मैं कोई उत्तर नहीं दे सकता,"—भीष्म पितामह ने दो टूक उत्तर दिया।

दुर्योधन चुपचाप वहा से वापिस चला गया और कर्ण से सारी बात आकर कही। उसे क्रोध हो आया, बोला—"पितामह सदा ही मेरा अनादर करते रहते हैं। मैं भी व्रत लेता हूं कि जब तक पितामह जीवित हैं तब तक मै रण में भाग नहीं लूगा और जब रण मे उतरूगा तो अर्जुन के अतिरिक्त और किसी पाण्डव का वध नहीं करूगा।"

कर्ण की बात सुनकर दुर्योधन बड़ा चिन्तित हुआ। पर तीर हाथ से छूट चुका था अब कर्ण का निश्चय बदलवाना सम्भव नहीं था। वह विवश होकर पुन. पितामह के पास गया और कर्ण के प्रन की बात कह सुनाई। पितामह बोले—"बेटा ! उस अभिमानी

के व्रत से तुम चिन्तित क्यों होते हो। यदि वह मेरे रहते रण में भाग नहीं लेगा तो मैं सेनापतित्व स्वीकार करता हूं। पर यह साफ़ बताए देता हूं कि पाण्डु पुत्रों का वध करने की इच्छा से मैं आगे बढ़कर युद्ध न करूंगा। मैं जानबूझ कर उनका वध नहीं करूंगा। पर लड़ूंगा पूर्ण शक्ति से।"

बेचारे दुर्योधन के पास अब क्या चारा था? कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं था। उसने पितामह की बात मन से स्वीकार कर ली और विधिवत उनका अभिषेक कर दिया गया। पितामह के नायकत्व में कौरव सेना सागर की भांति लहरें मारती हुई कुरुक्षेत्र की ओर प्रवाहित हुई।

* तीसरा परिच्छेद *

भारत के दुर्भाग्य ने अंगड़ाई ली। शांति और समझौते की वार्ताएं असफल हो चुकी थी और अब दोनों ओर की सेनाएं रण स्थल में जा पहुंची थी। दोनों ओर से व्यूह रचना हो चुकी थी। कौरवों की छाती अभिमान के मारे फूल रही थी। उन्हें कुरुक्षेत्र में सजी खड़ी सेना को देख देख कर अपने पर गर्व हो रहा था और बाट देख रहे थे उस समय की जब कि दोनों सेनाओं की भिड़न्त होगी और वे अपनी विशाल सेना के बल पर पाण्डवों को परास्त कर के अपनी विजय पताका फहरा देंगे और "न रहेगा बास न बजेगी बासुरी" की लोकोक्ति अनुसार राज्य के लिये झगड़ने वालों को समाप्त कर सदैव के लिए निश्चित होकर राज्य करने का अवसर प्राप्त कर लेंगे। पर कौरवों का यह स्वप्न कोरी कल्पना पर आधारित है, अथवा इस में कोई सच्चाई भी है इस का पता तो युद्ध की समाप्ति पर चलेगा। हां! दुर्योधन की आंखें चमक रही हैं। दुःशासन के मुख पर उल्लास है, और अन्य भ्राताओं की भुजाएं फड़क रही हैं। इस समय कोई उनकी दशा देखे तो कदाचित उसे यह विश्वास करते देर न लगे कि कौरवों को अपनी विजय का पूर्ण विश्वास है।

—परन्तु वह समय आयेगा या नहीं, जिसकी कल्पना उन्होंने की है, यह बात भविष्य के गर्भ में छुपी है। अभी तो कौरवों को

ग्रात्म परीक्षा का समय कुछ दूर है।

क्योंकि युद्ध ग्रारम्भ होने से पूर्व, ग्रभी एक बात ग्रौर भी होनी है। वह है युद्ध के नियमों की रचना। ऐसे नियमों की जिन पर युद्ध की रीति नीति ग्राधारित होगी। उन दिनों की रीति के ग्रनुसार दोनों ग्रोर के सेना नायक मिले ग्रौर समझ बूझकर सर्व सम्मति से कुछ नियम निश्चित किए। वे थे :—

प्रतिदिन सूर्यास्त के उपरान्त युद्ध बन्द हो जायेगा। युद्ध की समाप्ति के उपरान्त दोनों पक्ष के लोग ग्रापस में मिलें समान बल वालों में ही टक्कर हो। ग्रनुचित ग्रौर ग्रन्याय पूर्ण ढंग से कोई लड नहीं सकता।

सेना से दूर हट जाने वालों पर बाणों या ग्रस्त्रों का प्रहार न हो। रथी, रथी से हाथी-सवार हाथी सवार से, घुड सवार घुड सवार से, ग्रौर पैदल पैदल से, विमान-सवार विमान सवार से तथा विकट-गाडी विकट गाडी से ही लडे। शत्रु पर विश्वास करके जो लडना बन्द कर दे उस पर या डर कर हार मानने या सिर झुकाने वाले पर शस्त्र का प्रयोग नहीं होना चाहिए। दो योद्धा ग्रापस में युद्ध कर रहे हों तो उन को सूचना दिए बिना, या सावधान किए बिना, तीसरे को उन पर या किसी एक पर शस्त्र नहीं चलाना चाहिए। निःशस्त्र, ग्रसावधान, पीठ दिखा कर भागने वाले या कवच से रहित को शस्त्र चला कर नहीं मारना चाहिए। शस्त्र पहुंचाने या ढोने वालों, ग्रनुचरों, भेरी बजाने वालों ग्रौर शंख फूंकने वालों पर भी हथियार नहीं चलाया जायेगा।

उपरोक्त नियमों को देख क्या कोई कह सकता है कि इन नियमों को मान कर लडने वाले कोई ग्रसभ्य या ग्रनुचित कार्य करने वाले लोग थे? इन नियमों को बनाते समय वृद्ध ग्राचार्यों ग्रौर धर्म राज युधिष्ठर ने विशेष तौर पर ग्रपने धर्म ग्रपनी मर्यादा ग्रौर ग्रपने कर्तव्य को खण्डित न होने देने का प्रयत्न किया था। क्या ग्राज के युग में कोई भी युद्ध इतनी मानवीय शर्तों को मान कर किया जाता है? वास्तव में यह नियम चीख चीख कर कह

रहे हैं कि चाहे युद्ध का कारण कुछ रहा हो और चाहे कोई भी अन्यायी या न्यायी हो पर दोनो ही पक्षों का नेतृत्व सुलझे हुए धर्म ध्यानी और कर्तव्य निष्ठ लोगों के हाथ में थे।

—तो युद्ध के नियमों को दोनों पक्षो के महारथियों ने प्रतिज्ञा पूर्वक स्वीकार किया।

दुर्योधन ने व्यूहरचना युक्त पान्डवों की सेना को देख कर और द्रोणाचार्य के पास जाकर प्रणाम करते हुए कहा—"आप के बुद्धिमान शिष्य द्रुपद पुत्र धृष्ट द्युम्न द्वारा व्यूहाकार खडी की हुई पाण्डु पुत्रो की इस बडी भारी सेना को देखिये। इस सेना में बड़े बड़े धनुषो वाले तथा युद्ध मे भीम और अर्जुन के समान शूरवीर, सात्यकि, और विराट तथा महारथी राजा द्रुपद, धृष्ट केतु और चेकितान तथा बलवान काशीराज, पुरुजित, कुन्ती भोज और मनुष्यो मे श्रेष्ठ शैब्य, पराक्रमी युधामन्यु तथा उत्तमौजा, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु एव द्रौपदी के पाचों पुत्र यह सभी महारथी है।"

द्रोणाचार्य ने दुर्योधन की बात सुन कर गम्भीरता पूर्वक कहा—"सामने खडी सेना की शक्ति को मैं समझता हूं। रण क्षेत्र में आकर यह मत देखो कि कौन बडा योद्धा है, बल्कि यह सोचो कि कौन किस की टक्कर का है। दुर्योधन! ओखली मे सिर देकर मूसलों से डरने की बात मत करो।"

दुर्योधन गरज उठा—'आचार्य जी! आप के आशीर्वाद से हमारी ओर इतनी शक्ति है कि पाण्डव सारे ससार को ला-कर भी विजयी नही हो सकते। मुझे तो गर्व है अपनी शक्ति पर। ओखली मे सिर तो पाडवों ने दिया है। आप मुझे गलत न समझिए।"

उसी समय दुर्योधन के हृदय में हर्ष, उल्लास और विचित्र उत्साह भर देने के लिए वृद्ध परम प्रतापी भीष्म ने उच्च स्वर से सिंह गर्जना कर के शख बजाया। और उसी समय शख नगारे, ढोल मृदग तथा नरसिंगे आदि बाजे एक साथ ही बज उठे। बड़ा भयकर शब्द हुआ वह।

दूसरी ओर से भी इस भयंकर ध्वनि का उत्तर उतनी ही भयंकरता से दिया गया। सफेद घोड़ों से युक्त उत्तम रथ में बैठे हुए श्री कृष्ण तथा अर्जुन ने भी अपने अपने अलौकिक शंख बजाए। श्री कृष्ण के पांच जन्य, अर्जुन के देवदत्त, कर्मवीर भीमसेन के पौण्ड्र नामक शंखों की ध्वनि ने सारे वातावरण को कम्पित कर दिया। और उन शंख ध्वनियों के साथ ही कुन्ती पुत्र धर्मराज युधिष्ठिर ने अनन्त विजय नामक, नकुल तथा सहदेव ने सुघोष तथा मणि पुष्पक नामक शंखों से भयंकर ध्वनि की। इतनी भयकर थी वह ध्वनि की एक बार दुःशासन तथा शकुनि आदि का हृदय कांप उठा। जैसे यह ध्वनि न होकर यमलोक से आ रही मृत्यु की ध्वनि हो। वज्रपात होने का सन्देश हो।

युद्ध आरम्भ होने वाला था, महानाश का ववडर उठने वाला था भारत के अनगिनत वीर पुरुषों के सिर पर मृत्यु मण्डराने वाली थी कि धनुर्धारी अर्जुन ने श्री कृष्ण को सम्बोधित करते हुए कहा— "तनिक इन सब योद्धाओं को जो दोनो ओर से रण स्थल में अपने अपने हाथ दिखाने आये हैं, देख तो लूं। कृपा कर मेरा रथ दोनो सेनाओं के बीच में ले चलिए। मैं उन के मुखो को देख कर जानना चाहता हूं कि इस समय उन के हृदय मे कैसे कैसे भाव उठ रहे हैं। क्या सेनाओ के सजने के बाद भी भयकर युद्ध की अशका से दुर्योधन और उस के सहयोगियों के हठवादी हृदय पर कोई चोट नही पहुंची?"

श्री कृष्ण तो उस समय द्वारिका नरेश न होकर सारथी मात्र थे, अर्जुन की आज्ञा पाकर उन्हों ने रथ दोनों सेनाओं के बीच में ले जाकर खड़ा कर दिया। और बोले—"पार्थ! युद्ध के लिए जुटे हुए इन कौरवों को देखो। यह सब तुम्हारे शौर्य को देखने और पराजित होने के लिए खड़े हैं। इन्हें अपनी विशाल सेना पर गर्व है; पर इन मे से कितने ही सद्बुद्धि वृद्ध है जो मन ही मन युद्ध के परिणाम के प्रति सन्दिग्ध हैं। उन्हें तुम्हारे धनुष का जौहर मालूम हैं। वे तुम्हारे भ्राताओं और तुम्हारे अन्य सहयोगियों के असीम बल से परिचित हैं। और स्वय समझते हैं कि सिंह के सामने असख्य भेड़ों की भीड़ भी कुछ नही कर पाती।"

श्री कृष्ण ने अर्जुन को उत्साहित करने के लिए ही उक्त शब्द कहे थे। अर्जुन ने श्री कृष्ण की बात तो सुनी पर उसकी दृष्टि थी कौरवों की सेना की ओर। जिस में उस के गुरु, आदरणीय वृद्ध, परिवार के अन्य सदस्य, तथा कितने ही रिश्तेदार मौजूद थे। अर्जुन ने दोनों सेनाओं पर दृष्टि पात किया। इस की जिधर दृष्टि गई उधर ही स्वजन दिखाई दिए। सेनाओं मे स्थित, ताऊ चाचों को, दादों परदादों, गुरुओं को, मामाओं को, भाईयों को, पुत्रों को, मित्रों को, ससुरों और सुहृदों को भी देखा उस ने देखा कि दोनों ओर उस का पूरा परिवार कौरव कुल ही खड़ा है। महाराज शान्तनु के वंशज, दोनों ओर एक दूसरे के शत्रु रूप में, एक दूसरे का काल बनने के लिए खड़े हैं। उस ने अनुभव किया कि करोड़ों वीर रण बाकुरे अपने प्राणों का मोह त्याग कर हाथों में शस्त्र-अस्त्र लिए भयंकर संग्राम करने खड़े हैं। अर्जुन के मन में उसी समय एक भाव उत्पन्न हुआ, वह था करुणा का भाव भरत खण्ड के चुने हुए योद्धा इस युद्ध में आगए हैं। अभी ही कुछ देरी मे युद्ध आरम्भ हो जायेगा और रक्त की नदिया बह जायेंगी सारी पृथ्वी का गौरव रक्त रंजित हो जायें गा। यह वीर, जिनके भाल पर तेज विद्यमान हैं, यह विद्वान जिनकी संसार को आवश्यकता है ताकि मुझ जैसे कितने ही अन्य अर्जुन उत्पन्न हो सकें यह क्षत्रिय कुल गौरव, यह नरेश और यह सौम्य मूर्तियां, सभी तो इस रण भूमि मे एक दूसरे के लिए यमदूत का काम करेंगे और न जाने इस युद्ध के कारण इस धरती पर कौन जीवित रहे, कौन न रहे?

अर्जुन का मन काप उठा, यह सोच कर कि रण भूमि मे उसके गुरु और भीष्म पितामह तक उपस्थित हैं; क्या मुझे अपने गुरुदेव पर ही बाण उठाना होगा? मैं तो सदा भीष्म पितामह के चरणों को पूजता रहा हू, क्या उन पूजनीय भीष्म जी को मुझे ही अपने शस्त्रों से मार डालना होगा?—ओह क्या इन गुरुओं और वृद्ध जनों को उनकी कृपाओं का यही बदला दे सकता हूं? नही नही यह पूर्णतया कृतघ्नता है। मैं जिनकी गोद मे पला हूं, जिनके प्रताप से मैं धनुर्धारी हुआ हू, जिनकी कृपा से मुझे विद्या-

दान मिला है, मैं उन के प्राण भला कैसे हर सकता हूं ? वीर होकर कृतघ्न कैसे हो सकता हूं ।

उसी समय उसके मन में यह बात भी आई कि यदि मैं अपने पूजनीय लोगों से भी युद्ध करने से बच जाऊं तो भी मुझे व्यर्थ का रक्तपात तो करना ही होगा। यह जो असंख्य वीर पुरुष खड़े हैं, जो जीवन यापन करने के लिए सेना मे भरती हुए हैं, जो अपने स्वजनों का पेट भरने के लिए दुर्योधन की सेना मे सम्मिलित हो गए हैं, इन बेचारों ने मेरा क्या बिगाड़ा है। मेरे बाणों से हा, कितनी ही बहनों का सुहाग लुट जायेगा, कितने बालक अनाथ हो जायेंगे, कितनी ही माताओं की गोद खाली हो जायेगी। मेरे द्वारा कितने ही निरपराधी बालको, बहनों और माताओं की आशाए, कल्पनाएं और सुखद स्वप्न धूल धूसरित हो जायेंगे। इन के जीवन की ज्योतियां बुझ जायेंगी और मेरे कारण रण भूमि मे रक्त और घरो मे आंसुओं की धाराएं फूट पड़ेंगी। मैं भी पृथ्वी के वीर रहित कर दिए जाने का दोषी हो जाऊंगा। यह सोचकर अर्जुन का शरीर शिथिल हो गया। उस का मन शोक सन्तप्त हो गया।

अर्जुन की यह दशा देखकर श्री कृष्ण समझ गए कि पार्थ युद्ध के प्रति उदासीन हो रहा है। पूछ बैठे—पार्थ! क्या सोच रहे हो?"

अर्जुन ने श्री कृष्ण का प्रश्न सुना पर बोला कुछ नहीं। उस के मस्तिष्क में जिन भाषित धर्म की शिक्षाएं जागृत हो गई। वह सोचने लगा कि हिंसा तो भयंकर पाप है। ऋषभ देव जी ने तो फरमाया है कि किसी प्राणी को दु:ख देना या उसका वध करना महापाप है। भगवान ने तो कहा है —

> सर्वे जीवंतिणो जीवा: न मृत्यु कश्चिदहिते।
> इतिज्ञात्वा बुधा: सर्वे न कुर्युर्जवि हिंसनम्॥
> (श्री मद् गी० गी० ४६)

सम्पूर्ण प्राणी जीना चाहते हैं। मरना कोई भी नहीं चाहता, इस लिए किसी भी बुद्धिमान को जीव हिंसा नहीं करनी चाहिए।

जिन भाषित धर्म की शिक्षाओं का ध्यान आना था कि

भगवान के उपदेश एक के बाद एक उसके मन में उठने लगे। उसे ध्यान आया—

> निस्पृहः साधको नित्यं जागृति प्राणिनोऽखिलान् ।
> आत्मवत्सर्व मालोच्य नहि वैरायते क्वचित् ।।

निस्पृह साधक संसार मे सब प्राणियों को आत्मवत् समझ कर किसी भी प्राणी के साथ कभी भी वैर नही करता ।

यह धर्म शिक्षा स्मरण होते ही अर्जुन को ऐसा लगा मानो उससे कोई बड़ा पाप हुआ हो। उसका मन उसे धिक्कारने लगा।— धनुप बाण की पकड ढीली हो गई और खडा न रह सका बैठ गया। श्री कृष्ण ने यह दशा देखी तो उन के मन मे एक विचित्र आशका उठी। उन्होने फिर वही प्रश्न उठाया 'पार्थ! तुम क्या सोच रहे हो? तुम तो रण भूमि मे आकर सदा शत्रुओ पर बिजली की भांति टूट पड़ने के आदा थे। तुम्हारे धनुष की टकार से ही शत्रुओं के दिल दहल जाते है। पर आज जब कि कौरव सेनाओ का सामना हुआ और तुम ने इतनी विशाल सेना को देखा तो तुम्हारे चेहरे का रग क्यो उड गया? गाण्डीव तुम्हारे हाथो से क्यों छूट गया और रण भूमि मे आकर कायरों की भांति कैसे बैठ गए?"

अर्जुन ने कहा—"मैं कायर नहीं। श्री कृष्ण जो मैं पथभ्रष्ट हो गया था, इस रण भूमि में आकर मेरी आखें खुल गई।"

अर्जुन के उत्तर से श्री कृष्ण को बडा आश्चर्य हुआ। पूछा—"पथ भ्रष्ट कैसे? आंखे खुलने से तुम्हारा क्या तात्पर्य है?"

"स्वामिन्! आप देख रहे हैं कि सामने शत्रु रूप में शस्त्र लिए कौन कौन खड़े हैं?" अर्जुन ने कहा "कौरव और उनकी सेना"

"इन मे मेरे आदरणीय व पूजनीय गुरुदेव तथा पितामह भी है।"

"हा, है तो हुआ क्या?"

"और यह भी आप देख ही रहे हैं कि भरत खण्ड के कितने ही वीर रण बाकुरे, जिन्हों ने हमें कभी कोई हानि जान बूझ कर अपनी इच्छा से नही पहुचाई, हमारे विरोधी बनकर रण में उतरे है ?"

"पूरी बात तो बताओ। देखने को तो मैं सब कुछ देख रहा हूं।"

"तो महाराज ! आप ही बताइये कि क्या इन आदरणीय जनों और निरापराधों का रक्त भला क्यों बहाऊ ? मैं जिस धर्म का अनुयायी हूं उस ने तो मुझे आज्ञा दी है कि मैं किसी निर्दोष प्राणी का वध न करू। फिर मैं यह रक्तपात करके अपने लिए नरक क्यों मोल लूं ?—नही मुझ से यह पाप न हो सकेगा ?"

अर्जुन का उत्तर सुनकर श्री कृष्ण को कुछ हसी आई उन्होने गम्भीरता पूर्वक कहा—"पार्थ ! ऐसे समय भी तुम्हें धर्म शिक्षा का ध्यान आया, अहोभाग्य ! तुम प्रशसा के पात्र हो। तुम धन्य हो। पर जिन भापित धर्म की आड़ लेकर अपनी कायरता को मत छिपाओ ."

"कायरता —कैसी कायरता ? मैं ससार की किसी भी शक्ति के सामने घुटने नही टेक सकता। पर वीरता का तो यह अर्थ नही कि अपने बाहुबल को पापयुक्त कर्मों में लगाता फिरूं।"—अर्जुन ने उत्तर दिया।

"पार्थ ! तुम ने जिन भापित धर्म का तो उल्लेख किया पर पता भी है कि भगवान ने कहा क्या है ?"

"हां, मुझे ज्ञात है कि उन्होनें जीव वध को पाप बताया है। मनुष्य को अहिंसक होने का उपदेश दिया है। हिंसा को भयकर पाप कहा है।" अर्जुन ने उत्तर दिया।

"पार्थ ! तभी तो कहा है कि अधूरा ज्ञान व्यक्ति को ले डूबता है।

'नीम हकीम खतरे में जान'

तुम ने तीर्थङ्करों की शिक्षा तो याद रखली पर उसका मर्म नहीं समझे ?"

श्री कृष्ण की बात से अर्जुन तिलमिला उठा। कहने लगा— 'क्या मैं कहीं भ्राँति का शिकार हो गया हू ?"

"हां, ऐसा ही है।"

"कैसे ?"

"अर्जुन ! तुम भूलते हो। भगवान ने अहिंसा के सम्बन्ध में जो उपदेश दिया है वह इस प्रकार है :—

सव्वे जीवा वि इच्छति, जीविउ न मरिज्जिउ।
तम्हा पाणिवहं घोर, निग्गंथा वज्जयंति णं॥

अर्थात्—सभी जीना चाहते हैं मरना कोई भी नहीं चाहता। इस लिए निर्ग्रन्थ मुनि महाभयावह प्राणिवध का सर्वथा त्याग करते हैं।

इसका अर्थ स्पष्ट है कि निर्ग्रन्थ (जैन) मुनि ही भगवान की इस आज्ञा का कि किसी जीव का वध न करो। पालन करते हैं। गृहस्थी से यह आशा नहीं की जा सकती ग्रथों में साफ साफ माना गया है कि :—

समया सव्वभूएसु, सत्तुमित्तेसु वा जगे।
पाणाइवाय विरई, जावज्जीय वाय दुक्करं॥

जीवन पर्यन्त ससार के सभी प्राणियों पर, फिर भले ही वह शत्रु हो अथवा मित्र, समभाव रखना तथा सभी प्रकार की हिंसा का त्याग करना बड़ा ही दुष्कर है।

ता मब्ब जीव हिंसा, परिचत्ता मत्तकामेहिं॥

इसी लिए आत्मार्थी महापुरुषों ने (ही) सर्वथा हिंसा का परित्याग किया है।

सो, अर्जुन ! तुम जो कि एक सद्गृहस्थी हो उन नियमों का पालन नहीं कर सकते जो महाव्रती मुनिगण के लिए बताए गए हैं। तुम्हें गृहस्थ में रहना है तो भगवान के कथनानुसार केवल स्थूल हिंसा से ही बच सकते हो।"

श्री कृष्ण के उपदेश को सुनकर अर्जुन ने कहा—"पर आंखों देखे, पाप को करना तो भूल है। जब कि मैं जानता हूं कि मैं जो कुछ करने जा रहा हूं उससे भयंकर हिंसा होनी है तो फिर जानबूझ कर पाप के गड्ढे में क्यों गिरूं ?

श्री कृष्ण बोले—"पार्थ ! अभी तक तुम्हारे मस्तिष्क पर भ्रान्ति का परदा पड़ा है। भगवान के द्वारा बताये गए श्रावक धर्म के नियमों का स्मरण करो। यदि तुम जानबूझ कर हिंसा करना पाप समझते हो तो फिर मुनिव्रत धारण क्यों नहीं करते ?—अर्जुन हिंसा चार प्रकार की होती है।

(१) सकल्पी हिंसा—अर्थात् निरापराधी को जानबूझ कर मारना सताना।

(२) आरम्भी हिंसा—खाने पीने आदि में जो जीव हत्या होती है उसे आरम्भी हिंसा कहते हैं।

(३) उद्योगी हिंसा—देश को उन्नति के लिए कृषि करने, उद्योग धन्धों आदि में जो हिंसा होती है उसे उद्योगी हिंसा कहते हैं।

(४) विरोधी हिंसा—देश, सतीत्व, मान, मर्यादा, निपराधी की रक्षा, न्याय, धर्म आदि की रक्षा करने के लिए आक्रमणकारी को अपराध करने से रोकने में जो हिंसा होती है वह विरोधी हिंसा कहलाती है।

इन चार प्रकार की हिंसाओं में से गृहस्थी से संकल्पी हिंसा का ही त्याग हो सकता है। तीर्थङ्करो ने श्रावक को उपदेश दिया है कि वह किसी निरापराधी जीव को जानबूझ कर, वध करने के उद्देश्य मात्र से ही न मारे। और शेष तीन प्रकार की हिंसाए मर्यादा बाध कर करने पर गृहस्थी विवश है। आरम्भी हिंसा, उद्योगी हिंसा और विरोधी हिंसा की मर्यादा के भीतर रह कर करते रहने वाले गृहस्थी के गृहस्थ नियम सुरक्षित रहते हैं। यदि कोई व्यक्ति पागल हो जाये। तो उसे काबू मे रखने और कोई अनुचित कार्य करने से रोके रखने के लिए उसे बाधकर रखना तथा अन्य कड़े नियन्त्रणो की आवश्यकता होती है। तो क्या कोई यह कह सकता है कि पागल को इस लिए नियत्रण मे न रक्खो कि तुम्हारे कठोर व्यवहारो से हिंसा होगी। नही ? ऐसा तो करना ही होगा और करना पड़ता है स्वयं पागल के हित के लिए। राम और रावण का युद्ध ही लो। क्या राम ने रावण के विरुद्ध खड्ग उठाकर कोई ऐसा पाप किया था, जो किसी गृहस्थी के लिए अनुपयुक्त है। नही ? उस समय रावण के विरुद्ध युद्ध करना आवश्यक था। रावण के अन्याय के विरुद्ध राम चन्द्र का युद्ध विरोधी हिंसा थी। इसी प्रकार तुम्हारा युद्ध विरोधी हिंसा होगी। इस लिए तुम्हे भ्रांति नही होना चाहिए। उठो और जिस उत्साह के साथ रण स्थल मे आये थे उसी उत्साह पूर्वक शत्रुओ का मान मर्दन करो।"

श्री कृष्ण की युक्ति पूर्वक बात का अर्जुन पर काफी प्रभाव पड़ा। पर अभी वह शका रहित न हुए थे। कहने लगे—"महाभाग ! आप की यह बात मान लू तो भी मैं सोचता हूं कि राम और रावण का युद्ध तो दो विरोधी नरेशो का युद्ध था। जिनमे रक्त का कोई सम्बन्ध नही था। परन्तु मैं जिनके विरुद्ध लड़ने आया हूं वे तो मेरे अपने हैं। स्वजनो के विरुद्ध लड़ना भला कैसे उचित हो सकता है।"

और हे केशव ! मैं रण क्षेत्र मे स्वजनो का बध करने मे अपना कल्याण नही देखता। मैं न तो ऐसी विजय चाहता हू और न राज्य तथा वैभव को ही, जिसके लिए मुझे अपने प्रिय बन्धुओ

और माननीय वृद्धजनों पर तलवार उठानी पड़े। हमें नही चाहिए ऐसा राज्य जिसके लिए मेरा अपना परिवार ही नष्ट हो जाय। ऐसे राज्य मे भला क्या लाभ ? हमें जिनके लिए राज्य भोग और सुखादि अभीष्ट हैं वे ही ये सब धन और जीवन की आशा को त्याग कर युद्ध में खड़े हैं। गुरुजन, ताऊ चाचे, लड़के और उसी प्रकार दादे, मामे, ससुर नाती, तथा और भी सम्बन्धी लोग हैं। मधुसूदन ! चाहे यह सब लोग मुझे मिल कर मौत के घाट उतार दें परन्तु मैं तीनों लोकों के राज्य के लिए भी इन सब को मारना नही चाहता। फिर पृथ्वी के लिए तो कहना ही क्या ? जनार्दन धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार कर भला हमे क्या प्रसन्नता होगी। इन आततायियों को मार कर भी हमें पाप ही लगेगा। और अपने परिवार को मारकर भला हम कैसे यश प्राप्त कर सकते हैं।"

रण भूमि मे शोक से उद्विग्न मन वाला अर्जुन इस प्रकार कह कर धनुष बाण एक ओर रख कर नीचा सिर कर के बैठ गया। श्री कृष्ण समझ गए कि जब तक अर्जुन शंका रहित नही होगा, तब तक रण के लिए उद्यत नही हो सकता। उसे परिवार का मोह सता रहा है। वह मोह जाल में फंस कर विजय को भावी पराजितो के चरणों मे सौंप देना चाहता है। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि अर्जुन को ऐसा पाठ पढ़ाया जाय कि वह परिवार के मोह को त्याग कर के उत्साह पूर्वक गाण्डीव उठाले। इस लिए श्री कृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए कहा—"जिन भाषित धर्म की दुहाई तो तुम देते हो पर इतना भूल गए कि मोह असंख्य प्रकार दुष्कर्मों तथा पापों को जन्म देता है। मोह ही जग वैतरणी से पार नहीं उतरने देता। तुम क्षत्रिय हो। तुम्हें इस प्रकार की बातें शोभा नही देतीं। अर्जुन यह सामने जितने जीव खड़े हैं उन्हें किसी न किसी दिन मरना अवश्य है। जिस प्रकार पतझड़ आने पर पत्ते स्वयंमेव ही टूट कर भूमि पर गिर पड़ते हैं, इसी प्रकार का सन्देश मिलने पर जीव मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। अतएव जिन्हें तुम आज मृत्यु से बचाना चाहते हो, वह किसी न किसी दिन अवश्य मृत्यु को प्राप्त होंगे और तुम उनकी कोई सहायता न कर सकोगे। आत्मा तो नित्य है। किसी की मृत्यु

से घबराकर यदि तुम अपने कर्तव्य से गिर जाते हो तो वह भी एक महा पाप हो जाता है। तुम यहां न्याय प्रतीक हो कर अन्याय की रोक थाम के लिए आए हो और तुम्हारा सामना करने आये लोग चाहे वह तुम्हारे कोई भी हो, इस समय अन्याय और अधर्म के पक्ष पाती हैं। धर्म कहता है कि तुम अन्याय को सहन न करो। अन्याय को सहन कर लेना भी अन्यायियों को सहयोग देने के समान ही है। क्षत्रिय का कर्तव्य है कि वह अपने देश, न्याय, धर्म, मान मर्यादा आदि की रक्षा के लिए अन्यायी का सामना करे और या तो वीर गति को प्राप्त हो अथवा विजय पताका फहरा कर न्याय का बोल बाला करे। यदि आज तुम ने अन्यायियों को अपने परिवार के कारण अन्याय करते रहने को छोड़ दिया तो सोचो कि यह मोह, यह पक्षपात, अन्याय की वृद्धि में सहयोगी नहीं होगा? क्या तुम भी उसी पाप के भागीदार नहीं होगे जो आज कौरव कर रहे हैं?"

अर्जुन ने कहा—"आप की बात ठीक भी हो तो भी मैं कैसे रण भूमि में अपने बाणों से भीष्म पितामह और गुरुदेव द्रोणाचार्य के विरुद्ध लड़ूंगा?"

"पार्थ! तुम भूलते हो,—श्री कृष्ण बोले—जो लोग यह जानते हुए भी कि तुम उनके अपने हो। उन के साथ तुम उचित व्यवहार करते हो। तुम ने कभी शिष्टाचार अथवा धर्म के प्रतिकूल कार्य नहीं किया, यह जानते हुए भी तुम्हारे गुरुदेव तथा पितामह तुम्हारे विरुद्ध अन्यायी के पक्षपाती होकर आये हैं, तो स्वजन के प्रति चलने वाले शिष्टाचार तथा कर्तव्य को तो उन्हों ने ही भंग कर दिया। इन लोगों का यहां तुम्हारे विरुद्ध आना इनकी अशुभ प्रकृति का द्योतक है। अब तुम्हें उन के विरुद्ध धनुष उठाने में कोई आपत्ति होनी ही नहीं चाहिए। यदि पितामह और गुरुदेव तुम्हारे विरुद्ध शस्त्र प्रयोग कर सकते हैं तो फिर तुम्हें शस्त्र प्रयोग करने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए। जैसी किसी की प्रकृति होती है उस के सामने वैसी ही प्रकृति आ जाती है।

"हे गिरधारी! मैं उसी पाप को करने को क्यों तैयार हो

कं जो उन्हों ने किया है ? अर्जुन ने कहा—पाप यदि बड़ों रा किया जाता हो तो भी वह धर्म तो नहीं हो जाता।"

'ठीक है, परन्तु क्षत्रिय देश धर्म की रक्षा करता हुआ डता है। क्षत्रियों के लिए धर्म युक्त युद्ध से बढ़ कर तो दूसरा ई कल्याण कारी कर्तव्य नहीं है। यदि तुम इस अवसर पर ायरता और मोह के पचड़े में फंस जाओ तो विश्वास रक्खो आने वाली सन्तानें तुम पर थूकेंगी। और स्वधर्म को खोकर कीर्ति प्राप्त करोगे।"—श्री कृष्ण बोले।

अर्जुन ने पुनः प्रश्न किया—"तो क्या अधर्म से ही कीर्ति लती है।"

"नहीं, कदापि नहीं,—श्री कृष्ण ने शंका समाधान करते ए कहा—तुम जिसे अधर्म समझ बैठे हो वह अधर्म तो है ही नहीं, रन तुम्हारा कर्तव्य है जिस से तुम विमुख होना चाहते हो। र्म क्या है पहले उसे समझो। धर्म तो आत्मा के स्वभाव को हते हैं। कर्तव्य का दूसरा नाम धर्म है।

माणिणिहिज्जवीरिय

अपनी वीरता को मत छुपाओ अन्याय करना तो पाप है किन्तु अन्याय सहन करना दूसरों पर अन्याय, होता हो तो उसे चुप चाप देखते रहना दोनों परिस्थितियों मे बलवीर्य अंतराये कर्म का बंधन होता है अतः शक्ति हो तो अन्याय का प्रतिकार करो यदि शक्ति न हो तो अन्यत्र प्रस्थान करो किन्तु खड़े खड़े अन्याय का अवलोकन मत करो तथा शनैः शनैः शक्ति प्राप्त कर अन्याय को नष्ट करने का पूर्णतः सफल प्रयत्न करो। यदि तुम ने इस समय गाण्डीव न सम्भाला तो नीच दुःशासन जैसों का दाव चल जायेगा और संसार मे आततायियों की बन आयेगी। फिर तो न्याय पर अन्याय की विजय के लिए रास्ता खुल जाएगा। यह युद्ध जो तुम करने वाले हो, केवल तुम्हारे अपने हित में ही नहीं है वरन इसका प्रभाव सारे संसार पर पड़ने वाला है। और तुम जो बार बार स्वजन की बात उठाते हो तो अपने शास्त्रों को उठा

कर देखो कि वे क्या कहते है। कहा है कि: —

नाल ते तब ताणाए वा सरणाए वा
तुमपि ते सि नाल ताणाए वा सरणाए वा

स्वजन सम्बन्धी लोग पाप के फल भोगने के समय तुम्हारी रक्षा नही कर सकते, न तुम्हे शरण दे सकते है, तुम भी उन के त्राण एव शरण के लिए समर्थ नही हो।

'जव तुम्हारी आत्मा पर कोई आपत्ति आयेगी तो तुम्हारी रक्षा न तुम्हारे गुरुदेव कर सकते हैं और नांही पितामह, कौरवों की तो बात ही क्या है ? न तुम्हारे पाप मे भाग बटा सकते है। तुम्हारी अपनी आत्मा स्वतन्त्र है, तुम्हारे बन्धु तथा अन्य स्वजन तो तुम्हारी मोह वृति से ही तुम्हारे हैं, वरना प्रत्येक अपने अपने कर्मो का फल भोगता है. मोह को छोड़ कर तुम्हे अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर होना चाहिए।"

"हे गोबिन्द ! आप यह तो बताइये कि यदि मैं इस रण मे भाग न लूं तो मेरी आत्मा पर क्या प्रभाव होगा ? मैं पुण्य कमाऊ-गा या पाप ?"—अर्जुन ने पूछा।

"हे पार्थ ! जो अपने कर्तव्य से पीछे हट जाता है उस का कभी कल्याण नही होता। तुम्हारी आत्मा पर तुम्हारे भावों और कार्यों का अवश्य ही प्रभाव पडता है। 'जो कम्मे सूरा, ते धम्मे सूरा, अर्थात जो कर्म मे शूर होता है वह धर्म मे भी शूर होता है। तुम रण स्थल से चले जाओगे तो मोह के कारण और महाराज युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा को अधूरा छोड कर। इस लिए तुम स्वय सोच लो कि इस कर्तव्य विमुखता और विश्वास घात का तुम पर क्या प्रभाव होने वाला हैं।"—श्री कृष्ण ने उत्तर दिया।

कृष्ण के उत्तर को सुन कर अर्जुन सोच मे पड़ गया। कुछ देर विचार करने के उपरान्त वह फिर बोला—"परन्तु एक परिवार ही केवल एक राज्य के लिए लड़े या रक्त पात करे यह कहा तक उचित है?"

'केवल राज्य की ही बात होती तो मैं तुम्हे कभी युद्ध के

लिए प्रेरित नही करता।—श्री कृष्ण कहने लगे—परन्तु यह तो प्रश्न है न्याय तथा अन्याय का। इस युद्ध मे यह निश्चय होना है कि न्याय की विजय होती है अथवा अन्याय की। तुम्हे न्याय का सिर नीचा कराना है तो तुम युद्ध से भाग सकते हो"

"फिर भी मुझे बार बार अपने स्वजनो का ध्यान आता है" —अर्जुन ने कहा।

"अर्जुन! तुम उनके शरीर का आदर करते हो या आत्मा का?"

"... ...."

"शास्त्र कहता है:—

जह नाम असी कोसा, अन्नो कोसो असीवि खलु अन्नो।
इह मे अण्णो जीवो अन्नो देहुति मन्निज्जा॥

जैसे म्यान से तलवार और तलवार से म्यान भिन्न होती है, इसी प्रकार मेरा यह जीव शरीर से भिन्न और शरीर जीव से भिन्न है। ऐसा सोचकर शरीरक ममत्व दूर करे।

धीरे णवि मरियव्वं, काउरिसेणवि अवस्स मरियव्वं
तम्हा अवस्स मरणे, वरं खु धीरत्तणे मरिउं॥

वीर पुरुष को भी मरना पडता है और कायर पुरुष के लिए भी मरना आवश्यक है। जब अवश्य ही मरना है तब धीर की प्रशस्त मौत से मरना ही श्रेष्ठ है।

इस लिए हे पार्थ! शकाएं छोड कर वीरगति या विजय इन दोनो मे एक प्राप्त करने को तैयार होजा। उठ! तेरे बाण से कोई आत्मा समाप्त होने वाली नही। शरीर नश्वर हैं, वह मिटना ही है। तुम उसकी चिन्ता क्यों करते हो। मेरा विश्वास है कि विजय तुम्हारी ही होगी।"

श्री कृष्ण के इतना समझाने पर भी जब अर्जुन को रण का उत्साह नही हुआ तब श्री कृष्ण ने गरज कर कहा —"पार्थ! यदि रण भूमि मे जा कर कौरवो की भारी सेना को देख कर तुम अपने साहस को जीवित नहीं रख सकते थे तो फिर हमें जो केवल तुम लोगों के कारण ही बैठे बिठाए युद्ध में चले आए हैं क्यों मूर्ख बनाना

था? तुम दोनो पक्ष वाले तो आपस मे स्वजन होने की बात लेकर आज एक दूसरे के हुए जाते हो, पर हम लोगो को बीच मे डाल कर क्यो व्यर्थ ही दुर्योधन का विरोधी बनवाया, क्यों व्यर्थ ही दुर्योधन को हमारा शत्रु बनवाया ? हम ने आखिर तुम्हारा क्या विगाडा था ?

नही, नही, हे गोविन्द ! ऐसी कोई बात नही, आप गलत समझे मेरा मतलब........."

अर्जुन की बात को बीच मे ही काट कर श्री कृष्ण बोल उठे—"नही पार्थ ! बात बनाने का प्रयत्न न करो। मैं अब तुम्हारी वास्तविकता को समझा। तुम उतने वीर नहीं हो जितना मैं समझता हू। तुम कौरवों की सेना देख कर घबरा गए हो और स्वजन का बहाना बना कर युद्ध टालना चाहते हो। वरना यदि स्वजन का ही सवाल था तो राजकुमार उत्तर को साथ लेकर तुम अपने स्वजनो के साथ क्यो लडे थे। तुम्हे उस समय कौरव अपने भाई क्यों नही लगे ? क्यो न तुम ने यह कह कर उत्तर के साथ युद्ध मे जाने से इंकार कर दिया था कि गौएं चुरा कर ले जाने वाले मेरे भाई है, मै उन के विरुद्ध बाण न उठाऊंगा। और यदि यह तुम्हारे स्वजन ही थे तो क्यों न तुम ने उनकी दासता स्वीकार कर के राज्य के झगडे को समाप्त कर लिया ? क्यो हम सभी को युद्ध मे घसीट लाये ?"

"महाराज ! आप मेरी बात का गलत अर्थ न निकालिए मेरे सामने तो सवाल है रक्त पात से बचने का।"—अर्जुन ने कहा।

"तो क्या तुम कह सकते हो कि तुम ने कभी भी रक्त पात नही किया ?—श्री कृष्ण ने उबलते हुए प्रश्न किया। तुम ने कितने ही युद्ध लडे। क्या उन मे वीर सैनिको का वध नही हुआ तुम्हारा सारा जीवन युद्धो से भरा पडा है। तुम्हारे अपने हाथो से कितने ही योद्धा धाराशायी हुए है। तुम्हारे बाणो से कितनों की ही हत्याए हुई है। यदि वास्तव मे तुम विरोधी हिंसा तक से बचना चाहते थे तो उस समय जब तुम पुनः युद्ध मे उतरा करते थे, तुम्हारा ध्यान इस ओर क्यो नहीं गया ? नहीं, नही, मैं समझ गया कि तुम अभी तक अपने को नपुसक की दशा

मे रखने को उत्सुक हो। हां, मुझे याद आया कि तुम एक वर्ष तक विराट नरेश के रनिवास में स्त्रियों को नाच गाना सिखा चुके हो। अब तुम्हारे हाथों मे गाण्डीव उठाने की क्षमता कहां, तुम्हे तो चूड़ियां चाहिएं। तुम द्रौपदी के खुले हुए केशों को भूल गए। तुम दुःशासन द्वारा भरी सभा में द्रौपदी को वस्त्र हीन करने के नीचता पूर्ण प्रयास को भूल गए। तुम्हें भीम को विष देकर मार डालने का षडयन्त्र याद नही रहा। और तुम्हें यह भी याद नही रहा कि तुम्हारे इन स्वजनों ने ही तुम्हे, और तुम्हारी माता व भाईयों को लाख के महल में जला डालने का षडयन्त्र रचा था। तुम्हें यह भी याद नही रहा कि इसी तुम्हारे अन्यायी भाई दुर्योधन ने जिसका तुम्हें मोह मना रहा है, महाराज युधिष्ठिर को कपट कर जुए मे हराया था और तुम्हे बन बन भटकने को निकाल बाहर किया था। तुम कदाचित यह भी भूल गए कि जब मैं तुम्हारा दूत बन कर गया था, इन्ही तुम्हारे स्वजनों ने मुझे मार डालने की योजना बनाई थी। तुम कदाचित यह भी भूल गए हो कि तुम्हारे बाहुबल के आसरे पर सती द्रौपदी ने दुष्टों से बदला लेने की प्रतीज्ञा की थी। हां, तुम्हें यह सारी बातें क्यों याद रहने वाली हैं तुम तो रण क्षेत्र से भाग जाने के लिए उपयुक्त बहाने खोज रहे हो। पार्थ ! यदि यह बात नही तो बताओ कि जो बातें तुम्हे इस समय सूझ रही हैं, रण भूमि में आने से पहले तुम्हे क्यों न सूझीं। जहां तक तुम्हारे गुरुदेव तथा भीष्म जी से युद्ध का प्रश्न है, यदि इनकी दृष्टि मे भी तुम्हारा इतना ही मान होता जितना होना चाहिए था: तो फिर बताओ वे दुष्ट दुर्योधन के साथ क्यों जाते ? नही, नही। तुम कायरता दिखा रहे हो. तुम पाण्डु नरेश के नाम को कलंकित कर रहे हो तुम कुन्ती माता की कोख को बट्टा लगा रहे हो।"

श्री कृष्ण के शब्दों के प्रभाव से क्रुद्ध सिंह की नाईं अर्जुन अगड़ाई लेकर उठा। उसने गाण्डीव सम्भाला और कड़क कर बोला—"श्री कृष्ण जी ! आप मुझे कायर कहकर क्रुद्ध न कीजिए। मुझे अपनी शक्ति पर पूर्ण विश्वास है। कौरव चाहे कितनी ही विशाल सेना क्यों न ले आयें, मैं अपने गाण्डीव के द्वारा उन्हें रक्त

चटा दूंगा। मैं उनके समस्त अन्यायों का बदला लेने की क्षमता रखता हूं। मैं द्रोपदी के आसुओ की लाज रखूंगा। मैं दुष्टो की सेना मे विद्युत की भाति टूटूगा। मैं जिधर से निकलूगा, गाजर मूलियो की भाति उनके वीरो का सफाया करता हुआ निकल जाऊगा। मैं अपने को कायर कहलाने के लिए कदापि तैयार नही हूं। पर हा, इतना अवश्य कहूंगा कि इस ससार से मुझे घृणा होती जाती है। इस युद्ध के समाप्त होने पर मैं तीर्थङ्कारो द्वारा बताए गए मार्ग का अनुसरण करके प्रायश्चित करूंगा और अपनी आत्मा के कल्याण के लिए तपस्या करूंगा।"

अर्जुन ने पुनः गाण्डीव सम्भाल लिया। यह देखकर श्री कृष्ण ने उल्लासातिरेक मे पाच जन्य की ध्वनि की और उनकी ध्वनि का अनुसरण करते हुए पाण्डवो की सेना के सभी मुख्य सेना नायको ने शख ध्वनि की। जिस से सारा वातावरण गूंज उठा।

अभी अभी जिस वीर ने राज्य के प्रति विरक्ति प्रगट करके स्वजनो पर बाण न चलाने की बात सोची थी, उसकी धमनियों मे गरम गरम लोहू ठाठे मारने लगा और वह एक विजयी सिंह की भाति छाती ताने गर्व से दोनो ओर की सेना पर दृष्टि डालने लगा। अबकी बार उसने चारो ओर देखकर अपने मन ही मन मे कहा—"विजय हमारी होगी। अन्यायियो का पक्ष दुर्बल है।"

दूसरी ओर से शख ध्वनियों के उत्तर मे तीव्र शंख ध्वनियां की गईं। भीष्म पितामह ने कौरवों की सेना को उत्साहित करने के लिए कहा—वीरो! तुम सब क्षत्रिय कुलो की सन्तान हो। क्षत्रियो का कर्त्तव्य है रण स्थल मैं जाकर अपनी वीरता दिखाना। विजय पाना अथवा वीर गति को प्राप्त होना। तुम ने यदि वीर गति पाई तो स्वर्ग के द्वार तुम्हारे लिए खुल जायेंगे और विजय पाई तो धरा पर ही स्वर्ग के सुख तुम्हे प्राप्त होगे। इस लिए पूरी शक्ति से मुकाबला करना। स्मरण रखो तुम यशस्वी क्षत्रिय हो। रण भूमि तुम्हारे जौहर के प्रदर्शन का मैदान है। साहस तुम्हारा अनन्य सहयोगी है।"

* इक्कतीसवां परिच्छेद *

आशीर्वाद प्राप्ति

यह महाभारत की कथाओ मे एक महत्व पूर्ण घटना है। जो हमे यह समझने पर विवश कर देती है कि महाभारत युग में भारत वासियो का चरित्र कितना उच्च था। क्या इस घटना की पुनरावृत्ति आज के युग मे सम्भव है?

कदाचित आप का उत्तर होगा कि—"नही।"

हां वास्तव मे महाभारत की इस घटना की पुनरावृत्ति फिर कभी नही हुई।—और न कदाचित होगी ही।

—तो जिस घटना का हम उल्लेख करने जा रहे हैं वह उस समर भूमि मे घटी जिस मे कौरवो और पाण्डवों की सेनाएं संसार को प्रमुख विश्व युद्ध लडने को आमने सामने तैयार खड़ी थी। भयकर संहारक अस्त्र दोनो दलो के पास थे और पृथ्वी पर उन दिनो विद्यमान समस्त योद्धा और शूरवीर किसी न किसी ओर अपना स्थान ग्रहण किए हुए थे। उन दिनो वर्तमान युग की भांति धोखे का युद्ध नही होता था, उन दिनो बल तथा बुद्धि, बाहुबल तथा आत्मबल दोनो का मुकाबला होता था। विज्ञान का अपना एक स्थान था, कितने ही वैज्ञानिक अस्त्र महाभारत में प्रयोग हुए थे।

अर्जुन आवेश मे आकर युद्ध के लिए तैयार होगया था और श्री कृष्ण महाभारत मे इसे अपनी पहली विजय समझ कर प्रफुल्लित थे, वास्तव में मानना ही पडेगा कि उस समय जब कि महाभारत का मुख्य योद्धा, अर्जुन ही उदासीन था और उस युद्ध को 'पाप' समझ बैठा था, श्री कृष्ण न होते तो कदाचित सेनाए सजी ही रह जाती, अथवा युद्ध का परिणाम ही दूसरा होता। जो भी हो, श्री कृष्ण का उस समय का उपदेश काम कर गया। अब जब कि अर्जुन युद्ध के लिए तैयार था। अनायास ही युधिष्ठिर ने कवच उतार दिया, शस्त्र रथ मे रक्खे और हाथ जोड कर तेजी से पूर्व की ओर, जहा शत्रु सेना खडी थी, पैदल ही चल पडे। महाराज युधिष्ठिर के इस प्रकार अनायास ही शत्रु सेना की ओर बिना अस्त्र शस्त्र के रण बाणो के बिना पैदल चल देने पर पाण्डुओ की सेना मे खलबली मच गई। सभी हत प्रभ होकर उस विचित्र बात को देखने लगे।

महाराज युधिष्ठिर को इस प्रकार जाते देख कर अर्जुन भी रथ से कूद पडे और उन के साथ ही भीम, नकुल और सहदेव भी रथ से नीचे आ गए। श्री कृष्ण तथा अन्य प्रमुख नरेश भी अपनी अपनी सवारियो से नीचे उतर आये और यह सारे लोग महाराज युधिष्ठिर के पीछे पीछे चल पडे। किसी की समझ मे ही न आता था कि यह हो क्या रहा है।

अर्जुन ने पूछा—"महाराज! आप का क्या विचार है। आप अचानक रण बाणा उतार कर नि शस्त्र हो शत्रु सेना की ओर क्यो जा रहे है?"

"..........."महाराज युधिष्ठिर कुछ न बोले। वे चलते रहे।

भीमसेन से न रहा गया, पूछ बैठा—"राजन्! शत्रु पक्ष की सेना कवच धारण किए, शस्त्रो से लैस युद्ध के लिए तैयार खडी है और आप इस प्रकार हाथ जोडे उधर जा रहे हैं। आखिर आपके दिल मे क्या आगई? कही आप.. .. "

नकुल बीच ही मे बोल उठा— 'महाराज ! आप हमारे बडे भाई हैं, आप की आज्ञा से ही हम रण भूमि में आये हैं आपके ही आदेश पर इतनी विशाल सेना संगठित की गई है। आप हमे छोड कर बिना बताए शत्रुओं की ओर इस प्रकार क्यों जा रहे है ?"

सहदेव भी चुप न रह सका—"राजन् ! क्षमा कीजिये। हमे यह तो बताते जाईये कि आखिर आप ने निश्चय क्या किया है ?"

भीमसेन फिर बोला—'आप शत्रुओं की ओर अपने भाईओं को बिना कुछ बताये चले जायें यह अच्छी बात नहीं है।"

तभी श्री कृष्ण के अधरों पर मुस्कान खेल गई। क्यों कि उन्होंने देख लिया कि महाराज युधिष्ठिर के पग किस ओर उठ रहे हैं उन्होने चारों को सम्बोधित करते हुए कहा—आप घबरायें नही। मुझ से पूछें कि महाराज कहां जा रहे हैं ?

चारों पाण्डवो के नेत्रों में प्रश्नवाचक चिन्ह झूल गया। श्री कृष्ण बोले—"महाराज युधिष्ठिर धर्मराज हैं ना। वे गुरुदेव द्रोणाचार्य कृपाचार्य तथा भीष्म पितामह आदि से आज्ञा लिए बिना युद्ध आरम्भ नही करेंगे। उन्हीं से आज्ञा लेने जा रहे है आप लोग सन्तुष्ट रहे। आप यह भी विश्वास रक्खें कि जो अपने गुरुओ तथा वृद्धजनो की आज्ञा तथा अनुमति से, उनका अभिवादन करने के उपरान्त युद्ध करता है उसकी विजय असदिग्ध हो जाती है शास्त्र यही कहते हैं।"

इधर श्री कृष्ण तो उन को समझा रहे थे उधर महाराज युधिष्ठिर को इस दशा मे देख कर कौरवो की सेना मे बड़ा कोलाहल होने लगा। कुछ लोग दंग रह कर चुप चाप खड़े रह गए। दुर्योधन के कुछ सैनिको ने महाराज युधिष्ठिर का इस प्रकार आते देख कर आपस मे कहना आरम्भ कर दिया—"ओ हो ! यही कुलकलङ्क युधिष्ठिर है। देखो, अब इसे कौरवो की शक्ति का

पता चला। भय के मारे कैसे अपने भाईयों महित भीगी बिल्ली बना हुआ भीष्म पितामह की शरण में आ रहा है।"

कोई बोला -"अरे ! जिसकी पीठ पर अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, श्री कृष्ण आदि रण बाकुरे हों उसे इतना भय ! बिना लड़े ही पीठ दिखाना आरम्भ कर दिया "

एक बोल उठा—"तुम लोग अपनी अपनी हांक रहे हो, तनिक देखो तो सही क्या होता है भई, यह ठहरे राजनीतिज्ञ, इन का क्या पता किस समय क्या पैंतरा बदले। वह देखो महाराज युधिष्ठिर भीष्म जी के पास जा रहे हैं। देखना है क्या कहते हैं।"

सक्षेप में यह कि जितने मुह उतनी ही बातें पर कौरवों के सैनिक युधिष्ठिर की इस दशा से बहुत प्रसन्न थे। और बिना लडे ही पान्डवों की पराजय की कल्पना कर रहे थे।

महाराज युधिष्ठिर शत्रुओं की सेना के बीच मे होकर भीष्म जी के पास पहुचे और उनके चरण स्पर्श करके कहने लगे—"अजेय पितामह ! मै आपको शत शत प्रणाम करता हू। मुझे खेद है कि आज हमे आपके विरुद्ध युद्ध करने आना पड़ा। हा, शोक कि आप जैसे कृपालु पितामह के विरोध मे हमे आना पड़ रहा है। पर जो कुछ होना है वह ता होगा ही। आप से प्रार्थना है कि हमे युद्ध की आज्ञा दे और साथ ही अपना बहुमूल्य शुभ आशीर्वाद भी।"

भीष्म पितामह महाराज युधिष्ठिर के हृदय की विशालता देखकर प्रसन्न हो गए। गदगद कण्ठ से कहा - "युधिष्ठिर ! यदि तुम इस प्रकार मेरे पास न आते तो मुझे आश्चर्य होता। परन्तु अब तुम ने अपने गुणो के अनुरूप, पर ससार के लिए विचित्र सा दृष्टांत प्रस्तुत किया है, इस से मुझे अपने कुल पर गर्व होता है। आज मुझे यह अनुभव हो रहा है कि तुम मुझ से भी अधिक महान हो। तुम जैसे उच्चादर्श के पालन कर्त्ता को युद्ध मे कोई पराजित नही कर सकता। विजय तुम्हारी ही होगी।"

युधिष्ठिर को इस आशीर्वाद से कितनी प्रसन्नता हुई होगी

यह सहज मे ही अनुमान लगाया जा सकता है। उन्होंने अपने उल्लास को प्रगट करते हुए प्रश्न किया—"यदि आप मुझ से वास्तव मे प्रसन्न हैं और हृदय से मेरी विजय की आशा व कामना करते हैं तो आप मेरे विरोध मे क्यो हैं ? यद्यपि मैं आप से यह प्रार्थना करने कदापि नही आया कि आप पक्ष बदल लें तो भी अपनी धृष्टता की क्षमा चाहता हुआ आप से अपनी शका के समाधान के लिए पूछता हू "

युधिष्ठिर के प्रश्न का उत्तर उन्होंने गम्भीरता पूर्वक दिया। कुछ क्षण तक मौन रहे और बोले—'धर्म राज ! तुम अपनी धर्म बुद्धि से कभी कभी मुझे परेशानी मे डाल देते हो यह प्रश्न तुम ने मुझ से ऐसे समय किया जब मैं यह नही चाहता कि मैं अपने को स्वय ही दोषी मान बैठू जब कभी मनुष्य को यह विश्वास हो जाता है कि उसका निर्णय अथवा निश्चय गलत है तो वह पूर्ण उत्साह तथा आत्म विश्वास के साथ उस पर अमल कर ही नही पाता। फिर भी जब तुम ने पूछा ही है तो मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि कभी कभी मनुष्य को जीवन में कुछ कड़वी बातें भी करनी होती हैं, ऐसे कार्य भी करने पड जाते है, जिन्हे करते हुए मनुष्य को स्वय लज्जा आती हैं। जब पूज्य पिता जी ने अपना दूसरा विवाह रचाया था तो मैं ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपनी नई मा की सन्तानो और उनके वशजो का साथ दूगा। दूसरे यह पुरुष अर्थ का दास है, अर्थ किसी का भी दास नही, यही सत्य है और इसी अर्थ से ही कौरवो ने मुझे बाध रक्खा है। इसी से मैं तुम से नपुसकों जैसी बातें कर रहा हू।"

युधिष्ठिर ने तुरन्त पितामह के चरण पकड लिए और करुण शैली मे बोले -"पूज्य पितामह ! आप ने अपने लिए यह शब्द प्रयोग करके मुझे क्यो पाप मे धकेल दिया मेरा तात्पर्य आप को लज्जित करना नही था। आप चाहे जिस ओर रहे हमारे लिए आदरणीय है। मैं तो आप से केवल युद्ध की आज्ञा लेने आया था।"

पितामह की आंखों मे स्नेह तथा दया के भाव उमड आये। उन्होंने स्नेहपूर्ण शब्दों मे कहा—"राजन ! तुम्हारी जितनी प्रशसा

की जाये कम ही है। तुम आज्ञा चाहते हो, उससे जो स्वय तुम्हारे विरुद्ध सेना लेकर आया है। रण भेरी मेरी ओर से बजे तो तुम्हारे लिए आज्ञा ही है। इस अवसर पर तुम जो चाहे वरदान मागो। कदाचित तुम्हे कोई वरदान देकर ही मेरी आत्मा सन्तुष्ट हो सकती है। कदाचित वही मेरा प्रायश्चित भी हो हा, बस मेरे सिवाय तुम कोई भी वर माग सकते हो।"

"आप से अब भला मैं क्या मांगूं। मुझे जिस बहुमूल्य वस्तु की आवश्यकता हो सकती थी वही मेरे लिए निषिद्ध हो गई।"— युधिष्ठिर बोले।

"नही, मुझे सन्तुष्ट करने के लिए ही सही कुछ न कुछ अवश्य मांगो "— भीष्म पितामह ने हठ करते हुए कहा

'आप हमारे दादा हैं, जिन्हें आप जैसे दादा मिले हो, उस सन्तान को क्यो न अपने पुरखों पर गर्व होगा—युधिष्ठिर कहने लगे।—आप ने अपनी ओर से जो प्रस्ताव किया है उसके बोझ से मेरी गरदन झुकी जा रही है आप कुछ देना ही चाहते हैं तो मैं कहता हू। आप अजेय है, और आप हैं विपक्ष मे फिर जब आप को कोई जीत ही नही सकता तो फिर हमारी विजय कसे होगी, हम कैसे जीत सकेंगे? आप का आशीर्वाद कैसे पूर्ण होगा? बस इतना बता दीजिए।"

भीष्म बोले कुन्ती नन्दन! दुखती रगे पकडते हो। तीर निशाने पर मारते हो . ठीक है सग्राम भूमि मे जो मुझे ऐसा कोई दिखाई नही पडता अन्य पुरुष तो क्या स्वय इन्द्र मे भी ऐसी शक्ति नहीं है इस के अतिरिक्त मेरी मृत्यु का भी कोई निश्चत समय नही है। इस लिए किसी दूसरे समय तुम मुझ से मिलना।"

भीष्म पितामह की आज्ञा और आशीर्वाद प्राप्त कर लेने के पश्चात युधिष्ठिर उन्हे प्रणाम कर के आचार्य द्रोण की ओर चले। उन्हे प्रणाम कर के बोले—"गुरुदेव! सर्व प्रथम मैं आप से क्षमा याचना करता हू क्यो कि आप के विरुध मैं युद्ध करने आया

हूं। तदुपरान्त मैं हार्दिक खेद के साथ निवेदन करता हूं कि मुझे विवश होकर आप से युद्ध करने आना पड़ा है। परन्तु धर्म नीति के अनुसार मैं बिना आपकी आज्ञा के आप से नहीं लड़ सकता, अतएव कृपया आज्ञा दीजिए कि मैं आप के विरुद्ध युद्ध करूं। जिस से कि मैं अपने गुरुदेव से लड़ने के पाप से बच जाऊं। आप यह भी बताने की कृपा करें कि मैं शत्रुओं को किस प्रकार जीत सकूंगा।"

ओह! कितना गम्भीर प्रश्न था यह। प्रश्न कर्ता के साहस को देखिये और अब आचार्य द्रोण के उत्तर को सुनिए। कहते हैं—'राजन्! तुम्हारे इस व्यवहार ने कुछ हद तक मुझे युद्ध से पूर्व ही जीत लिया। तुम ने यहां पधार कर अपने चरित्र मे चार चांद लगा लिए। मैं बहुत प्रसन्न हूं। मुझे तुम जैसे शिष्य पर गर्व है। और तुम जैसे स्थिर स्वभाव वाले व्यक्ति की विजयकामना किए बिना नहीं रह सकता। तुम युद्ध करो, तुम्हारी विजय होगी। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा, बताओ तुम्हारी क्या इच्छा है? इस स्थिति में अपनी ओर से युद्ध करने के सिवा तुम्हारी जो भी इच्छा हो कहो। मैं क्यों इधर हूं इसका उत्तर यह है कि अर्थ किसी का गुलाम नहीं होता, परन्तु मनुष्य ही अर्थ का दास होता है। और इस अर्थ से कौरवों ने मुझे बांध लिया है। मैं इस स्थिति मे युद्ध तो कौरवों की ही ओर से करूंगा और किसी की रिआयत भी नहीं कर सकता, फिर भी विजय तुम्हारी ही चाहता हूं।"

गुरुदेव का उत्तर सुन कर युधिष्ठिर ने कोई वादविवाद नहीं किया। न खिन्न ही हुए, न किसी प्रकार का आवेश ही आया, न उलझन मे ही पड़े। सुशिष्य की भांति नम्र स्वभाव से कहा—"गुरुदेव! आप कौरवों की ओर से युद्ध करें। किन्तु आप मुझे वर ही देना चाहते हैं तो बस इतना ही दें कि विजय मेरी ही चाहें और मुझे समय समय पर उचित परामर्श देते रहें।"

द्रोणाचार्य को युधिष्ठिर के इन शब्दों से अपार प्रसन्नता हुई, उन्होने अपनी मनोदशा को छुपाते हुए कहा, मनोदशा इस

लिए छुपाई कि जी चाहता था युधिष्ठिर को छाती से लगा लें, पर रण स्थल मे उन्होने इसे उस समय उचित न समझा× "तुम्हारे परामर्शदाता तो श्री कृष्ण जैसे विद्वान राज नीतिज्ञ है। उन के रहते मेरे परामर्श की तुम्हे आवश्यक्ता नही है। श्री कृष्ण जैसे चतुर राज नीतिज्ञ जिधर है उधर ही विजय है। और जहा विजय है वही श्री कृष्ण है। तुम निश्चित रहो। कुन्ती नन्दन! अब तुम जाओ और युद्ध करो हा, यदि और कुछ पूछना चाहो तो पूछ सकते हो।"

युधिष्ठिर ने साहस पूर्वक कहा—"विद्वान आचार्य जी! आप को प्रणाम कर के मैं यही पूछना चाहता हूं कि आप को अपने रास्ते से हटाने का क्या उपाय है?"

युधिष्ठिर ने कैसा चुभता हुआ प्रश्न किया था, कितना कटु और कितना मार्मिक, क्या उसे सुन कर कोई व्यक्ति उद्विग्न हुए बिना रह सकता था? हा, द्रोणाचार्य के मुख पर इस प्रश्न के उपरान्त भी कोई चिन्ता, रोष तथा आवेश के चिन्ह नही दिखाई दिए। उन्होने अपनी स्वाभाविक गम्भीरता पूर्वक उत्तर दिया— "राजन्! संग्राम मे रथ पर आरूढ होकर जब मैं क्रोध मे भर कर बाण वर्षा करूंगा, उस समय मुझे मार सके, ऐसा तो कोई शत्रु दिखाई नही देता।"

"तो फिर?"

"हा, जब मै शस्त्र छोड़ कर अचेत सा खड़ा रहूं उस समय कोई योद्धा मुझे मार सकता है, यह सत्य है। एक और सच्ची बात तुम्हे बताता हू कि जब किसी विश्वास पात्र व्यक्ति के मुख से मुझे अत्यन्त अप्रिय बात सुनाई देती है तो मैं संग्राम भूमि मे अस्त्र त्याग देता हू।"

द्रोणाचार्य ने इतने से ही अपनी मृत्यु का उपाय बता डाला था। पर इस प्रकार से जैसे उन्होने कोई साधारण बात कही हो युधिष्ठिर ने बारम्बार उन्हे प्रणाम किया और फिर आगे कृपाचार्य के पास गये। उन्हे प्रणाम कर के वही बात जो उन्हों से भीष्म

तथा द्रोणाचार्य से कही थी। अर्थात युद्ध की ग्राज्ञा मांगी ग्रौर ग्राशीर्वाद चाहा।

उत्तर में कृपाचार्य ने प्रसन्न होकर कहा—राजन्! तुम्हारे सम्बन्ध मे जो सुना था, तुम्हे वैसा ही पाया। शत्रु सेना मे खड़े अपने सम्मानित वृद्धजनो से तुम्हारा रण भूमि मे भी वही व्यवहार रहेगा जो साधारणतया रहता है, ऐसी तो केवल तुम से ही ग्राशा की जा सकती है। मैं बहुत प्रसन्न हू। युद्ध की ग्राज्ञा देता हूं ग्रौर प्रसन्न होकर तुम्हे कोई भी बात पूछ लेने या इच्छा प्रगट करने का वर देता हू।"

युधिष्ठिर बोले—"गुरुदेव! ग्राप प्रति दिन प्रातःकाल उठ कर मेरी विजय की कामना किया करें बस मुझे यही चाहिए।"

"इसका तो तुम विश्वास रक्खो।—कृपाचार्य बोले—"ग्रौर कुछ मागना चाहो तो माग सकते हो बस मुझे अपने पक्ष के लिए मत मांगना क्योकि मैं दुर्योधन को वचन दे चुका हूं।"

'यदि ग्राप मुझ पर इतने प्रसन्न हैं। तो कृपया अपने परास्त होने का उपाय बता दीजिए।" युधिष्ठिर ने पूछा।

कृपाचार्य बोले—"धर्मराज! मैं तुम्हारी विजय की कामना किया करूगा, इतना ही तुम्हारी विजय के लिए पर्याप्त है। तुम मेरी चिन्ता न करो। विश्वास रक्खो कि तुम्हारी विजय के रास्ते मे ग्राने वाली रुकावटें किसी न किसी प्रकार दूर हो जावेंगी। ग्रन्त मे विजय पताका तुम्हारे ही हाथ मे होगी।"

कृपाचार्य की बातों से सन्तुष्ट होकर युधिष्ठिर ने उन्हें प्रणाम किया ग्रौर महाराज शल्य के पास गए। उन्हें प्रणाम करके कहा—"राजन्! ग्राप मेरे मामा लगते हैं। ग्राप से बिना ग्राज्ञा लिए मैं ग्राप के विरुद्ध भला कैसे लड़ सकता हूं। ग्रतएव ग्राप ग्राज्ञा दें ताकि मैं इस पाप से बच जाऊं।"

शल्य बोले—"राजन्! जब मैं स्वय ही तुम्हारे विरुद्ध

मैदान मे आ गया तो तुम्हे युद्ध से भला कैसे रोक सकता हूं। जाओ प्रसन्नता पूर्वक युद्ध करो। हां, तुम ने जो इस समय इस दशा मे मेरे सामने आकर अपनी महानता दर्शाई है उस से मैं बहुत प्रसन्न हूं। चाहे जैसे भी हो मैं हू दुर्योधन के साथ ईमानदारी से उसकी ओर से लडूंगा। पर तुम मेरे भानजे हो, और हो ऐसे कि मुझे तुम्हारा मामा कहलाते अपने पर गर्व होगा, अत. तुम्हें वचन देता हूं कि तुम जो चाहो माग सकते हो, हा मुझ से अपनी सहायता के लिए मत मागना। बोलो, तुम्हे क्या चाहिए!"

"मामा जी! मै सैन्य संग्रह के समय भी आप से एक बार प्रार्थना कर चुका हू. बस वही प्रार्थना है, वही मेरा वर है। कर्ण से युद्ध होते समय आप उसके तेज का नाश करते रहे। आप अपने शुभ कर्मों के फलस्वरूप ऐसा कर सकते हैं। "युधिष्ठिर ने अपना मनवांछित वर मांगते हुए कहा।

शल्य बोले—"अपने वचन के अनुसार मैं तुम्हारी यह मनोकामना पूर्ण करूंगा। जाओ निश्चिन्त रहो।"

इस प्रकार अपने गुरुओं तथा आदरणीय वृद्धों तथा सम्माननीय बुजुर्गों से आज्ञा तथा आशीर्वाद प्राप्त करके महाराज युधिष्ठिर अपने भाईयो सहित उस विशाल वाहिनी के बाहर आ गए। इस प्रकार उन्हो ने युद्ध आरम्भ होने से पूर्व ही अपने शिष्टाचार द्वारा कौरवों की सेना के वृद्ध अनुभवी तथा अजेय सेनानियों को सहज मे ही जीत लिया। मन जीत लिया तो तन जीतने मे क्या रक्खा है। वह भी जीत ही लिया जायेगा। इस दृश्य को देख कर कौरवों की सेना के उन सैनिको की कल्पनाएं धूलि मे मिल गईं जो युधिष्ठिर के इस प्रकार शत्रु सेना नायको के पास जाने मे उनकी पराजय समझ रहे थे जिस ने उन की वार्ता सुनी, वही युधिष्ठिर का प्रशसक बन गया। दोनों ओर असख्य सैनिक जीवन की आशा छोड़ प्रथम विश्व युद्ध के लिए सजे हुए खड़े थे। रण की भेरी बज चुकी थी पर युधिष्ठर अपनी बुद्धि तथा धर्म नीति द्वारा महानतम शिष्टाचार के सहारे युद्ध मे अपनी विजय का प्रथम परिच्छेद पूर्ण कर रहे थे।

इसी बीच श्री कृष्ण दानवीर कर्ण के पास गए। नम्र भाव से बोले—"मैंने सुना है भीष्म जी से द्वेष होने के कारण तुम युद्ध नहीं करोगे। यदि ऐसा है तो जब तक भीष्म जी नहीं मारे जाते तुम पाण्डवों की ओर आ जाओ। जब भीष्म जी न रहेंगे और तुम्हें दुर्योधन की ही सहायता करना उचित जान पड़े तो पाण्डवों का साथ छोड़ कर कौरवों की ओर आ जाना। उस दशा में हमें कोई आपत्ति न होगी।"

कर्ण इस प्रस्ताव को सुन कर चकित रह गए। बोले—केशव! क्या पाण्डव इतनी छूट देने के लिए तैयार हो सकते हैं? और क्या कोई व्यक्ति दो ओर भी लड़ सकता है?"

"हां, अवश्य! दुर्योधन और युधिष्ठिर में बड़ा अन्तर है। युधिष्ठिर आप को; थोड़े समय के लिए ही सही मित्र बनाने में बड़े प्रसन्न होंगे। रही दो ओर से लड़ने की बात सो इस के लिए तुम्हें कौन रोक सकता है?" श्री कृष्ण ने उत्तर दिया।

श्री कृष्ण का उत्तर सुन कर कर्ण ने अपने दृढ़ निश्चय को दोहराते हुए कहा _ "मैं युधिष्ठिर की इस नीति का आदर करता हूं परन्तु मैं दुर्योधन का अप्रिय किसी दशा में नहीं कर सकता। आप मुझे प्राण पण से दुर्योधन का हितैषी समझें।"

उत्तर सुन कर श्री कृष्ण निरुत्तर होगए।

महाराज युधिष्ठिर के वापिस आते ही पाण्डवों की सेना में रण के बाजे बज उठे।

महाराज युधिष्ठिर ने सेनाओं के बीच में खड़े होकर उच्च स्वर में कहा—"शत्रुओं की सेना में सम्मिलित जो वीर हमारा साथ देना चाहें, अपनी सहायता के लिए मैं उसका इस समय भी हार्दिक स्वागत करने को तैयार हूं। जो वीर शत्रु की ओर ही रहना चाहे वह शत्रु सेना में होते हुए भी हमारा मित्र ही है।"

युधिष्ठिर की इस घोषणा से कौरवों के सैनिको पर महाराज युधिष्ठिर का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ा। युयत्सु ने जब घोषणा सुनी, वह बहुत प्रसन्न हुआ। उस से न रहा गया, पाण्डवो की की ओर देख कर उस ने धर्मराज से कहा—"महाराज! यदि आप मेरी सेवा स्वीकार करें तो मैं इस महायुद्ध में आप की ओर से अपने भ्राताओं से लडूंगा।"

यह एक ऐसा प्रभाव था जिसे सुन कर साधारण व्यक्ति कभी विश्वास न करता कि युयुत्सु की प्रार्थना सत्य हृदय से की गई है। वह उसे सन्देह की दृष्टि से देखता। परन्तु विशाल हृदय धारी धर्मराज युधिष्ठिर के मुखमण्डल पर हर्ष की रेखा उभर आई उन्होने अपनी दोनों भुजाएं आगे बढा कर उल्लास पूर्वक कहा— "युयुत्सु! आओ! आओ तुम्हारा स्वागत करता हूं। हम सब मिल कर तुम्हारे पथ भ्रष्ट भाईयो से युद्ध करेंगे। तुम हमारी ओर से सग्राम करो। मालूम होता है कि धृतराष्ट्र की सन्तान मे तुम ही एक सद्बुद्धि न्याय प्रिय तथा धर्म बुद्धि वीर हो, तुम ही से उनका वश चलेगा।"

युयुत्सु इस प्रकार के उत्साह वर्धक स्वागत से प्रसन्न होकर कोरवो का साथ छोड़ कर पाण्डवो की ओर चला आया महाराज युधिष्ठिर ने उसे छाती से लगा लिया और अपनी ओर से कवच दिया, अस्त्र शस्त्र देकर उस को उचित स्थान पर नियुक्त कर दिया।

परन्तु दुर्योधन का हृदय जल उठा। मारे क्रोध के उस की आंखें लाल हो गई। वह आक्रोश में न जाने क्या क्या बड़बड़ाने लगा।

सभी अपने अपने रथों पर आरूढ़ हुए। सैकड़ों दुन्दुभियों का घोष होने लगा तथा योद्धा अनेक प्रकार से सिंह नाद करने लगे।

* बत्तीसवां परिच्छेद *

युद्ध होने लगा

दोनों ओर के योद्धा अस्त्र-शस्त्रों से लैस थे, सेना नायक अपनी अपनी सेनाओं को अन्तिम आवश्यक आदेश तथा उपदेश दे चुके। दोनों ओर के सेनापतियों ने अपनी अपनी सेनाओं को अपनी विजय का पूर्ण विश्वास दिलाया, स्वर्ग के सुख भोगने का लोभ दर्शाया और क्षत्रियोचित वीरता दिखलाने के लिए आव्हान किया।

इस के पश्चात् दुर्योधन जो अपनी विशाल सेना के बल पर दम्भ में चूर था भीष्म जी के पास जाकर कहने लगा—"पितामह! अब देरी काहे की है। आक्रमण कीजिए।"

भीष्म जी बोले—"दुर्योधन! तुम चाहते हो इस लिए मैं युद्ध तो आरम्भ किए देता हूं पर मुझे ऐसा लगता है कि विजयश्री पाण्डवों को ही प्राप्त होगी।"

"पितामह! आप सेना नायक होकर ऐसी बात कहते हैं? पाण्डवों के मोह में युद्ध के आरम्भ होने समय ऐसी बात मुंह से न निकालिए। इस समय पाण्डवों को परास्त करना हमारा कर्त्तव्य है। वे हमारे शत्रु हैं और हमारी अपार शक्ति के सामने उन के लिए टिकना भी असम्भव है।" दुर्योधन ने कहा।

पितामह ने उत्तर दिया—"बेटा! शत्रु की शक्ति को कम आंकने वाले कभी विजयी नहीं हुआ करते।"

"आप सेना को आगे तो बढाईये । हाथ कागन को आरसी क्या । अभी ही पता चल जाता है ।"—दुर्योधन ने कहा ।

भीष्म पितामह के नेतृत्व में दुर्योधन, अपने भाईयों और सैनिकों सहित आगे बढा । दुन्दुभिया का विपुल नाद हुआ । तो दूसरी ओर से पाण्डवो की सेना भी भीमसेन के नेतृत्व मे रण भेरी बजाती हुई आगे बढी । पान्डवो मे उत्साह था, कुछ कर गुजरने की आकांक्षा थी ।

फिर दोनों सेनाओ में भयकर युद्ध होने लगा । द्वन्द्व युद्ध तथा "साकल युद्ध" दोनो ही होने लगे । साकल युद्ध से अभिप्राय उस युद्ध से है जो हजारों सैनिको के एक साथ दूसरे पक्ष के हजारों सैनिको पर टूट पडने से होता है । दोनो ओर से ऐसा भीषण शब्द हो रहा था कि सुनकर रोगटे खडे हो जाते थे । उस समय महाबाहु भीमसेन साँड की भाति गरज रहा था । उसकी गर्जना से कौरव सेना का हृदय दहल जाता था । जैसे सिंह की दहाड सुन कर जगल के कुछ जानवरों का मलमूत्र निकल पडता है, इसी प्रकार की गर्जना से कौरव सेना के कुछ सैनिको का मूत्र ही निकल गया और भीमसेन की भयानक चिघाड को सुनकर कभी हाथी घोड़ा तक काप उठते । भीमसेन विकट रूप धारण करके वज्र की भाँति कौरव सेना पर टूट पडा । जिससे कौरवो की सेना मे खलबली मच गई । दुर्योधन ने जब यह देखा तो अपनी सेना का साहस बढाने के लिए अपने भाईयो को सकेत किया और भीमसेन पर मेघ वर्षा की भाँति बाण वर्षा होने लगी यहा तक कि बाणों की वर्षा मे भीमसेन उसी प्रकार छप गया जैसे मेघ खण्डो मे रवि छुप जाता है उस समय दुर्योधन, दुर्मुख, दु सह, शल्य, दु.शासन. दुर्मर्षण, विविंशति, चित्रसेन, विकर्ण पुरुमित्र, जय, भोज और सोमदत्त का आत्मज भूरि श्रवा यह सभी अपने बड़े बडे धनुषो पर तेज बाण चढाकर विषधर सर्पों के समान बाण चला रहे थे । और दूसरी ओर से सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और धृष्टद्युम्न अपने बाणो से कौरवो की बाण वर्षा का उसी वीरता से उत्तर दे रहे थे । उस समय प्रत्यन्चाओ की भीषण टकार आकाश मे तड़पती

तडित का सा भयंकर शब्द कर रही थी। दोनो ओर के सैनिक एक दूसरे को अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर पछाड़ने का असफल प्रयत्न कर रहे थे।

उधर शान्तनु नन्दन भीष्म अपना काल दण्ड समान धनुष लेकर अर्जुन की ओर झपटे। उस समय श्री कृष्ण ने भीष्म पितामह के रथ की ओर अर्जुन का रथ हांकते हुए अर्जुन को सम्बोधित करके कहा—"पार्थ ! देखो पितामह सबसे पहले तुम पर ही बल प्रदर्शन करना चाहते हैं। इस समय दादा और पौत्र नहीं, दो शत्रु सेनाओ के मुख्य योद्धाओं का संग्राम होना है। लो अपना रण कौशल अब दिखाओ।"

वीर अर्जुन ने सम्भल कर अपना गाण्डीव उठाया और ज्यों ही भीष्म की ओर से उनके धनुष की पहली टंकार हुई तेजस्वी अर्जुन ने अपने जगत विख्यात गाण्डीव की हृदय भेदी टंकार की और भीष्म जी पर टूट पड़े। वे दोनो कुरुवीर एक दूसरे का वीरता से उत्तर देने लगे। भीष्म ने अर्जुन को बींध डाला। उनके बाण ठीक निशाने पर जाते, वीर अर्जुन प्रहार से बचने का प्रयत्न करते और अपने बाण से भीष्म जी को भी अपने बचाव की चिन्ता मे डाल देते। परन्तु न तो भीष्म और न अर्जुन ही संग्राम मे एक दूसरे को विचलित कर सके।

दूसरी ओर का हाल भी देखिये सात्यकि ने कृतवर्मा पर आक्रमण कर दिया है वे दो सिंह आपस मे जूझ रहे हैं। उन्हे किसी की चिन्ता नहीं, रण भूमि मे क्या हो रहा है। भीषण और रोमांचकारी युद्ध मे वे एक दूसरे को परास्त करने के लिए पूरी शक्ति लगा रहे हैं।

और इधर महान धनुर्धर कोसल राज वृहद्बल से छोटा, सभी योद्धाओ मे कम आयु का, एक प्रकार से बालक, चचन बाल योद्धा अभिमन्यु भिड़ा हुआ है। उन दोनों के भीषण युद्ध में एक बार कौसल राज का दाव चल गया तो उसने अभिमन्यु के रथ की ध्वजा को काट गिराया और उस के सारथी को भी मार गिराया। फिर क्या था अभिमन्यु सिंह की भांति बिफर उठा। उस ने क्रुद्ध होकर

अपने धनुप से एक के पश्चात एक विद्युत गति से बाण छोडने आरम्भ किए और अपने नौ बाणों से ही वृहद्वल को बीध दिया तथा दो तीखे बाण छोड़ कर उसकी ध्वजा धाराशायी कर दी और सारथी व चक्ररक्षक को मार गिराया। कोसल राज को भी क्रोध आ गया और वह भी तुरन्त क्रुद्ध हो कर अभिमन्यु पर टूट पडा।

कुछ दूरि पर ही भीमसेन से दुर्योधन भिड रहा था। दोनों ही वीर रणाङ्गण मे एक दूसरे पर बाणो की वर्षा कर रहे थे। उन दोनों वीरों के भीषण युद्ध को देख कर सभी को विस्मय हो रहा था। उसी समय दुःशासन महाबली नकुल से संग्राम रत था और दुर्मुख ने सहदेव पर आक्रमण कर रक्खा था। दुर्मुख अपने बाणो के प्रहार से सहदेव को प्रहार करने का होश ही नही लेने देता था। वहुत देरि तक यही गति रही। अन्त मे सहदेव को जोश आया और एक बार दुर्मख के प्रहार को काट कर एक ऐसा तीखा बाण मारा कि दुर्मुख का सारथी तड़प कर गिर पडा। दुर्मुख सहदेव से बदला लेने के विचार से अधिक तीव्रता से लड़ने लगा।

स्वय महाराज युधिष्ठिर शल्य के सामने आये। मामा भानजे का युद्ध दर्शनीय था। मद्रराज शल्य व युधिष्ठिर कितनी ही देरि तक एक दूसरे को प्रहारों को काटते रहे। परन्तु एक बार अनुभवी शल्य ने अपने तीक्ष्ण बाण से महाराज युधिष्ठिर के धनुप ही टुकडे टुकडे कर डाले। धर्मराज ने तुरन्त ही दूसरा धनुप लेकर मद्रराज को वाणो से आच्छादित कर दिया। इस गति को देख कर एक बार तो शल्य के रोगटे खडे हो गए। यह विचित्र बल देख कर उन्हो ने समझ लिया कि धर्मराज को यूँही परास्त नही किया जा सकता। फिर दो योद्धा आपस मे बराबर की टक्कर वाले पहलवानो की भाति भिड गए।

आईये, द्रोणाचार्य के युद्ध पर भी एक दृष्टि डालें। धृष्ट द्युमन द्रोणाचार्य के सामने अडा हुआ है। कितनी ही देरि तक आचार्य द्रोण तथा वीर धृष्ट द्युमन के मध्य बाणो की बौछार होती रही। आचार्य जी के सधे हुए अनुभवी हाथों से कितने ही बाण बरसे पर एक भी धृष्ट द्युमन का कुछ न बिगाड़ पाया। इस पर धृष्ट

द्युमन ने कहा—"गुरुदेव ! कोई चमत्कार तो दिखाईये ।"

इस चुनौती को आचार्य द्रोण ने अपना परिहास समझ कर कुपित हो ऐसा वाण मारा कि धृष्ट द्युमन के धनुष के तीन टुकडे हो गए। ज्यों ही धृष्ट द्युमन ने शीघ्रता से दूसरा धनुष सम्भाला द्रोणाचार्य ने ऐसा काल दण्ड समान बड़ा भीषण बाण मारा कि वह धृष्ट द्युमन के शरीर में जा घुसा परन्तु योद्धा धृष्ट द्युमन को तो जैसे कुछ हुआ ही नही, यदि कुछ हुआ तो इतना कि उसकी रगों वहते रक्त में तूफान सा आगया और उसने विद्युत गति से तडातड़ वाण वर्षा आरम्भ करदी अपने चौदह वाणो से द्राण चार्य को बीध डाला। इस पर द्रोणाचार्य को भी क्रोध आना स्वाभाविक था, उन्होंने भी बिफर कर तुमुल युद्ध आरम्भ कर दिया पर वीर धृष्ट द्युमन तनिक सा भी विचलित न हुआ। वह उसी प्रकार वीरता से लडता रहा।

वीर शङ्ख भी दूसरी ओर युद्ध रत है। उस ने सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा पर धावा किया। भूरिश्रवा भी कुछ कम न था, उस ने शख के धावे का उत्तर तीक्ष्ण वाणो से दिया। क्रुद्ध होकर शंख ने भूरिश्रवा को ललकार कर कहा—"खडा रह ! तुझे अभी बताता हूं। शंख तेरी मृत्यु बन कर आया है।"

उधर भूरिश्रवा ने भी चेतावनी दी—"मैं मृत्यु से टकराना हसी खेल समझता हूं। शंख का काम ही ध्वनि करना, चीखना है, शख बेचारा करता क्या है। कही स्वय अपनी ही मृत्यु का सन्देश तो नही ले आया ?"

इतनी बात पर शंख का खून खोलने लगा। तिल मिलाकर उस ने बड़ा भयंकर युद्ध आरम्भ कर दिया और एक अवसर पाकर उसकी भुजा घायल कर दी। तब भूरिश्रवा प्रति शोध की भावना से ओत प्रोत हो गया, उस ने शंख के गले तथा कंधे के बीच की हड्डी को लक्ष्य बना कर वाण वर्षा की। और शख घायल हो गया। पर दोनों ही उन्मत्त योद्धाओं में भयंकर युद्ध होता रहा।

अन्य योद्धाओं की भाति राजा बाह्लीक भी अपना धनुप ले कर युद्ध में उतर पड़ा। चेदिराज धृष्ट केतु उस के सामने आ डटा।

फिर क्या था ? दोनों वीर भयकर गर्जना करते हुए एक दूसरे से युद्ध करने लगे। सिंह समान गर्जना करते हुए चेदिराज धृष्टकेतु ने नौ बाण छोड कर राजा वाह्लीक को बीध डाला। इस पर बाह्लीक से न रहा गया। क्रुद्ध रणोन्मत्त हाथी की तरह बुरी तरह धृष्टकेतु पर पिल पडा और दोनो मे भीषण सग्राम होने लगा।

राक्षसराज अलम्वुष के साथ क्रूरकर्मा घटोत्कच भिड गया था। दोनों एक दूसरे की टक्कर के दिखाई देते थे। कुछ देर दोनो एक दूसरे को अपने अपने हाथ दिखाते रहे। फिर जब इस प्रकार हाथ दिखाने का कोई परिणाम न दिखाई दिया तो घटोत्कच ने धड धड बाण वर्षा आरम्भ की, जिस से अलम्वुष को अवकाश ही न मिला और वह उन बाणो से छिद गया। पर भला अलम्वुष यह कैसे सहन कर सकता था कि शत्रु उसको छेद कर बिना कुछ घाव खाये रह जाये। उसने भी कुपित होकर तीव्र बाण वर्षा आरम्भ की। और झुकी नोक वाले बाण विशेषतया चलाए जिस से घटोत्कच के शरीर मे कई स्थानो पर रक्त चूने लगा।

उधर शिखण्डी ने जो था तो नपुसक, परन्तु वीरता मे दूसरे वीरो से कम न था, द्रोण पुत्र अश्वस्थामा पर आक्रमण कर दिया। अश्वस्थामा तो उसे नपुसक जान कर अपने बाये हाथ से मार गिराने का दम भरता था, पर जब सामना हुआ तो भ्रम टूट गया और कुछ ही देर के युद्ध से यह बात खुल गई कि शिखण्डी की टक्कर झेलना बच्चो का खेल नही है। परन्तु अश्वस्थामा सोचने लगा कि यदि नपुंसक भी उसे परास्त करदे तो फिर वह मुह दिखाने योग्य भी न रहेगा, इस लिए अश्वस्थामा क्रुद्ध होकर अपने पूर्ण रण कौशल को दिखलाने लगा और उस ने देखते ही देखते अपने तीरो से बीध कर शिखण्डी को अधीर कर दिया। इस से शिखण्डी की भुजाओ का बल भी अगड़ाई लेकर जाग उठा और उसने भी बड़ी तीखी चोटें करनी आरम्भ कर दी। इस प्रकार यह दोनो वीर सग्राम भूमि मे भिन्न भिन्न बाणो का प्रयोग कर भीषण युद्ध करते रहे।

सेनानायक विराट महावीर भगदत्त के मुकाबले पर थे उन

दोनो के मध्य भी घोर युद्ध हो रहा था। जिस प्रकार मेघ पर्वत पर जल बरसाता है, इसी प्रकार विराट ने भगदत्त पर बाण वर्षा की परन्तु भगदत्त ने भी ईंट का जवाब पत्थर से दिया; उस ने उस ने भी अपने बाणों से विराट को ऐसे ही ढक दिया जैसे मेघ सूर्य को आच्छादित कर देते हैं। इस प्रकार दोनों ओर से ही डट कर युद्ध होता रहा।

आचार्य कृप (कृपाचार्य) ने केकयराज वृहत्क्षत्र पर आक्रमण किया। वृहत्क्षत्र भी ताल ठोक कर मुकाबले पर आगया। और दोनों एक दूसरे से जूझने लगे। कृपाचार्य ने इतने बाण चलाये कि एक बार तो केकयराज बाणो की छाव मे खो से गए। तब केकय राज ने अपना शौर्य दर्शाया और उन्हों ने कृपाचार्य को बाण वर्षा मे विलीन कर दिया दोनो योद्धा एक दूसरे का मान मर्दन करने के लिए जीवन का मोह त्याग कर बड़े वेग से युद्ध करने लगे और कुछ ही देरि मे दोनों ने एक दूसरे के सारथी तथा अश्वों को मार डाला। तब विवश होकर दोनों, रथहीन ही, आमने सामने के युद्ध के लिए खड्ग लेकर आ गए। दोनो मे बड़ा ही कठोर तथा भीषण युद्ध होने लगा।

राजा द्रुपद ने जयद्रथ को घेर रक्खा था। दोनों वीरों में भीषण युद्ध हो रहा था। जयद्रथ के तीन बाण द्रुपद को घायल करने में सफल हो गए तब तिल मिला कर द्रुपद ने ऐसे तीक्ष्ण बाण चलाये कि जयद्रथ भी बिंध गया। और फिर दोनो एक दूसरे से बदला लेने के लिए युद्ध करने लगे। विकर्ण ने सुतसोम पर आक्रमण कर दिया दोनो मे युद्ध ठन गया। तब विकर्ण बोला—"सुतसोम! क्या तुम्हारी मृत्यु मेरे ही हाथो होनी है? पहले दिन ही मरने का इरादा है?"

सुतसोम ने गरज कर उत्तर दिया—"मुझे मार डालने की क्षमता तुम जैसे आततायीयों में नही है। हां, यदि तुम्हें मृत्यु इतनी ही प्रिय है तो लो मैं तुम्हारा काल बन कर सामने आगया।"

फिर क्या था, दोनों एक दूसरे पर पिल पड़े। अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर एक दूसरे को मार डालने के लिए तुल गए। पर कोई कम हो तो दाव भी चले। अस्त्र शस्त्र सारे जो उनके पास

थे प्रयोग किए जाने लगे। पर दोनों में से किसी एक ने भी पीछे पैर न हटाया।

महारथी चेकितान सुशर्मा पर चढ आया। परन्तु सुशर्मा ने भीषण बाण वर्षा द्वारा उसे आगे बढने से रोक दिया। तब क्रुद्ध होकर चेकितान ने अपने बाणो की वर्षा से सुशर्मा को ढाक दिया। और सुशर्मा ने उसके बाणो को तोड कर उस पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। दोनो एक दूसरे को पराजित करने के विचार से जी तोड कर लड़ने लगे। शकुनि ने पराक्रमी प्रतिविन्ध्य को घेर लिया। परन्तु युधिष्ठिर पुत्र प्रतिविन्ध्य ने अपने कौशल से शकुनि के घेरे को छिन्न भिन्न कर डाला। सहदेव के पुत्र श्रुत कर्मा ने काम्बोज महारथी सुदक्षिण पर दावा बोला। परन्तु सुदक्षिण ने उसे अपने पैने बाणों से बीध डाला। किन्तु फिर भी वह युद्ध से डिगा नही। और क्रोध मे भर कर अपने बाणो से सुदक्षिण को विदीर्ण सा करता हुआ घोर युद्ध करने लगा। अर्जुन का दूसरा पुत्र इरावान श्रुतायु के सामने आया और क्षण भर में ही अपने जौहर दिखा कर अपने रण कौशल से उस के घोडो को मार डाला। इस पर श्रुतायु ने क्रुद्ध होकर अपनी गदा से इरावान के घोडों को नष्ट कर दिया। फिर दोनो मे घोर द्वन्द्व युद्ध छिड गया।

महारथी कुन्ती भोज से अवन्तिराज विन्द और अनुविन्द का सघर्ष हुआ। वे अपनी अपनी विशाल वाहनियों के सहित सग्राम करने लगे। अनुविन्द ने कुन्ती भोज पर गदा चलाई और कुन्ती भोज ने तुरन्त उसे अपने बाणो के परदे मे ढक दिया। कुन्ती भोज के पुत्र ने बाण बरसा कर बिन्द को व्यथित कर डाला। इस पर कुपित हो कर बिन्द ने उसे अपने बाणों से विदीर्ण कर दिया इस प्रकार उन मे बडा ही विचित्र युद्ध होने लगा। केकय देश के पांच सहोदर राजपुत्र गन्धार देश के पाच राज कुमारों से युद्ध कर रहे थे। साथ ही उन दोनो देशों की सेनाए साकल युद्ध कर रही थी। वीर बाहु राजा विराट के पुत्र उत्तर के सामने पहुच कर आक्रमण पर आक्रमण करने लगा। और कुछ ही देर मे उस ने उसे अपने पैने बाणो से बीध डाला। इस के उत्तर मे राज कुमार उत्तर ने अपने पैने तथा तीक्ष्ण बाणो से उस वीर को व्यथित कर दिया। उधर

चेदिराज ने उलूक पर धावा बोला और बाणो की सावन भादों जैसी झड़ी लगा कर उसे पीडित करने लगा। इस के जवाब में उलूक ने भी अपनी वीरता दर्शाई। गरज कर बोला– "उलूक का सामना करना लोहे के चने चबाना है, तनिक होश सम्भल कर लडो।"

चेदिराज ने सिंह गर्जना करते हुए कहा—"उलूक! यह दिन है दिन। अभी रात्रि का अंधकार नही हुआ। तुम्हें रात्रि में ही चहकना शोभा देता हैं।"

"बस समझ लो कि तुम्हारे सिर पर उल्लू ही बोल गया।"

'ऐसी बात है तो आ जाओ।"

खड्गो की कट कट व खट खट की ध्वनि, धनुषों की टंकारों, अश्वों तथा हाथियों की चिंघाड़े सब मिल कर इतना शोर बन गई थी कि दूर से कोई नही समझ सकता था कि क्या हो रहा है। वीर आपस में इस तरह से लड रहे थे कि उन्हे अपने अतिरिक्त अन्य किसी का पता ही नही था। दूसरी ओर विकट गाड़ियों, तथा वायुयानो के द्वारा एक दूसरे की सेना को भस्म कर डालने की चेष्टाएं हो रही थीं शतघ्नी (तोपे) लगी हुई विकट गाडिया शत्रुओ के वायुयानों को गिरा रही थी। गज सवार से गज सवार, अश्व सवार से अश्व सवार, पैदल से पैदल सैनिक लड रहे थे। इस प्रकार दोनों सेनाओं का बड़ा दुर्धर्ष तथा घमासान युद्ध हो रहा था। इस प्रथम महायुद्ध को देखने के लिए देवता भी दौड आये थे और ऐसा विचित्र भयंकर तथा अभूत पूर्व युद्ध देख कर रोमांचित हो रहे थे। संग्राम भूमि मे लाखों पदाति मर्यादा छोड़ कर समर कर रहे थे। वहां कोई अपना पराया न देखता था कोई एक दूसरे को पहचानता तक न था। शत्रु चाहे भाई ही क्यों न हो, पर उस के प्राण हरने की ही कोशिश की जा रही थी। पिता पुत्र की ओर और पुत्र पिता की ओर न देखता था। इसी प्रकार भाई भाई की, भानजा मामा की, मामा भानजे की ओर मित्र मित्र तक की परवाह न करता था। ऐसा जान पड़ता था मानो वे पूर्व जन्म से ही एक दूसरे के शत्रु रहे होंगे जिन्हें आज दिन वे कसर निकालने का अवसर मिला है।

जब युद्ध यौवन पर आया और मर्यादा हीन तथा अत्यन्त भयानक होगया तो भीष्म के सामने पडते ही पाण्डवों की सेना थर्रा उठी। महाराज युधिष्ठिर ने गरज कर कहा—"हम क्षत्रिय हैं। न्याय के लिए लड रहे हैं एक बार अवश्य ही मरना है। तो फिर मृत्यु से क्यो घबराना। हमें क्या तो प्राण देकर वीर गति को प्राप्त होना या विजय प्राप्त करनी है वीरो आगे बढो। विजय हमारी ही होगी। आज रण भूमि में दिखा दो कि पाण्डव और उन के सहयोगी किसी आततार्ड के आगे घुटने टेकना नहीं जानते। वह देखो विजय श्री वर माला लिए तुम्हारी प्रतीक्षा मे खडी है"

युधिष्ठिर की इस उत्साह वर्धक घोषणा से पाण्डवो की सेना का आत्म बल बढ गया और उन्होने धैर्य से भीष्म जी के नेतृत्व मे लडने वाले योद्धाओ का सामना करना आरम्भ कर दिया। और इस महायुद्ध के प्रथम दारुण दिवस ही अनेको रणबांकुरे वीरो का भीषण सहार हो गया, अनेक बहनो का सुहाग कौरवो की हठ की वेदी पर बलि चढ गया। अनेक शिशु अनाथ हो गए। अनेक माताए निपूती हो गई। फिर भी पाण्डवों की सेना के पैर न उखड़ें पाण्डव बिना इस बात की चिन्ता किए कि कितने उन के सैनिक मौत के घाट उतर गए घमासान युद्ध कर रहे थे तब दुर्योधन की प्रेरणा से दुर्मुख कृतवर्मा, कृपाचार्य, बिविशति पितामह भीष्म के पास चले गए। और इन पाच वीर अतिरथियो से सुरक्षित होकर वे पाण्डवो की सेना मे घुसने लगे। यह देख कर क्रोधातुर अभिमन्यु अपने रथ पर चढा हुआ इन पाचों से रक्षित अपने परम आदरणीय दादा भीष्म जी के सामने आ डटा। और आते ही अपने एक ही पैने बाण से उन के रथ पर फहराती ताड़ के चिन्ह वाली ध्वजा काट कर गिरा दी और फिर इन सभी के साथ युद्ध छेड दिया।

ओह! कितना रोमांचकारी दृश्य था वह। एक ओर अजेय भीष्म पितामह और उन के रक्षक पाच छटे हुए सिद्ध हस्त अनुभवी वीर, और दूसरी ओर एक सोलह वर्षीय कुमार। बच्चा सा वीर बिजली की तरह छओं योद्धाओ पर टूट पडा। वह जानता था कि किन से टक्कर ले रहा है, पर उसे किसी प्रकार की चिन्ता न

थी। वह अपनी पूरी शक्ति लगा कर प्रहार कर रहा था। और थोडी सी ही देरि मे कृतवर्मा को एक बाण से, शल्य को पाच बाणो से, और पितामह को नौ बाणो से बीध दिया। जिस समय भीष्म पितामह के शरीर मे आकर अभिमन्य के तीर चुभे। कृपाचार्य को और शल्य को बड़ा क्रोध आया। शल्य ने कहा— 'देखते ही पितामह ! यह कितना नटखट है, दम्भ मे अन्धा हो गया है। हम बालक समझ कर युद्ध कर रहे है तो यह सिर पर ही चढ़ा आता है मालूम होता है चीटी अपने पख निकाल रही है।"

परन्तु भीष्म पितामह को अभिमन्यु के बाणों से कदाचित कोई पीडा न हुई थी, उन्होने मुस्करा कर कहा—'तुम बालक की शरारत पर क्रुद्ध हो गए ?—अरे ! मेरे हृदय से पूछो, मुझे कितनी प्रसन्नता हो रही है। आज मेरा नन्हा पौत्र हम छ योद्धाओ का इस वीरता से सामना कर रहा है, है ससार मे किसी और कुल के पास ऐसा बाल वीर रण बाकुरा ? मैं चाहता हू अभिमन्यु का साहस इसी प्रकार बढे, यह अद्वितीय बलवान हो। चिरजीवि हो।"

दुर्मुख बोला— 'पितामह ! आप युद्ध करने आये है बालको का साहस बढाने नही। देखिये इस संपोलिए का मुह न कुचला गया तो यह अनर्थ कर देगा। हम सब को मार गिरायेगा "

गम्भीरता पूर्वक भीष्म बोले—"दुर्मुख ! विश्वास रक्खो मे रण भूमि मे कभो किसी को रियायत नही किया करता। पर किसी वीर की शक्ति का गलत मूल्याकन भी नही करता। मैं और तुम सभी तो अभिमन्यु के विरुद्ध पूर्ण शक्ति से लड़ रहे हैं, पर क्या करें इस वीर मे अलौकिक शक्ति है।"

उसी समय अभिमन्यु ने एक बाण भीष्म पितामह के चरणो में गिराकर दूसरा झुकी नोक वाला इस युक्ति से मारा कि दुर्मुख के सारथी का सिर धड से अलग करता हुआ निकल गया। कृपाचार्य ने कुपित होकर अपने विशाल धनुष पर तीक्ष्ण बाण चढाया, पर अभी धनुष की डोरी खीच ही रहे थे कि अभिमन्यु ने एक ऐसा बाण मारा कि कृप के धनुष को दो टूक करता हुआ उनके पैरो में गिर गया। सहसा भीष्म पितामह हंस पड़े और फिर

तुरन्त ही गम्भीर होकर आवेश मे आये और कई प्रकार के बाण चलाने आरम्भ कर दिए। पर रणांगण मे नृत्य सा करते हुए वीर अभिमन्यु ने सभी मुख्य वीरों पर वार किए और सभी के पैने बाणों से अपनी रक्षा की। कई बार तो स्वयं भीष्म जी तथा कृपाचार्य को अपने पर लज्जा आने लगी।

वीर अभिमन्यु का ऐसा हस्तलाघव देखकर देवता लोग भी दांतों तले उगली दबा कर रह गए। वे आखे फाड़ फाड़ कर इस अद्‌भुत युद्ध को देख रहे थे और उनकी सहानुभूति स्वयमेव ही अभिमन्यु के प्रति हो गई थी। स्वयं भीष्म जी अनुभव कर रहे थे कि वीर अभिमन्यु अपने धनुर्धारी पिता अर्जुन से किसी भी प्रकार कम नही है।

इतने मे कृपाचार्य, शल्य तथा कृतवर्मा ने एक साथ मिलकर अभिमन्यु पर तीरो की अबाध गति से भयंकर वर्षा की। जिससे अभिमन्यु का शरीर कई जगह छिप गया परन्तु वह वीर मैनाक पर्वत के समान रण भूमि मे तनिक भी विचलित नही हुआ तथा कौरव वीरो से घिरे होने पर भी उस वीर ने उन पाचो अति रथियो पर बाणों की झड़ी लगा दी और उनके असख्य बाणो से अपनी रक्षा करते हुए उसने भीष्म जी पर बाण मारते हुए भीषण सिंह नाद किया। जिसे सुनकर शल्य के रथ के अश्व विचलित हो गए और भीष्म जी के अश्व काप उठे।

यह देख भीष्म पितामह चिन्तित हो गए और वीर अभिमन्यु को परास्त करने की इच्छा से उन्होने उस समय कितने ही अद्‌भुत और भयानक दिव्यास्त्र सम्भाले और एक के पश्चात एक का प्रयोग करने लगे। कभी अग्नि की लपटें निकलती तो कभी सर्वत्र धुए का बादल छा जाता और कभी पानी सा बिखरने लगता। यह उनका बडा ही भयानक प्रहार था। परन्तु फिर भी वीर अभिमन्यु के मुख पर चिन्ता अथवा भय का भी चिन्ह सग्राम भूमि से दूर ले गया। श्वेत कुमार ने छ बाण चढाकर महारथियो की ध्वजाए तोड डाली और फिर उनके घोडो व सारथियो को भी बीध डाला। फिर नम्बर आया उन महारथियो का। एक भीषण सिंह नाद करके श्वेत कुमार ने उन पर आक्रमण किया। तडातड़ बाण बरसा के

उन्हे भी घायल कर दिया और फिर तेजी से शल्य की ओर बढा। इसे देखकर कौरवों की सेना में बडा कोलाहल मच गया। तब श्वेत को इस प्रकार बढते देख दुर्योधन सेनापति भीष्म जी को आगे करके सारी सेना सहित श्वेत के रथ के सामने आ गया और मृत्यु के मुह मे पडे शल्य को भययुक्त किया। और तब क्या हुआ, बस वर्णन से बाहर की बात है। बडा ही भयकर युद्ध होने लगा तथा भीष्म पितामह, अभिमन्यु भीमसेन, सात्यकि, केकय राज कुमार, धृष्ट द्युम्न, द्रुपद और भेदि तथा मत्स्य देश के राजाओ पर बाणो की भयकर वर्षा होने लगी। चारो ओर से मारो मारो' की ध्वनि आने लगी। धनुष की टकारो, चीत्कारो चिंघाडों आदि की ध्वनि से भीषण वातावरण उपस्थित हो गया।

तब लाखों क्षत्रिय वीर राजकुमार श्वेत की रक्षा में लग गए। उन्होंने भीष्म जी के रथ को चारों ओर से घेर लिया। बडा ही घनघोर युद्ध होने लगा। भीष्म जी का मुख मण्डल लाल अंगारे की नाईं हो गया और उन्होने मारकाट मचाकर अनेक रथ सूने कर डाले उस समय उनका पराक्रम बडा ही अद्भुत था। इधर राजकुमार श्वेत ने भी हज़ारो रथियो को गाजर मूली की भांति काट डाला। और अपने पैने बाणो से हजारों के सिर काट दिए। इस भयकर युद्ध को देखकर और श्वेत द्वारा मारकाट के वीभत्स दृश्य से घबराकर सजय अपना रथ छोड़कर रण भूमि से चले गए और उन्होने सारा वृतात धृतराष्ट्र से जा सुनाया। इस भीषण करा-करी और मारकाट मे भीष्म पितामह ही निश्चल मेरु पर्वत समान खड़े थे। वे अपने दुस्त्यज प्राणों का मोह त्याग कर निर्भीक भाव से पाण्डवों की सेना का सहार कर रहे थे। जब उन्होंने देखा कि श्वेत कुमार बडी तीव्रता व मुस्तैदी से कौरव सेना का सफ़ाया कर रहा था, तो वे स्वय ही उस के सामने आ पहुंचे। परन्तु श्वेत कुमार ने अपने बाणो की वर्षा से एक बार तो भीष्म जी को पूर्णतया ढक लिया। इस के उत्तर में भीष्म जी ने भी भीषण बाण वर्षा की। उस समय यदि भीष्म जी ने रक्षा न की होती तो श्वेत कुमार कौरवो की सारी सेना को नष्ट कर देता और यदि श्वेत न होता तो ऐसा लगता था मानो भीष्म जी एक दिन में ही सारी सेना

को नष्ट-भ्रष्ट कर डालते। जब पाण्डवो ने देखा कि श्वेत ने भीष्म जी का मुह फेर दिया है तो वे बडे प्रसन्न हुए।

परन्तु दुर्योधन चिन्तित हो गया। अत्यन्त क्रोध में भर कर अनेको राजाओं सहित सारी सेना ले कर वह पाण्डवों पर टूट पड़ा और अपने वीरों को ललकारा—"क्या हो गया है तुम्हे गौरव शाली क्षत्रिय वीरो! पाण्डवों को गाजर मूलियों की भांति सफाया करदो। यह तुम्हारे सामने हैं ही क्या ?"

दुर्योधन की इस ललकार से प्रेरित होकर कौरव वीर पाण्डवो पर भूखे सिहों की भाति टूट पडे। उस की प्रेरणा से कृपाचार्य, दुर्मुख, कृतवर्मा और शल्य आदि भीष्म जी की रक्षा करने लगे। परन्तु कुपित श्वेत कुमार ने भयकर युद्ध किया, उस के साथ अन्य पाण्डव पक्षीय वीर भी जी जान तोड़ कर युद्ध कर रहे थे! इस भयानक युद्ध मे देखते ही देखते हजारो वीर सो गए। असख्य रथों के धुर्रे उड गए। हजारों की सख्या मे हाथी और घोड़े ढेर हो कर गिर पडे। श्वेत कुमार ने दुर्योधन की सेना की धज्जिया उडा दी और उसे तितर बितर कर के भीष्म जी पर ही वार कर दिया। इस से दोनो में घमासान युद्ध होने लगा।

राजकुमार श्वेत ने फिर भीष्म जी के रथ की ध्वजा काट कर गिरा दी। भीष्म जी ने कुपित हो श्वेत के रथ के घोडो और सारथी को मार गिराया। तब श्वेत ने अपना शक्ति नामक अस्त्र भीष्म जी पर चलाया परन्तु भीष्म जी ने अपने बाणो से उस का अस्त्र बीच ही मे रोक दिया।

इस पर श्वेत ने भारी गदा उठा कर जोरो से घुमाई और भीष्म जी के रथ पर ज़ोरो से दे मारी। देखते ही देखते भीष्म जी ने रथ से कूद कर अपने प्राणो की रक्षा की श्वेत की गदा के प्रहार से भीष्म जी का रथ चकनाचूर होगया। भीष्म जी क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गए और एक दिव्य बाण खींच कर श्वेत को जोरो से मारा। उस बाण के लगते ही विराट कुमार धाराशायी होगया, उस के प्राण पखेरु उड गए। यह देख दुःशासन ने बाजे बजवा दिए और हर्ष के मारे नाच उठा। परन्तु भीष्म जी का हाथ रुका नहीं उन्हो ने श्वेत की मृत्यु के बाद पाण्डवों की सेना

में प्रलय मचा दी।

पहले रोज की लडाई मे पाण्डव सेना बहुत तंग आ गई। धर्मराज युधिष्ठिर के मन मे भय छा गया। दुर्योधन आनन्द के मारे झूम रहा था।

सूर्य की यात्रा पूर्ण हुई। पश्चिम के सूर्य के अन्तिम चरण लाल बादलो के रूप मे प्रगट हुए और युद्ध बन्द होने के बाजे बज गए। दोनों सेनाएं अपने अपने डेरों मे चली गई। पाण्डव घबरहट के साथ श्री कृष्ण के डेरे मे गए और युद्ध की चिन्ता जनक स्थिति से पार उतरने का उपाय सोचने लगे।

श्री कृष्ण ने धैर्य बन्धाते हुए कहा—"आप व्यर्थ ही चिन्ता करते है, आप पांचों के रहते, पाचाल तथा मत्स्य देश की विशाल सेना के होते हुए आप की पराजय हो जाये, यह असम्भव है। आप विश्वास रखिये कि विजय आप की ही होगी युद्ध मे तो ऐसा होता ही है कि कभी शत्रु आगे बढता है, कभी पीछे हटता है। आप चिन्तित न हो।"

"परन्तु भीष्म जी के रहते हमारी विजय कैसे हो? वे तो अकेले ही हमारी समस्त सेना का मुकाबला कर रहे है।"—धर्म राज ने कहा!

श्री कृष्ण ने अपनी बात पर जोर देते हुए कहा—"भीष्म जी भी सदा नही रहेंगे। आप लोग यह क्यो भूलते है कि शिखण्डी भीष्म जी को मारने के लिए ही पैदा हुआ है।"

बात चीत के उपरान्त दूसरे दिन के युद्ध की योजना बनी।

* तैतीसवां परिच्छेद *

दूसरा दिन

पहले दिन जो पाण्डव सेना की दुर्गति हुई थी, उससे सबक लेकर पाण्डव सेना के नायक धृष्ट द्युमन ने दूसरे दिन बडी सतर्कता से व्यूह रचना को और सैनिकों का साहस बधाया।

युद्ध आरम्भ होते ही कौरव सेना ने भीष्म पितामह के सेना पतित्व मे पुनः पाण्डव सेना पर आक्रमण किया। भीषण युद्ध होने लगा। एक बार के भयकर आक्रमण से पाण्डवो की सेना तितर बितर हो गई। बडा हाहाकार मच गया। असख्य वीर मौत के घाट उतारे जाने लगे।

यह देख अर्जुन ने श्री कृष्ण को अपना रथ भीष्म जी की ओर ले चलने की आज्ञा दी। अर्जुन का रथ ज्यो ही भीष्म जी के रथ के सामने पहुचा, दुर्योधन की आज्ञा से कौरव सेना के प्रमुख वीरो ने भीष्म जी की रक्षा के लिए उन के रथ को चारो ओर से घेर लिया। भीष्म जी ने अर्जुन के ऊपर भयंकर बाण वर्षा की। परन्तु अर्जुन को तनिक भी चिन्ता न हुई। उस ने बड़े वेग से आक्रमण किया और कुछ ही देर मैं भीष्म जी के चारो ओर की रक्षा पक्ति को तोडता हुआ भीष्म जी के सन्मुख पहुच गया। यह देख कर दुर्योधन का भीष्म जी पर से एक बारगी विश्वास उठ गया। भय विह्वल होकर वह बोला—"प्रतीत होता है कि आपके और द्रोणाचार्य के जीते जो अर्जुन सारी कौरव सेना को मौत के

घाट उतार देगा। महारथी कर्ण ने, जो मुझ से स्नेह रखता है, आप ही के कारण हथियार न उठाने का प्रण कर रक्खा है। जान पडता है उस की अनुपस्थिति में मुझे निराशा का ही सामना करना होगा। आप की शक्ति कहां गई। कोई उपाय बताइये, कुछ कीजिए। किसी भांति अर्जुन को मौत के घाट उतारिये।''

इन कटु वचनों से भीष्म को बडा क्रोध आया और जोश में आकर उन्होंने अर्जुन पर भयकर आक्रमण कर दिया। उस समय भीष्म तथा अर्जुन मे ऐसा भयकर युद्ध हुआ कि आकाश में स्वय देवता उसे देखने के लिए एकत्रित हो गए।

दोनो वीरों मे तुमुल युद्ध हो रहा था। सभी प्रकार के अस्त्र शस्त्र चल रहे थे। दोनो के रथ इस प्रकार आपस मे युद्ध रत थे कि केवल ध्वजा को पहचान कर ही जाना जा सकता था कि कौन कहां है। भीष्म जी के कुछ वाण श्री कृष्ण के लगे और उन के श्याम वदन से रक्त वह निकला। इस से अर्जुन कुपित हो गया और भीष्म जी पर बुरी तरह टूट गया।

इधर द्रोणाचार्य से धृष्ट द्युमन लड रहा था। दोनों में भयंकर सग्राम हो रहा था। द्रोणाचार्य के वारों से धृष्ट द्युमन तनिक न घबराया तब झूझला कर द्रोणाचार्य ने उस के सारथी को मार डाला। इस से धृष्ट द्युमन को बहुत क्रोध आया और भारी गदा लेकर द्रोणाचार्य के रथ पर टूट पडा। परन्तु द्रोण ने अपने वाणों के प्रहार से धृष्ट द्युमन का गदा का वार ही न ठीक बैठने दिया। तब धृष्ट द्युमन ने तलवार सम्भाली और द्रोण पर झपटा। द्रोण ने इतने वाण मारे कि धृष्ट द्युमन के शरीर मे अनेक घाव लगे और वह चलने योग्य भी न रहा। यह देख भीमसेन उसी समय वहा पहुंचा और धृष्ट द्युमन को अपने रथ मे बिठा लिया और तुरन्त बडे वेग से द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण के कारण द्रोणाचार्य थोडी देर के लिये अपने स्थान पर रुक गए। भीम अपने रथ को लेकर रण भूमि से बाहर चलने लगा। दुर्योधन ने उसे देख लिया। तो कलिंग देश की सेना को उस ने भीमसेन पर आक्रमण का आदेश दिया। जब कलिंग सेना ने आक्रमण किया तो भीमसेन ने उस के उत्तर में ऐसा आक्रमण किया कि थोडी ही

देर में कलिंग सेना में हाहाकार मच गया और सैनिक यह कहने लगे कि कहीं यमराज ही तो भीम सेन के रूप में नहीं आगए एक बार सेना में निराशा छा जाने से सारी सेना भाग खड़ी हुई। यह देख भीष्म जी अर्जुन के मुकाबले से हट कर भीम सेन की ओर बढ़े। सात्यकि, अभिमन्यु आदि पाण्डव वीर उस समय भीमसेन की रक्षा को दौड़ पड़े और भयंकर युद्ध होने लगा। जिस के कारण कौरव सेना का साहस टूट गया और सैनिक पश्चिम की दिशा में देखने लगे और सूर्य के अस्त होने की कामना करने लगे।

निर्दय सूर्य अस्त हुआ। सन्ध्या हुई। तो भीष्म द्रोणाचार्य से बोले—"आचार्य ! अब युद्ध रोकना ही होगा। आज हमारी सेना का साहस टूट गया है।"

युद्ध बन्द होगया और अर्जुन आदि पाण्डव वीर विजय के बाजे बजाते हुए अपने डेरों में चले गए। कल पाण्डव सेना में जो आतंक छाया था वह आज कौरव सेना में छा गया।

* चौंतीसवां परिच्छेद *

युद्ध का समय होने पर भीष्म जी ने अपनी सेना की गरुड के आकार में व्यूह रचना की और उसके अगले सिरे का बचाव दूर्योधन के जिम्मे किया कल हुई क्षति को ध्यान मे रखकर आज की व्यूह रचना सतर्कता से की गई थी। शत्रु सेना की व्यूह रचना देखकर धृष्ट द्युम्न ने अपनी सेना की व्यूह रचना अर्ध चन्द्र के आकार पर की। एक सिर पर अर्जुन तथा दूसरे पर भीमसेन रक्षा के लिए खड़े हो गए।

व्यूह रचना के उपरान्त युद्ध आरम्भ होने का बाजा बजा और फिर दोनों सेनाए एक दूसरे पर आक्रमण करने लगी। आज दोनों ओर की सैनिक टुकड़िया इस प्रकार एक दूसरे मे गुथ गई और उनमे इस प्रकार भीषण सग्राम होने लगा कि रथो, घोड़ों और हाथियों के तेज चलने के कारण इतनी धूल उड़ी कि गर्द के मारे आकाश मे दीप्तिमान सूर्य भी न दिखाई देता था। अर्जुन ने शत्रु सेना पर भयकर आक्रमण किया फिर भी वह शत्रु सेना का घेरा न तोड़ सका। दूसरी ओर से कौरवो ने भी एक साथ मिलकर अर्जुन पर आक्रमण किया। टिड्डी दल की भाति अपनी ओर आती कौरव सेनाओं को देखकर अर्जुन ने बड़े वेग से बाण बरसाये और चारों ओर बाण बरसा कर अपने चारो ओर बाणो ही बाणों का एक घेरा सा बांध दिया जिससे कौरव सेनाओ के द्वारा चलाए गए

भीपण शस्त्र अस्त्रो का प्रहार बीच ही मे कट गया।

उधर दूसरी ओर शकुनि को भारी सेना सहित पाण्डवो की ओर बढते देखकर अभिमन्यु और सात्यकि उसके मुकाबले पर जा डटे। शकुनि ने बडी रण कुशलता दिखाई और सात्यकि का रथ तहस नहस कर दिया तब सात्यकि बडे जोश मे आ गया और अभिमन्यु के रथ पर चढकर शकुनि की सेना पर भयंकर आक्रमण करके उसकी सेना को नष्ट कर डाला।

युधिष्ठिर जिस सेना का संचालन कर रहे थे उस पर भीष्म और द्रोणाचार्य एक साथ टूट पडे। यह देख नकुल तथा सहदेव दोनों युधिष्ठिर की सहायता के लिये दौड पड़े और बाणो का भयकर प्रहार कर दिया। भीम तथा घटोत्कच ने एक साथ दुर्योधन पर आक्रमण किया। घटोत्कच के रण कौशल के सामने भीमसेन की चतुराई तथा रण कौशल भी फीके पड़ गए भीमसेन के एक बाण से दुर्योधन धक्का खाकर बेहोश हो गया। यह देख सारथी ने सोचा कि यदि कही कौरव सेना को दुर्योधन के मूर्च्छित होने का पता चल गया तो सेना मे खलबली मच जायेगी, इस लिए वह शीघ्र ही दुर्योधन के रथ को रण क्षेत्र से दूर ले गया। परन्तु जब कौरव सेना ने दुर्योधन का रथ न पाया तो सेना समझी कि दुर्योधन रण से भाग गया, इस लिए सारी सेना मे हाहाकार मच गया और सेना तितर-बितर हो गई।

भय विह्वल होकर रण से भागते कौरव सैनिको का भीमसेन ने पीछा किया और उन्हे बाण मार कर बहुत ही परेशान किया।

भागती सेना को भीष्म तथा द्रोणाचार्य ने बडी कठिनाई से रोका और उसे एकत्रित करके पुन. व्यूह रचना की। इतने मे दुर्योधन की मूर्छा भग हो गई और उसने पुन रण स्थल पर आकर परिस्थिति को सम्भालने मे सहयोग दिया। जब जरा शांति हुई और सेना व्यवस्थित हो गई तो दुर्योधन पितामह भीष्म के पास गया और इन्हे जली कटी सुनाने लगा। बोला—

"आप और आचार्य जी करते क्या है आप लोग अपनी सेना को भी व्यवस्थित नही रख पाते। जब भयकर आक्रमण होता है

तो आप की सेना की व्यवस्था भग हो जाती है और आप से कुछ करते नही बनता ? आप के अन्दर इतनी शक्ति है कि आप चाहें तो पाण्डवो को एक दिन मे भगा सकते हैं, परन्तु आप से कुछ होता ही नही। इस का मतलब है कि आप पाण्डवो से स्नेह रखते हैं और वह स्नेह ही आपको हृदय से लडने नही देता। यदि यही बात थी तो आप ने पहले ही क्यो न कह दिया कि मैं पाण्डवो से नही लड़ सकता। एक तो आप के कारण कर्ण युद्ध मे नही उतर रहा। दूसरे आप और द्रोणाचार्य, जब कि चाहे तो पाण्डवो को मार भगा सकते हैं. पाण्डव हमारी सेना को मारे डाल रहे हैं। आप को जी लगा कर युद्ध करना चाहिए।"

दुर्योधन की बात सुनकर भीष्म जी को बडा क्रोध आया और वे बोले—"मैंने अपनी बात छिपाई ही कहा है ? मैंने तो पहले ही कहा था कि तुम पाण्डवो से नहीं जीत सकते। पर तुम नें मेरी सुनी भी हो। मैं वृद्धा हो गया हू फिर भी तुम्हारी ओर से जी जान तोडकर लड रहा हूं। पर पाण्डवो की शक्ति के सामने कुछ बन नहीं पा रहा इसमे मेरे पाण्डवो के प्रति स्नेह को बिल्कुल दखल नही।"

इतना कहकर भीष्म ने पुनः युद्ध आरम्भ कर दिया।

इधर दिन के पहले भाग मे कौरव सेना तितर बितर हो जाने से पाण्डवो मे हर्ष छाया था। सारी सेना आनन्दित थी। पाण्डवों का विचार था कि आज भीष्म पुनः कौरव सेना को एकत्रित करके भयकर रूप मे न लड पायेंगे। परन्तु जब भीष्म जी ने कौरव सेना व्यवस्थित करके पुनः आक्रमण किया और क्रोध मे आकर भयंकर रूप में लड़े तो पाण्डवो को अपने भ्रम का ध्यान आया। जो वीर भीष्म जी के सामने आया, वही ढेर हो गया। भीष्म जी जिधर से निकलते मारकाट करते चले जाते। पाण्डव सेना की व्यवस्था भग हो गई और श्री कृष्ण, अर्जुन तथा शिखण्डी भी अपने प्रयत्नों के बावजूद सेना में अनुशासन तथा व्यवस्था न रख सकें।

यह देख श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा —"पार्थ ! अब तुम्हारी परीक्षा का समय आ गया। तुम ने शपथ ली थी न कि भीष्म द्रोण आदि गुरु जनों, मित्रों और सम्बन्धियों का सहार करूगा। अब

समय आ गया है कि अपनी शपथ को पूरा कर दिखाओ। हमारी सेना इस समय भय विचलित हो रही है उन के पाँव उखड़ रहे है. यही समय है कि भीष्म पर जोर का आक्रमण कर के अपनी सेना का साहस बढाओ और उसे नष्ट होने से बचाओ।"

अर्जुन ने यह सब देखा और श्री कृष्ण की बात सुन कर बोला—"माधव ! आप रथ को भीष्म जी की ओर कर लीजिये।"

अर्जुन को अपनी ओर आता देख भीष्म जी ने भयंकर वेग से बाण वर्षा आरम्भ करदी। परन्तु अर्जुन ने अपने बाणों के द्वारा ही उन बाणो से अपनी रक्षा की और अन्त मे तीन बाण ऐसे मारे कि भीष्म जी का धनुष टूट गया उन्होंने ज्यों ही दूसरा धनुष लेकर उसकी डोरी चढानी चाही कि अर्जुन ने पुनः दो बाणों से उन के हाथ के धनुष को तोड डाला। तब भीष्म जी ने शीघ्रता से तीसरा धनुष लेकर अर्जुन पर तड़ातड तीन बाण चलाये परन्तु अर्जुन ने उन्हे बीच ही मे काट दिया। फिर भीष्म जी की ओर से बाणो की वर्षा होने लगी अर्जुन अपनी रक्षा तो करता रहा, परन्तु उसकी ओर से कोई आक्रमण कारी बाण न छूटने के कारण श्री कृष्ण को सन्देह हुआ कि अर्जुन के हृदय मे भीष्म जी के प्रति जो असीम श्रद्धा है, उसी के वशी भूत हो कर वह अपनी पूरी शक्ति से नही लड पा रहा। उधर भीष्म जी के कई ऐसे तीखे बाण आये जो श्री कृष्ण को चोट पहुंचा गए यह देख श्री कृष्ण ने इस प्रकार रथ को घुमा फिरा कर हाका कि भीष्म जी का कोई भी तीर अर्जुन अथवा उन्हे न लगे। कितनी ही देरि तक यह चलता रहा पर अर्जुन अपने बाणो का प्रयोग आत्म रक्षा मे ही कर पाया। यह देख क्रुद्ध होकर श्री कृष्ण सुदर्शन चक्र लेकर रथ से कूद पडे और शीघ्रता से भीष्म जी की ओर दौडे ! भीष्म ने जब श्री कृष्ण को आक्रमण करने आते देखा, वे तनिक भी विचलित न हुए। परन्तु जब अर्जुन ने उन्हे देखा तो वह रथ से कूद पडा और दौड कर उन्हे रोक लिया। कहा—"मधु सूदन ! आप अपनी प्रतीज्ञा क्यो भग करते हैं आप शस्त्र क्यो उठाते है ?"

श्री कृष्ण ने कहा—"हटो अर्जुन ! तुम युद्ध मे अपने बडो का आदर करते हुए लड नहीं पा रहे तो क्या मैं भी पाण्डव सेना को

अर्जुन ने विनीत भाव से कहा—"मधुसूदन ! मुझे क्षमा कीजिए, मैं अपनी सुस्ती पर बहुत लज्जित हूं। आप रथ पर चलिए, अब आपको कोई शिकायत नहीं रहेगी।

अर्जुन के बार बार आश्वासन देने पर श्री कृष्ण लौटकर रथ पर आ बैठे और सतर्कता से रथ हाकने लगे।' अर्जुन पूरे वेग से युद्ध करने लगा। उसने ऐसा आक्रमण किया कि कौरवो की सेना तितर बितर हो गई। सूर्यास्त होते होते कौरव सेना थक कर चूर हो चुकी थी और अर्जुन ने कुछ ही देरि मे हजारों शूरवीरो को मार गिराया था।

* पैंतीसवां परिच्छेद *

चौथा दिन

पौ फटी और भीष्म ने कौरव सेना का पुनः व्यूह रचा। द्रोण, दुर्योधन आदि भी उन्हें घेरकर खड़े हो गए। जब सेना की व्यवस्था ठीक हो गई तो भीष्म जी ने सेना को आगे बढ़ने का आदेश दिया। उधर अर्जुन कपि की ध्वजा वाले रथ से भीष्म जी की समस्त गतिविधियों को देख रहा था, उसने भी अपनी सेना को ठीक किया और आगे बढा। युद्ध आरम्भ हो गया।

अश्वस्थामा, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन, शल-पुत्र आदि पांच वीरों ने अभिमन्यु को एक साथ घेर लिया और भीषण वार करने लगे। परन्तु अर्जुन पुत्र बालक वीर अभिमन्यु तनिक भी विचलित न हुआ और आक्रमण का वीरता पूर्ण दृढता के साथ मुकाबला करने लगा। मानो एक सिंह शावक हाथियों के झुण्ड का मुकाबला कर रहा हो। अर्जुन ने जब यह देखा तो उसे बडा क्रोध आया और तुरन्त ही अभिमन्यु की रक्षा के लिए पहुंच गया। अर्जुन के पहुंचते ही युद्ध में गम्भीरता आ गई। इतने में धृष्ट द्युम्न भी भारी सेना लिए वहां आ पहुंचा।

शल का पुत्र मारा गया, यह सूचना पाते ही शल और शल्य उस स्थान पर जा पहुंचे और धृष्ट द्युम्न पर बाणों की वर्षा करने लगे और उन्होने उसका धनुष काट डाला। यह देखकर अभिमन्यु धृष्ट द्युम्न की सहायता के लिए पहुंच गया और उसने जाते ही शल्य पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा कर दी। फिर क्या था शल्य भी

उबल पड़ा। वह बड़े ही भयंकर रूप में युद्ध करने लगा, इस से अभिमन्यु को क्रोध आ गया और उसने जो तीक्ष्ण बाण वर्षा करके भयानक युद्ध छेड़ा तो शल्य के प्राणों पर आ बनी। यह देख कौरव वीरों को चिन्ता हुई। दुर्योधन और उसके भाई शल्य की रक्षा के लिए आये और शल्य को चारों ओर से घेर कर पाण्डव वीरों से लड़ने लगे। तभी भीमसेन आ निकला और उसने भीषण संग्राम आरम्भ कर दिया। दुर्योधन को भीमसेन पर बड़ा क्रोध आया और उसने हाथियों की भारी सेना लेकर उन्मत्त गज समान भीमसेन पर आक्रमण कर दिया। भीमसेन उसी समय एक लोहे की भारी गदा लेकर रथ से कूद पड़ा और भीमसेन की गदाओं की मार से हाथी बिगड़ खड़े हुए और आपस मे ही लड़ने लगे। वह दृश्य बड़ा ही वीभत्स हो गया। हाथियो की यह दयनीय दशा देखकर पाण्डवो ने उन पर बाण वर्षा कर दी जिससे हाथी और भी भयभीत हो गए।

और लोग हाथियों की इस दशा को देखकर ही कांप जाते, परन्तु भीमसेन गदा लिए हुए उन हाथियो के बीच ही युद्ध कर रहा था। अनेक हाथी भीमसेन के हाथों मारे गए और पहाड़ो की भांति रण भूमि मे गिर पड़े। बचे खुचे हाथी अपने प्राण लेकर भागने लगे और इस प्रकार कौरवो की सेना का ही नाश करने लगे।

अपनी इस दुर्गति का कारण भीमसेन को समझ कर दुर्योधन ने अपनी सेना को ललकार कर आदेश दिया कि सभी मिलकर एक साथ भीमसेन पर आक्रमण कर दो। सेना ने आज्ञा का पालन किया, परन्तु भीमसेन मेरु पर्वत के समान डटा खड़ा रहा। सेना उसका कुछ न बिगाड सकी, उल्टे कितने ही कौरव वीर भीमसेन के हाथो मारे गए।

इधर दुर्योधन ने कुछ बाण ऐसे मारे कि भीमसेन के ऊपर आ लगे। इस से भीमसेन कुपित हुआ और दुर्योधन तथा उसके भाईयों पर आक्रमण करने हेतु पुन. रथ पर आ चढ़ा और आक्रमण कर दिया। फिर इतना भयंकर युद्ध किया कि दुर्योधन के आठ भाई मारे गए।

उधर घटोत्कच ने जब देखा कि कौरव वीर इकट्ठे होकर

भीमसेन को घेर लेना चाहते है, उन मे भीष्म जी भी हैं, तो वह क्रुद्ध होकर अपने दिव्यास्त्र चलाता हुआ उनके सामने जा अड़ा। भीष्म जी ने कितना ही भयकर युद्ध किया पर वे घटोत्कच से छुटकारा न पा सके। बल्कि भीष्म जी के साथ साथ रहने वाले कुछ कौरव-भ्राता मारे गए।

सारे दिन कौरव वीर पिटते ही रहे और भीमसेन तथा घटोत्कच दोनो ही प्रमुख पाण्डव वीर थे जिन्होने कौरवों को होश न लेने दिया।

जब सूर्यास्त हुआ, तो दुर्योधन ने सुख की सास ली। थका माँदा अपनी सेना लेकर अपने कैम्प की ओर चला गया। रात्रि को वह अकेले ही भीष्म पितामह के पास चला गया और बड़ी नम्रता के साथ उन से जाकर कहा—"पितामह! यह तो सारा ससार जानता है कि आप, द्रोण, कृप, अश्वस्थामा, कृत वर्मा, भूरिश्रवा, विकर्ण, भगदत्त आदि साहसी वीर मृत्यु से भी नही डरते। इस मे भी कोई सन्देह नहीं कि आप लोगो की शक्ति और पराक्रम के सम्मुख पाण्डवो की सेना भी कुछ नही है। आप मे से एक एक के विरूद्ध पाचो पाण्डव भी इकट्ठे होकर जुट जाएं, फिर भी जीत उनकी नहीं हो सकेगी। इतना होने पर भी क्या कारण है कि कुन्ती पुत्र प्रतिदिन हमे हराते ही जाते है। जरूर इसमे कोई रहस्य है. क्या है? कृपया उसे मुझे बताईये।"

भीष्म जी ने शात भाव से कहा—"बेटा दुर्योधन! मैंने तुम्हे कई बार समझाया, पर तुम ने मेरी एक न मानी। मैं फिर कहता हू पाण्डवो से सन्धि कर लो। पाण्डवो के मुकाबले पर एक बार यदि देवतागण भी आ जाए तो भी वे परास्त नही हो सकते। क्योंकि वे अपनी शुभ प्रकृति और धर्म नीति के कारण अजेय हैं। वे न्याय की ओर है और तुम्हारा पक्ष अन्याय का है। श्री कृष्ण वासुदेव उनके साथ हैं। धर्मराज युधिष्ठिर के शुभ कर्मों का फल उन्हे अवश्य ही मिलेगा। तुम सन्धि करके थोड़ा सा उनका राज्य लौटा दो तो वे तुम्हारे भाई हो रहेंगे, तुम फिर भी राजा ही रहोगे और सर्वनाश से बच जाओगे। एक कुल के लोग होकर क्यों लड़ते हो। धर्मराज तथा श्री कृष्ण के मुकाबले हम जीत ही नहीं सकते। उनकी रक्षा उनका धर्म कर रहा है। बस यही रहस्य है।"

उस दिन दुर्योधन को क्रोध नही आया। शांत होकर अपने शिविर मे चला गया। पलग पर लेटा हुआ बड़ी देर तक अपने विचारों मे डूबा रहा। उसे नींद नही आई।

---

* छत्तीसवां परिच्छेद *

अगले दिन प्रात: होने पर ही फिर दोनो सेनाएं युद्ध के लिए सज्जित हो गई। भीष्म जी ने आज और भी अच्छी तरह अपनी सेना की व्यूह रचना की। इधर युधिष्ठिर ने पाण्डव सेना की कुशलता पूर्वक व्यूह रचना की। सदा की भांति आज पुन: भीम सेन को आगे रखा गया। शिखंडी, धृष्ट द्युम्न और सात्यकि भीमसेन के पीछे सेना लेकर खड़े हुए। सब से पिछली पंक्ति मे युधिष्ठिर नकुल और सहदेव थे।

शंख ध्वनि के साथ लड़ाई हुई। भीष्म ने धनुष उठा कर पहली टंकार की और बाण वर्षा कर के पाण्डव सेना का नाकों दम कर दिया। सेना में हाहाकार मच गया यह देख कर धनंजय ने कई बाण भीष्म जी पर मारे और उन्हें बहुत तंग कर डाला। आज भी अपनी सेना को भीम तथा अर्जुन के बाणो के हत प्रभ होते देख दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को बहुत बुरा भला कहा। रुष्ट होकर द्रोण बोले—

"तुम पाण्डवों के पराक्रम से परिचित ही नही हो और व्यर्थ ही में बक झक किया करते हो। मैं अपनी ओर से युद्ध मे कोई कसर नहीं रखता तुम निश्चय जानो।"

यह कह कर द्रोणाचार्य पाण्डवों की सेना पर टूट पड़े। यह देख सात्यकि ने भी शक्ति पूर्वक उस आक्रमण का जवाब दिया।

भयानक युद्ध छिड़ गया। सात्यकि भला द्रोणाचार्य के सामने कब तक टिकता। सात्यकि को बुरी गत होते देख भीमसेन उस की सहायता को दौड़ आया और द्रोणाचार्य पर आते ही भयंकर बाण वर्षा आरम्भ करदी।

इस पर युद्ध और जोर पकड़ गया। द्रोण, भीष्म और शल्य तीनों भीमसेन के मुकाबले पर आगए। यह देख शिखंडी ने भीष्म तथा द्रोण दोनो पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी शिखंडी के मैदान मे आते ही भीष्म रण भूमि छोड़ कर चले गए। क्योंकि उनका कहना था कि शिखण्डी जन्म से ही पुरुष न होकर स्त्री है इस लिए उसके साथ लड़ना क्षात्र-धर्म के विरुद्ध है।

जब भीष्म भी मैदान छोड़ गए तो द्रोणाचार्य ने शिखंडी पर आक्रमण कर दिया। महारथी होते हुए भी शिखंडी द्रोणाचार्य के सामने अधिक देर न टिक सका।

दोपहर तक भीषण संकुल युद्ध होता रहा। दोनों ओर के सैनिक आपसे मे गुत्थम-गुत्था होकर लड़ने लगे। दोनों ओर से असख्य वीर इस युद्ध को बलि चढ गए।

तीसरे पहर दुर्योधन ने सात्यकि के विरुद्ध एक भारी सेना भेज दी। पर सात्यकि ने उस सेना का सर्वनाश कर दिया और भूरिश्रवा को खोज कर जा कर उस से भिड़ गया। परन्तु भूरिश्रवा भी कोई कम वीर न था. वह भी डटा रहा और अन्त मे सात्यकि के सभी साथी थक कर अलग हो गए। अकेला सात्यकि डटा रहा। यह देख कर सात्यकि के दसों पुत्र भूरिश्रवा पर टूट पड़े। -

परन्तु भूरिश्रवा तनिक भी विचलित नही हुआ। उन की एक साथ की गई बाण वर्षा से वह अपनी रक्षा करता रहा और अन्त मे अपने बाणो से उन सभी के धनुष तोड डाले और अचानक ही एक ऐसा भयकर अस्त्र प्रहार किया कि दसों कुमार मारे गए। वे दसो भूमि पर ऐसे गिरे जैसे वज्र गिरने पर पेड़ धाराशायी हो जाते है। अपने दसो पुत्रो को इस प्रकार मृत देख सात्यकि मारे शोक व क्रोध के आपे से बाहर हो गया और भूरिश्रवा पर टूट पड़ा, दोनो के रथ आपस मे टकराकर चूर हो गए। तब दोनो ढाल तलवार लेकर भूमि पर लडने लगे। इतने मे भीमसेन तेज़ी से रथ लेकर आया और सात्यकि को बलपूर्वक रथ मे बैठाकर रण भूमि

से बाहर ले गया। भूरिश्रवा तलवार का धनी था, उसके सामने खड्ग युद्ध में किसी का टिक पाना दुर्लभ ही था, भीमसेन को यह बात ज्ञात थी, इसीलिए वह सात्यकि को रणक्षेत्र से बाहर ले गया।

सन्ध्या होते होते अर्जुन ने हजारों कौरव सैनिकों का जीवन समाप्त कर दिया। जितने वीर दुर्योधन ने अर्जुन से लड़ने भेजे वे बेचारे सभी बेबस होकर मरे जैसे आग मे कीड़े। यह देखकर पाण्डव सेना ने अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया और जोर का जय जयकार कर उठे। उधर सूरज डूब गया और भीष्म ने युद्ध बन्द कर देने की आज्ञा दे दी।

* सैतीसवां परिच्छेद *

छटा दिन

महाभारत के युग में सैन्य व्यूहो के नाम पशु अथवा नाम पर होते थे। आप जानते ही होगे कि व्यायाम मे प्रचलित हैं उनके नाम भी पशु पक्षियों के नाम पर जैसे मत्स्यासन, गरुड़ासन आदि। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त नाम भी उसी युग की यादगार है। हां अब रचना आजकल उस युग के समान नही होती, सेना और विज्ञान के नवीन चमत्कारो के साथ साथ और सैन्य व्यवस्था मे भी बहुत परिवर्तन आ गया है भूरिश्रवा सात्यकि

उन दिनो किसी व्यूह विशेष की रचना कर रहा। रखा जाता था कि सेना का फैलाव कैसा हो विभागो का विभाजन किस प्रकार हो ? किस स्थान की भाग किस के नेतृत्व मे रक्खा जाये ? कौन कौन और किन-किन मुख्य स्थानो पर सैन्य सचालन को ? सेनानायक के लिए अवसर आने पर कौन जा सकता है ? इत्यादि। बातो को खूब सोच विचार कर और शत्रु सेना के योद्धाओं उनके आक्रमण आदि का विचार करके आक्रमण तथा बचाव दोनो प्रकार की कार्रवाइयो की कुशल व्यवस्था करना ही व्यूह रचना कहलाती थी।

...ह का आकार गरुड के आकार का होता ...र जो मगरमच्छ के आकार का होता युद्ध के ...लक जिस दिन जो उद्देश्य

लेकर युद्ध करते. उसकी पूर्ति के लिए आवश्यक प्रबन्ध करते और पहले ही योजना बनाकर व्यूह रचना करते थे।

—तो उस दिन ज्यों ही रात्रि का घूघट उठा और सूर्य की रूपहली किरणों का मुखडा दिखलाई दिया, दुर्योधन अपने शिविर से निकल कर भीष्म जी के शिविर की ओर बढा। उसके मुख पर चिन्ता की रेखाएं स्पष्ट थीं, वह कुछ सोच रहा था और उसके भारी नेत्रों को देखकर यह स्पष्ट हो जाता था कि वह रात्रि को सो नही पाया है। विचारों में डूबा हुआ वह चला जा रहा था, कभी उसके चेहरे पर शोक एवं दुःख के भाव झलक आते तो कभी क्रोध तथा आवेश उसके वदन पर प्रतीत होता। विभिन्न भावनाओं के ज्वार भाटे में डूबता उछलता दुर्योधन भीष्म जी के पास पहुंचा। ...तामह दैनिक कार्यों से निवृत होकर अपनी सैन्य पोशाक पहन ...े। ज्यों ही मुह लटकाए दुर्योधन को अपने सामने पाया ... 'आज प्रात: ही दुखित मुद्रा लिए आ रहे हो क्या बात है?"

...ा जी! आप मुझ से ऐसा प्रश्न कर रहे हैं, मानो ... पता हो नही है। आप मेरे मन की व्यथा को जानते ... कर रहे हैं। इतना कटु परिहास न कीजिए।"— ...र्योधन ने कहा।

...े दुर्योधन की बात सुनी तो वे स्वयं आश्चर्य ... आश्चर्य चकित इस लिए कि गत दिनों हुई ... दुर्योधन का मन इतना कथित हो जायेगा, धीरज ...ा, वह इसकी उन्हें आशा ही न थी। फिर उनके ...५ दिनों में ऐसी तो कोई बात नही हुई थी जिससे ... कि पाण्डव विजय के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं ...कुल ही डूब रहे हैं। अतः वे बोले—"बेटा! अभी ...ांच ही दिन हुए हैं। इन पांच दिनों मे तुम्हें कोई ... नही पहुंची जिसके कारण तुम इतने दुखित हो। हां ...मार जो वीर मारे गए, उनका शोक किया जा सकता है। परन्तु इतने भयंकर और महा युद्ध मे वीरों की बलि न हो, यह तो असम्भव है। हमे तो न जाने कितने महान योद्धाओं का विछोह भी सहन करना होगा। इस युद्ध मे विजय यूही तो नही मिलने वाली। फिर तुम जैसा साहसी अभी से दिल तोड बैठे, धीरज खो देगा तो

फिर कैसे काम चलेगा।"

दुर्योधन ने दीर्घ विश्वास छोडा और बोला—"पिता मह, मुझे अपने प्यारे वीरो के बिछोह का इतना गम नही जितना शोक इस बात का है कि, जबकि आप के पास इतनी विशाल एवं भयानक सेना है, और उसकी व्यूह रचना भी बडी सावधानी से की जाती है, फिर भी पाण्डव महारथी उसे तोडकर हमारे वीरो को मार डालते हैं। हमारे दुर्गम मकर व्यूह तक को उन्होने तोड डाला और जबकि व्यूह मे मेरा ऐसा सुरक्षित स्थान होता है कि शत्रु का वहा तक पहुचना असम्भव होना चाहिए, फिर भी भीमसेन ने अपने मृत्यु दण्ड के समान प्रचण्ड बाणो से मुझे तक घायल कर डाला। दादा जी! कल तो भीमसेन की रोष पूर्ण मूर्ति को देखकर मेरा कलेजा काप गया। पाण्डव जब जयघोष करते युद्ध से लौटते हैं उस समय मेरे मन पर क्या बीतती है, बस कुछ न पूछिये। हमारे पास उन से सेना अधिक, आप जैसे महारथी हमारे पास, और फिर भी राज्य विहीन पाण्डव हमारे सामने से अकडते व फुफकारते तथा विजय घोष करते निकलें, यह मुझ से नही देखा जाता। मैं तो आप की कृपा से पाण्डवों का काम तमाम करने के स्वप्न देखा करता था।"

दुर्योधन की बात भीष्म पितामह ने धीरज से सुनी और वे मुस्करा दिए। जैसे उनके मन मे यह भाव जमा हो कि—"मूर्ख! बस इतनी सी बात पर घबरा गए।"—किन्तु भीष्म जी ने कदाचित अपने भावो को छुपाते हुए कहा—"दुर्योधन! मैं तो अधिक से अधिक प्रयत्न करके पाण्डवो मे घुसता हू और जो सामने पड़ जाता है उसे ही यमलोक पहुचाने मे अपने प्राणो तक की बाजी लगा देता हूं। भविष्य मे भी मैं अपने प्राणो का मोह त्याग कर पाण्डवों को परास्त करने के लिए जी जान तोडकर लडूंगा। तुम विश्वास रक्खो कि मैं तुम्हारी ओर हू तो शत्रु की ओर से देवता भी क्यो न आ जायें, उन्हे भी मारने में न चूकूगा। परन्तु जब शत्रु की शक्ति पर मैं पार नही पा सकू तो मैं क्या करू?"

"दादा जी! आप कुछ ऐसा कीजिए कि मेरे हृदय पर रक्खा यह भारी बोझ किसी प्रकार हटे। मैं बड़ा चिन्तित हूं।"—दुर्योधन बोला।

राजन् ! दुःख त्याग कर साहस से काम लो। जाओ अपनी सेना को तैयार होने का आदेश दो। मैं तुम्हारे लिए प्राण तक दे सकता हूं। इस से अधिक और क्या कर सकता हूं।"

भीष्म जी की बात सुनकर दुर्योधन को कुछ सान्त्वना मिली। क्योंकि उसके मन मे यही खटका रहता था कि कहीं भीष्म पितामह पाण्डवों के आगे ढीले न पड जायं, और जब वह भीष्म जी से यह सुनता कि वे पूर्ण शक्ति से युद्ध कर रहे हैं तो उसे बहुत प्रसन्नता होती और यह आशा हो जाती कि फिर तो उसकी विजय निश्चित है।

× × × ×

सेना को तैयार करने के लिए बिगुल बजा दिया गया। कुछ ही देरि बाद सैनिको के झुण्ड के झुण्ड अपने अपने शिविरो से निकल कर मैदान मे आ गए। उस दिन भीष्म जी स्वय सेना के आगे गए और उचित हिदायतें करके स्वय व्यूह रचना में लग गए। उन्होने भिन्न भिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्रो से लैस कौरव सेना को मण्डल व्यूह की विधि से खड़ा किया। उस मे प्रधान प्रधान वीर गजारोही, अश्वरोही, पदाति और रथियो को बहुत ही सोच समझ कर उपयुक्त स्थानो पर खडा किया। और स्वय ने ऐसा स्थान लिया कि देखने से प्रगट होता मानो सारी कौरव सेना भीष्म जी की रक्षा के लिए हो और भीष्म जी अकेले समस्त सेना की रक्षा के लिए तैनात हो। उस दिन व्यूह के सभी जोड़ो और प्रथकन् पक्ति मे विकट गाडियों, तोप व गोला बारुद से भरी जहाज रूपी गाडियो को खडा किया। पश्चिम की ओर को इस दुर्भेद्य व्यूह का मुख रक्खा गया।

दूसरी ओर युधिष्ठर ने जब भीष्म जी द्वारा रचित मण्डल व्यूह की व्यवस्था देखकर अपनी सेना को वज्रव्यूह के रुप मे खडा किया और उसके द्वार पर भयकर विकट गाडियां लगा दी। पाण्डव वीरों ने मुख्य मुख्य स्थानो पर अपने अपने रथ रक्खे और जब सारी व्यवस्था हो चुकी तो महाराज युधिष्ठर ने अपने समस्त वीरो को पुकार कहा—"वीरो ! पाच दिन से आप सभी का पराक्रम शत्रु के सीने पर वज्राघातों का काम कर रहा है। हम सख्या मे कम है, पर साहस, उत्साह, बल और शौर्य हमारे पास

शत्रुओं से सहस्त्र गुना अधिक है। हमारे साथ वासुदेव श्री कृष्ण जैसे महान् योद्धा और सर्व शक्तिमान कुशल कूट नीतिज्ञ है उनका प्रताप और आप वीरो का साहस हमारी विजय की गारटी है। इस लिए आज पुनः दिखा दो कि न्याय तथा धर्म के सामने दैत्यो की शक्ति नही ठहर सकती।"

धर्मराज के आव्हान को सुनकर मदोन्मत वीरो ने सिंह गर्जना की। प्रमुख वीरो ने उत्साह पूर्वक शख ध्वनि की और पदाति वीर धर्मराज युधिष्ठर के जयनाद करने लगे कौरव वीरों ने भी उत्तर मे भयंकर सिंह नाद किए और युद्ध के लिए उतावले होकर पाण्डवों के व्यूह को तोडने के लिए आगे बढे।

भीष्म जी की शख ध्वनि सुनकर सर्वप्रथम विकट गाडियों द्वारा गोले बरसाये जाने लगे। कौरवो की ओर से हो रही गोलो की वर्षा से भयानक ध्वनि होने लगी। जिसे सुन कर सेना के हाथी और घोड़े विचलित हो गए और हाथियों की चिंघाड़ तथा घोड़ों की हिनहिनाट ने भीषण वातावरण बना दिया, कान पड़ी आवाज भी उस शोर मे सुनाई न देती। पाण्डवो की ओर से भी विकट गाडियों ने आग उगलनी आरम्भ कर दी। और जब कौरवों की विकट गाडियों से सैनिको की ओर मुह करके गोले बरसाये जाने लगे तब पाण्डवो की ओर से कुछ ऐसे गोले दागे गए जिन के फटते ही चारों ओर धुआ फैल गया। कौरव सेना सारी की सारी धुएं के बादलो मे घिर गई और कौरवो के विकट गाडियो पर तैनात सैनिको को कुछ देरि के लिए यह भी पता न चला कि पाण्डव वीर क्या कर रहे हैं और वे हैं किधर। उनके गोलो की वर्षा रुक गई।

उचित अवसर देख पाण्डव वीर कौरवों के व्यूह को तोड़ने के लिए तीव्र गति से आगे बढे और ज्योही धुएं के बादल साफ हुए तो द्रोणाचार्य सामने राजा विराट, अश्वस्थामा के आगे शिखण्डी, दुर्योधन के सम्मुख धृष्टद्युम्न और शल्य के सामने उनके भानजे नकुल तथा सहदेव युद्ध के लिए आ डटे दिखाई दिए। अवन्ति नरेश विन्द और अनुविन्द ने इरापना को और भीम सेन ने कृतवर्मा तथा कर्ण विकर्ण आदि को घेर लिया। अर्जुन ने शेष समस्त राजाओं को और उसके पुत्र अभिमन्यु ने दुर्योधन के दूसरे

भाईयों को घेर कर युद्ध आरम्भ कर दिया। घटोत्कच ने परम ज्योतिष नरेश भगदत्त पर आक्रमण कर दिया। अलम्बुष रणोन्मत्त सात्यकि और उसकी सेना के साथ युद्ध रत होने पर विवश हुआ। धृष्ट केतु भूरिश्रवा पर टूट पडा और धर्मराज युधिष्ठिर श्रुतायु ने, चेकितान कृपाचार्य से और अन्य सब भीष्म जी से युद्ध करने लगे।

अर्जुन को अनेक राजाओ से पाला पडा। वे विभिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्र लेकर अर्जुन को घेर रहे थे। अर्जुन के बाणों के उत्तर मे समस्त कौरव पक्षी राजा चारो ओर बाण वर्षा करने लगे और जब अर्जुन का वेग उन से दूर न हुआ तो वे विभिन्न अस्त्रो का प्रयोग करने लगे। उस समय अर्जुन बुरी तरह घिरा हुआ था। परन्तु श्री कृष्ण इस प्रकार से रथ को हांक रहे थे कि रथ का इधर उधर घूमना ही शत्रुओ के तीरों के लिए अर्जुन की ढाल बना हुआ था। चारों ओर से घिरे अर्जुन को देखकर देवताओं को भी आश्चर्य हो रहा था और गन्धर्व जिनकी अर्जुन से सहानुभूति थी, वे तो विस्मित होकर युद्ध को देख रहे थे। अर्जुन को एक बार बड़ा क्रोध आया और उसने आव देखा न ताव एन्द्रास्त्र का वार किया जिससे शत्रुओं के सभी बाण व्यर्थ हो गए, फिर क्या था अर्जुन के सामने जो भी आया वह घायल हुए बिना न रहा। यहा तक कि हाथी घोडे आदि भी बुरी तरह घायल होने लगे। अर्जुन ने एक बाण ऐसा मारा कि आग की लपटें सी निकली और हाथी घबराकर गरजने लगे। यहा तक कि सारथियो के हज़ार सम्भालने पर भी घोडे बेकाबू हो गए। तब शत्रु राजाओ ने अपने का असफल जानकर भागकर भीष्म जी की शरण ली। जैसे डूबता हुआ व्यक्ति तिनके का सहारा लेने के लिए हाथ पाव मारता है, ठीक उसी प्रकार अपनी ताव अर्जुन के रण कौशल और दिव्यास्त्रो रूपी सागर मे डूबते देख शत्रु राजाओ ने भीष्म जी रूपी महान जहाज की शरण मे भाग कर जाने का प्रयत्न किया। शरणागत राजाओं की रक्षा करने और अर्जुन के प्रचण्ड आक्रमणों से कौरव सैनिकों तथा योद्धाओ को बचाने के लिए भीष्म जी ने दूसरे विरोधी को छोड़ कर अर्जुन की ओर अपना रथ हकवाया और बड़ी फुर्ती से आकर अर्जुन से युद्ध करने लगे।

इधर द्रोणाचार्य ने बाण मारकर मत्स्यराज विराट को घायल

कर दिया। परन्तु शरीर से रक्त की धारा फूट निकलने के उपरान्त भी विराट युद्ध भूमि में डटे रहे। उन्होंने द्रोणाचार्य पर कुपित होकर ऐसे तीक्ष्ण दिव्य बाण मारे कि वे तिलमिला उठे और आत्म रक्षा करना उनके लिए एक समस्या बन गई। उस समय विराट ने चेतावनी देते हुए कहा।—"आचार्य जी! यहाँ आपकी विद्वता के प्रति श्रद्धा हमारे आड़े नहीं आ सकती। आपके कौशल को दुर्योधन के अन्याय का ग्रहण लग गया है।"

द्रोणाचार्य इन शब्दों से चिढ गए और उन्होंने कुछ ऐसे बाण प्रयोग किए, जिनको रोक सकने में विराट सफल न हो सके और देखते ही देखते बाणों से विराट के रथ की ध्वजा गिर गई। जो अभी तक हवा में बड़ी शान से लहरा रही थी, अब धूल में रुलने लगी। और फिर विराट का सारथि घायल होकर लुढक गया। अश्व भी घायल हो गए। तब विवश होकर विराट अपने पुत्र शंख कुमार के रथ पर जा चढे और पिता पुत्र दोनों द्रोणाचार्य के ऊपर वार करने लगे। दोनों ओर से बाणों की झड़ी लगी थी। एक बार तो बाणों की एक ऐसी रेखा सी बन गई जो कहीं टूटती ही प्रतीत नहीं होती थी। शंख कुमार ने कुछ देरि बाद ऐसे बाण चलाए जोकि द्रोणाचार्य के धनुष पर चढ़ते बाणों को छूटने से पहले ही गिरा देते। तब द्रोणाचार्य पर यह स्पष्ट हो गया कि जब तक शख है, उनका एक भी वार विराट का कुछ न बिगाड सकेगा। इस लिए उन्होंने अपना एक विशेष बाण निकाला और विद्युत गति से उसे धनुष पर चढाकर मारा। बाण एक विषैले सर्प की भांति शख की ओर बढा उसकी नोक से चिनगानियां सी छूट रहीं थी और एक विशेष प्रकार की गंध आ रही थी। इस विचित्र बाण को देखकर विराट कांप उठे और जब वह बाण आकर शख कुमार की छाती पर लगा, तो क्रोध के मारे विराट पागल से हो गए, उन्होंने क्षण भर में ही अनेकों बाण द्रोणाचार्य पर मारे जिनसे वे घायल हो गए। पर ज्यों ही शख कुमार लोहू लुहान हुआ चीखता हुआ रथ से पृथ्वी पर गिरा तो विराट का रोम रोम सिहर उठा। उन्होंने अपने प्रिय पुत्र के शव को विह्वल होकर वे रथ से कूद पड़े और पुत्र के शरीर को उठाकर रथ में रख रण भूमि से बाहर चल पड़े।

उधर विकट गाडिया आपस मे टकरा रही थी इधर विराट नरेश के युद्ध भूमि से जाते ही द्रोणाचार्य पाण्डवों की सेना पर टूट पड़े और अनेक स्थानो पर से पाण्डव सेना की पक्तियां उन्होने भग कर दी। इस प्रकार पाण्डवो की विशाल वाहिनी अकेले द्रोणाचार्य के ही कारण सैकड़ो हज़ारों भागो में विभक्त हो गई।

शिखण्डी अश्वस्थामा के सामने डटा हुआ था। दोनो ही बडे वीर थे, एक दूसरे की टक्टर के भी थे। कितनी ही देरि तक जब दोनो ओर से वार होते रहे और फिर भी कोई न गिरा, या किसी को कोई क्षति भी नही पहूची तो शिखण्डी ने ललकार कर कहा— "बढे वीर बनते थे! अपने शौर्य का कुछ चमत्कार भी दिखाओगे या यूही।"

अश्वस्थामा गरज कर बोला— "चमत्कार देखकर ठहर नहीं सकोगे।"

इतना सुन कुपित होकर शिखण्डी ने एक ऐसा बाण मारा कि अश्वस्थामा की भृकुटी के बीच में चोट लगी। रक्त वह निकला। इस बात से अश्वस्थामा को बडा क्रोध आया और उसने कुछ दिव्यास्त्र प्रयोग करके शिखण्डी के रथ की ध्वजा तोड डाली, और फिर सारथी तथा घोडों को भी मार गिराया। तब शिखण्डी ढाल तलवार लेकर मैदान मे आ डटा। परन्तु अश्वस्थामा तो रथ पर सवार था उसने अपनी स्थिति का लाभ उठाते हुए तीक्ष्ण बाणो के द्वारा महाबली शिखण्डी को अपने रथ की ओर बढने से रोक दिया और फिर कुछ ऐसे बाण प्रयोग किए जिनसे उसके खडग और ढाल को तोड़ डाला। बाज की भाति बड़े वेग से झपटते शिखण्डी के हाथो के शस्त्र नष्ट हो जाने के कारण अब उसके पास एक ही चारा था कि वह पुनः रथ पर सवार होकर युद्ध करे। वरना अश्वस्थामा को बाण वर्षा से वह स्वयं भी ढेर हो सकता था। शिखण्डी ने ऐसा ही किया और वह दौड़ कर सात्यकि के रथ पर चढ गया।

वीरवर सात्यकि राक्षस वंशी अलम्बुष के सामने डटा हुआ था। सात्यकि के सहस्त्रों बाणों की मार से अलम्बुष घायल हो गया। जिस कारण वह क्रोध के मारे जलने लगा और एक बार अर्ध चन्द्राकार बाण मारकर उसने सात्यकि का धनुष ही तोड़ डाला और

फिर जब तक कि सात्यकि दूसरा धनुष उठाए, अलम्बुष ने अनेक बाण मार कर उसे भी घायल कर दिया। उस अवसर पर, जब कि सात्यकि के शरीर से अनेक स्थानों पर रक्त धारा बह रही थी, उसका बड़ा ही विचित्र पराक्रम देखने को मिला। तीखे तीखे बाणों की चोट खाने पर भी सात्यकि के मुख पर घबराहट का कोई चिन्ह न था, इसके विपरीत उसने शीघ्र हा एक दूसरा धनुष सम्भाला। अलम्बुष ने उस समय राक्षसी माया प्रयोग करके तीक्ष्ण तथा अतिसहारक बाणों की झड़ी लगा दी थी परन्तु बाणों से चोट पर चोट खाते हुए भी सात्यकि ने अर्जुन से मिला ऐन्द्रास्त्र चढाया और अपनी सम्पूर्ण शक्ति से उसे मारा। फिर क्या था अस्त्र के प्रभाव से समस्त राक्षसी माया भस्म हो गई। और तत्काल ही बाणों की वर्षा इतने वेग से की कि अलम्बुष का साहस टूट गया और उसे ऐसा हुआ कि कुछ देरि इसी प्रकार महा पराक्रमी सात्यकि बाण बरसाता रहा तो वह मारा जायेगा। यह सोचकर उसने रण भूमि से भाग जाने मे ही अपना कल्याण समझा और देखते ही देखते सात्यकि का सामना करना छोड़कर बड़े वेग से रण भूमि से भाग खड़ा हुआ। अलम्बुष के हटते ही सात्यकि ने दुर्योधन के भाईयों पर आक्रमण किया और एक अस्त्र प्रयोग करके उनके धनुष तोड डाले, बेचारे कौरव भ्राता कुछ भी न कर पाये और रण भूमि से भाग जाना ही उन्होने श्रेयस्कर समझा।

विकट गाड़ियां एक दूसरे पर गोले बरसा रही थी, बड़ी भयंकर आवाज हो रही थी कि दिल दहल जाता था और इधर द्रुपद के पुत्र महाबली धृष्ट द्युम्न ने अपने तीक्ष्ण बाणों से दुर्योधन को ढक दिया था। बाणों की छाया मे रहकर भी दुर्योधन भयभीत न हुआ और किसी प्रकार रथ को इधर उधर घुमा फिराकर कुछ ऐसा अवसर प्राप्त कर लिया कि वह स्वयं भी बाण चला सके। तड़ातड़ ९० बाण क्षण भर मे ही मारे जिनसे धृष्ट द्युम्न का कवच कई स्थानों पर कट गया फिर क्या था धृष्ट द्युम्न ने कुपित होकर दुर्योधन के सारथि और घोड़ों तक को मार डाला। कदाचित् फिर दुर्योधन के मरने का ही नम्बर आता, [illegible] वह दौड़ [illegible] के रथ पर जा चढ़ा और इस प्रकार [illegible] न के [illegible] नकला।

दुर्योधन को परास्त करके धृष्ट द्युम्न कौरव सेना के दूसरे वीरों पर टूट पड़ा और बडी फुर्ती से संहार करने लगा। उसी समय महारथी कृतवर्मा का दाव लगा और उसने भीमसेन को बाणों से आच्छादित कर डाला। भीमसेन कृतवर्मा के इस वेग पूर्ण प्रहार को देखकर हसा और मुस्कराते हुए ही उसने अपने बाणो की भडी लगा दी। देखते ही देखते कृतवर्मा के सारथि और घोडो को धाराशायी कर दिया और कृतवर्मा स्वय भी बुरी तरह घायल हुआ। बचने का और कोई उपाय न देख वह दौडकर धृतराष्ट्र के साले वृषक के रथ पर चढ गया और भीमसेन के सामने जो भी पडा वही बाणों से घायल होकर या तो मर गया अथवा भाग खड़ा हुआ।

दूसरी ओर अवन्ति नरेश विन्द और अनुविन्द इरावान से टक्कर ले रहे थे। उनमे बड़ा ही रोमांचकारी युद्ध छिड़ा हुआ था। दोनों ओर से तीक्ष्ण बाण चल रहे थे। परन्तु अकेला इरावान दोनों भ्राताओ को होश न लेने दे रहा था। एक बार दोनों भ्राताओं ने इरावान के ऊपर भीषण प्रहार किया। कुपित होकर इरावान ने दिव्य बाणो का प्रयोग किया और अनुविन्द के सारथि तथा उसके रथ के चारों घोडों को मार गिराया। अनुविन्द तब अपने भाई विन्द के रथ पर चढ गया और उसी रथ पर से दोनों भाई बाण वर्षा करने लगे। क्रुध इरावान ने देखते ही देखते उनके सारथि को मार गिराया। बाणो की भीषण वर्षा के मारे रथ के घोडे चौंक कर रथ को इधर-उधर लेकर भागने लगे और बेचारे अनुविन्द व विन्द को अपने रथ घोडो को काबू मे करने की एक समस्या उत्पन्न हो गई। परन्तु ऐसी जटिल समस्या मे फसे विन्द तथा अनुविन्द को इरावान ने छोडकर और दूसरे कौरव सैनिकों से भिड गया।

अब आप अपनी दृष्टि उधर भी उठाईये, जिधर भीम पुत्र घटोत्कच भगदत्त के साथ भयंकर युद्ध कर रहा है। दोनों ओर से बाणों की वर्षा हो रही है और तेजी से इधर से उधर भागते व घूमते रथों के कारण धूल के बादल से उठ रहे हैं। वह देखिये वीरवर घटोत्कच ने एक बार विद्युत गति से बाणो की भडी लगा दी और भगदत्त उन बाणों की छाया मे बिल्कुल छुप गया है।

उसने किसी प्रकार अपनी रक्षा की और फिर ज्योंही दाँव लगा, घटोत्कच के मर्मस्थानों को लक्ष्य करके उस ने बाण चलाने आरम्भ कर दिए। परन्तु घटोत्कच है कि बाणो की चोट खाकर भी तनिक सा भी न घबराया। वह उसी प्रकार बाण चला रहा है मानो कुछ हुआ ही नही।

यह बात देख प्राग्ज्योतिष नरेश ने चौदह तोमर छोडे यह देख तत्काल घटोत्कच ने उन्हे काट डाला और सत्तर बाण छोड कर भगदत्त को ही परेशान कर डाला। अब भगदत्त सोच रहा है कि घटोत्कच इस तरह परास्त नही होगा, कुछ ऐसा करना होगा जिस से वह लड़ने योगय ही न रहे। बस ऐसी योजना सोच कर उसने बाणो का लक्ष्य घटोत्कच के घोडो को बनाया और तड़ातड बाणों की मार से चारो घोड़ों को मार गिराया।

अश्वहीन रथ से घटोत्कच न उतरा और उस ने उसी रथ पर से ही एक भयकर शक्ति छोडी। शक्ति को अपनी ओर आते देख भगदत्त ने अपने कुछ दिव्यास्त्र छोड़े जिन के कारण वह शक्ति कट गई और बीच ही मे गिर गई। अपनी शक्ति को व्यर्थ हो कर पृथ्वी पर गिरते देख घटोत्कच का साहस टूट गया। घटोत्कच का बल पराक्रम सर्वत्र विख्यात था, उसे सग्राम भूमि मे सहसा यमराज और वरुण भी नहीं जीत सकते थे। परन्तु अनायास ही अश्वहीन रथ पर खडे घटोत्कच को जब अपने प्राण सकट मे पहुंचते प्रतीत हुए, उसने मुकाबला छोड कर रण भूमि से बाहर चला जाना उचित समझा। भगदत्त को कितनी प्रसन्नता हुई होगी, यह सहज मे ही अनुमान लगाया जा सकता है। परन्तु घटोत्कच जाते जाते भगदत्त के रथ को अश्वविहीन करता गया। और तब तत्काल ही भगदत्त हाथी पर सवार हो कर पाण्डवो की सेना के संहार मे लगगया। उस समय उस के चेहरे पर गर्वमिश्रित हर्ष साफ दिखाई पडता था।

मद्रराज शल्य अपनी बहन के युगल पुत्र नकुल तथा सहदेव से युद्ध कर रहे थे। दोनो भाई अपने बाणो से शल्य की घरबीरता को चुनौती देते रहे। सहदेव ने एक बार तो अपने बाणों से शल्य को पूरी तरह आच्छादित कर दिया, इस वीरता व रण कौशल को

देख कर शल्य को कितनी प्रसन्नता हुई, इस का वणन करना व्यर्थ है हां उन्हें लगा कि उनके भानजे वास्तव में शूरवीर हैं। परन्तु चूंकि गरमा गरम में रिशतेदारी कहा टिकती है। वहा तो मोह प्राणों का घातक वन सकता है। इस लिए जब नकुल के वाणों ने भी उन को वुरी तरह परेशान किया तो शल्य ने उन दोनों को अपना रण कौशल दिखा कर परास्त करने की ठान ली। फिर क्या था शल्य के वाणो से नकुल का सारथि और उस के अश्व सभी मारे गए और उसे सहदेव के रथ मे जाना पड़ा। परन्तु अब दोनो को ही अपने मामा को शीघ्र परास्त करने की उतावली हो गई। दोनों ने मिल कर उन पर कुछ विशेष अस्त्र किए और उनका वेग रोक दिया। उसी समय नकुल का एक वाण शल्य की छाती पर चोट पहुंचाता हुआ पृथ्वी पर गिरा। और उस की चोट से वे तिलमिला उठे। रथ के पिछले भाग में जा कर वैठ गए और अचेत हो गए। उन्हें सज्ञा शून्य देख कर उन का सारथि अपना रथ रण स्थल मे वाहर ले गया।

भयानक युद्ध चल रहा था, अपने ही अपनों के रक्त के प्यासे हो गए थे। रक्त की धाराए बह रही थी। वीरो के शव हाथियों तथा घोडों के पैरों तले कुचले जा रहे थे। विकट गाडिया आग उगल रही थीं और पदाति सैनिकों की तलवारें वज रही थी। इस प्रकार क्षण क्षण वीतते वीतते सूर्य देव का रथ अपनी यात्रा के मध्य मे पहुच गया। धूप पर जोवन आ गया और मध्यान्ह काल की भेरी वज गई। महारथि नकुल तथा सहदेव हर्ष ध्वनि तथा शख ध्वनि करके अपनी विजय का उल्लास मना रहे थे। और मध्यान्ह के समय दोनों ओर से शखनाद होने लगे।

इधर सूर्य देव का रथ वीच आकाश के पहुच गया और उधर महाराज युधिष्टिर ने श्रुतायु की ओर अपने घोडे बढवा दिए जाते ही पैने वाणो की वर्षा की और अभी नौ वाणही छूटे थे कि श्रुतायु घायल हो गया उस आक्रमण के जवाब मे उसने क्रुद्ध हो कर युधिष्टिर को सात वाण मारे, जिन मे से अन्तिम वाण उन की छाती में लगा, कवच फट गया और रक्त धारा बह निकली। युधिष्टिर बहुत कुपित हुए और उनका मुख मण्डल सूर्य की भाति जलने लगा

उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो धर्मराज तीनों लोक को भस्म कर डालेगे। आकाश मे युद्ध को देख रहे देवताओ को भी चिन्ता हो गई। पर शीघ्र ही उन्होने अपने क्रोध पर नियन्त्रण किया और कुछ ऐसे बाण मारे जिन की मार से श्रुतायु का धनुष टूट गया और छाती लहू लुहान हो गई, तभी धर्मराज के तीरों से श्रुतायु के घोडे यमलोक सिधार गए और अश्वविहीन रथ पर श्रुतायु को अपने बचने का कोई उपाय दिखाई न दिया। विवश होकर वह युद्ध भूमि से भाग पड़ा। श्रुतायु को पीठ दिखा कर भागते देख कौरव सेना मे खलबली मच गई और कुछ सैनिक रण भूमि छोड़ कर भागने लगे।

अब आईये कृपाचार्य के साथ लडते चेकितान की ओर भी ध्यान दें। महारथी कृपाचार्य को चेकितान ने अपने तीक्षण बाणो से आच्छादित कर दिया और जब कृपाचार्य ने अपने प्राण जाते देखे तो मरता क्या न करता की उक्ति को चरितार्थ करते हुए उन्हो ने तुरन्त ही अपने दिव्यास्त्र सम्भाले और सब से पहले चेकितान के धनुष को तोड़ा, फिर सारथि को मारा और तत्पश्चात अश्वों को भी यमलोक पहुंचा दिया। पार्श्व रक्षक भी कृपाचार्य के हाथों मारे गए, तब चेकितान रथ से उतर गया। कृपाचार्य की बाण वर्षा चलती रही और पृथ्वी पर खडा चेकितान बुरी तरह घायल हो गया। कृपाचार्य के इस आक्रमण से चेकितान आपे से बाहर हो गया और गदा हाथ में लेकर कृपाचार्य की हत्या कर डालने के उद्देश्य से उन की ओर दौडा, परन्तु उस समय कृपाचार्य ने ऐसी बाण वर्षा की कि चेकितान की प्रगति रुक गई और वह गदा हाथ से छोड कर तलवार लेकर कृपाचार्य की ओर झपट पड़ा। उसने आवेश मे आकर कहा—"साहस हो, तो तलवार से मुकाबला करो "

इस चनौती को सुन कर कृपाचार्य तलवार लेकर नीचे उतर आये और चेकितान से भिड गए दोनो में तुमुल युद्ध होने लगा। दोनो एक दूसरे को मार डालने के लिए उतावले थे, अतः भीषण युद्ध कर रहे थे और कुछ ही देर मे दोनो ने एक दूसरे को घायल कर दिया दोनो ही रक्त मे सन गए [illegible] मे दोनो ही

मूर्छित हो कर गिर पड़े। यह देखकर सौहार्द वश करकर्ष वहां दौड़ कर आया और चेकितान को उठा कर उसने अपने रथ के पिछले भाग मे डाल लिया और कृपाचार्य को शकुनि ने अपने रथ मे डाल लिया।

अब सुनिये भूरिश्रवा और धृष्टकेतु के भीषण युद्ध की बात दोनो महारथी आपस मे भूम रहे थे। कितनी ही देर तक दोनों में भीषण सग्राम होता रहा। धृष्टकेतु ने नब्बे बाण मार कर भूरिश्रवा को घायल कर दिया। इस के उत्तर मे भूरिश्रवा ने अपने चुने हुए तीक्ष्ण बाणो से महारथी धृष्टकेतु के सारथि और घोडों को मार डाला। तब महामना धृष्टकेतु उस रथ को छोड़ कर शतानीक के रथ पर चढ़ गया। इसी समय चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षण ने अभिमन्यु पर धावा कर दिया। अभिमन्यु ने धृतराष्ट्र के बेटों को थोड़ी ही देरि मे रथहीन तो कर दिया, पर ज्यों ही वह उन्हे यमलोक पहुचाने वाला था, उसे भीमसेन की प्रतिज्ञा याद आ गई कि इन्हे मृत्यु के घाट नही उतारना है। अतः इन मे से किसी को भी अभिमन्यु ने न मारा। उस समय धृतराष्ट्र के पुत्रो को सकट मे पड़े देख भीष्म पितामह ने अपना रथ अभिमन्यु की ओर हकवा दिया यह देख अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा—"जिधर यह बहुत से रथ एकत्रित दिखाई पड रहे है आप रथ उसी ओर ले चलिए।"

अर्जुन के इतना कहने पर श्री कृष्ण ने उसी ओर रथ हांक दिया यहा अकेला अभिमन्यु अनेक राजाओ सहित भीष्म पितामह के दल का दृढता से मुकाबला कर रहा था। भीष्म पितामह की रक्षा मे लगे राजाओ मे सब से पहले अर्जुन का सामना हुआ। उन्हीं मे अभिगर्त्तराज सुशर्मा भी था, जो अर्जुन के मुकाबले पर खम ठोक कर आ गया था। अर्जुन ने उसे सम्बोधित करके कहा—"सुशर्मा! तुम ही तो हो हमारे पुराने शत्रु जो हमारे भाईयो के सामने नाक रगड चुके हो। अभी तक तुम जीवित हो तो हमारे ही भाईयो की कृपा से। फिर भी तुम हमारे शत्रु बने हुए हो। किन्तु देखो, आज तुम्हे तुम्हारी उन्नति का कठोर फल मिलने वाला है। मैं आज तुम्हे परलोक पहुंचा दूगा।"

सुशर्मा ने अर्जुन के ऐसे कठोर शब्द सुनकर भी कुछ उत्तर न

दिया और कुछ अन्य राजाओं के साथ उसे चारों ओर से घेर लिया तथा बाण वर्षा आरम्भ कर दी। अर्जुन ने एक क्षण में ही उनके धनुष तोड डाले और उसके बाणो की मार से उनके कवच तार तार हो गए। कुछ ही देरि में उनके तडपते शव धूल में लुढकने लगे। अपने साथियों के मारे जाने पर सुशर्मा दूसरे राजाओं तथा सैनिकों को लेकर पार्थ से युद्ध करने लगा। अर्जुन पर चारों ओर से अनेक राजाओ के आक्रमण को देखकर शिखण्डी सहायता के लिए दौड पडा और विभिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्र लेकर वह राजाओं से जूझ पडा। जयद्रथ तथा दुर्योधन भी आकर अर्जुन से भिड़ गए। परन्तु अर्जुन ने एक ऐसा सिद्ध बाण मारा कि वह आकाश मे कोधती बिजली की भांति एक भयकर आवाज़ करता तथा एक अग्नि रेखा की भाति जलता हुआ सा समस्त राजाओ के धनुषो को तोड़ गया। तब जयद्रथ तथा दुर्योधन आदि महारथियो को परास्त करता पार्थ भीष्म जी की ओर अग्रसर हुआ। महाराज युधिष्ठिर भी मद्रराज को छोडकर नकुल, सहदेव तथा भीमसेन के साथ भीष्म जी से युद्ध करने हेतु आ गया। परन्तु भीष्म जी समस्त पाण्डवो के मुकाबले पर आ जाने पर भी भयभीत नहीं हुए वे उसी फुर्ती के साथ युद्ध करते रहे। शिखण्डी ने उस अवसर पर अपूर्व रण कौशल का प्रदर्शन किया और भीष्म जी के सभी प्रहारो को उसने अपने बाणो से विफल कर दिया। उसने कुछ ऐसे अचूक बाण मारे कि भीष्म जी का कवच कई स्थानो से टूट गया और मर्म स्थलो को निशाना बनाकर वह बाण मारता ही रहा। कुछ ही देरि मे यह प्रतीत होने लगा कि शिखण्डी शीघ्र ही भीष्म जी का बध कर डालेगा परन्तु बड़े वेग से धावा करते हुए राजा शल्य ने शिखण्डी को रोकने की चेष्टा की। उस समय का राजा शल्य का भीषण युद्ध बहुत ही रोमाचकारी था, परन्तु फिर भी शिखण्डी के वेग मे कोई अन्तर न आया और उसने वारुणास्त्र चलाकर शल्य के सभी अस्त्रों को छिन्न भिन्न कर डाला।

भीमसेन गदा लेकर पैदल ही जयद्रथ की ओर बढा, जो कि पुनः अस्त्र शस्त्रों से लैस होकर भीष्म जी की रक्षा के लिए आ रहा था। परन्तु गदाधारी भीमसेन पर जयद्रथ ने सहस्त्रों बाण बरसाकर

घायल कर दिया। भीमसेन फिर भी डिगा नहीं। बल्कि उसे बहुत ही क्रोध आया और गदाओ की मार से उसने सिन्धु राज के घोड़ो को मार डाला उसी समय जब कि सिन्धु राज पर भीमसेन एक भयकर आक्रमण करने वाला था, चित्रसेन झपटा और उसने एक भीषण प्रहार किया। तब भीमसेन गदा लेकर उसी पर पिल पड़ा। यमदण्ड के समान भीमसेन की गदा देखकर चित्रसेन के साथी योद्धा अपने प्राण लेकर भाग खड़े हुए। और भीमसेन ने घुमाकर अपनी गदा का प्रहार किया। परन्तु इससे पहले कि गदा के नीचे दब कर रथ के साथ साथ चित्रसेन भी नष्ट हो जाये वह अनायास ही रथ से कूद कर भागा। और गदा की चोट से रथ नष्ट हो गया। विकर्ण ने चित्रसेन को अपने रथ मे स्थान दे दिया। इस प्रकार चित्रसेन के प्राण बचे।

भीषण सग्राम चल रहा था कि भीष्म जी अर्जुन के बाणो से बचते हुए युधिष्टिर के मुकाबले पर आ गए। यह देख पाण्डव पक्ष के सभी वीर एक बार तो कांप उठे। क्योकि उन्हे सूझ गई कि अब महाराज युधिष्ठिर मौत के मुह मे पड़ा ही चाहते हैं। परन्तु युधिष्ठिर तनिक भी न घबराये वे नकुल सहदेव को साथ लेकर भीष्म जी पर टूट पड़े। परन्तु भीष्म जी ने बड़े वेग से विभिन्न प्रकार के बाण चलाकर युधिष्ठिर को अदृश्य सा कर दिया। युधिष्ठर ने उस अवसर पर नाराच बाण छोड़ा परन्तु भीष्म जी ने उस भीषण बाण को बीच ही मे काट डाला और युधिष्ठर के घोड़े भी मार डाले। धर्मराज तुरन्त ही नकुल के रथ पर चढ़ गए। तब भीष्म जी ने नकुल और सहदेव को भी बाणो से आच्छादित कर डाला। उस समय युधिष्ठिर ने सोचा कि भीष्म जी को इस प्रकार परास्त नहीं किया जा सकता। उन्होने अपने सभी साथियो को आदेश दिया कि –"सभी योद्धा भीष्म जी को घेर लो और अपने बाणो की वर्षा से उन्हे मार डालो"

आदेश मिलना था कि समस्त पाण्डव पक्षी वीरो ने भीष्म जी को चारो ओर से घेर लिया। किन्तु भीष्म जी उसी कुशलता से लड़ते रहे और उन्होने कितने ही योद्धाओ को धाराशायी कर दिया। जब दोनों ओर के वीरों मे यह घमासानस्त भयानक युद्ध

हो रहा था, तब दोनों ही ओर की सेनाओं मे बडी खलबली मच गई। और उस समय तो कौरवों के होश ही उड गए जब शिखण्डी भीष्म जी के सामने आ गया और भीष्म जी उस पर प्रहार करने से कतराने लगे। तब उन्हें एक उपाय सूझा और वे तत्काल अपना रथ आगे बढवाकर दूसरे पाण्डव वीरो से जा भिडे शिखण्डी को दूसरे कौरव वीरो ने घेर लिया। भीष्म जी को अपने सामने देख दूसरे पाण्डव वीर सिंह नाद तथा शख नाद करने लगे। उस समय सूर्य देव की यात्रा के अन्तिम चरण थे, प्रकाश विदा ले रहा था और उधर शिखण्डी के बाणो से तिलमिलाते कौरव वीर सूर्यास्त के नाम पर युद्धबन्दी की बाट जोह रहे थे पाचाल राजकुमार धृष्ट-द्युम्न और महारथी सात्यकि शक्ति तथा तोमार आदि की वर्षा करके कौरवो पर मृत्यु मण्डराने लगे। कौरव सेना मे हाहाकार मच गया। उधर शिखण्डी अनेक योद्धाओं को मार कर अर्जुन के निकट गया। अर्जुन नें कितने ही वीरों को मार गिराया था कितने ही रणागण से विदा ले रहे थे। वे दोनो ही फिर भीष्म जी के सामने जा डटे।

उसी समय सूर्य देव अस्ताचल के शिखर पर पहुच कर प्रभा-हीन हो रहे थे और ज्योति समाप्त होकर अन्धकार का आगमन होने लगा था। युद्धबन्दी का बिगुल बज उठा, बिगुल सुनकर पाण्डव वीरो ने भयकर सिंह नाद किया और महाराज युधिष्ठिर के नेतृत्व मे अपने शिवरो के लिए प्रस्थान कर दिया। भीष्म जी की आज्ञा से कौरव सेना भी अपनी छावनी मे चली गई। घायल हुए व्यक्तियों ने अपनी अपनी छावनियों मे पहुच कर औषधियो का सेवन किया और फिर दोनो पक्ष के लोग भोजन आदि से निवृत होकर आपस मे मिलकर एक दूसरे की वीरता की प्रशसा करने लगे।

अठत्तीसवां परिच्छेद *

रात्रि भर दोनों पक्ष के वीरों ने विश्राम किया और पौ
ते ही दोनों ओर चहल पहल आरम्भ हो गई। रण की पोशाकें
इन ली गई और बिगुल बजते ही पाण्डव पक्ष की सेना छावनी से
कल कर तैयार हो गई। दूसरी ओर कौरव सेना भी अपने अपने
रो को छोड़कर बाहर आ गई और सूर्य की किरणों का स्वर्णिम
त्र्य सफेदी मे बदलते ही दोनों ओर की सेनाएं युद्ध भूमि की ओर
ल पड़ी। उस समय महासागर की गम्भीर गर्जना की भांति महान
ोलाहल होने लगा। चारो ओर विभिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्र
मक रहे थे।

दुर्योधन, चित्रसेन, विविंशति, भीष्म और द्रोणाचार्य ने
पनी समस्त सेना को एकत्रित करके सागर समान व्यूह का निर्माण
किया। सागर व्यूह की तरग मालाएं हाथी, घोडे आदि वाहन थे।
मस्त सेना के आगे भीष्म जी थे उनके साथ मालवा, दक्षिण भारत
था उज्जैन के योद्धा थे। इनके पीछे कुलिन्द, पारद, क्षुद्रक तथा
ोणाचार्य थे। द्रोण के पीछे मगध और कलिंग आदि देशों के योद्धा
थे जिनका नेतृत्व राजा भगदत्त के हाथ मे था। इनके बाद राजा
बृहद्बल था जिसके साथ मेकल तथा कुरुविन्द आदि देशों के योद्धा
थे। बृहद्बल के पीछे था त्रिगर्त्तराज सुशर्मा, और उसके पीछे
अश्वत्थामा और सबसे पीछे दुर्योधन अपने भाईयों सहित था।
चारों ओर अग रक्षक की भांति सैनिक थे। और सैनिकों तथा

योद्धाओं के महासागर मे तूफ़ान सा आया प्रतीत होता था। हज़ारों पदाति, गजरोहो और अश्वरोही वीरों के हाथों मे खड्ग, भाले, गदाएं और धनुष बाण चमक रहे थे।

कौरवों के सागर समान व्यूह की रचना को देखकर धृष्टद्युम्न ने ३ पाण्डवों की सेना को शृगाटक व्यूह के रूप में व्यवस्थित किया। उस व्यूह की रचना होने पर वह बहुत ही भयानक प्रतीत होने लगा। और कौरवों के व्यूह को तोड़ डालने मे समर्थ दिखाई देता था, उसके दोनों श्रृङ्गों के स्थान पर भीमसेन तथा सात्यकि स्थित थे उनके साथ कई हजार रथ, घोडों और हाथियों पर सवार व पदाति सेना थी। उन दोनों के मध्य में अर्जुन, नकुल और सहदेव थे। इनके पीछे दूसरे राजागण थे, जो अपनी विशाल सेनाओं के साथ व्यूह को पूर्णतः भेंट कर रहे थे। उन सबके पीछे अभिमन्यु, महारथी विराट, द्रौपदी के पुत्र और घटोत्कच आदि थे। इस प्रकार व्यूह रचना समाप्त करके युधिष्टिर ने अपने सैनिकों का आह्वान किया—"वीर योद्धाओ! तुम्हारे रण कौशल से बड़े बड़े दिग्गज धनुर्धारी, अनुभवी और जगत विख्यात शूरवीर भी थर्रा रहे है। तुम्हारी वीरता के सामने शत्रुओं की विशाल सेना का नाको दम है। आज फिर उन्ही से टक्कर है जो पिछले दिनो मे परास्त होते चले आये है। बढो और अपना जौहर दिखा कर बता दो कि न्याय का सिर कभी नीचा नही होता।"

उधर दुर्योधन अपने वीरो को ललकार रहा था—"रण बाकुरो! शत्रुओं की सेना हम से बहुत कम है। हमारे पास भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य जैसे अनुभवी महान सेनानायक हैं, देवता भी जिनका लोहा मानते हैं। विजय हमारी ही होगी। और विजय के साथ साथ यश कीर्ति और ऐश्वर्य के द्वार तुम्हारे लिए खुल जायें गे। बढो और शत्रुओं को दिखा दो कि कौरवो के पास विजयी शूरवीरो की कमी नही, हम सारे जगत से टक्कर ले सकते हैं।"

रणभेरी बज उठी। शखनाद होने लगे। ललकारने और ताल ठोकने और ज़ोर ज़ोर से पुकारने की आवाजें आने लगी। दोनों ओर से चुनौतियां दी जाने लगी और इस तुमुल नाद से दशों दिशाएं गूंज उठीं। सेनाएं बढी और कौरव तथा पाण्डवो के पक्ष

के वीर भिन्न भिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्रों को लेकर एक दूसरे पर टूट पड़े। तलवारों मे तलवारें टकराने लगी, धनुषों की टंकारें बिजली टूटने की ध्वनि की भांति सुनाई देने लगी। भाले भालो से टकरा गए। गज सवार गजसवारो पर, अश्वारोही अश्व सवारों पर, पदाति पदातियो पर और रथ सवार रथ सवारो पर टूट पड़े। रथो की घर घराहट से दिशाएं गूंजने लगी। वीर क्षत्राणियो के सपूत वीरांगनाओं का सुहाग लूटने लगे और कितनी ही जवानियाँ बाणो मे निकलती लपटों मे ध्वस्त होने लगे। रात्रि भर जो भाईयो की भांति रहे अब वे एक दूसरे के प्राणो के ग्राहक बन गए।

सामने से भीष्म जी अपने धनुष की टंकार करते, योद्धाओं को मौत की नींद सुलाते पाण्डव सेना की ओर बढे। यह देख धृष्ट द्युम्न आदि महारथी भी भैरव नाद करते हुए भीष्म जी से टक्कर लेने दौड़े। जो हाथ प्रणाम के लिए उठा करते थे, वे बाणों के द्वारा भीष्म जी के प्राण हरने के लिए बड़े वेग से चलने लगे। फिर तो दोनो सेनाओं मे भीषण युद्ध छिड़ गया।

भीष्म जी का मुख मण्डल क्रोध तथा तेज के मारे तप रहा था और जैसे पूर्ण यौवन पर आये तपते सूर्य की ओर देख सकना कठिन हो जाता है उसी प्रकार भीष्म जी की ओर देख सकना कठिन हो रहा था। भीष्म जी के बाणो के प्रहार से सोमक, सृञ्जय, पाचाल राजाओ को मार गिराने लगे, पर वे भी प्राणो का मोह त्याग कर भीष्म जी पर टूट पड़े। उन के अंग रक्षक, सहयोगी और साथी योद्धा भी भीष्म जी पर प्रहार करने लगे। परन्तु भीष्म जी के बाणो की मार से कितने ही अश्वारोहियो के सिर कट कट कर धरा पर लुढकने लगे, कितने ही पहाड़ों के समान उन्नत हाथी धाराशायी हो गए। कितने ही रथ योद्धा हीन होकर रह गए। उस समय यदि कोई था जो निर्भय होकर भीष्म जी के सामने टिका हुआ था तो वह था भीमसेन जो पूरे वेग से भीष्म जी से टक्कर ले रहा था, वह उन के प्रहार को रोकता और स्वय प्रहार भी कर रहा था।

भीमसेन के प्रहारों से अन्त मे भीष्म जी भी तंग आ गए यह देख दुर्योधन अपने भाईयों सहित उन की रक्षा के लिए आगया।

उसी समय भीमसेन ने एक ऐसा तीक्ष्ण बाण मारा कि भीष्म जी का सारथी पृथ्वी पर लुढ़क गया और बाणों की वर्षा से तंग आकर घोड़े भीष्म जी के रथ को लेकर रणभूमि में इधर उधर भागने लगे। घोड़े बिगड़ गए थे, इस लिए भीष्म जी को युद्ध जारी रखना असम्भव हो गया। और इस से पहले कि वे अपने घोड़ों को नियंत्रित करें घोड़े रथ लेकर भाग गए। तब तो भीमसेन मारों और मार करता हुआ घूमने लगा, जो भी सामने आया उसे ही मार गिराया। अनायास ही धृतराष्ट्र पुत्र सुनाभ भीमसेन के सामने आ गया और वह तत्काल ही मारा भी गया, तब तो धृतराष्ट्र के सात बेटे अमर्ष से भर गए और आपे से बाहर होकर वे भीमसेन पर टूट पड़े। और एक रण कुशल धृतराष्ट्र पुत्र ने अपनी रण कुशलता से भीमसेन की एक भुजा को घायल कर दिया। परन्तु मदोन्मत्त गज समान युद्ध रत भीमसेन के रण कौशल मे कोई कमी न आई। उस ने बाणों को वर्षा जारी रखी और उस घायल करने वाले कौरव का सिर एक ही बाण से उडा दिया, दूसरे की छाती तोड दी, तीसरे का मस्तक धूल की तरह उडा दिया, चौथे को कई बाणों से लुढका दिया और अन्त में उन सभी को मार डाला।

आठ भ्राताओं को मृत देख कर अन्य कौरव भ्राताओं का हृदय काप उठा। वे सोचने लगे कि भीमसेन ने भरी सभा मे कौरवो को मार डालने की जो प्रतिज्ञा की थी, आज वह उसे पूर्ण कर देगा। यह सोच कर वे अपने प्राण लेकर भाग पडे। भाईयो के मरने से दुर्योधन भी शोक विह्वल हो गया, उस ने अपने सैनिको को आज्ञा दी कि—"भीमसेन को चारों ओर से घेर लो और मार डालो।"

सैनिक तो पहले से ही यमराज का रूप धारण किए हुए भीमसेन के भय से कांप रहे थे, इस लिए आज्ञा पाते ही कुछ के तो प्राण सूख गए, किसी के हाथों से शस्त्र ही छूट गए और कुछ रण भूमि से भागने लगे। यह स्थिति देख कर दुर्योधन को विदुर जी की बातें याद आ गई। वह सोचने लगा—'वास्तव मे विदुर जी बड़े बुद्धिमान और दूरदर्शी हैं, उन्होने ठीक ही कहा था कि भीमसेन अपनी प्रतिज्ञा अवश्य ही पूर्ण करेगा, इस लिए उस के कोप से बचने का एक मात्र उपाय यह है कि रण का सकट मोल न लो।—पर अब

क्या हो ? अब तो मृत्यु सिर पर मण्डरा रहो है।"

दौडा दौडा दुर्योधन भीष्म जी के पास गया और बडे दुख के साथ फूट फूट कर रोने लगा दुर्योधन की यह दशा देख कर भीष्म जी भी बडे दुखित हुए। उन्होने पूछा—"बेटा! अश्रुपात का क्या कारण। रणभू म मे होकर तुम्हारी आखो मे आसू ??"

"पितामह! भीमसेन ने मेरे आठ भ्राताओं का वध कर डाला और अब वह हमारे अन्य शूरवीरों का संहार कर रहा है। हा शोक मेरे परिवार का नाश हो रहा है और आप तो जैसे मध्यस्थ से हो गए है आप कुछ करते ही नही। मैं मिट रहा हूं। और आप हमारी उपेक्षा कर रहे हैं। मेरे भाई मरते रहे और आप की यह उपेक्षा नीति चलती रहे तो मेरी आखों में आँसू न आयेंगे क्या?"दुर्योधन ने दुखित होकर कहा।

बात कटु थी, पर उस के शोक विह्वल होने के कारण भीष्म जी का गला भर आया। बोले—'बेटा! मैंने, द्रोणाचार्य और विदुर जी ने तुम से बहुत कहा, गान्धारी ने तुम्हे कितना ही समझाया पर तुम ने हमारी एक न सुनी। हम ने चाहा कि तुम हमे युद्ध मे न डालो, पर तुम हठ पर अड गए। अब उसी का यह परिणाम है कि तुम्हारे नेत्रों मे आँसू हैं। यह हमारी उपेक्षा के कारण नही, तुम्हारे प्रारब्ध के कारण हैं। अब तो तुम्हे परलोक मे ही सुख पाने की इच्छा से युद्ध करना चाहिए। हम जहा तक हो गा, तुम्हारे लिए लड़ेंगे।"

फिर भीष्म जी दुर्योधन को सन्तोष बन्धाते हुए भीषण युद्ध करने लगे यह देख युधिष्टर की आज्ञा से उनको सारी सेना क्रोध मे भरकर भीष्म जी के ऊपर टूट पड़ी। धृष्ट द्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, समस्त सोमक याद्धाओ के साथ राजा द्रोपद और विराट, केकय कुमार धृष्टकेतु और कुन्ती भोज सभी ने भीष्म जी पर आक्रमण किया। अर्जुन, द्रौपदी के पुत्र और चेकितान आदि दुर्योधन के भेजे राजाओ से युद्ध करने लगे। तथा अभिमन्यु, घटोत्कच और भीम सेन ने युद्ध से अपने प्राण बचाने की चेष्टा करते कौरवों पर धावा किया। इस प्रकार पाण्डव और उन की सेना तीन भागों में विभक्त हो कर कौरवो का संहार करने लगी और कौरव पाण्डवों के

संहार के लिए जी जान तोड कर लडनेलगे।

द्रोणाचार्य ने क्रुद्ध होकर सोमक और सृज्जयों पर आक्रमण किया और उन्हें यमलोक भेजने पर उतारू हो गए। उस समय सृज्जयों मे हाहाकार मच गया दूसरी ओर महाबली भीमसेन कौरवो पर मृत्यु देव की भाति टूट रहा था। दोनो ओर के सैनिक एक दूसरे को मारने लगे। रक्त की नदी बह निकली। उस घोर संग्राम मे कितने ही सुन्दर वीरवर धूल मे लुढकने लगे। बडे बडे योद्धाओं के शरीर घोडो तथा हाथियो के पैरो से रौंदे जा रहे थे। भीष्म जी घोर सग्राम कर रहे थे उनके बाणो से कितने ही घोडे और हाथी पृथ्वी पर लुढक रहे थे। उधर नकुल और सहदेव कौरवों के अश्वारोहियो और उनके घोडो को बुरी तरह मार रहे थे भीमसेन अपनी गदा लेकर कौरवो के हाथियों पर टूट पड़ा था, मेरु समान हाथी क्षण भर मे गदाओं की मार से पृथ्वी पर ढह जाते थे। अर्जुन ने कितने ही राजाओ का सिर धड से अलग कर डाला था, जो सिर किसी के सामने नही झुकते थे,अर्जुन के कारण घोडों की ठोकरो मे पडे थे। उस समय का युद्ध सागर में आते ज्वारभाटे की भांति चल रहा था जब भीष्म द्रोण, कृप और अश्वत्थामा एक साथ मिल कर क्रुद्ध हो युद्ध करते तो पाण्डवो की सेना का सहार होने लगता और जब अर्जुन, भीम, विराट, अभिमन्यु आदि कुपित होकर टूटते तो कौरव सेना का संहार होने लगता। इस प्रकार दोनो ओर की सेना का रक्त मिट्टी मे मिल रहा था। फिर भी बेचारे दुर्योधन को बडी चिन्ता थी।

भास्कर का रथ अपने निश्चित पथ पर अग्रसर हो रहा था। धूप काफी तेज हो गई थी। और युद्ध की गरमी भी बढ़ती जा रही थी। वीरों का विनाश करने वाला भीषण युद्ध अधिकाधिक भीषण रूप धारण करता जाता था कि शकुनि ने पाण्डवो पर धावा किया। आक्रमणकर्त्ताओं मे कृत वर्मा भी एक बडी सेना सहित था। जब पाण्डवो का व्यूह ताड कर शकुनितथा गांधार देश के अन्यान्य वीर अन्दर घंस गए और पाण्डव वीरों का संहार करने लगे तो इरावान मे न रहा गया। इरावान अर्जुन का पुत्र था। उसने अपने साथी वीरों को ललकार कर कहा—"वीरो! देखते क्या हो इन दुष्टो को चारों ओर मे घर कर मार डाला। देखो, कोई बच कर

न जाने पाये"। इरावान की ललकार सुन कर सैनिको ने उन्हे चारो ओर से घेर लिया और भीषण युद्ध करने लगे। जब कौरव पक्षी योद्धा पाण्डव पक्षी वीरो के द्वारा मारे जाने लगे तो सुबल के पुत्रों मे न रहा गया और वे दौड कर उनकी सहायता के लिए पहुच गये। उन्होंने जाते ही इरावान को चारो ओर से घेर लिया अकेला इरावान उन सभी का डटकर मुकाबला करने लगा, फिर क्या था कुपित तो दूर सुबल पुत्र इरावान पर टूट पडे और आगे पीछे, और दाये बायें से इरावान पर बाणो की वर्षा होने लगी। परन्तु वह फिर भी किंचित मात्र न घबराया। उसके शरीर पर अनेक जगह घाव आ गए। लाल लाल लहू की धाराए बह निकली, किन्तु वह उसी प्रकार युद्ध कर रहा था, जसे कि स्वस्थ अवस्था मे करता था। बल्कि इस से उस को क्रोध चढ गया और उसने अपने तीखे बाणों से सभी को बींध डाला घायल हो कर वे मूर्छित हो गए। तब उसने चमकती तलवार हाथ मे सम्भाली और सुबल पुत्रो की हत्या करने के उद्देश्य से आगे बढा। परन्तु जब तक वह उनके पास पहुचता, उनकी मुर्च्छा भग हो गई। और क्रोध मे भर कर इरावान पर टूट पडे। साथ ही उसे बन्दी बनाने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु ज्यों ही वे निकट आये, इरावान ने तलवार के ऐसे हाथ दिखाये कि उनकी भुजाएं कट गई और वे भुजाहीन हो कर पृथ्वी पर गिर पडे। उन मे से केवल वृषभ नामक राजकुमार ही जीवित बचा।

इरावान का यह पराक्रम देख घबराया हुआ दुर्योधन विद्याधर (राक्षस) अलम्बुष के पास गया और बोला—"महाबली अर्जुन का पुत्र इरावान हमारी सेना का सहार कर रहा है, उसने सुबल पुत्रो को मार डाला है और यदि उसका वेग न रुका तो न जाने वह क्या कर गुजरे। तुम जानते ही हो कि भीमसेन ने तुम्हारे साथी विद्याधर बकासुर का बध किया था, उसका बदला लेने का उचित अवसर है। तुम तो बड़े बलवान और मायावी हो, चाहो तो इरावान का सहज ही मे वध कर सकते हो। कुछ ऐसा करो कि इरावान धाराशायी हो जाये, ताकि सुबल पुत्रों के वध का बदला मिल जाये और हमारी सेना का संहार रुक जाये।"

विनय भाव से की गई प्रार्थना को स्वीकार करके अलम्बुष

सिंह के समान गर्जना करता हुआ इरावान के पास गया और बड़ी ही भयायक दहाड के साथ चेतावनी दी —इरावान! ठहर अभी तुझे यम लोक पहुंचाता हूं।" इतना कह कर वह भयानक विद्याधर इरावान पर टूट पडा। किन्तु इरावान साहस पूर्वक उसका मुकाबला करने लगा। जब इरावान इस प्रकार वस मे न आया तो अलम्बुष ने मायावी बाण मारे परन्तु इरावान उनके वस मे भी न आया। उसने भी ऐसे वाण मारे जिस से विद्याधर की मायाकी काट हो जाती। इसी प्रकार बहुत देरि तक युद्ध होता रहा। एक बार अलम्बुष ने मोहिनी अस्त्र मारा जिस से इरावान मूच्छित हो सकता था, पर इरावान के पास भी अर्जुन के दिए हुए अस्त्र थे उसने मोहिनी अस्त्र का खण्डन कर डाला तब विद्याधर एक भीषण अस्त्र छोडकर दौडा। इरावान ने उस माया को काट डाला और अलम्बुष के पीछे दौडा। अलम्बुष के पास एक आकाशगामी वायुदान था, वह उस मे सवार होकर अस्त्रों का प्रयोग करता हुआ आकाश की ओर उड चला। इरावान ने उस का पीछा जारी रक्खा। और अपने माया अस्त्रों से अन्तरिक्ष मे उडते अलम्बुष मोहित करके बाणों द्वारा उसे बीधता जाता। परन्तु विद्याधर के पास कुछ ऐसी बूटियां थी जिनके स्पर्श मात्र से रक्त बहना बन्द हो जाता था और घाव अच्छे होने लगते थे। वह अपने अस्त्रों का प्रयोग कर के इरावान का परेशान करता और उसके आक्रमणों से अपनी रक्षा करता हुआ अन्तरिक्ष मे जला जा रहा था। विद्याधर ने अपनी विद्याओ का वार बार प्रयोग किया, पर इरावान भी कोई कम न था। उसने अर्जुन के साथी गांधर्वो और विद्याधरो से बहुत कुछ सीख रखा था अत. प्रत्येक विद्या का वह काट जानता था।

किन्तु एक बार विद्याधर अलम्बुष ने एक ऐसा माया मयी बाण मारा कि उसके छूटते ही इराबान की आखो के सामने अंधकार छा गया और बहुत प्रयत्न करने पर भी वह आगे न देख सका। तब अवसर पाकर अलम्बुष ने एक ऐसा बाण मारा कि इरावाप की खोपडी को काटता हुआ निकल गया। खोपडी कट कर भूमि पर गिर गई और फिर इरावान का शरीर भी अन्तरिक्ष से नीचे गिर गया। इरावान का शरीर रण भूमि मे आकर गिरा और उसे देख कर कौरव सैनिक उल्लास के मारे उछल पडे। जय नाद होन

लगे, शखनादों से सारा रण स्थल गूंज उठा।

इरावान मारा गया, यह देखकर भीमसेन के पुत्र घटोत्कच ने बड़ी भीषण गर्जना की। उसकी आवाज़ से सारा रण स्थल गूंज उठा इस भयानक गर्जना को सुनकर कुछ कौरव सैनिकों को काठ मार गया और वे भय के मारे डर कर कांपने लगे। उनके अगों से पसीना छूटने लगा। सभी सैनिकों की दशा अत्यन्त दयनीय हो गई। घटोत्कच क्रोध के मारे प्रलयकालीन यमराज की भाँति हो गया, उसकी आकृति बहुत ही भयानक बन गई। उसके साथ विद्याधरों की एक विशाल सेना थी, जो भयानक अस्त्र शस्त्र लेकर चल रहे थे। स्वय घटोत्कच के हाथ में एक जलता हुआ त्रिशूल था। वह बार बार गर्जना करता चल रहा था—"वीरो! दुष्ट कौरवों का सहार कर डालो। देखो, तुम्हारे भय से शत्रु हवा के वेग के कारण कापते पीपल पत्तों की भांति थर-थर कम्पित हो रहे हैं।"

घटोत्कच का ऐसा सिंह नाद सुन कर और अपने सैनिकों के मुखों पर हवाईयाँ उड़ता देख, दुर्योधन गजारोही सैनिकों की भारी भीड़ को लेकर घटोत्कच के मुकाबले के लिए चला। जब घटोत्कच की दृष्टि एक भारी सेना सहित आते देख दुर्योधन पर पड़ी तो वह कुपित होकर गजारोही सेना की ओर बढ़ा और जाते ही रोमांचकारी आक्रमण कर दिया। दुर्योधन अपने प्राणों का मोह त्याग कर बड़ी फुर्ती से विद्याधरों से लड़ने लगा। उसने कुपित होकर कितने ही विद्याधरों को मार डाला। यह देख घटोत्कच क्रोध के मारे जलने लगा और लपक कर दुर्योधन के पास पहुंच गया। जाते ही गरज कर बोला—"अरे नीच! जिन्हें तुम ने दीर्घ काल तक वनोमे भटकाया और अपनी नीचता से दारुण दुख दिए, उन्ही माता पिताके ऋण से उऋण होने के लिए आज तुम्हें मौत के घाट उतार दूगा।"

इतनी चेतावनी देकर त्रिशूल छोड घटोत्कच ने अपने हाथ मे एक विशाल धनुष सम्भाला और भीषण बाण वर्षा कर के दुर्योधन को बाणो के आवरण से ढक दिया। तब अपने प्राणों पर संकट देख दुर्योधन पूरी शक्ति बटोर कर उस पर आक्रमण करने लगा। उस के तीक्ष्ण बाणों से घटोत्कच घायल हो गया और कोई चारा न देख उस ने एक महाशक्ति अस्त्र को दुर्योधन पर फेंका, वह शक्ति पर्वत को भी विदीर्ण कर सकती। ज्यो ही शक्ति का प्रहार हुआ, बंगाल

के राजा ने दुर्योधन के प्राणो की रक्षा के लिए तुरन्त ही अपने हाथी हकवा दिए और दुर्योधन का रथ हाथियो की ओट में आ गया। जिस से शक्ति का प्रहार हाथियों पर ही हुआ और वे धाराशायी हो गए।

हाथियों के चिघाड मारकर धाराशायी होते ही दुर्योधन की साथी सेना में बड़ा कोलाहल मचा। हाथी तक भयभीत होकर बिगड उठे और पीछे की ओर भागने लगे। सैनिक सिर पर पर रख कर भागे। यह दशा देख दुर्योधन को बडा धक्का लगा, पर वह क्षमियोचित धर्म अनुसार वही स्थिर भाव से खड़ा रहा और कालाग्नि समान वाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। परन्तु रण कौशल मे प्रवीण घटोत्कच ने सभी वार काट दिए और एक ऐसा भैरव नाद किया कि बचे खुचे कौरव सैनिक भी थर्रा उठे। यह देख कर भीष्म पितामह ने अन्य महारथियों को दुर्योधन की सहायता के लिए तत्काल ही भेज दिया। द्रोणा, सोमदत्त, वाह्लीक जयद्रथ, कृपाचार्य, भूरि श्रवा, शल्य, उज्जैन के राजकुमार, बृहद्बल, अश्वस्थामा विकर्ण, चित्रसेन, विविंशति और उनके पीछे चलने वाले कई सहस्त्र रथी, दुर्योधन की सहायता के लिए पहुंच गए। इतनी विशाल सेना के आने पर भी मैनाक पर्वत के समान स्थिर भाव से घटोत्कच खडा रहा। उसके साथ उसके संगी साथी विद्याधर थे। फिर तो दोनों पक्षों मे भीषण सग्राम होने लगा।

* उन्तालीसवां परिच्छेद *

सभी जानते है कि रण क्षेत्र मे उतरने पर किसी को कुशलता अनिवार्य नही है। बल्कि रण मे उतरने वाले अपने सिर पर कफन बांध कर जाते हैं। ऐसा समझा जाता है। और क्षत्रिय वीर के रण मे काम आने पर वीरगति को प्राप्त हुआ माना जाता है। महाभारत मे तो भरत खण्ड के सभी शूरवीर किसी न किसी ओर से लड रहे थे। एक ओर ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी तो दूसरी ओर सात। परन्तु सात अक्षौहिणी सेना वालो पाण्डवों की स्वय की शक्ति इतनी अधिक थी कि ग्यारह अक्षौहिणी सेना वाले कौरव भी उनका सामना करते समय अपनी विजय के प्रति आश्वस्त थे, ऐसा नही माना जा सकता। इतनी भयानक टक्कर में कोई वीर काम आ जाये तो न आश्चर्य की ही बात हो सकती है और न रण वीरो को वीरगति को प्राप्त हुए वीर पर अश्रुपात करना ही शोभा देता है। फिर भी मोह ही तो ससार चक्र और आवागमन के चक्र को चलाते रहने का कारण है गृहस्थ व्यक्ति मे मोह न हो तो गृहस्थ ही क्यो रहे, उसे तो विरक्त हो जाना चाहिए। इस लिए अर्जुन को धर्म का मर्म ज्ञात होने और आत्मा के विभिन्न जन्म धारण करते रहने का रहस्य मालूम होने पर भी और रण मे काम आये वीर पर आंसू बहाना व्यर्थ समझते हुए भी, इरावान की मृत्यु का समाचार सुन कर बहुत दुःख हुआ। कुछ देरि के लिए वह मग्न सा रह गया। उस के हृदय पर बड़ा आघात लगा। उस का मन चीत्कार कर उठा। श्री कृष्ण से कहने लगा—मधु सूदन ! मैंने

पहले ही कहा था कि इस युद्ध मे हमें कोई लाभ नही होने वाला। सुना आप ने मेरा लाडला बेटा इरावान समार मे चला गया।"

कृष्ण बोले—पार्थ ! बेटे की मृत्यु पर इतना दुःख क्यों प्रगट करते हो। उसे तो एक न एक दिन जाना ही था। ससार मे अमर कौन है ? इरावान वीरगति को प्राप्त हुआ है। यह दुख की तो बात नही। कई कौरव भी तो तुम्हारे हाथों मारे गए।"

श्री कृष्ण कौरवों की बात कह कर अर्जुन को सान्त्वना देना चाहते थे। पर अर्जुन के मन पर गहरा घाव हुआ था। कहने लगा —"गोविन्द ! कौरव भी मारे गए और इधर कुछ हमारे वीर काम आये। यह सब कुकर्म धन के लिए ही तो हो रहा है। धिक्कार है ऐसी सम्पति को जिसके लिए इस प्रकार बन्धु-बान्धवो का विनाश हो। भला यहां एकत्रित हुए अपने भाईयो और अपने पुत्रों का बध करके या कराके हमे क्या मिलेगा ?"

अर्जुन के शब्दों मे युद्ध के प्रति उदासीनता थी। ऐसी बात देख कर श्री कृष्ण को शका हुई कि कहीं अर्जुन पुनः युद्ध से हाथ न खीच ले। बोले—"पार्थ ! यह जो कुछ हो रहा है पापी दुर्योधन शकुनि और कर्ण के कुमन्त्र मे ही तो। उन के षड्यन्त्र से हो रहा है विध्वंश रोकना उदासीनता से तो सम्भव नहीं। क्या द्रौपदी के अपमान की बात भूल गए। तुम्ही ने तो प्रतिज्ञा की थी कि उस सतो के साथ अन्याय करने वालो को तुम अपने गाण्डीव से दण्ड दोगे ? वीर पुरुष मोह वश युद्ध से पैर पीछे नही हटाया करते।"

अर्जुन बहुत देरि तक इरावान को याद कर के दुःख प्रगट करता रहा और अन्त मे जब श्री कृष्ण ने कहा- "धनजय ! इरावान से तुम्हें कितना प्रेम है, तुम्हारे हृदय पर उनकी हत्या से कितनी चोट पहुची है, इसका पता कल युद्ध में चलेगा। तुम्हारे गाण्डीव मे छूटे वाण कल को इरावान के हत्यारों के लिए यमदूत बन जाने चाहिए। वीरो से स्नेह प्रगट करने का यही सर्वोत्तम उपाय है।"

अर्जुन के रक्त मे क्रोध तथा उत्साह सचार हुआ और उसकी मुट्ठियां बध गई। मुख मण्डल दृढ हो गया और आंखो में अरुणाई दौड गई। आवेश मे आकर कहा—"गोविन्द ! कल को मैं इरावान के हत्यारों पर बिजली बन कर टूट पडूंगा। विश्वास रखिये। मैं अपने बेटे की हत्या का बदला अवश्य लूंगा।"

श्री कृष्ण मन ही मन मुस्कराये। उन्होंने अर्जुन के जोश को और हवा दी।

इधर अर्जुन को श्री कृष्ण प्रोत्साहित कर रहे थे उधर दुर्योधन भीष्म पितामह के पास अपना रोना रो रहा था। वह कह रहा था-- "पितामह ! पाण्डवो को जैसे श्री कृष्ण का सहारा है, वैसे ही आप का आश्रय लेकर हमने पाण्डवो से युद्ध ठाना है। मेरे साथ ग्यारह अक्षौहिणी सेना है। आप जैसे कुशल सेनापति है। ससार के सर्व श्रेष्ठ योद्धा मेरे पक्ष मे हैं। फिर भी पाण्डवो की सात अक्षौहिणी सेना ही हमारा नाक में दम किए हुए है। कुछ तो भीम पुत्र घटोत्कच के मुकाबले पर मेरी जो पराजय हुई उसे देख कर मैं आत्म ग्लानि के मारे मरा जा रहा हूं। पितामह ! जो कुछ हो रहा है उसे देखते हुए मैं विक्षब्ध हो उठा हूं। आप कल को कुछ ऐसा कीजिए कि उस चचल कुमार घटोत्कच से मैं अपना बदला ले सकू। यदि वह जीवित रहा तो न जाने हमे कितनी क्षति उठानी पड़े। मेरे भाईयो का बध हो जाना, इतनी शक्ति के होते हुए, मेरे लिए डूब मरने की बात है। पितामह ! आप कदाचित न समझ पायें कि उस समय मेरे दिल पर क्या बीत रही है।" पितामह ! गम्भीरता पूर्वक सारी बातें सुनते रहे और दुर्योधन ने जब अपनी बात समाप्त कर ली तो बोले--"बेटा ! पाण्डव स्वय इतने बलवान हैं। कि तुम्हारे पास दो तीन अक्षौहिणी सेना और भी होती तो भी सहज मे हम जीत न पाते। उनके सामने हम सब ठहर पा रहे हैं यही बहुत है।"

पितामह की बातें सुन कर दुर्योधन जल उठा। आवेश मे आकर बोला--" पितामह ! आप की बातों से मुझे पाण्डवों की प्रशसा की गन्ध आ रही है। आप इस तरह की बातें करते हैं मानो मैं कुछ भी नही हू। आप के मन मे ऐसा ही था तो आपने युद्ध आरम्भ होने से पहले ही क्यो नही कह दिया, मैं युद्ध हो न छेड़ता। अब जब कि हम रणागण में आ डटे आप ऐसी बातें कह कर मुझे हतोत्साह कर रहे हैं।"

"आवेश में आकर कुछ नही हो ,सक्ता—पितामह शान्ति पूर्वक बोले-तुम्हें सत्य कटु नही लगना चाहिये। शत्रु की शक्ति को एक कम आंकना भारी भूल होगी। मेरे कहने का तो अर्थ यह

है कि तुम्हें अपनी क्षति की चिन्ता न करके उत्साह पूर्वक युद्ध करना चाहिए। यदि घटोत्कच से तुम पराजित हो भी गए तो ऐसी क्या बात है कि तुम आत्म ग्लानि के मारे खिन्न हो।"

"पितामह ! मेरे मन को तो शाति तभी मिलेगी, जब कल को उस धूर्त का सिर काट लूंगा। आप मेरी सहायता कीजिए।" दुर्योधन ने कहा।

"बेटा ! घटोत्कच को जाकर तुम ललकारो यह तुम्हे शोभा नही देता—भीष्म पितामह ने कहा—तुम राजा हो। तुम्हे युधिष्ठर भीम, अर्जुन और नकुल सहदेव से युद्ध करना ही उचित है। घटोत्कच जैसो के लिए मैं, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वस्थामा, कृतवर्मा, भूरिश्रवा और दुःशासन आदि है। और कोई नही तो राजा भगदत्त हो उस से युद्ध करने जाये।"

दुर्योधन को यह सुन कर बडा सन्तोष मिला। वह बोला—"आप की ऐसी ही राय है तो फिर भगदत्त को ही घटोत्कच को ललकारना चाहिए। मेरे विचार से घटोत्कच उन के सामने नही ठहर सकता।"

"हा ! मेरी भी यही राय है।"

बस बात निश्चित हो गई और दुर्योधन अपने शिविर मे लौट आया।

× × × ×

रणागण मे दोनो ओर की सेनाएं जा खडी हुई। दोनो ओर के सेनापतियो ने अपनी अपनी सेनाओ की व्यूह रचना की और अन्तिम, आवश्यक हिदायते देकर रण की तैयारी के बिगुल बजाये। तमाम रणक्षेत्र शख ध्वनियां और सिंहनादो से गूज उठा।

सेनापति की आज्ञा पाकर शूर भगदत्त सिंहनाद करता हुआ बडे वेग से शत्रुओ की ओर चला। उसे अपनी ओर आते, देख पाण्डवों के महारथी भीमसेन अभिमन्यु, घटोत्कच, द्रौपदी के पुत्र सहदेव, चेदिराज, वसुदान और दशर्णराज क्रोध मे भर कर उसके सामने जा डटे। भगदत्त ने भी सुप्रतीक हाथी पर सवार होकर इन महारथियो पर धावा बोल दिया। तदनन्तर पाण्डवो का भगदत्त से भीषण सग्राम छिड गया दोनो ओर से रण-कौशल के विचित्र

विचित्र पराक्रम प्रदर्शित किए जाने लगे। बाणों की वर्षा से सावन-भादों में लगी मेघ वर्षा का दृश्य उपस्थित हो गया। शूर भगदत्त ने पहले भीमसेन को अपने बाणों का लक्ष्य बनाया। परन्तु भीमसेन अपने ऊपर हो रही बाण वर्षा से तनिक भी विचलित नहीं हुआ। उस ने बार बार सिंहनाद किए, जिन्हें सुनकर भगदत्त के लडाकू हाथी के परों की रक्षा करने वाली सेना के वीरों का हृदय कांप उठता" भीमसेन कुपित होकर पहले उन्हीं पर टूट पड़ा। एक ओर भगदत्त के बाणों से अपनी रक्षा करना दूसरी ओर हाथी के रक्षकों को मारना, यह क्रम उस ने इस प्रकार बांधा कि देखते ही देखते सौ से अधिक गज रक्षक यमलोक सिधार गए और भीमसेन का बाल भी बांका न हुआ।

यह देख भगदत्त कुपित हो गया। उसने अपने हाथी को भीमसेन के रथ की ओर बढाया। निकट था कि भगदत्त का खूनी हाथी भीमसेन के रथ को अपनी सूण्ड में तोड देता, पाण्डव वीरों ने झट से उसे चारों ओर से घेर लिया। और गजराज व भगदत्त पर बाण वर्षा आरम्भ कर दी। चारों ओर से घिरे होने पर भी वह किंचित मात्र भी भयभीत न हुआ। अमर्ष पूर्वक अपने हाथी को पुनः आगे की ओर चलाया।

भगदत्त के अङ्कुश और पैर के अंगूठे का संकेत पाकर गजराज उस समय प्रलय कालीन अग्नि के समान भयानक हो उठा और सामने पड़ने वाले रथों व पदाति सैनिकों को रौंदना आरम्भ कर दिया। पाण्डव वीरों के बाणों की परवाह किए बिना हिंसक मदोमत्त हाथी छोटे हाथियों को सवारों सहित घोड़ों को उन पर आरूढ सैनिकों सहित और पदाति सैनिकों को उनके शस्त्र-अस्त्रों सहित कुचलता व रौंदता चला जा रहा था। एक दिन गजराज के इस भीषण प्रहार से कोलाहल मच गया। कहीं हाथियों के चीत्कार कहीं घोड़ों के आर्तनाद और कहीं सैनिकों की हा हाकार सुनाई देती थी चारों ओर प्रलय का सा दृश्य प्रस्तुत हो गया। पाण्डवों की सेना में आतंक छा गया गया। यह देख घटोत्कच से न रहा गया। उस ने उस खूनी हाथी का वध करने के लिए कुपित होकर एक चम चमाता हुआ त्रिशूल चलाया। भगदत्त ने घटोत्कच के हाथ के त्रिशूल को देख कर समझ लिया कि उस की मार खा कर

गजराज मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। इस लिये उसने तुरन्त ही एक अर्घ चन्द्राकार बाण चला कर घटोत्कच के त्रिशूल को काट डाला। और शिखा के समान प्रज्वलित एक शक्ति घटोत्कच के ऊपर फेंकी।

अभी वह शक्ति आकाश मे ही थी कि घटोत्कच ने उछल कर उसे पकड़ लिया और दोनो घुटनो के बीच मे दबा कर तोड़ डाला। यह अद्भुत बात थी। भगदत्त आंखें फाड़ फाड़ कर इस अद्भुत घटना को देखता रह गया। आकाश में देख रहे देवता, गन्धर्व, और विद्याधरो को भी घटोत्कच के विचित्र पराक्रम पर आश्चर्य हुआ पाण्डवो ने इस विचित्र व आश्चर्य जनक पराक्रम को देख कर बड़ा ही हर्ष प्रगट किया और घटोत्कच की जय जय कार करने लगे। पाण्डव-सेना मे पुनः स्फूर्ति आ गई और भीषण संग्राम छिड़ गया।

भगदत्त पहले तो आश्चर्य से देखता रहा, परन्तु जब उस ने घटोत्कच के जय कार और पाण्डव वीरो के सिंह नाद सुने तो उससे सहा नही गया। खीझ हो कर उसने पाण्डव महारथियो पर वाण बरसाना आरम्भ कर दिया। वह कभी भीमसेन को अपने बाणो का लक्ष्य बताता, तो कभी अभिमन्यु को, और कभी केकय राज कुमारो को भीमसेन को उस के एक बाण ने घायल कर दिया, अभिमन्यु पर तीन वाण लगे। केकय राजकुमारो को पाच बाणो से उस ने बींध दिया। एक प्राण से क्षत्रदेव की दाहिनी भुजा काट डाली। पाच बाणो मे द्रौपदी के पांचों पुत्रों को घायल किया। यह देख कर भीमसेन आग बबूला हो कर भगदत्त पर टूट पड़ा। परन्तु कुपित शूर भगदत्त ने उसके घोडो को मार गिराया, सारथि भी काम आया। और अन्त मे भीमसेन को अपनी रक्षा करनी मुश्किल हो गई।

परन्तु भीमसेन शत्रु के बाणो को [illegible] नही था। तुरन्त गदा लेकर रथ से कूद [illegible] की ओर क्रुध होकर बढा। भीमसेन के उसकी लाल लाल आखें देखकर कौरव [illegible] [illegible]नो यमराज ही [illegible] [illegible] आ [illegible]

दूसरी ओर हवा से बाते करते हुए घोडो को श्री कृष्ण ने ओर बढाया। अर्जुन के गाण्डीव की टकार ने सभी का ध्यान ो ओर खीच लिया। अर्जुन को कौरव सैनिकों की ओर बढते र कौरव-महारथियों मे खलबली मच गई। और तुरन्त भीष्म, सुशर्मा आदि अर्जुन के वेग को रोकने के लिये आ गए। भगदत्त वीर अर्जुन की ओर बढा। राजा अम्वष्ठ ने अभिमन्यु को कारा, कृतवर्मा और वाल्हीक ने सात्यकि को घेर लिया। अन्य अर्जुन से भिड गए और भीमसेन ने जब धृतराष्ट्र के पुत्रो अर्जुन की ओर बढते देखा तो भगदत्त का पीछा छोडकर वह ही की ओर बढ गया। अपने एक रथ को पास बुलाकर रथारूढ ा और वाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। धृतराष्ट्र के पुत्रो ने मसेन को चारो ओर से घेर लिया और अपने अपने रण कौशल परिचय देने लगे। पर भीमसेन के वारो को रोक पाने की क्षमता सी में नही थी। देखते ही देखते कई कौरव लुढक गए। अपने ई भाईयों को इस प्रकार मारे जाते देखकर अन्य कौरव भयभीत गए और उस यमराज रूपी भीमसेन से अपने प्राण बचाने के लए भाग खडे हुए। भीमसेन ने एक भयकर अट्टहास किया। ाश्चर्यजनक बात यह थी कि जिस समय भीमसेन धृतराष्ट्र पुत्रो ो यमलोक पहुचा रहा था, उस समय द्रोणाचार्य कौरवों की रक्षा के लिए उस पर वाण वर्षा कर रहे थे। किन्तु भीमसेन एक ओर द्रोणाचार्य के बाणों को निष्फल कर रहा था, दूसरी ओर कौरवों को मार रहा था। अन्त मे कौरवों को भागते देखकर भीमसेन ने द्रोणाचार्य को लक्ष्य करके कहा—"आचार्य! इन कायरों की रक्षा कर रहे थे आप, पीठ दिखाकर भाग जाना जिनका स्वभाव है।" द्रोणाचार्य मन ही मन लज्जित हुए।

दूसरी ओर भीष्म, भगदत्त और कृपाचार्य ने अर्जुन को ललकारा और वे दोनों महाबली उसका रास्ता रोक कर खडे हो गए। अति रथी अर्जुन ने पहले पितामह के चरणों की वन्दना वाणों द्वारा की और एक बार सिंह गर्जना करके तीनो पर टूट पडा। बाण-युद्ध आरम्भ हो गया। और उसके बाद विचित्र विचित्र अस्त्रों के प्रहार होने लगे। परन्तु अति रथी अर्जुन ने सभी अस्त्रों को अपने अस्त्रों से व्यर्थ कर दिया और शत्रुओं से अपनी रक्षा

करते करते ही कौरव महाबलियों के अंगरक्षकों में से कितने ही प्रमुख वीरों को यमलोक पहुंचा दिया।

अभिमन्यु ने राजा अम्वष्ठ के रथ के घोड़ो को मार डाला उसके सारथि को यमलोक पहुंचा दिया। क्रुध होकर राजा अपने हाथ मे तलवार लेकर अभिमन्यु की ओर चला परन्तु बाणों की मार से तंग होकर राजा को कृत वर्मा के रथ में शरण लेनी पड़ी। तब कही उसके प्राण बचे।

धृष्ट द्युम्न आदि अन्य वीर दूसरे कौरव वीरों से भिड़े थे। पदाति पदाति सैनिकों से; अश्वारोही अश्वारोहियों से, गजारोही गजारोहियों से और रथी रथियों से लड़ रहे थे। गदाओं के वार हो रहे थे। कही तलवारें लटक रही थी। कही भाले चल रहे थे। रुधिर की धारा बह रही थी। वीरो, घोड़ो और हाथियों के शवों से रास्ते रुक गए थे। कही चीत्कार सुनाई देते तो कही सिंह नाद। मरने पर अश्रुपात करने वाला कोई नही होता था और भागते पर वार करने वाला न होता। कोई अपने पराये की चिन्ता नहीं करता। सभी शत्रु रूप में आये वीर को मार डालने के लिए प्रयत्नशील होते।

कौरवो की सेना मे सर्वत्र भय छा गया था। अर्जुन ने भीष्म तक के मुकाबले पर हार नही मानी थी। वह बहादुरी से लड़ता रहा था। कौरवो के कितने ही प्रमुख वीर मारे जा चुके थे। इस लिए बार बार पश्चिम दिशा की ओर देखते थे। इतने मे ही सूर्य अस्त हो गया और थके हुए कौरव सैनिको की इच्छा पर भीष्म जी ने युद्ध बन्द करने के लिए शखनाद किया। तलवारें रुक गई। भाले हाथो मे रह गए और धनुषो की डोरियां उतार दी गई। दोनों सेनाए अपने अपने शिविर मे चली गई।

* चालीसवां परिच्छेद *

आठवें दिन का युद्ध समाप्त करके दुर्योधन ने अपने दैनिक धर्मों से निवृत होकर दुःशासन, शकुनि और कर्ण को अपने शिविर मे बुलाया। वह चिन्तित था। उदास भी। सभी उसकी चिन्ता का रहस्य समझते थे। फिर भी साहस बढाना अपना कर्तव्य समझ कर शकुनि ने कहा--"युद्ध की दशा देखकर चिन्तित होने से क्या लाभ ? हमे विश्वास है कि रण मे विजय हमारी ही होगी। परन्तु दीपक गुल होने के समय एक बार बडे ज़ोरो से भडकता है, मृत्यु के पजे में आया प्राणी पूरी शक्ति से छटपटाता है, बस यही दशा हो रही है पाण्डवों की। वरना हमारी ग्यारह अक्षौहिणी सेना के सामने उनकी शक्ति ही क्या है। तुम व्यर्थ ही चिन्तित हो रहे हो।"

"नहीं मेरी चिन्ता व्यर्थ नही है। आठ दिन के युद्ध का विश्लेषण करो तो यही परिणाम निकलेगा कि इन दिनो मे ही हमे बहुत क्षति हुई है। स्वयं मेरे अपने भ्राताओं की भी बलि हुई है। शूर भगदत्त आज घटोत्कच को मारने मे असफल रहे। भीष्म, कृत-वर्मा आदि मिलकर, भी अर्जुन को न रोक पाये, बल्कि उल्टे उसने हमारे ही योद्धाओं को मार गिराया। ऐसी दशा में मैं चिन्तित न हूं तो क्या खुशी मनाऊं ?"—दुर्योधन ने कहा।

दुःशासन कहने लगा—"पाण्डव युद्ध आरम्भ होने से पूर्व तो कुछ भयभीत भी थे, पर अब तो उनका हौस्ला ही बढ गया है। अकेला अर्जुन पितामह और द्रोणाचार्य को खदेड़ देता है।"

दुर्योधन ने उसका समर्थन करते हुए कहा—"आश्चर्य की बात तो यह है कि पितामह और द्रोणाचार्य भी मिलकर एक अर्जुन का वध नहीं कर पाते।"

कर्ण ने अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा—"दुर्योधन! तुम्हें अच्छी लगे या बुरी मुझे तो ऐसा लगता है कि पितामह दिल से लड ही नहीं रहे। वरना कहां पितामह और कहां अर्जुन। वह तो पितामह के एक प्रहार का शिकार है। मेरा विचार तो यह कि पितामह पहले से ही पाण्डवों से स्नेह रखते हैं। वे है तो तुम्हारे पक्ष मे पर दिल उनका पाण्डवो के पक्ष मे है। तब तुम्हारी विजय हो तो कैसे?"

"लेकिन, पितामह के लडने के तरीके मे तो ऐसा नही लगता!"—शकुनि ने शका प्रकट की।

कर्ण दृढतापूर्वक बोला—"मामा जी! आप भी कैसी बच्चों जैसी बातें करते हैं। भला भीष्म अपनी पूर्ण शक्ति से युद्ध करें और पाण्डव जीवित बच जाये? वे तो महाबली हैं। महान तेजस्वी और बाल ब्रह्मचारी है। उनकी शक्ति का डका तो सारे ससार में बज रहा है। पर यदि वे हथियार रख दे तो मैं ही पाण्डवों के लिए काफी हू। अकेला ही उन दुष्टो को यमलोक न पहुंचा दू तो तब कहना।"

दुर्योधन के मन मे आशा का सचार हुआ, उसे कुछ हिम्मत बन्धी। पर पश्चाताप सा करता हुआ बोला—"कर्ण! तुम्हारे ही शौर्य के बल पर तो मैने युद्ध ठाना है। मुझे विश्वास है कि अन्त समय में तुम ही काम आओगे। पर पितामह के रहते तुम रण मे उतरोगे नही और पितामह ऐसे पीछा छोडेंगे नही। करू तो क्या?"

शकुनि बोला—"यही बात है तो तुम पितामह से साफ साफ क्यो नही कहते?"

"हा, हा आप को पितामह से साफ साफ बात करनी चाहिए।" कर्ण ने शीघ्रता से कहा—उन से कह दो ना कि वे लडते हैं तो मन लगा कर लडे, वरना यदि उन्हे पाण्डवो से स्नेह है और अपने स्नेह के कारण वे लड नही पाते तो शस्त्र रख दे। क्यों व्यर्थ मे हमारे

वीरो को मरवा रहे हैं। यह युद्ध है युद्ध, लज्जा की तो मारे जाओगे।"

कर्ण की वात दुर्योधन की समझ मे आगई और वह आवेश मे आकर पितामह के शिविर की ओर चला।

× × × ×

पितामह दूसरे दिन के युद्ध की योजना पर विचार कर रहे थे तभी दुर्योधन पहुचा। पितामह ने उसे आव भगत मे बैठाते हुए कहा—"कैसे आना हुआ ? क्या कोई विशेष वात है ?"

अपना रोष प्रगट करते हुए दुर्योधन ने कहा—"पितामह ! रोज रोज की पराजय और अपने भ्राताओ व वीरो की हत्या से मैं तग आगया हू। आप को न जाने क्या हो गया है। आप हैं तो हमारी ओर। चढ जा बेटा सूली पर भला करें गे भगवान कह कर आप ने हमे सूली पर टाग दिया और स्वय पाण्डवो के स्नेह मे दुबले हुए जा रहे हैं। कुन्ती नन्दनों से इतना ही मोह है तो लोक दिखावे के लिए हमारी ओर से लडने की ही क्या आवश्यकता है ?"

आवेश मे कहे गए दुर्योधन के वचन पितामह को तीरों की भाति चुभे। पर शात भाव से वोले—बेटा ! बड आवेश मे हो। क्रोध में यह भी ज्ञान नही रहा कि कह क्या रहे हो ? तभी तो भगवान ने कहा है कि क्रोध अनर्थो का मूल है।"

"पितामह ! आप मेरी बातो को टालने की चेष्टा न करें—दुर्योधन ने जली कटी सुनाते हुए कहा—मैं जो कह रहा हू सच है। यह वात न होती तो क्या पाण्डव आप के होते हुए ठहर सकते थे ? आज तक तो उन का पता भी न चलता। उस दिन घटोत्कच से मैं पराजित हुआ पर आप पर उसका कोई प्रभाव ही न हुआ आज अर्जुन को ही आप नही रोक पाये। इस बात पर विश्वास करने के लिए भला कौन तैयार हो सकता है कि अर्जुन को रोकना आप के वस की वात नही। आप तो अकेले ही सारे पाण्डवो को काफी हैं। मैंने आप पर गर्व किया और आप के कारण ही मेरा प्रिय वीर कर्ण युद्ध मे अलग है। वह अकेला ही पाण्डवों को मार सकता है। मैंने आप को अपनी सेना का सेनापति बनाया तो इस लिए नही कि आप पाण्डवो के मोह मे मुझ पराजित कराते रहें। अब मैं

सन्तोप करू तो कैसे ?"

दुर्योधन के वाग्बाणो से पितामह बहुत ही व्यथित हुए. किन्तु उन्होंने कोई कडवी बात नही कही। क्योकि वे तो इस सिद्धान्त को मानने वाले थे कि—

त्रिकाल मिठे वचन ते मुख उपजे चहुं ओर।
वसीकरण एक मत्र है, तिज दे वचन कठोर॥

वे बहुत देरि तक दीर्घश्वास लेते रहे। उसके बाद अपने को नियन्त्रित करते हुए उन्होने कहा—"बेटा! अपने वाग्बाणो से मेरे मन को क्यो वेधते हो ? मै तो अपनी पूरी शक्ति लगा कर युद्ध कर रहा हू और तुम्हारा हित करना चाहता हू। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करने के लिए मैं अपने प्राण तक होमने को तयार हूं। पर पाण्डव मिट्टी के ढेले तो नही। वे भी तो शूरवीर है। याद करो उन के पराक्रम केदृष्टातो को। गन्धर्व जब तुम्हे पकडे लिए जा रहे थे और कर्ण आदि सभी पीठ दिखा कर भाग गए थे; यही अर्जुन था जिस ने अकेले ही गधर्वों से तुम्हे मुक्त कराया था। विराट नगर की चढाई के समय अकेले अर्जुन ने ही तो हम सब को परास्त कर दिया था। और अपनी वीरता की डींग हांकने वाले कर्ण आदि के वस्त्र उतार कर उसने उत्तरा को भेंट स्वरूप दिए थे। यह भी तो पाण्डवों की वीरता का ही प्रमाण है। भला जिसके रक्षक त्रिखड पति वासुदेव श्री कृष्ण हो, जो कि अर्जुन के सारथी है, उसे रण मे परास्त करना खिलवाड नही है। मैं कितना ही चाहूं उसे परास्त करना मेरे लिए असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। फिर भी तुम विश्वास रक्खो कि मैं हर सम्भव उपाय अपना कर तुम्हे विजयी बनाने की चेष्टा करूगा। सिवाय शिखन्डी के मैं सब पाण्डवो और उन के सहयोगियो से टक्कर लूगा। शिखण्डी को मैं स्त्री मानता हू उस पर शस्त्र नही चलाऊगा यदि तुम्हे मेरे युद्ध सचालन से कोई शिकायत हो तो सेनापतित्व तुम सम्भाल लो और शिखण्डी के अतिरिक्त अन्य किसीके भी मुकाबले पर मुझे डटा दिया करो मै अन्त समय तक लडता रहूगा तुम निश्चिन्त रहो। मैं कल और भी भीषण सग्राम करके तुम्हे सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करूगा। पर इतना अवश्य ही ध्यान रखना कि अब मैं बूढा हो गया हू। अब वह शक्ति मुझ मे नही है जो जवानी मे थी [illegible] भी कि [illegible] वाग्बाण

अर्जुन के गान्डीव मे छूटे बाणो मे अधिक घातक है।"

दुर्योधन पितामह को उत्तेजित ही करना चाहता था। जब उस ने देखा कि वे दूसरे दिन भीषण युद्ध करने का वचन दे चुके तो वह कुछ शात हो गया और बोला—"पितामह! आप को मेरी बातें कटु लगी होंगी पर जब मैं पाण्डवो की तनिक सी भी विजय देखता हू तो मेरी छाती पर साप लोट जाता है। आप यदि भीषण सग्राम करेंगे तो कल ही पाण्डवों के छक्के छूट जायेंगे।"

पितामह ने उसे सन्तुष्ट करने के लिए अपने वचन को दोहराया और अन्त मे बोले—"बेटा! अपने पक्ष वाले लोगों पर विश्वास रक्खो। अब समय अधिक हो गया। जाओ निश्चित होकर विश्राम करो।"

× × × ×

नवें दिन पितामह ने सर्वतो भद्र व्यूह की रचना की। कृपाचार्य, कृतवर्मा, शैब्य, शकुनि, जयद्रथ, सुदक्षिण और धृतराष्ट्र के पुत्र पितामह के साथ अग्रिम पक्ति मे खड़े हुए। द्रोणाचार्य, भूरिश्रवा, शल्य और भगदत्त व्यूह की दाहिनी ओर नियुक्त किए गए। अश्वत्थामा, सोमदत्त और अवन्ति राजकुमार अपनी विशाल सेनाओं सहित बायी ओर खड़े हुए। त्रिगर्तराज के वीरों और उसकी सेना से रक्षित दुर्योधन व्यूह के बीच मे था। महारथी अलम्बुष और श्रुतायु सारी व्यूह बद्ध सेना के पीछे थे। इस प्रकार सेनापति की आज्ञानुसार सभी ने अपने अपने स्थान ग्रहण किए और कौरव सेना युद्ध के लिए तैयार हो गई।

दूसरी ओर पाण्डवो की सेना भी व्यूह म खड़ी हुई। युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेव व्यूह के मुहाने पर थे। तथा धृष्ट द्युम्न विराट, सात्यकि, शिखण्डी, अर्जुन, घटोत्कच, चेकितान, कुन्ती भोज, अभिमन्यु, द्रुपद, युधामन्यु और केकय राजकुमार—यह सभी वीर कौरवो के मुकाबले पर अपना व्यूह बनाकर खड़े हुए। सेनापति ने इन सब के स्थान निश्चित कर दिए थे। जब पाण्डवों की सेना का व्यूह तैयार हो गया तो युद्ध के लिए तैयार होने की सूचना के रूप मे शखनाद किए गए। पाण्डवो के शखनादों को सुनकर कौरवों का रण का बाजा बजने लगा और भीष्म पितामह

के नेतृत्व मे कौरव-वीर आक्रमण हेतु आगे बढ़े।

दोनों ओर से युद्ध आरम्भ हो गया। दोनों ओर के वीर एक दूसरे की ओर दौडकर युद्ध करने लगे। उस समय दोनो ओर के वीरो के आगे बढने, धनुषों की टकारों और हाथियो व घोडो के शोर की ध्वनि से पृथ्वी डगमगाने लगी। चमचमाते अस्त्र निकल आये। गदाए टकराने लगीं। हाथियों की चिंघाडो का शोर मच गया। तभी दूसरी ओर से जंगल मे से गीदडों की आवाज उठी। दिन में गीदडों की आवाजे कुछ विचित्र सी लग रही थी, उत्तर मे कुत्तो ने एक साथ मिलकर आर्तनाद किया। आकाश में जलती हुई उल्काए पृथ्वी की ओर गिरने लगी। इन कुशुभ लक्षणो के बीच दोनों सेनाओं के हाथियो और घोडो की आवाजें वीरो के शखनाद और सिंहनाद, गदाओं के टकराने से निकलने वाली ध्वनि और धनुषो की टकारें बड़ी ही भयानक प्रतीत होने लगी।

अभिमन्यु कौरव सेना के बीच मे घुसने लगा। कौरवो ने बहुत चाहा कि उसे मार्ग न मिले पर वह किसी के रोके न रुका और वह सैन्य समुद्र मे घुसते हुए अपने बाणो के प्रहार से कौरव सैनिको के प्राण हरने लगा। अपने बाणो से उसने कितने ही हाथियों का सिर और कितने ही घोडो का शरीर विदीर्ण कर डाला। जयद्रथ, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य जैसे महारथियो को चक्कर देता हुआ वह बड़ी ही चतुरता और सफाई से रणागण मे चक्कर लगा रहा था। अपने प्रताप से शत्रुओ को सन्तप्त करते देख कर राजाओं को ऐसा प्रतीत होता था मानो रण मे दो अर्जुन उतर आये है। अपने पैने बाणो से उस ने कितने ही अश्वारोही, कितने ही गजारोही और कितने ही रथी व पदादि यम लोक पहुचा दिए और कुछ ही देर मे उस के सामने आई हुई कौरव सेना के पैर उखड गए।

कौरव सैनिक अभिमन्यु से आतकित होकर घोर आर्त नाद कर रहे थे, जिसे सुन कर दुर्योधन ने अलम्बुष से कहा—"महाबाहो! अभिमन्यु अपने पिता के समान ही पराक्रम दिखा रहा है इस समय तुम ही एक ऐसे वीर हो जो उस मूर्ख का सर कुचल सको। क्योंकि तुम सभी विद्याओं मे पारगत हो। शान्‍ ... र उसे यमलोक

पहुंचा दो। हम सब भीष्म पितामह के साथ उस के पिता अर्जुन को घेरते है।"

दुर्योधन की आज्ञा पाकर अलम्बुप वर्षाकालीन मेघ के समान घोर गर्जना करता हुआ अभिमन्यु की ओर चला। उसका घोर सुन कर पाण्डवों की सेना मे खलबली मच गई। कुछ सैनिक तो अपने को सम्भाल ही न पाये। अपनी गर्जना से पाण्डवों को अभिमन्यु के साथ वाली सेना को कांपते देख अलम्बुप पहले उसी पर टूट पडा। उस के भीषण आक्रमण को पाण्डव सेना सहन न कर पाई। सैनिक तितर बितर हो गए। पर ज्यों ही वह द्रौपदी पुत्रों के सामने पहुंचा, उसे जबरदस्त संग्राम का सामना करना पडा। पांचो द्रौपदी पुत्र उस पर टूट पडे और उन के बाणों से उसका कवच कट गया। वह घायल होगया और उसे एक बार ऐसा बाण लगा कि वह अचेत हो गया। पर कुछ ही देरि मे चेतना लौट आई और अमर्षपूर्वक उसने उन पांचों पर भीषण आक्रमण कर दिया। अब की बार आक्रमण का मुकाबला द्रौपदी पुत्र न कर पाये। उन के घोडे और सारथी मारे गए। निकट था कि वे भी मारे जाते, कि तत्काल अभिमन्यु वहां पहुंच गया! फिर तो दोनों हो एक दूसरे के लिए प्रलयाग्नि की भांति हो गए। भयकर टक्कर हुई।

अभिमन्यु के मारे बाणो ने उस के नाकों दम कर दिया। उसके मर्मस्थलो पर बाण घुस गए। जिस के उत्तर मे उस राक्षस ने भी भयकर बाण वर्षा की जब इस से भी कुछ न हुआ तो उस ने माया अस्त्र प्रयोग किए। एक ऐसा अस्त्र चलाया कि चारो ओर अधकार ही अधकार फैल गया। पाण्डव सनिकों को न तो अभिमन्यु ही दिखाई देता था और न अपने अथवा शत्रु पक्ष के सैनिक ही सुझाई देते थे। उस भीषण अधकार को देख कर अभिमन्यु ने भास्कर नामक अस्त्र का प्रयोग किया। जिस के छूटते ही अधकार विदीर्ण हो गया। चारो ओर उजाला ही उजाला फैल गया। तब कुपित होकर अलम्बुप ने एक ऐसा अस्त्र चलाया कि सैनिको को चारो ओर ऊपर से पहाड टूटते दिखाई दिए, तभी अभिमन्यु ने एक ऐसा अस्त्र चलाया कि हवा का तूफान सा चलने लगा और आंखों के आगे से लुप्त हो गए। अलम्बुप ने अभिमन्यु के अस्त्र के जवाब मे एक ऐसा अस्त्र प्रयोग कियाकि चारो ओर अगारे से बरसने

लगे। पर अभिमन्यु ने अपने हिमास्त्र से बरफ गिरानी आरम्भ करदी और इस पर अलम्बुष के सारे माया अस्त्र व्यर्थ हो गए। तब घबरा कर वह अपने रथ को रण स्थल से छोड कर भाग पड़ा। अभिमन्यु बहुतेरा ललकारता रहा, पर उस ने पीछे घूम कर भी न देखा। पाण्डव सेना विजय घोष करने लगी। और अभिमन्यु उस की साथी सेना पर टूट पड़ा। अलम्बुष के भागने से कौरव सेना मे भय छा गया था इस लिए वह अभिमन्यु के प्रहार को क्या सहन करती। आखिर सैनिक भागने लगे। चारों ओर—"भागो-भागो।" का शोर होने लगा।

अपनी सेना को भागते देख कर भीष्म जी अपने साथी महारथियों सहित बालक अभिमन्यु से जा भिड़े। परन्तु वीर बालक ने भीष्म जी का वीरोचित स्वागत किया और हस कर बोला—"आईये दादा जी! आप का रण कौशल सर्व विख्यात है। मैं भी तो आप के पराक्रम को देखू।"—और उस ने उस पर बाण वर्षा आरम्भ कर दी कुछ ही देरि मे अपने पिता व मामा सदृश पराक्रम दिखा दिया। भीष्म जी ने उस के पराक्रम का समुचित उत्तर तो दिया। पर अभिमन्यु का वे कुछ न बिगाड़ सके। तभी अर्जुन अपने पुत्र की रक्षा के लिए कौरवों का सहार करता हुआ उधर आ निकला। भीष्म जी की रक्षा के लिए कौरव महारथी जुट गए और अर्जुन को सहायता के लिए पाण्डव पक्षीय महारथी आगए।

कृपाचार्य ने अर्जुन पर बाण वर्षा की, जब कि अर्जुन भीष्म जी के बाणों को बीच ही मे तोड रहा था और कृपाचार्य के बाणो से भी अपनी रक्षा कर रहा था। सात्यकि तुरन्त ही कृपाचार्य पर टूट पड़ा। और अपने कई बाणो से उस ने कृपाचार्य को घायल कर दिया। ज्यों ही घायल होकर कृपाचार्य रथ के पिछले भाग की ओर झुके सात्यकि अश्वत्थामा से जा भिड गया। पर अश्वत्थामा ने अपनी चतुरता मे उस के धनुष के दो टुकड़े कर दिये। परन्तु सात्यकि ने तुरन्त ही दूसरा धनुष सम्भाला और साठ बाण अश्वत्थामा पर चलाये। जिन्होंने उसकी छाती और भुजाओं पर चोट की। इस से घायल होकर अश्वत्थामा को मूर्छा आ गई और अपनी ध्वजा के डण्डे का सहारा लेकर अपने रथ के पिछले भाग में बैठ गया।

जब अश्वस्थामा सचेत हुआ, शीघ्र ही सात्यकि के समीप पहुंचा और जाते ही नाराच छोडा। जो कि उसे घायल कर पृथ्वी मे जा घुसा। एक दूसरे वाण से उस ने सात्यकि की ध्वजा काट डाली। पर सात्यकि ने वाण वर्षा करके उसे भी आच्छादित कर दिया। अश्वस्थामा को वाणों से आच्छादित देख कर द्रोणाचार्य पुत्र रक्षा के लिये दौड पड़े और अपने पैने वाणों से सात्यकी को बींध डाला। उस ने भी बीस वाणों से आचार्य को बींध डाला। उसी समय परम प्रतापी वीर अर्जुन ने क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर दिया। तीन ही वाणो से उसने आचार्य को घायल कर दिया और बड़े वेग से वाण वर्षा कर के उन्हें ढक दिया। इस से आचार्य की क्रोधाग्नि एक दम भडक उठी और उन्होंने ऐसी तीव्र गति से वाण चलाए कि एक बार तो अर्जुन भी वाणो के परदे मे छुप गया।

दुर्योधन ने तभी सुशर्मा को द्रोणाचार्य की सहायता के लिए भेजा। अपने पिता को अर्जुन के मुकाबले पर जाते देखकर सुशर्मा के पुत्र की भुजाए भी फड़क उठी और उसने शखनाद करके अपने पिता का अनुकरण किया। त्रिगर्त्त राज ने और उसके पुत्र ने जाते ही अपने लोह-वाणों का भयंकर प्रहार किया, परन्तु वीर अर्जुन ने उन दोनों के वाणों को अपने बाणों से व्यर्थ बना दिया और अपनी ओर से इस प्रकार की वाण वर्षा की कि त्रिगर्त्त राज व उसका पुत्र आये थे प्रहार करने, स्वय उन्हे आत्म रक्षा की चिन्ता पड गई। यह देखकर पाण्डव पक्षीय सैनिक ठहाका मारकर हसने लगे। त्रिगर्त्त राज के रक्त ने उबाल खाया और वह प्राणों का मोह त्याग कर अर्जुन पर बाण वर्षा करने लगा। परन्तु वीर अर्जुन ने उस अवसर पर ऐसे रण कौशल का परिचय दिया कि देखने वाले, चाहे वे पाण्डव पक्षीय थे अथवा कौरव पक्षीय, उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशसा करने लगे। आकाश मे युद्ध देख रहे देवता भी अर्जुन का हस्तालाघव देखकर "धन्य धन्य कहने लगे। त्रिगर्त्त राज और उसके पुत्र ने आवेश मे आकर पुनः एक भयकर आक्रमण किया, जिनसे कुपित होकर अर्जुन ने कौरव सेना के अग्र भाग में खडे त्रिगर्त्त वीरो पर वायव्यास्त्र छोडा। जिमसे आकाश मे खलबली मच गई और ऐसा प्रचण्ड पवन प्रगट हुआ कि कौरव वीरो को अपने रथो पर जमे

रहना दूभर हो गया। पताकाओं की धज्जियां उडने लगीं। सैनिक हाथियों पर से नीचे लुढक गए और किसी का तरकश उड गया तो किसी का मुकुट। कोई रथ ही भूमि पर लुढकने लगा। यह दशा देखकर द्रोणाचार्य ने शैलास्त्र छोडा। जिससे वायु रुक गई और सब दिशाए स्वच्छ हो गई। परन्तु पाण्डु पुत्र अर्जुन के सामने टिके रहने का साहस त्रिगर्त्त राज व उसके पुत्र मे न रहा। उनसे भागते ही बना।

उधर सूर्य अपनी मजिल के अर्ध भाग को पूरा करके सर पर पहुच गया। मध्यान्ह हो गया। दुर्योधन और उसके पक्ष के वीरों ने गंगानन्दन भीष्म जी को पुकारा।—"पितामह! अर्जुन के प्राणहारी बाणों से रक्षा करो वरना कौरव सेना उसके पैने बाणों से नष्ट हो जायेगी।"

पितामह ने अपने तीक्ष्ण बाण सम्भाले और टूट पड़े पाण्डव-सेना पर। जैसे दावानल सूखे बन को नष्ट करता है, उसी प्रकार गगानन्दन के बाण पाण्डव-सेना का संहार करने लगे। सैकडो सैनिक मौत के घाट उतर गए। तब धृष्ट द्युम्न, शिखण्डी, विराट और द्रुपद भीष्म जी के सामने आये और बाण वर्षा करने लगे। परन्तु पितामह ने धृष्ट द्युम्न, विराट और द्रुपद आदि सभी महारथियों को घायल कर दिया। बाण खाकर उनका पौरष भयकर रूप से प्रगट हुआ और शिखण्डी जिस पर कि पितामह ने बाण नहीं चलाए थे, कुपित होकर उन पर टूट पडा। साथ दे रहे थे अन्य द्रुपद व विराट आदि महारथी। पितामह भी घायल हो गए। परन्तु वे अपने बाणो से शिखण्डी के अतिरिक्त अन्य सभी को पीड़ित करते रहे। उस समय भीमसेन, सात्यकि आदि भी मुकाबले पर आगए। यह देख कौरव महारथी भी आ भिडे। फिर तो बडा ही घमासान युद्ध होने लगा। पदाति से पदाति, गजारोही से गजारोही ही और रथी से रथी भिड गया था। भालो, तलवारों, कटारों, गदाओं और धनुषों से वार हो रहे थे। रक्त की धाराए बह निकली थी। वीरों के शवों पर रथ दौड रहे थे। गदाओ के टकराने से बिजली टूटने सा शब्द होता था।

दूसरी ओर अर्जुन के मुकाबले पर त्रिगर्त्त राज के महारथी

ग्रा डटे थे। द्रोणाचार्य तो अपनी पूर्ण शक्ति से युद्ध कर ही रहे थे। परन्तु त्रिगर्त्त राज के महारथियों के एक साथ टूट पड़ने से युद्ध में और गर्मी आ गयी। अर्जुन ने उस समय कुछ दिव्यास्त्र प्रयोग किए जिनके सामने रुक सकना त्रिगर्त्त महारथियों के बस की बात नहीं थी। यदि उनकी रक्षा के लिये द्रोणाचार्य न होते तो कदाचित वे सभी यमलोक सिधार जाते। पर आचार्य की कृपा से कुछ की जान बच गई और वे रण छोडकर भाग निकले। कितने योद्धा तो अपने हाथियो, घोडों और रथो पर से कुद कर भाग गए और हाथी, घोड और रथ इधर उधर भागने लगे। कौरव-सैनिको में चिल्लपो मच गई। यह देखकर दुर्योधन तत्काल भीष्म जी के पास पहुचा और घबरा कर बोला—"पितामह ! अर्जुन हमारी सेना को डस रहा है। महारथी भाग रहे हैं।"

पितामह तुरन्त उस ओर चले। दुर्योधन ने अपनी सेना को उनके पीछे लगा दिया। परन्तु सात्यकि, द्रुपद, विराट आदि भी अर्जुन की रक्षा में लग गए। गंगा नन्दन ने अपने बाणों से पाण्डवों की सेना को आच्छादित करना आरम्भ कर दिया। सात्यकि कृतवर्मा से भिड गया और अपने कुछ ही बाणों से उसे बींध डाला फिर कौरव सेना के बीच जाकर युद्ध करने लगा। राजा द्रुपद ने द्रोणाचार्य को घेर लिया और स्वय उन्हे तथा उनके सारथि को बुरी तरह घायल कर दिया। भीम सेन बाल्हीक को घेरा हुआ था उसने कुछ ही देर मे उनको बींध डाला और विजय की सूचना के रूप में बड़ा ही उत्साहपूर्ण सिंह नाद किया। चित्रसेन ने यद्यपि अभिमन्यु को घायल कर दिया तथापि वह रण मे डटा रहा और उल्टे चित्रसेन को उसने घायल कर दिया और नौ बाणों से उसके चारों घोडों को मार गिराया।

आचार्य द्रोण, द्रुपद के बाणों से हार्दिक रूप से भी घायल हुए थे, अत उनका क्रोध उबल पडा और वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर युद्ध करने लगे। द्रुपद का सारथि और उसके घोड़े उन की कोपाग्नि में भस्म हो गये। और अत्यन्त व्यथित होकर द्रुपद को रण भूमि छोडनी पड़ी। दूसरी ओर भीमसेन ने राजा बाल्हीक के घोडों और सारथि को मारकर उसके रथ को भी नष्ट कर डाला। इस लिये वे तुरन्त ही लक्ष्मण के रथ पर चढ गए। सात्यकि

ने कृतवर्मा को बड़ा परेशान किया और जब वह पीडित होकर निष्क्रय सा हो गया तो सात्यकि सीधा पितामह भीष्म के सामने जा डटा। दोनों ओर से बाण वर्षा होने लगी। पर कुछ देरि तक दोनो ही डटे रहे। किसी को कुछ हानि न पहुची तब परेशान होकर पितामह ने एक शक्ति अस्त्र चलाया। लोहे की वह शक्ति बडी भयकर थी। सात्यकि उसकी भीषणता समझता था, उसने बडी हा चतुराई से पैंतरा बदला और शक्ति का वार खाली गया वह भूमि मे जा घुसी। सात्यकि ने तुरन्त ही अपनी ओर से एक शक्ति-अस्त्र प्रयोग किया परन्तु पितामह ने उसे अपने पने बाणो से बीच हो मे काट डाला और सात्यकि की छाती को अपने बाणों का लक्ष्य बनाया। पाण्डव पक्षीय महारथी तब सात्यकि की रक्षा के लिए पहुंच गए। और उन्होने पितामह का रथ चारों ओर से घेर लिया। बस, फिर क्या था, बड़ा ही घमासान युद्ध होने लगा।

राजा दुर्योधन ने तब दुःशासन को बुला कर कहा—"देख रहे हो दुःशासन ! पितामह घिर गए हैं। वे सकट मे है। जल्दी दौड़ो उनकी सहायता करो।"

आदेश मिलना था कि दुःशासन अपनी विशाल वाहिनी से भीष्म जी को घेर कर खड़ा होगया। शकुनि एक लाख सुशिक्षित घुड़ सवारो को लेकर नकुल और सहदेव की सेना के सामने आ डटा था और दुर्योधन ने दस हजार सैनिक युधिष्ठिर की सेना के मोर्चे पर भेज दिए। परन्तु पराक्रमी पाण्डवो ने रक्त की होली खेलनी आरम्भ कर दी। कौरव-सैनिकों के सिर कट कट कर भूमि मे ऐसे गिर रहे थे मानो वृक्षों से पके फल गिर रहे हों। घोड़ों के शवो का ढेर लग गया था और चारो ओर रक्त व मास के मारे कीचड़ सी हो गई थी। रेत लाल कीचड़ मे परिवर्तित हो गया था।

अपनी सेना को पराजित देख कर दुर्योधन को बड़ा दुःख हुआ उसने मद्रराज से कहा -"राजन् ! वह देखिये नकुल और सहदेव हमारी विशाल सेना को नष्ट किए डाल रहे हैं। आप चाहे तो यह सेना नष्ट होने से बच सकती है। आप शीघ्र ही उस की रक्षा करें।"

मद्रराज शल्य रथ सवार सेना लेकर के मुकाबले

पर जा डटे। उनकी सारी सेना एक साथ युधिष्ठिर पर टूट पड़ी। परन्तु धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने बाणों के प्रबल वेग से शल्य की सेना को रोक दिया और उनकी छाती पर दस बाण मारे यदि मजबूत कवच न होता तो शल्य यमलोक सिधार गए होते। पर वे बच गए और दानों ओर से भीषण युद्ध होने लगा नकुल और सहदेव भी उन के मुकाबले पर आगए।

अब दिन अपने अन्तिम अध्याय मे प्रवेश करने लगा। और गंगानन्दन भीष्म जी ने बड़े वेग से पाण्डवों पर आक्रमण किया। ताकि वे अपने वचनानुसार पाण्डवों की सेना को नष्ट करके दुर्योधन को सन्तुष्ट कर सकें। उन्हों ने बारह बाण भीम पर, नौ सात्यकि पर, तीन नकुल पर, सात सहदेव पर और बारह युधिष्ठिर पर बरसाये। और बड़ा ही भयकर सिंहनाद किया। पाण्डव वीर बड़े ही पीडित हुए और कुपित होकर उन्होंने पितामह पर बाण वर्षा करदी। नकुल ने बारह, सात्यकि ने तीन, धृष्टद्युम्न ने सत्तर, भीमसेन ने सात और युधिष्ठिर ने बारह बाणों से पितामह को घायल कर दिया। पितामह को संकट में मे आया देख द्रोणाचार्य ने इन वीरों को अपने बाणों का निशाना बनाया। और सात्यकि व भीमसेन को पाच पांच बाण लगे। तभी उन के तीन तीन बाण द्रोणाचार्य को चोट पहुंचाने मे सफल हो गए।

इस के बाद पाण्डवों के महारथियों ने पुनः चारों ओर से पितामह को घेर लिया। परन्तु गगानन्दन ने उस समय बड़े ही अद्भुत पराक्रम से काम लिया। उनकी प्रत्यंचा की बिजली की कड़क के समान टङ्कार सुन कर सब प्राणी कांप उठे। वे बाणों का तूफान लाते हुए पाण्डव सेना को विध्वंस करने लगे। सहस्त्रों सैनिक यम लोक सिधार गए। उन के बाण जिसे लगते, उसी के कवच को चीरते हुए शरीर मे प्रवेश कर जाते और एक चीत्कार निकलती, और सैनिक के प्राण पखेरू उड़ जाते। सैकड़ों रथ, हाथी और घोड़े मनुष्यहीन हो गए। उन के अमोघ बाणों की वर्षा से पाण्डव सेना मे हाहाकार मच गया और उस समय तो सर्वत्र घबराहट फैल गई जब चेदि, काशी, और करुद देश के चौदह हजार महारथी जो रण मे प्राण देने को तैयार रहते थे, परन्तु पीछे पग रखना उन के स्वभाव के ही प्रतिकूल था, भीष्म जी के बाणों से अपने रथ, घोड़ों और

हाथियों सहित नष्ट हो गए।

पाण्डवों की सेना इस भीषण संहार से आर्तनाद करती हुई भागने लगी। यह देख कर श्री कृष्ण ने अपना रथ रोक कर कहा—"कुन्ती नन्दन! तुम जिसकी प्रतिक्षा में थे, वह अब समय आ गया है। इस समय तुम यदि मोह ग्रस्त नहीं तो भीष्म जी पर भीष्म वार करो। तुम ने विराट नगर मे सजय के सामने कहा था ना कि मैं भीष्म द्रोणादि कौरव महारथियों को उन के अनुयायी सहित मार डालूंगा, लो अब अपना वह कथन पूर्ण कर दिखाओ तुम क्षात्र धर्म का पालन कर के अब युद्ध मे अपना अपूर्व कौशल दिखलाओ। वरना तुम्हारी सेना परास्त हो जायेगी।

श्री कृष्ण की बात सुन कर अर्जुन ने कहा—"मधु सूदन! जैसी आपकी आज्ञा। अच्छा आप मेरे रथ को पितामह की ओर ले चलिए। मैं अजेय भीष्म जी को अभी ही पृथ्वी पर गिरा दूगा!"

अर्जुन ने यह शब्द कहे तो पर उसके शब्दों मे उत्साह नहीं था उसने बेमन से कहा था। जैसे विवश होकर कह रहा है। सफेद घोडों वाले रथ को श्री कृष्ण ने भीष्म जी की ओर हांक दिया। अर्जुन को उस ओर जाते देख युधिष्ठिर की विशाल वाहिनी पुनः लौट आई। पर ज्यों ही अर्जुन सामने पहुंचा, भीष्म जी ने बाणों की तीव्र गति से वर्षा को और अर्जुन को सारथि तथा घोडों सहित बाणों से ढक दिया। इतने बाण चलाये कि अर्जुन रथ सहित इसी प्रकार छुप गया, जैसे बादलों में भास्कर छुप जाता है। परन्तु श्री कृष्ण तनिक भी नहीं घबराये वे बाण वर्षा मे ही अपने रथ को हाकते रहे। और अर्जुन को डाटते हुए बोले—"क्या कर रहे हो पार्थ?"

अर्जुन ने अपना दिव्य धनुष उठा कर पैने बाण चला कर भीष्म जी का धनुष काट कर गिरा दिया तब उन्होंने तत्काल दूसरा धनुष उठाया, पर अर्जुन ने उसे भी काट डाला। इस कौशल को देख कर भीष्म जी कहने लगे—"वाह महा बाहु, अर्जुन! शाबाश कुन्ती नन्दन शाबाश।"—और दूसरा धनुष सम्भाल कर अर्जुन पर बाणों की। झडी लगादी पर उस समय श्री कृष्ण ने कुछ

इस प्रकार घुमा फिरा कर घोड़े हांके, कि भीष्म जी के बाण व्यर्थ हो गए, वास्तव में श्री कृष्ण ने उस समय घोड़े हांकने की अद्भुत कला का प्रदर्शन किया।

परन्तु अर्जुन की ओर से वैसा ही रण कौशल न दिखाया जाता देख श्री कृष्ण क्षुब्ध होगए। भीष्म जी इधर अर्जुन को पीड़ित कर रहे थे तो दूसरी ओर युधिष्ठर की विशाल वाहिनी के महारथियों को मार रहे थे। अर्जुन की गति में कोई ऐसी बात नहीं थी कि श्रीकृष्ण को सन्तोष हो सकता। पितामह प्रलय सी मचाते जा रहे थे और अर्जुन मन्द गति से बाण चला रहा था। श्री कृष्ण से यह न देखा गया। बार बार अर्जुन को ललकारा—"क्या कर रहे हो धनंजय? तुम्हारा यह रण-कौशल क्या हुआ?"—पर अर्जुन को गरमी न आयी वह उसी प्रकार लड़ता रहा। तब रोष पूर्वक कृष्ण बोले—"पार्थ! भीष्म जी को रोको। तुम्हे क्या होगया है?"

अर्जुन की ओर से फिर भी ऐसा कुछ नहीं हुआ, जिस से भीष्म जी की गति रुक सकती। तब आवेश में आकर श्री कृष्ण घोड़ों की रास छोड़ कर रथ से कूद पड़े और सिंह के समान गरजते हुए चाबुक होकर भीष्म जी की ओर दौड़े। उनके पैरों की धमक से मानो पृथ्वी फटने सी लगी उनकी आंखें क्रोध के मारे लाल हो रही थीं। उस समय कौरव सेना में कोलाहल मच गया—"अरे कृष्ण आये, कृष्ण आये। बचाओ भीष्म जी को।"—की आवाज उठने लगीं।

श्री कृष्ण रेशमी पिताम्बर धारण किये हुए थे। उस से उन का नील मणि के समान श्याम सुन्दर शरीर विद्युल्लता से सुशोभित श्याम मेघ के समान प्रतीत होता था। जिस प्रकार सिंह हाथी पर टूट पड़ता है, इसी प्रकार श्री कृष्ण गर्जना करते हुए भीष्म जी की ओर लपके। कमल नयन श्री कृष्ण को अपनी ओर आते देख पितामह ने प्रसन्नता प्रगट करते हुए कहा—"गोविन्द! आईये आईये, आपका स्वागत है। आज आप रण में उतर रहे हैं अहोभाग्य।"

तभी अर्जुन ने पीछे से आकर श्री कृष्ण को अपनी भुजाओं में भर लिया और पीछे की ओर खींचने लगा। परन्तु श्री कृष्ण आगे ही बढ़ते रहे, वे अर्जुन को भी घसीट ले गए। कहते जाते थे—

"धनंजय ! तुम पितामह का मोह करते हो। तुम अवश्य ही उनके हाथों पाण्डव-सेना का नाश करादोगे। छोड़ दो मुझे। मैं अपने चाबुक से गंगानन्दन को यमलोक पहुंचा दूंगा। तुम कुछ नही कर सकोगे।"

तब अर्जुन दौड़ कर उनके सामने जा खड़े हुए और बोले— "आप ने तो युद्ध न करने की प्रतिज्ञा की है। अपनी प्रतिज्ञा को क्यों भंग करते है लोक आपको मिथ्यावादी कहेंगे।"

"तुम भी तो अपनी प्रतीज्ञा भंग कर रहे हो ? तुम ने भी तो पितामह का बध करने की प्रतिज्ञा की थी। पर तुम तो पितामह का आदर करते हो उन पर तुम से बाण चलाये ही नही जाते। तो क्या मैं पाण्डव-सेना का सहार देखता रहूं। क्यों रोकते हो मुझे। तुम जैसे व्यक्ति का सारथि बन कर मुझे मिथ्यावादी बनना न पडे गा तो क्या बनना पडेगा। तुम सभी की नाक कटादोगे।"—श्री कृष्ण ने गरज कर कहा।

"गोविन्द ! मेरी भूल क्षमा करदें। मैं विश्वास दिलाता हूं कि पितामह का बध करूगा, मैं वही करूंगा जो आप चाहेंगे। लौट चलिए।"—अर्जुन ने आग्रह करते हुए कहा।

श्री कृष्ण तो चाहते ही यह थे कि अर्जुन को आवेश आये। वे अपनी प्रतिज्ञा तोडना नही चाहते थे अर्जुन को प्रोत्साहित करके वे शान्त होगए।

जब अर्जुन ने बार बार कहा तो श्री कृष्ण लौट गए और रथ पर अपना स्थान ग्रहण करते हुए बोले—"भीष्म इस समय तुम्हारे पितामह नहीं वरन शत्रु हैं। वे तुम्हारा नाश कर रहे है। चलाओ बाण।"

पितामह ने आवेश में आकर दोनों पर ही बाण वर्षा आरम्भ कर दी। और साथ ही दूसरे पाण्डव पक्षीय महारथियों और वीरों पर भी बाण चलाते रहे। सैकड़ों वीर पृथ्वी पर लुढ़क गए। अर्जुन ने अपनी भी बहुत की। सम्पूर्ण शक्ति लगा कर वह बाण चलाता रहा। परन्तु भीष्म जी मध्यान्ह के समय चमकते सूर्य की भांति हो रहे थे उनकी ओर पाण्डव सेना देख भी नहीं पाती थी। सैकड़ों वीर मारे गए। चींटी की भांति पाण्डव सैनिकों को भीष्म जी

ममलते रहे। पाण्डव-सेना में हाहाकार मचता रहा श्री कृष्ण रह रह कर अर्जुन को जोश दिलाते रहे। अर्जुन तीक्ष्ण बाण चलाता रहा। पर जैसे भयकर बाढ के आगे छोटे छोटे बांध ठहर नही पाते इसी प्रकार प्रलय मचाते भीष्म जी के प्राणहारी बाणों की बाढ के आगे अर्जुन के तीक्ष्ण बाण कुछ न कर पाते। पाण्डव-सेना में हाहाकार मच गया और सैनिक अपने प्राण लेकर भागने लगे। अर्जुन के साथ भीमसेन भी आ गया और उसने भी अपने रण-कौशल के सहारे भीष्म जी के तूफान को रोकने की चेष्टा की। पर सब व्यर्थ। ऐसा लगता था मानो आज भीष्म जी पाण्डवो का विध्वस करके रहेंगे। कौरवों की सेना में सिंहनाद और शखनाद होने लगे और युधिष्ठिर के मुह पर हवाईयां उडने लगी। श्री कृष्ण बार बार अर्जुन को ललकारते रहे। सात्यकि, धृष्टद्युम्न, विराट और द्रुपद नकुल व सहदेव के साथ अपनी सम्पूर्ण शक्ति से भीष्म जी के साथी महारथियो पर वार करते रहे पर पाण्डव सेना का साहस टूट रहा। धडों स सर कट कट कर गिर रहे थे। कहीं हाथियों की चिंघाड सुनाई देती तो कहीं सैनिकों के चीत्कार। रणस्थल मे घोडो, हाथियो और मनुष्यो के शवों का ढेर लग गया। योद्धाओं के रथ शवों पर होकर निकल रहे थे।

तभी पश्चिम दिशा मे भास्कर डूब गया और अधकार ने अपना डेरा डालना आरम्भ कर दिया। पाण्डवों की ओर से युद्ध बन्द होने का शख बज गया और भीष्म जी को प्रलय का परिच्छेद बन्द करना पड़ा। कौरवों की सेना ने विजय घोष किए। पाण्डवों के सर लटक गए। दोनों सेनाएं अपने अपने शिविरों की ओर चल पड़ी।

है। कुछ सुनाई ही नहीं देता।"

स्पष्ट है कि बोलने वाला वीर अर्जुन है, जिसकी आवाज कुछ थकी सी है। ऐसी कि प्रतीत होता है मानो कोई थका मांदा पथिक बड़बड़ा रहा हो।

मधु सूदन बोले—"पार्थ! युद्ध मे जहां शौर्य, रण कौशल भुज बल और सैन्य बल की आवश्यकता होती है, वहीं आत्म विश्वास और साहस भी नितान्त परमावश्यक है। यह युद्ध जो तुम कर रहे हो समार के सभी युद्धो मे भयानक और महान है। भरत क्षेत्र के समस्त योद्धा एक दूसरे के विरोध मे आ डटे है विश्व के प्रसिद्ध रण कौशल प्रवीण, धुरंधर धनुर्धारी, रण विद्या के आचार्य, महान वीरवर और परम प्रतापी, अनुभवी, दिग्गज योद्धा लड रहे हैं। असंख्य वीरो के इस युद्ध मे विजय प्राप्त करना आसान नहीं है। फिर भी विश्वास रक्खो कि विजय तुम्हारी ही होगी, क्योंकि न्याय कभी परास्त नहीं हुआ। अन्यायी शुभ प्रकृतिवान विद्यावानो के प्रताप से अभी तक टिके हुए हैं। परन्तु जैसे मेघ खडो से ज्योतिवान सूर्य भी छुप जाता है, इसी प्रकार अशुभ प्रकृति मे कौरवों के अन्यायो के कारण उन शुभ कर्म वाले योद्धाओं का भी नाश हो जायगा, जो शुद्ध विचारो के लिए प्रसिद्ध है। धैर्य से काम लो। त्याग से ही सदा किसी महान वस्तु की प्राप्ति होती है। न्याय के लिए एक पुत्र तो क्या सहस्त्र पुत्रो की भी बलि दी जा सकती है।"

श्री कृष्ण की बात सुन कर अर्जुन के टूटते साहस को कुछ बल मिला, फिर भी उसे निराशा से पूर्णतया मुक्ति न मिली। पूछा "परन्तु केशव! मुझे ऐसा लगता है कि पितामह जैसे धुरंधर वान और परम प्रतापी शूरवीर के रहते हमारा विजय असम्भव है। नौ दिन से अकेले वही कौरवो की नौका को डूबने से बचाते रहते है। जब जब हमारे भयंकर-प्रहार से कौरव सेना का साहस टूटा, तब तब भीष्म जी ने आकर उन्हे पुनर्जीवित कर डाला और उनके पने बाणो से हमारे सैनिकों का संहार हुआ। इस लिए कोई युक्ति ऐसी बताईये जिस से हमारे रास्ते मे खडा यह मेरु पर्वत हट जाये।

प्रश्न बड़ा जटिल था, कुछ देर के लिए पूर्णनिस्तब्धता छा

गई। अन्त में श्री कृष्ण बोले—"पार्थ ! संसार मे कोई ऐसी समस्या नही जिसको सुलझाने का उपाय न हो। उपाय है।"

"तो फिर आप बताते क्यों नहीं ?"

केशव के अधरों पल्लवो पर मुस्कान उभर आई।

"हा, हां मधु सूदन ! भीष्म पितामह को रास्ते से हटाने का उपाय बताना ही होगा।"

अर्जुन के जोर देने पर श्री कृष्ण बोले - "देखता हूं भीष्म जी की उपस्थिति अब तुम्हे बुरी तरह खलने लगी है। मैं यह जानते हुए भी कि उनको रास्ते से केवल तुम्हारे ही पैने बाणों मे हटाया जा सकता है और उस सहारे तक तुम्हारी दृष्टि नहीं जा रही, जो तुम्हे उपलब्ध है, चाहता हू कि ऐसे अवसर पर तुम अपने पितामह की महानता के दर्शन करो। तुम जाओ और पितामह से ही यह प्रश्न उठाओ।"

अर्जुन सोच में पड गया। उसे यह बात अच्छी न लगी। धर्मराज युधिष्ठिर जो अभी तक मौन धारण किए बैठे थे और स्वय उस प्रश्न पर विचार कर रहे थे उत्सुकता वश इस विषय मे परामर्श लेने लगे और कुछ देरि बाद वे भीष्म पितामह के शिविर की ओर चल पड।

× × × ×

अभी अभी दुर्योधन परामर्श करके भीष्म पितामह के शिविर से निकला था कि धर्मराज पहुच गए। पितामह का मुख कमल खिल उठा। अभिवादन स्वीकार कर के तुरन्त पूछ बैठे— 'राजन् ! आप अपने भ्राताओं सहित सकुशल तो हैं ?"

"पितामह ! आपकी कृपा से अभी तक तो जीवित है...... ...."

"तो क्या भविष्य के प्रति सशक हो ?"

"हाँ, पितामह ! लगता है कि आप के वे बाण जो माता कुन्ती और माद्री की सन्तानों के लिए मृत्यु का सन्देश लेकर पहुचने वाले हैं अभी समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

धर्मराज ने स्वाभाविक मुद्रा मे कहा। उस समय न तो उनके

है। कुछ सुझाई ही नही देता।"

स्पष्ट है कि बोलने वाला वीर अर्जुन है, जिसकी आवाज़ कुछ थकी सी है; ऐसी कि प्रतीत होता है मानो कोई थका मादा पथिक कह रहा हो।

"मधु सूदन बोले—"पार्थ! युद्ध मे जहां शौर्य, रण कौशल भुज बल और सैन्य बल की आवश्यकता होती है, वहीं आत्म विश्वास और सोहँम भी नितान्त परमावश्यक है। यह युद्ध जो तुम कर रहे हो समार के सभी युद्धों से भयानक और महान है। भरत क्षेत्र के समस्त योद्धा एक दूसरे के विरोध मे आ डटे है विश्व के प्रसिद्ध रण कौशल प्रवीण, धुरधर धनुर्धारी, रण विद्या के आचार्य, महान वीरवर और परम प्रतापी, अनुभवी, दिग्गज योद्धा लड रहे है। असख्य वीरो के इस युद्ध मे विजय प्राप्त करना आसान नहीं है। फिर भी विश्वास रक्खो कि विजय तुम्हारी ही होगी क्योंकि न्याय कभी परास्त नही हुआ। अन्यायी शुभ प्रकृतिवान विद्यावानो के प्रताप से अभी तक टिके हुए हैं। परन्तु जैसे मेघ खडों से ज्योतिवान सूर्य भी छुप जाता है, इसी प्रकार अशुभ प्रकृति से कौरवों के अन्यायों के कारण उन शुभ कर्म वाले योद्धाओ का भी ह्रास हो जायगा, जो शुद्ध विचारो के लिए प्रसिद्ध है। धैर्य से काम लो। त्याग से ही सदा किसी महान वस्तु की प्राप्ति होती है। न्याय के लिए एक पुत्र तो क्या सहस्त्र पुत्रो की भी बलि दी जा सकती है।"

श्री कृष्ण की बात सुन कर अर्जुन के टूटते साहस को कुछ बल मिला, फिर भी उसे निराशा से पूर्णतया मुक्ति न मिली। पूछा "परन्तु केशव! मुझे ऐसा लगता है कि पितामह जैसे धुराय वान और परम प्रतापी शूरवीर के रहते हमारा विजय असम्भव है।" नौ दिन से अकेले वही कौरवो की नौका को डूबने से बचाते रहते है। जब जब हमारे भयकर-प्रहार से कौरव सेना का साहस टूटा, तब तब भीष्म जी ने आकर उन्हे पुनर्जीवित कर डाला और उनके पने बाणो से हमारे सैनिकों का सहार हुआ। इस लिए कोई युक्ति ऐसी बताईये जिस से हमारे रास्ते मे खडा यह मेरू पर्वत हट जाये।"

प्रश्न बड़ा जटिल था, कुछ देर के लिए पूर्णनिस्तब्धता छा-

धर्मराज युधिष्ठिर ने तुरन्त पितामह के चरणो में सिर रख दिया, स्वार्थ पूर्ति कर देने के कारण आभार प्रदर्शन के लिए नही, वरन इतने उच्च आदर्श के कारण ही।

इस के उपरान्त ही कुछ और बातें हुई। पितामह ने अर्जुन के रण कौशल की प्रशसा की और इरावान के मारे जाने पर दुख प्रकट किया। धर्मराज ने उनके कौशल की प्रशसा की और अन्त मे प्रणाम करके वापिस चले आये।

मुख पर चिन्ता के लक्षण थे और न हास्य के ही। परन्तु इन पैने शब्दों ने वह काम किया जो कदाचित धर्मराज के बाण भी न कर पाते। बोले:—

'राजन्! ऐसी बात मुह से निकालते समय यह सोच लेते तो अच्छा था कि मैं आपको सफलता की कामना कर चुका हूं और आप जैसे धर्मनिष्ठ व्यक्ति को परास्त करने की शक्ति स्वय देवराज इन्द्र मे भी नही हैं।"

"पितामह! जब तक आप है तब तक हम विजय का स्वप्न भी नही देख सकते। फिर मैं आप की कामना को क्रियात्मक रूप मे परिणत होने की आशा करू तो क्यों कर?" धर्मराज युधिष्ठिर ने पूछा।

"यह बात मैं स्वीकार करता हू पर मै अजय तो नही, न अमर ही हू।"—पितामह बोले।

"तो फिर पितामह! आप हमें यह तो बताने की कृपा करें कि आप जो हमारे रास्ते में मेरू पर्वत के समान आ खडे हुए हैं, किस प्रकार रास्ते मे हटाए जा सकते हैं? आप को याद होगा कि आप ने युद्ध आरम्भ होने से पूर्व मुझे इस प्रश्न को समय आने पर पूछने की आज्ञा दी थी।"

युधिष्ठिर की बात सुनकर भी पितामह के मुख पर कोई चिन्ता या विषाद के भाव न आये। वे उसी प्रकार बोले—"हा, मैंने कहा था। ...... तो क्या वह समय आगया?"

"हा, पितामह! अब और नही सहा जाता।"

पितामह चुप हो गए। इस चुप्पी से युधिष्ठिर के नेत्र चचल हो उठे। उनके मुह पर चिन्ता पुत गई। पितामह कुछ क्षण मौन रहे और फिर बोले—"बेटा! मेरी मृत्यु तुम्हारे पक्ष मे विद्यमान है। द्रुपद की प्रतिज्ञा याद है ना! शिखण्डी तो हैं ही। मैं उस के ऊपर कभी अस्त्र शस्त्र प्रयोग नही कर सकता। बस उसी की आड लेकर धनजय मुझे जीवन मुक्त कर सकता है। इस उपाय के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नही है कि मुझे रण क्षत्र से हटा सको। कोई शक्ति ऐसी नही कि मेरे हाथो के चलते रहने पर मुझे परास्त कर सके।"

सहारे पर बैठे रहना भी उचित नही हैं। यह युद्ध है, कभी भी कोई भी हम से छिन सकता है। हम यहाँ प्राणो का मोह त्याग कर आये है, इस लिए किसी व्यक्ति के प्रति मोह भी ठीक नही। मैं तुम में से प्रत्येक मे अपूर्व शौर्य के साथ अपना पराक्रम दिखाकर अपने हाथ से विजय पताका फहराने की आकाक्षा देखना चाहता हूं। मुझे अनुभव हो रहा है कि आज का युद्ध बडा विकट होगा। इस लिए आज पूरी शक्ति से शत्रु का मुकाबला करने की शपथ लो।"

पितामह की इस चेतावनी के बाद ही कौरव राज की सेना का राष्ट्र गीत रण के बाजे बजाने लगे। सैनिको ने दुर्योधन और भीष्म पितामह की जय जयकार की। सभी कौरव पक्षी महारथियो ने शख नाद किए और फ़िर पितामह के आदेशानुसार व्यूह रचना की जाने लगी। भीष्म पितामह ने उस दिन बड़ी कुशलता से सेना को खड़ा किया और व्यूह की रक्षा के लिए चारो ओर विकट गाडियां लगा दी गई। मुख्य द्वारों पर विकट गाडियो के पीछे महारथी खडे किए गए जिनकी रक्षा के लिये सहस्त्रो सैनिकों को, जिन मे गजारोही, अश्वारोही पदाति और रथी सभी प्रकार के सैनिक थे, नियुक्त किया गया। स्वयं भीष्म पितामह बीच मे थे और उनकी रक्षा के लिए चुने हुए वीर अपनी अपनी सैनिक टुकडियों के साथ थे। यह व्यूह बिल्कुल उसी प्रकार था मानो किसी कलाकार ने एक उलझी हुई पहेली की रचना की हो, जिसमे प्रवेश करके उसके केन्द्र तक पहुंचना असम्भव प्रतीत होता हो।

सेना की अपूर्व व्यवस्था देख कर दुर्योधन जो सब से पीछे था, पितामह के पास पहुंचा और गदगद स्वर मे बोला-"पितामह! आज आप ने जो कौशल दर्शाया है, उस से मुझे आशा हो गई कि अब आप के पराक्रम से शत्रु सेना की पराजय निकट आ गई है। मुझे अब अपने उन शब्दों पर लज्जा आ रही है. जो मैंने आप को उदासीन समझ कर प्रयोग किए थे। आप मुझे क्षमा करदें।"

पितामह मुस्करा उठे, बोले—"आज तुम सन्तुष्ट हो, यह जान कर मुझे अपार हर्ष होरहा है। परन्तु तुम यह मत भूलो कि मैंने जब से रणभूमि में पग रक्खा है अपनी शक्ति भर रण कौशल दर्शाया है। मैंने अपनी बुद्धि से सर्वोत्तम व्यूह रचनाएं की हैं परन्तु जब

* बैतालीसवां परिच्छेद *

भीष्म का विद्रोह

ज्यों ही पृथ्वी पर से अंधकार का घूंघट उठा और सूर्य मुख दृष्टिगोचर हुआ कुरुक्षेत्र के एक सिरे पर पड़ी छावनियों में सोये सिंह जागृत हुए। बिगुल बज उठे। वीरों ने कमरकसी। रण की पोशाकें पहन ली गई। रथ तैयार हो गए और हाथियों पर हौदे रख दिए गए। दोनो ओर की सेनाओं मे कोलाहल होने लगा। घोड़े हिनहिनाए और हाथियो ने चिंघाड़ मारनी आरम्भ कर दी।
.... और कुछ ही देरि मे दोनो ओर की सेनाएं दूसरा बिगुल बजते ही छावनियों से निकल कर अस्त्र शस्त्रों से लैस होकर मैदान मे आ डटी। अश्वारोही सेना अश्वों पर, गजारोही हाथियो पर और पदाति भाले, बर्छी खडग और गदाए लिए आ डटी। भीष्म पितामह ने कौरव सेना को खड़ा किया और एक अभूत पूर्व गर्जना के साथ आहवाहन किया—' कौरव राज के बहादुर साथियो ! नौ दिन तक युद्ध मे डटे रह कर तुमने अपनी वीरता की धाक जमा दी। नो दिन तक जिस साहस और रण कौशल का तुमने परिचय दिया, उसके लिए तुम बधाई के पात्र हो परन्तु अब यह स्पष्ट हो गया है कि प्रत्येक २४ घण्टे बाद युद्ध उत्तरोतर भयकर होता जा रहा है। इस लिए प्रत्येक क्षण तुम मे उत्साह और वीरता की वृद्धि की आवश्यकता है। किसी एक वीर के सहारे पर ही युद्ध की हार जीत निर्भर रहना ठीक नही है किसी एक के रण कौशल को युद्ध का निर्णायक समझ बैठना भी भूल है और किसी विशेष व्यक्ति के

धरों को बुलाया और उनसे उस दिन के लिए वायुयानों की व्यवस्था करने को कहा। कुछ ही देरि मे आकाश मार्ग से युद्ध करने की योजना पूर्ण हो गई और विकट गाडियों को विशेष रूप से मोर्चे पर लगा दिया गया। तभी युधिष्ठिर पहुचे और धृष्ट द्युम्न से कुछ बातें करने के उपरान्त अर्जुन शिखन्डी को बुला कर उन्होने आदेश दिया —"आज द्रुपद राज की प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए तुम्हे अर्जुन के आगे रहना है। अर्जुन तुम्हारी आड लेकर भीष्म पितामह पर प्रहार करेगा और तुम स्वय अपने पराक्रम का प्रदर्शन करोगे तभी द्रुपद महाराज की प्रतिज्ञा पूर्ण हो सकती है ?"

शिखन्डी ने आदेश का पालन करने का वायदा करते हुए कहा—"मेरे द्वारा पिता जी की प्रतिज्ञा की पूर्ति हो, इस से बढ कर और मेरे लिए प्रसन्नता की क्या बात हो सकती है ?"

वह अर्जुन के आगे होगया, यह देख श्री कृष्ण का मुखमण्डल पूर्ण यौवन पर आये सूर्य की भांति तेजमान हो गया, उन्हें अपार हर्ष हुआ और वे बोले—"पार्थ ! लो आज तुम्हारे रास्ते की मेरु पर्वत समान दीवार गिर जायेगी। शर्त यह है कि उस समय तुम्हारे हाथो मे कम्पन न आये।"

अर्जुन ने कहा—"मधु सूदन ! माता कुन्ती की कोख की सौगन्ध मैं रण क्षेत्र मे अपनी किसी भी भावना को आड़े न आने दूगा और सम्पूर्ण शक्ति लगा कर युद्ध करूगा।"

ज्यों ही युद्ध आरम्भ किए जाने की सूचना के लिए भीष्म पितामह ने रण भेरी बजवाई; कौरवों की विकट गाडियां आग के गोले बरसाने लगी, जिसके उत्तर मे पाण्डवों की ओर से धुआंधार गोलो की वर्षा होने लगी। सारे रण क्षेत्र मे धुआं और आग की लपटें उछलने लगी। कुछ देरि तक इसी प्रकार शतघ्वी चलती रही। भयंकर आवाजो से घोडे उछलने लगे। हाथियों की चिंघाड़ों का शोर सारे रण मे छा गया। बडा भयंकर वातावरण हो गया। तभी धृष्ट द्युम्न के संकेत पर गंधर्वों व विद्याधरों ने एक संकेत किया और आकाश से गोले बरसाये जाने लगे। जिन के कारण सेना में कोलाहल मच गया। बहुत से सैनिक आख फाड़ फाड़ आकाश से आते अग्नि गोलो को देखते, कुछ चंचल घोड़े

दुर्भाग्य का तूफान आता है तो बड़े बड़े विशेषज्ञों द्वारा निर्मित शक्ति शाली बांध भी रेत के महल की भांति ढह जाते हैं।"

'बस पितामह! मेरे कान यह बातें सुनना नहीं चाहते। आप कभी तो मेरी मन चाही बात भी कह दिया करें।"—दुर्योधन ने कहा।

पितामह ने हसते हुए कहा—"बेटा! विजय कौन नहीं चाहता पराजय की आशंका से किसका हृदय नहीं कांपता, फिर भी होता वही है जो होना होता है। पराजय किसी की विराट शक्ति से नहीं, बल्कि उसके विराट शक्ति शाली शुभ कर्मों से होती है।"

दुर्योधन पितामह की बात सुन कर तिलमिला उठा, उसने बात झुटलाने का साहस न कर टालने का प्रयत्न किया, बोला—"पितामह! आप से अधिक शुभ प्रकृति व्यक्ति कौन होगा। आप युद्ध का संचालन करें, फिर आप देखें कि शत्रु सेनाएं कितने पानी में है?"

पितामह ने एक अट्टाहास किया और तदुपरान्त अपनी सेना को सावधान करने के लिए भयंकर सिंह नाद किया। घोड़े विचलित होगए और हाथियों ने अपनी सूड ऊपर उठा कर अभिवादन किया।

दूसरी ओर धृष्टद्युम्न ने अपनी सेना की ऐसी व्यूह रचना की जो कि पितामह के व्यूह रचना को तोड सके। युधिष्ठिर और अर्जुन विशेष रूप से उसकी रचना में सहयोग दे रहे थे और भीम सेन अपने साथियों की पीठ ठोंक रहा था। जब सारी सेना की व्यवस्था होगई तो श्री कृष्ण ने अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहा—"पार्थ! पितामह की कुशल व्यूह रचना देख रहे हो? चारों ओर विकट गाडियां ही विकट गाडियां हैं और उन के महारथी उन के पीछे हैं, उन के बाद हैं सैनिक और सैनिक टुकडिया भी मिली जुली हैं, पग पग पर गजारोही, अश्वारोही पदाति और रथी सैनिकों से पाला पड़ेगा. तब कहीं जाकर पितामह का रथ मिलेगा इस प्रकार पितामह का मुकाबला तुम इन सहस्त्रों दीवारों को तोड कर ही कर सकते हो। और इन दीवारों को तोडना सहल नहीं है।"

अर्जुन ने बात समझते ही अपने सहयोगी गंधर्वों और विद्या-

का गौरव आधारित था, अर्जुन की गति को रोकने के लिए तयार खड़े थे। ज्यों ही उन्होने सामने को सेना मे भगदड़ मचती देखी, वे बोल उठे—"मालूम होता है धनंजय आ रहा है।"

दुर्योधन, जो अपनी सेना में मचे कोलाहल और भगदड़ से चिन्तित हो उठा था, दौड कर पितामह के पास पहुचा और घबरा कर बोला– 'पितामह! देख रहे हैं हमारी सेना का साहस टूट रहा है, भीमसेन की गदाओ की चोट के सामने हाथी नही ठहर पा रहे और दूसरी ओर न जाने क्यों पदाति, अश्वारोही और रथी सेना मे हाहाकार मच गया है। जाने कौन सहारक आ गया है। जैसे वायु के प्रबल प्रहारो व तूफान के सामने मदोन्मत हाथियों की भाति झूमते मेघ उड़ जाते हैं, हमारे रणोन्मत्त वीर महारथी तक किसी पाण्डव योद्धा के बाणो से उड़े जा रहे हैं। लगता हैं अर्जुन आ गया है। कुछ कीजिए पितामह! वरना मैं कहीं का न रहूगा।"

दुर्योधन की घबराहट भीष्म पितामह को न सुहाई। वे भय से घृणा प्रकट करते हुए बोले—"इतनी जल्दी तुम घबरा जाते हो, क्यों? भय किस बात का। रण क्षेत्र में आये हैं, हम अपने प्राणों का मोह त्याग कर, फिर चाहे कोई भी क्यों न आये लडना ही तो है, कांपने से क्या होगा? जाओ अपना मोर्चा सम्भालो। मैं जानता हूं श्री कृष्ण रथ ला रहे हैं और अर्जुन के बाण प्रलय मचा रहे हैं।"

पितामह की बात मे एक ललकार थी, डपट भी, दुर्योधन का मुह उतर गया, वह कांपता हुआ अपने स्थान पर चला गया और पितामह ने अपने बाण सम्भाले।

अर्जुन ने सामने पहुचते ही एक बाण पितामह के चरणों में फेंका। पितामह ने अपने चरणों में पड़े बाण को देखा और फिर एक बाण निकाल कर धनुष पर चडाया, ज्यों ही डोरी को उन्हों ने कान तक खीच कर सामने निशाना बांधा, दृष्टि सामने गई, तो वे सन्न रह गए। अंग अग शिथिल पड गया, उत्साह जाता रहा।

उन्होने देखा कि सामने है शिखण्डी। वह शिखण्डी, जो उनकी मृत्यु का साधन बन कर उत्पन्न हुआ है, जिस के लिए द्रुपद ने घोर तपस्या की थी। यह वही शिखण्डी है जो पुरुष होते हुए

इधर उधर भागने लगे। कुछ पदाति नौसिखये सैनिक मल मूत्र त्यागने लगे और एक घण्टे की गोलावर्षा से ही कौरव सेना के छक्के छूट गए। कौरवो को अपनी विकट गाड़ियों को बन्द करना पड़ा और कौरवो की ओर से गोलो का वर्षा बन्द होते ही पाण्डवों की गोला वर्षा बन्द होगई।

भीष्म पितामह ने अपनी सेना को आगे बढ़ने का आदेश दिया और पाण्डवों की सेना भी अपने सेनापति का आदेश पाकर आगे बढ़ी। दोनों सेनाएं एक दूसरे के निकट पहूंचते ही परस्पर भिड़ गई। दोनों ओर के महारथी एक दूसरे को परास्त करने के उद्धेश्य से अपने भोषण अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग करने लगे। भोमसेन गदा लेकर गजारोही सेना पर टूट पडा। जिस हाथी की सूण्ड पर उसकी गदा पड़ती, वही चिंघाड मार कर भाग पडता। जिस हाथी पर दो तीन गदाओ के प्रहार हो जाते वह पहाड की भांति ढह जाता कुछ ही देरि में कौरवों की गजारोहो सेना में हा हा कार मच गया। सात्यकि अपने धनुष के जौहर दिखा रहा था और भूरिश्रवा तथा भगदत्त अपने अपने पराक्रम का प्रदर्शन कर रहे थे।

परन्तु अर्जुन का रथ अपने सामने आने वाले वीरों का संहार करता आगे बढ रहा था, शिखण्डो तथा अर्जुन के बाणो के सामने कौरवो की सेना का जो भी दल पड़ता, वही या तो मुकाबला करता करता धाराशायी हो जाता, अथवा पैने बाणों की ताबन लाकर भाग खड़ा होता। अर्जुन के साथ शिखण्डो को देख कर ही कौरव वीरो का साहस जवाब देजाता, कितने हो सैनिक दूरि से देख कर ही दुम दबा कर भाग पड़ते और जो सामने आते, वे मानो प्राणो के साथ खिलवाड करते, मृत्यु दान लेने अथवा पराजय का प्रसाद लेने भर को। उस दिन परम प्रतापी धनुर्धारी वीर अर्जुन के साथ शिखन्डी के हो जाने से कौरव सेना मे तहलका मच गया और इस वातावरण से लाभ उठाते हुए श्री कृष्ण रथ को तेजी से भीष्म पितामह की ओर बढाते जाते थे। वे भीष्म जो प्रमुख वीर दलों से रक्षित थे और जो तारागण के बीच गौरव पूर्ण ढग पर दीप्तिमान चन्द्रमा के समान चमक रहे थे, जो नौ दिन के युद्ध मे कौरवो की नौका के एक मात्र सफल तथा वीर केवट बने हुए थे, जिन पर कौरव सेना

ईये।"

परन्तु वे तो समझ गए थे कि अब जीवन संध्या का समय गया और कुछ ही देरि बाद उसकी इहलीला समाप्त होने वाली । वे शात रहे और सहर्ष वाण सहते रहे। अर्जुन का एक एक ण उनके किसी मर्मस्थल को वीधता। परन्तु पितामह के मुख से आह निकलती और न क्रोध या पश्चाताप की ही बात। वे खड़े स्कुरा रहे थे, वलिक कभी कभी यही कह उठते कि—"अर्जुन ! र मुझे गर्व है कि उसके वाण ही मुझे चिरनिद्रा मुलाने मे सफल होगे।"

दु.शासन ने चीख कर कहा—"पितामह ! कीजिए युद्ध, वरना हम कही के न रहेंगे। देखिये अर्जुन किस प्रकार आक्रमण कर रहा है। पितामह ! अपनी रक्षा कीजिए।"

"दु शासन ! अब तो जीवन संध्या हो चुकी। अब मेरी चिन्ता छोड़ो। अपनी चिन्ता करो।"—पितामह बोले।

उसी समय सारे कौरवो मे खलबली मच गई। और सब मिल कर पितामह से आत्म रक्षा की प्रार्थना करने लगे। क्यो कि वे स्वय उस भीषण वाण वर्षा को रोक सकने मे असमर्थ थे।

शान्तनुनन्दन फिर भी निश्चेष्ट खडे थे वलिक उस समय वे जिन प्रभु की आराधना कर रहे थे। उन के मुख पर लेश मात्र भी चिन्ता न थी। कमल की नाई दमकता उनका मुख मण्डल शात था। वाणों से उनका कवच छिद्र गया और शरीर से लाल लोहू की धाराएं स्थान से बह निकलीं। अर्जुन के वाण उनके शरीर को वेध कर दूसरी ओर निकल जाते। तभी एक कौरव चिल्लाया— अरे ! पितामह तो अर्जुन के मोह मे स्वय अपना नाश करेंगे और हमें भी पराजित करादेंगे।"

इस चीख पुकार को सुन कर पितामह से न रहा गया वे अर्जुन की गति को रोकने की इच्छा से हाथ में खड्ग व ढाल लेकर रथ से उतरने को हुए कि उसी समय श्री कृष्ण ने उस ओर इंगित किया और अर्जुन ने मन को दृढ कर के ऐसे तीखे वाणों की मार की कि देखते ही देखते पितामह की ढाल टूटकर गिर गई और वे खड्गके लिए रह गए। अब क्या था, अर्जुन ने पितामह को गिराने के लिए और भी वेग से वाण चलाए और थोड़ी सी ही देरि मे पितामह का

भी स्त्री के समान है। नपुसक का सामना है। उन के मस्तिष्क मे प्रश्न उठा कि क्या उन जैसे महाबलो के लिए नपुसक से लड़ना उचित है? क्या अपुरुष पर शस्त्र चलाना क्षत्रियोचित धर्म के अनुसार उचित है? नही, वे प्रतिज्ञा कर चुके है कि किसी भी नारी शरीर धारी मानव या नपुसक पर अस्त्र नही उठायेंगे और नपुसक से लडना उनकी मर्यादा के विरुद्ध है।

परन्तु शिखण्डी को उनके तथा अर्जुन के बीच दीवार बन कर खड़े हुए शिखण्डी की उपस्थिति से पितामह का मुख मण्डल क्रोध के मारे तपते सूर्य की भांति जलने लगा। लगता था मानो अभी अभी उनके नेत्रों से ज्वालाएं निकल पड़ेंगी और शिखण्डी ज्वाला बाणों से भस्म हो जायेगा। उनकी आंखें लाल अगारो की भाति दहक रही थी। उनका मुख मण्डल अगारे की नाईं लाल हो उठा था। उनके हाथो की मुट्ठियाँ बध गई। और जब अर्जुन ने तडातड बाण बर्षा जारी की, तो पितामह के क्रोध का ठिकाना न रहा। यह क्रोध था शिखण्डी और अपनी विवशता पर। किन्तु पितामह ने अपने को नियंत्रित किया और गम्भीर हो गए। उनका मुख कठोर होगया।

निष्क्रिय खड़े देख कर शिखण्डी ने भी पितामह पर बाणो की वर्षा की और अर्जुन तो वाण चला ही रहा था। पितामह शिखण्डी के बाणो का कोई भी प्रतिरोध नही कर रहे थे। इस से शिखण्डी का साहस और भी बड़ा और वह तीव्र गति से बाण वर्षा करने लगा। अर्जुन ने भी उस समय तनिक जी कडा करके पितामह के मर्मस्थलों पर वाण मारने आरम्भ कर दिए। उस समय पितामह पास खड़े दु:शासन को सम्बोधित करते हुए बोले—"देखो यह बान अर्जुन के हैं, जैसे केंकडी के बच्चे ही उसके शरीर को विदीर्ण कर डालते हैं, इसी प्रकार अर्जुन ही मेरे शरीर को बीध रहा है।"

उस समय जब कि एक ओर से धडाधड बाण चल रहे थे और दूसरी ओर पितामह निश्चल, व शात खड़े थे, बल्कि अर्जुन के बाणो की चोट से भी उनका मुख तनिक भी मलिन नही हुआ, यह दृश्य देख कर उस अवसर पर उपस्थित सभी योद्धा आश्चर्य चकित रह गए। कौरवों ने शोर मचाया—"पितामह! बाण

पितामह की बात सुनते ही पाण्डव तथा कौरव पक्षीय कई राजा गण अपने अपने डेरो की ओर दौड़े। नरम गदगदे तकिए लेने के लिए और कुछ ही क्षण बाद वहा अनेक रेश्मी, नरम तथा सुन्दर तकिए आगए। चारो ओर से राजागण पितामह के सिरहाने अपना अपना तकिया लगाने के लिए आय। पर पितामह ने उन सभी के तकियो को देखकर इकार कर दिया किसी का भी तकिया स्वीकार न किया। प्रत्येक निराश होकर रह गया।

तब पितामह ने अर्जुन से कहा—"बेटा! मेरा सिर नीचे लटक रहा है, इससे मुझे बडा कष्ट हो रहा है। तुम ने शय्या तो दी, पर तकिया नही। कोई उचित सहारा तो सिर के नीचे लगा दो "

पितामह ने यह बात उसी अर्जुन से कही, जिसने अभी अभी प्राणहारी बाणों से पितामह का शरीर बीध डाला था। जो पितामह के बध के लिए कुछ ही देरि पहले बडी चतुराई से बाण वर्षा कर रहा था। एक आज्ञाकारी शिष्य तथा पौत्र की भाति अर्जुन ने आज्ञा शिरोधार्य की और अपने तरकश से तीन तेज़ बाण निकाले। और पितामह के सिर को उनकी नोक पर रख कर उन्हे भूमि पर गडा दिया। इस प्रकार महाबली भीष्म पितामह के लिए उपयुक्त तकिया बना दिया गया।

पितामह प्रसन्न होकर बोले—"बेटा अर्जुन! तुम्हारी तीक्ष्ण बुद्धि और वीरोचित धर्म तथा कर्तव्य का तुम्हारा ज्ञान तुम्हे अपूर्व यश अरजन करने का कारण बनेगा। अन्तिम समय भी तुम मुझे अपनी वीरता की प्रशसा के लिए बाध्य कर रहे हो। मुझे तुम पर गर्व है।"

राजागण ने विनयपूर्वक निवेदन किया—"पितामह! इस समय आपकी दशा देखकर हम सभी व्यथित हैं और यह सहन कर रहे हैं कि जब आप जैसे धर्म योद्धा के सामने भी मृत्यु हाथ पसारे खडी है तो हम जैसो की क्या बिसात है। एक दिन यह अवसर हमारे सामने भी आना है। ऐसे समय कुछ उपदेश कीजिए।"

"प्रिय बन्धुओं! मेरे प्रति तुम्हारी इतनी श्रद्धा होने का कारण जो है उसे मैं समझता हू। पर मैं वृद्ध होने के कारण इतना महान नहो कि धर्मोपदेश कर सकू। और रणक्षेत्र मे किसी के मृत्यु शय्या पर पड़े हुए यह सम्भव भो नही, फिर भी आप लोग

सारा शरीर छिद गया। उस समय शांत खड़े पितामह को देखकर आकाश में युद्ध देख रहे देवताओं को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे भी पितामह की महानता की श्रद्धापूर्वक प्रशंसा करने लगे।

कुछ ही देरि मे पितामह का सारा शरीर बिंध गया और वे अपने रथ से लुढक पड़े। जैसे पर्वत के गिरने से उस के आश्रित सभी वृक्ष आदि दब जाते हैं, इसी प्रकार पितामह का गिरना हुआ कि कौरवों का मान भी ढह गया और वे सभी हा हा कार करने लगे। क्षण भर में कोहराम मच गया। पितामह का गिरना था कि मन्द मन्द समीर छोटी छोटी बूंदें बरसाने लगी, जैसे आकाश रो उठा हो। चारों ओर शोक छा गया। कौरव रो पड़े और पाण्डव महारथियों ने विजय के शंख नाद किए। पितामह गिरे तो पर उन का शरीर पृथ्वी मे न लगा, बल्कि अर्जुन के उन बाणों के सहारे ऊपर ही रुका रहा, जो पितामह का शरीर भेद कर दूसरी ओर निकल गए थे उस विलक्षण शरशय्या पर पड़े भीष्म जी के शरीर से एक अनूठी आभा फूट रही थी। अभी तक उनके मुख पर शांति विराजमान थी अभी तक उनके ब्रह्मचर्य का तेज अनूठी शोभा दर्शा रहा था। अभी तक उस महाबली का सूर्य समान मुख मण्डल पर बला का तेज था।

* * * *

पितामह के गिरते ही युद्ध बन्द होगया और दोनों ओर के राजागण शूरवीर पितामह के अन्तिम दर्शन करने हेतु दौड पड़े। पाण्डव और कौरव पक्षी राजागण और पितामह के परिवार के तारागण चारो ओर से उन्हें घेर कर खडे हो गए। सभी के हाथ जुड़ गए थे। सभी अभिवादन कर रहे थे। सभी गम्भीर थे और आपस मे मिले हुए इसी प्रकार खड़े थे जैसे आकाश में दीप्तिमान चन्द्रमा के चारो ओर उन के परम शिष्य तथा प्रिय पुत्र तारागण। उस समय वे सभी पितामह के चारो ओर खड़े अपनी अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे थे। तभी सभी को लक्ष्य करके पितामह बोले—"मेरा सिर नीचे लटक रहा है। उसे ऊपर उठाने के लिए कोई सहारा तो लाओ। कोई वीर मेरे सिर के नीचे वीरोचित तकिया लगा दे।"

भास्कर के गम में डूबने जा रहा हो।

दुर्योधन हाथ जोड कर घुटनो के बल बैठ गया और अश्रुपात करते हुए बोला—"पितामह! अब आप के पश्चात हमारा क्या होगा, आप तो हमे बीच मंझधार मे ही छोड़ जा रहे हैं "

पितामह की आवाज थक गई थी, बोले "बेटा दुर्योधन! तुम्हे सद्बुद्धि प्राप्त हो यही मेरी कामना है देखा तुमने? अर्जुन ने मेरे सिर को तकिया कैसे लगाया, उस ने मेरी प्यास कैसे बुझाई? यह बात क्या और किसी से सम्भव है? यह सब उसके पुण्य, प्रताप तथा शुभ कर्मो का फल है और है उसकी न्याय प्रियता, तीक्ष्ण बुद्धि तथा पराक्रम के कारण। अब भी समय है। विलम्ब न करो। इनसे सन्धि करलो।"

दुर्योधन को यह बात भला कैसे पसन्द आ सकती थी, बोला तो कुछ नही पर मन ही मन कुढ़ता रहा।

तब अर्जुन ने हाथ जोड कर विनय पूर्वक पूछा—"पितामह! आप ने जो आज्ञा दी, मैंने पूर्ण की। अब आपकी अन्तिम कामना जो हो वह भी बतादें, ताकि उसे पूर्ण करके मे अपने को धन्य समझूं आप चाहे जिस ओर भी रहे, पर हमने सदा ही आप का आदर किया है और आज आप को खोकर हमारे कुल को जो क्षति पहुंच रही है, उसका उत्तर दायित्व मेरे ही ऊपर है। यह धृष्टता मुझ से हुई है। मैं इसका अपराधी हू। कृपया मुझे क्षमा कर दीजिए।"

पितामह अपने जीवन की अन्तिम घड़िया गिन रहे थे, तो भी अर्जुन की बात सुन कर उनके अधरों पर मुस्कान खेल गई, बोले —"बेटा! तुम ने जो कुछ किया, वह गृहस्थ धर्म के आधीन आता है, तुम ने अपना कर्तव्य निभाया। तुम युद्ध मे इस लिए तो नहीं आये कि अपने कुल या वश की रक्षा करें। बल्कि इस लिए आये हो कि अन्याय के पक्ष पातियों को, जिस प्रकार भी सम्भव हो, परास्त करें और न्याय की रक्षा के लिए शत्रु के प्राण हरण करने मे भी न हिचको। मैं जानता हूं कि तुम मेरा वध इस लिए नही करना चाहते थे कि मैं बुरा आदमी हू। बल्कि मैं तुम्हारे शत्रुओं का सेनापति था तुमने जो किया वह तुम्हारे लिए उचित ही था। रही बात अन्तिम कामना की तो यह प्रश्न दुर्योधन पूछे तो अच्छा हो।"

कुछ सुनना ही चाहते हैं तो मैं बस यही कहना चाहता हूं कि परस्पर बैर नाश का कारण बनता है। युद्ध से कभी कोई समस्या हल नही होती शुभ प्रकृति वाले व्यक्ति मनुष्य रूप मे भी देवता समान ही है उन्हे परास्त करना असम्भव है। और जिन प्रभु का बताया मार्ग ही सच्चिदानन्द की प्राप्ति का एकमात्र साधन है। अब मेरा गला सूखता जा रहा है। बेटा दुर्योधन मुझे पानी चाहिए।"—इतना कह कर पितामह मौन हो गए।

"पितामह! अभी ही लाया"—कह कर दुर्योधन वहा से पानी लेने चला। तभी पितामह की वाणी गूजी।—"ठहरो! रण-क्षत्र मे बाणों की शय्या पर पड़े व्यक्ति के लिए उस जल की आवश्यकता नही। मेरी बात तुम नही समझोगे।"

दुर्योधन चक्कर मे पड़ गया, वह पितामह का आशय न समझ पाया। हतप्रेम होकर बोला -"पितामह! फिर कैसा जल चाहिए आपको?"

दुर्योधन के प्रश्न का उत्तर न देकर, पितामह अर्जुन को लक्ष्य करके बोले—"हा बेटा! तुम ही मुझे जल भी पिला सकते हो। मेरा सारा शरीर तुम्हारे बाणो की चोटो से जल रहा है। इस उष्णता को तुम्ही शान्त कर सकते हो"

अर्जुन ने तुरन्त गाण्डीव पर एक तीक्ष्ण बाण चढाया और पितामह की दाहिनी बगल मे पृथ्वी पर सम्पूर्ण शक्ति लगा कर खीच मारा। और बाण लगते ही बिजली टूटने की सी आवाज आई। पृथ्वी दहल गई और एक जल स्रोत बड़े वेग से फूट निकला। मानो शान्तनुनन्दन भीष्म की मा गगा के स्तन से दुग्ध धारा निकली हो। अमृत समान मधुर तथा शीतल जल पीकर पितामह बड़े प्रसन्न हुए बारम्बार अर्जुन को आशीर्वाद दिया, पर वह आशीर्वाद न युद्ध मे उस की विजय की कामना का था और न कीर्ति की वृद्धि का, बल्कि था धर्म निष्ठ होने का।

दुर्योधन को इस से बड़ी प्रसन्नता हुई। वह सोचने लगा पितामह बहुत ही शुभ प्रकृति के महापुरुष हैं, कहीं युद्ध में अर्जुन को विजय का आशीर्वाद दे देते तो कौरवों का ढेर हो जाता।

उस समय सूर्य का रथ अपनी मंजिल की अन्तिम अध्याय को आरम्भ कर रहा था, जैसे भास्कर अन्तिम सासे ले रहे पृथ्वी के

क्योंकि दुर्योधन के घमण्ड का एक मात्र कारण तुम्ही थे।......... अस्तु—जो कुछ हुआ सो हुआ, अब मैं चाहता हूं कि मेरे जीवन का अन्त होने के साथ साथ पाण्डवो के प्रति तुम्हारा वैर भाव समाप्त हो जाये। तुम अपने भाईयों की ओर रहो, तो कदाचित दुर्योधन सन्धि के लिए विवश हो जाये और यह भयंकर युद्ध समाप्त हो जाये।"

कर्ण ने पितामह की बात सुनी तो वह बड़े असमजस में पड़ गया, फिर भी बोला—"पितामह ! मैं माता कुन्ती का पुत्र हू, यह मुझे ज्ञात हो गया है। परन्तु मैं दुर्योधन की ओर रहने को बाध्य हूं क्योंकि जब दुर्योधन ने मुझे सम्पत्ति दी थी तो मैं ने प्रतिज्ञा की थी कि उसके लिए मैं अपने प्राण तक दे दूगा। अतएव, मुझे कृपया कौरव पक्ष की ओर से लड़ने की आज्ञा दीजिए।"

'जैसी तुम्हारी इच्छा।" पितामह बोले।

कर्ण को वातो को सुन कर पितामह सदा ही उसे ललकारा करते थे, इसी लिए कर्ण समझता था कि पितामह उससे घृणा करते है। एक बार आवेश मे आकर युद्ध आरम्भ होने से पूर्व कर्ण ने प्रतिज्ञा की थी कि वह तब तक युद्ध मे नही उतरेगा जब तक भीष्म का बध नही होजाता। अब चूकि पितामह ससार से जा रहे थे, इस लिए उस ने पूछा—"पितामह आप ही कौरवों का सहारा थे। आप के बलबूते पर ही दुर्योधन ने युद्ध ठाना था, अब आप जा रहे हैं। अब तो कौरवों को बड़ी विपत्तिया पड़ेंगी कृपया बताईये कि युद्ध का संचालन कैसे हो ?"

"कर्ण ! तुम पर दुर्योजन को गर्व है और उसे मुझ पर सदा ही क्रोध आता रहा कि क्यों नही मैं, जो कर्ण के रास्ते मे दीवार बनकर खड़ा हो गया हू, समाप्त हो जाता। तुम योग्य हो, धुरन्धर धनुर्धारी हो, तुम्हारे पास विद्याए हैं, अस्त्र-शस्त्र हैं, बल है और बुद्धि हे। इसी के साथ दानवीरता के कारण तुम्हारे पास अपने पुण्य का भण्डार है। साहस पूर्वक रण मे उतरो। अब कौरवो की नोका की पतवार तुम्ही हो। कौरव सेना को अपनी सम्पति समझ कर उसकी रक्षा करो।"

भीष्म पितामह की आशीष पाकर कर्ण बहुत प्रसन्न हुआ, पितामह के चरण छुए, बारम्बार प्रणाम किया और रथ पर चढ़कर

दुर्योधन को बात खटकी, फिर भी उस समय उपस्थित लोगों की लज्जा वश वह बोला "हां पितामह बताईये ना। मैं तो आप का सेवक हूं।"

"मेरी कामना यही है कि यह युद्ध मेरे साथ ही समाप्त हो जाये। बेटा! मेरी आत्मा को सन्तुष्ट करने के लिए तुम पाण्डवों से अवश्य ही सन्धि करलो।"—पितामह ने कहा।

यह बात दुर्योधन के तीर सी लगी, मन ही मन वह बिलबिला उठा। परन्तु मुख से उसके कुछ भी न निकला, धीरे धीरे सभी राजा पितामह को अन्तिम प्रणाम कर के अपने अपने शिविर में चले आये।

× × × ×

दानवीर कर्ण को जब ज्ञात हुआ कि पितामह भीष्म रणभूमि मे पडे अन्तिम स्वांसे ले रहे हैं, यह तुरन्त दर्शनार्थ दौड़ पड़ा।

पितामह बाणो की शय्या पर लेटे थे, कर्ण पहुचा और घुटनों के बल पैरो को ओर बैठ कर उसने हाथ जोड़ दिये—"पूज्यकुलनायक! सर्वथा निर्दोष होने पर भी सदा आप की घृणा का जो पात्र बना रहा, वही सूत पूत्र कर्ण आप को सादर प्रणाम करता है। स्वीकार करें।"

पितामह ने आंखे खोली. उन्होंने देखा कि विनय पूर्वक प्रणाम करके कर्ण कुछ भयभीत सा हो गया है। यह देख उन का दिल भर आया, निकट बुलाया और बोले – "बेटा! तुम राधा पुत्र नही बल्कि कुन्ती पुत्र हो मैंने तुमसे कभी द्वेष नही किया और न कभी घृणा ही की। बल्कि पाण्डवों के ज्येष्ठ भ्राता होते हुए भी तुम ने केवल दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिए सदा अन्याय का पक्ष लिया, इसी से मेरा मन मलिन हो गया। वैसे तुम जैसा दानवीर आज पृथ्वी पर कोई नही, तुम्हारी दानवीरता के सामने मैं नतमस्तक तक होता हू तुम्हारी वीरता, शूरता भी प्रशसनीय है, श्री कृष्ण तथा अर्जुन के अतिरिक्त कौन है जो तुम्हारा मुकाबला कर सके। परन्तु ठण्डे दिल से सोचो कि इस भयकर युद्ध की बुनियाद मे तुम्हारा क्रोध और दुर्योधन के प्रति अति मोह व पाण्डवो के प्रति तुम्हारा बैर भाव कितना है। आज मैं बाणो की शय्या पर पडा दम तोड रहा हू, मेरी वीरोचित मृत्यु हो रही है, तुम्हारी हो कृपा से।

दुर्योधन पुन. बोला—"तुम्हारे शौर्य पर मुझे बहुत विश्वास है और मुझे आशा है कि तुम सेनापति पद के लिए उपयुक्त हो। पर इस विषय मे मैं तुम्हारी राय को महत्व दूगा क्योकि तुम मेरे ऐसे अन्तरग मित्र हो जिसकी वात पर मैं आख मीचकर विश्वास कर सकता हूं तुम जो राय दोगे वह अवश्य ही मेरे हित मे होगी।"

तब कर्ण ने उत्तर दिया, बडी शात मुद्रा मे, गम्भीरता पूर्वक "राजन् ! आप के लिए मैं अपना सर्वस्व न्यौछावर कर सकता हू। और मुझे स्वय अपनी शक्ति का विश्वास है। तो भी मेरी राय मे भीष्म पितामह के बाद हमारे पास द्रोणाचार्य और कृपाचार्य जैसे शस्त्र विद्या के गुरु विद्यमान हैं। हमारी सेना के वीरो की अधिकतर सख्या उनकी ही शिष्य है। वे शस्त्र विद्या मे तो प्रवीण हैं ही, व्युह रचना और युद्ध सचालन मे भी पारगत हैं। अतः इन दो महानुभावो मे से किसी एक को यह कार्य सौपा जाये तो अत्युत्तम होगा। मैं द्रोणाचार्य को अधिक उपयुक्त समझता हू।"

सभी कौरव एक स्वर से कह उठे—"ठीक है पितामह के बाद द्रोणाचार्य ही सेनापति बनने चाहिए।"

दुर्योधन बोला—"द्रोणाचार्य पर मेरी भी दृष्टि गई थी, अब सबकी राय मिल गई तो बात निश्चित ही समझिए।

एक प्रकार से कर्ण का प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार हुआ। तब दुर्योधन की आज्ञा से दो कौरव गए और द्रोणाचार्य को वहा ले आए।

दुर्योधन ने विनीत भाव से कहा—आचार्य जी ! जाति, कुल, शास्त्र ज्ञान, वय, बुद्धि, वीरता, कुशलता आदि सभी वातो मे आप श्रेष्ठ हैं। पितामह के बाद एक आप ही हैं जिनके सहारे पर हम गर्व कर सकते हैं। अब हमारा भाग्य आप ही के हाथो मे है। यदि आप हमारी सेना का सचालन कार्य सम्भाल लें और सेनापतित्व स्वीकार कर लें तो मुझे आशा है कि हम शत्रुओ को परास्त करने मे सफल होगे। हम सबका निर्णय यही है।"

द्रोणाचार्य गम्भीर हो गए, उनके मनोभाव जो उनके मुख मण्डल पर उभर आये थे, साफ बता रहे थे कि वे विनती तो स्वीकार कर लेंगे, परन्तु दुर्योधन की आशा पूर्ण होगी इसमे उन्हें

रणक्षेत्र मे जा पहुंचा। शोक विह्वल दुर्योधन ने जब कर्ण को रणक्षेत्र मे आते देखा, उसका मन मयूर नृत्य कर उठा। उसकी आशाएं पुनर्जीवित हो गई। उसका चेहरा खिल उठा। उसने एक शंखनाद किया, वह पितामह की मृत्यु को भूल गया और दौड़कर कर्ण को छाती से लगाकर बोला—"कर्ण! तुम आगए तो मानो विजय मेरे शिविर में आगई। तुम हो तो मेरी सारी चिन्ताए दूर हो गईं।"

"मैंने कहा था ना—कर्ण बोला—कि जब पितामह नहीं रहेंगे मैं अपने प्राणो को भी तुम्हारे लिए बलि देने आ जाऊगा। मैं आ गया और अब देखो मेरा रण कौशल।"

दुर्योधन ने बार बार शंख ध्वनि की। सभी कौरव चौंक पड़े। जब उन सभी ने तेजस्वी कर्ण को देखा, उछल पड़े और कर्ण की जय जयकार करने लगे।

× × × ×

ज्यो ही सूर्य डूबा, भीष्म रूपी भास्कर भी अस्त हो गया। अब हाड मांस का एक ढांचा था जो बाणों पर रक्खा था। तेज तथा आभा मुखमण्डल से विलीन हो गई और वह शरीर जिसको देखकर अच्छे अच्छे वीर काप जाया करते थे, अब मिट्टी के समान सो गया। चारों ओर अंधकार छा गया, और उधर जब धृतराष्ट्र ने भीष्म पितामह के वध का समाचार सुना तो उनके मन मे जल रहा आशा दीप बुझ गया, अंधकार छा गया, महलो में अंधेरा हो गया।

इधर दुर्योधन के शिविर मे समस्त कौरव भ्राता उपस्थित थे। सभी गम्भीर और चिन्तित दिखाई देते थे। कर्ण को भी वहीं बुला लिया गया। इतनी अधिक सख्या मे लोग उपस्थित होने के उपरान्त भी कोई शब्द सुनाई नहीं दे रहा था, जिसका यह अर्थ सहज ही मे लगाया जा सकता है, कि अन्दर बैठे सभी लोग विचार मग्न हैं, किसी गम्भीर समस्या पर सोच रहे है।

तभी शिविर की निस्तब्धता को भग करते हुए दुर्योधन बोल उठा—"तो हां कर्ण! कुछ सोचा, किसे सेनापति नियुक्त किया जाय?

कर्ण ने कोई उत्तर न दिया।

* तैतालीसवां परिच्छेद *

द्रोणाचार्य के चले जाने के उपरान्त अन्य कौरव भी उठ कर अपने अपने शिविर की ओर चल दिए, पर दुर्योधन, कर्ण और दुःशासन वहीं बैठे रहे। वे तीनों आपस में मन्त्रणा करने लगे। यह मन्त्रणा थी युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए किसी षड्यन्त्र की रूप रेखा के सम्बन्ध में।

तीनों घुल मिल कर आपस में बात चीत करते रहे और अन्त मे दुर्योधन गद गद होकर बोला—"तो बस यही ठीक है। क्यों न इसी समय चल कर द्रोणाचार्य से वचन ले लिया जाये।"

"हां, हां, आचार्य चाहें तो यह उनके लिए बायें हाथ का खेल है।"—कर्ण ने प्रोत्साहित करते हुए कहा।

तीनों उठे और द्रोणाचार्य के शिविर की ओर चल पड़े।

× × × ×

आचार्य सोने की तैयारी कर रहे थे कि तीनों महारथियो को सामने देख कर उन्हें आश्चर्य हुआ। विस्मित होकर पूछा—"क्या कोई विशेष बात है?"

'हां आचार्य जी, एक विनती लेकर आये हैं।"—दुर्योधन ने बैठते हुए कहा।

द्रोणाचार्य समझ गए कि कोई विशेष बात है, तीनों को बैठा कर स्वयं भी सावधान होकर बैठ गए और धीरे से पूछा—"क्या बात है?"

सन्देह था। मौन की स्वीकृति का लक्षण जानकर सभी कौरव विपुलनाद कर उठे।

उठने से पहले द्रोणाचार्य बोले—"आप जो कार्य मुझे सौंपेंगे, वह मुझे करना ही होगा, पितामह की इच्छा पूर्ण हो जाती तो अच्छा था।"

"क्षत्रिय आगे बढा पग पीछे नहीं हटाया करते—दुर्योधन बोला—युद्ध के लिए आये हैं तो तलवार की धार पर ही हमारा फैसला होगा।"

कर्ण उस अवसर पर चुप न रह सका, बोला—"आचार्य जी! अब सन्धि की बातें उठाने से कोई लाभ नहीं हम दुर्योधन की इच्छा से रण क्षेत्र में आये हैं और उसी की इच्छा से कार्य करना हमारा कर्तव्य है।"

वध न करके जीवित पकड़ लेने के पक्ष में हो गए तो युधिष्ठिर धन्य है, जिसका कोई शत्रु नहीं। आज मुझे तुम्हारा प्रस्ताव सुन कर बड़ी ही प्रसन्नता हुई"

द्रोणाचार्य की बातें सुन कर दुर्योधन और उसके साथियों के मुह पर जो भाव आये थे, यदि उस समय आचार्य की दृष्टि उस ओर होती तो वे चौंक जाते पर वे तो कुछ सोचने लगे थे। नीची दृष्टि किए सोचते रहे और अन्त मे गरदन उठा कर बोले—"बेटा ! मैंने जान लिया कि युधिष्ठिर को जीवित पकड़वाने से तुम्हारा क्या उद्देश्य है। तुम्हारा यही उद्देश्य तो है कि युधिष्ठिर को वन्दी बना कर पाण्डवों पर अपनी विजय की धाक जमा दें और फिर युधिष्ठिर से सन्धि करके उन्हें छोड़ दें। युद्ध समाप्त हो जाये और बात भी रह जाये। इसके अतिरिक्त और क्या उद्देश्य हो सकता है युधिष्ठिर को पकड़ने का।"

यह कहते कहते द्रोणाचार्य की आखों से प्रसन्नता व प्रफुलता उबलने लगी, वे गद गद हो उठे और सोचने लगे—"बुद्धिमान धर्म पुत्र का जन्म सफल है, कुन्ती नन्दन बड़े भाग्य शाली है, जिन्हों ने अपने शील स्वभाव से शत्रु तक को प्रभावित कर दिया है।"

वे बार बार यही सोचते और धार्मिक जीवन की विजय पर असीम सन्तोष तथा प्रसन्नता अनुभव करने लगे। फिर यह सोच कर कि अपने भ्राताओं के प्रति दुर्योधन के मन में कुछ प्रेम तो है ही, भ्रातृ स्नेह ने जोर तो मारा ही, उन्हें बड़ी ही प्रसन्नता हुई। उन का मन खिल उठा।

"तुम धन्य हो दुर्योधन ! तुमने अपने भाईयों के लिए जो कुछ सोचा वह तुम्हारी महानता का प्रतीक है"—द्रोण बोले।

दुर्योधन बड़ी कठिनाई से अपने को नियन्त्रित कर पा रहा था, फिर भी अवसर को देख कर उसने अपने को काबू में रखा, परन्तु अन्तिम बात तो उसके कलेजे मे छुरी की भाति चुभ गई। वह अपनी आवाज को संयत करते हुए, परन्तु आवेश मे आकर बोला—"आचार्य जी ! आप को तो न जाने क्या हो जाता है, कभी कभी पाण्डवों की आवश्यकता से अधिक प्रशंसा करके उन्हे पृथ्वी से उठा कर आकाश पर रख देते हैं। मैं युद्ध जीतने के लिए उपाय कर रहा हूं और आप समझ रहे हैं कि मैं युधिष्ठिर के उच्चादर्श के

"किसी भी उपाय से आप युधिष्ठिर को जीवित ही कैद कर के हमे सौंप दे तो वहुत ही अच्छा हो। इस भयकर युद्ध की अन्तेष्टि हो जाये इस से अधिक हम आप से कुछ अधिक नही चाहते।"—दुर्योधन ने कहा।

कर्ण स्वर मे स्वर मिला कर तुरन्त बोल पडा—"इस कार्य को आप यदि सफलता पूर्वक पूरा कर्दें तो फिर काम बन जाये गा। और महाराज दुर्योधन, मैं और हम सभी उनके साथी सन्तुष्ट हो जाये गे और मैं यह जानता हू कि यह काम आप के लिए कठिन नही है।

कर्ण की बात समाप्त होते हो दुःशासन ने कहना आरम्भ कर दिया 'आप की बात पर हम सभी विचार कर ही रहे थे कि तभी हमे शीघ्र ही युद्ध समाप्त कर देने के लिए यह उपाय सूझा है। बस आप इकार न करें। इस काम का तो कर ही डालें। यही हमारी विजय है, जिसका श्रेय आप को हो प्राप्त होगा। बल्कि जो काम पितामह न कर पाये, वह आप के हाथो पूर्ण हो जायेगा।"

आचार्य ने तोनो की बातें सुन कर एक दृष्टि उन के मुख पर डाली और इस विनती का रहस्य उन्होने अपने अपने विचारो के अनुरूप समझा वे युद्ध मे तो अवश्य हो शरीक हो गए थे, पर पाण्डु पुत्रो का मारने के पक्ष में नही थे, बल्कि मन ही मन यह सघर्ष चल रहा था कि धर्मराज युधिष्ठिर को मारना अधर्म तो नहीं है। वे अर्जुन को अपने बेटे से भी अधिक प्यार करते थे, जब उसे अपने विरुद्ध रण मे लडते देखते तो उन का मन चीत्कार कर उठता। वे नहो चाहते थे कि इतने भले व यशस्वी पाण्डवो का बध उनके हाथो हो। अत. दुर्योधन के प्रस्ताव से वे बड़े प्रसन्न हुए।

बोले—'दुर्योधन! क्या तुम्ह री यही इच्छा है कि युधिष्ठिर के प्राणों की रक्षा हो जाये? तुम्हारा कल्याण हो। वास्तव में युधिष्ठिर धर्मराज है, उसका बध होना ठीक है भी नही। और जब तुम ही ने यह समझ लिया कि धर्मराज युधिष्ठिर के प्राण न लिये जाये तो फिर युधिष्ठिर वास्तव मे अजात शत्रु है। लोगों ने 'शत्रु रहित' की जा उसे उपाधि दी है, वह आज सार्थक हुई प्रसन्नता की बात है कि तुम्ही ने उसको सार्थक किया। जब तुम ही उसे

सामने नतमस्तक हो रहा हूं।"

द्रोणाचार्य को दुर्योधन की बात से ठेस लगी। फिर भी अपनी स्थिति कोसमझ कर उन्होने शांत भाव से पूछा—"तो फिर साफ साफ़ बताओ न अपना उद्देश्य।"

"बात यह है आचार्य जी!—दुर्योधन ने आचार्य जी को अपना वास्तविक उद्देश्य बताते हुए कहा—"यदि आप युधिष्ठिर को जीवित पकड लें तो वे हमारे बन्दी हो जायेंगे और इससे पाण्डवों की हार हो जायेगी। फिर युधिष्ठिर हमारे हाथ मे होगा, जो चाहे करेंगे। रण क्षेत्र से तो मामला समाप्त हो जायेगा। घर जाकर देखा जायेगा।"

आचार्य सशक हो उठे। बल्कि जो शंका उनके मन में जागृत हुई उससे सिहर उठे। विस्मित होकर पूछा—"तो क्या इरादा है तुम्हारा! साफ़ साफ बताओ।"

उनकी वाणी में कठोरता आ गई थी कर्ण ने उसे भांप लिया, धीरे से दुर्योधन को कुहनी मारी। दुर्योधन ने सम्भलते हुए कहा—"आप गलत न समझें। हम युधिष्ठिर को बन्दी बनाकर राज्य का थोडा सा भाग पाण्डवों को देने की बात करके सन्धि कर लेंगे। और फिर ..."

द्रोणाचार्य एक दम प्रसन्न हो उठे—उनके भाव बदल गए। तेजी से बोले—"और फिर भाईयो की भांति रहने लगेगे।"

"नही आचार्य जी, आप फिर भ्रम मे पड़ गए—दुर्योधन को कर्ण ने बहुत सकेत किया कि वह उस समय कुछ न कहे, पर वह बिना कहे न रह सका—"युधिष्ठिर तो क्षत्रिय राजाओं की रीति नीति के पालन मे तनिक सो भी भूल नही करते। हम पुनः उन्हे जुए के लिये निमन्त्रित करेंगे।"

"और पुनः राज्य ले लेंगे—बीच ही मे दु.शासन बोल उठा—इस युद्ध से पाण्डवों को भी यह प्रतीत हो ही गया होगा कि युद्ध के द्वारा राज्य ले लेना दुर्लभ है, अत. पुनः वे युद्ध के लिए तैयार न होगे। और राज्य हमारा ही रहेगा।"

"क्या मैं पूछ सकता हूं कि इस कुचक्र के रचने की आवश्यकता क्यों अनुभव हुई?"—द्रोणाचार्य ने पूछा। उस समय उनका

मुनाकर बोले—"वीर सैनिको ! आज का युद्ध बाज और मैंना का युद्ध है। हमें अपने महाराज की रक्षा द्रोणाचार्य रूपी बाज से करनी है। आज हमें शत्रु को पराजित करने के लिए नहीं वरन आत्म रक्षा धर्मराज की रक्षा के निमित्त युद्ध करना है। हमे शत्रु के षडयन्त्र को विफल करना है। इस लिए अपने सर्वस्व की बाज़ी लगाकर भी महाराज को बचाना है। आप सब आज आक्रमणी न होकर धर्मराज के अंग रक्षक हैं। विजय हमारी होगी।"

समस्त सैनिकों ने मिलकर धर्मराज की जय जयकार की। महारथियो ने सेनापति के आदेश का स्वागत करने के लिए शख नाद किए। हाथी चिंघाड़ उठे और अश्वों ने हिनहिना कर अपना उत्साह प्रदर्शित किया।

दूसरी ओर—

सेनापति द्रोणाचार्य के शख नाद को सुनकर कर्ण ने अपना शख बजाया और अन्य कौरव वीरो ने उसके शख नाद के उत्तर मे अपने अपने शख बजाये समस्त कौरव वीरो ने एक बार "महाराज दुर्योधन की जय" के नादो से आकाश गुंजा दिया। सेनापति के आदेश पर रण के बाजे बज उठे और कौरव सेना व्यूह के रूप में आगे बढी। द्रोणाचार्य आज अपने वचन की पूर्ति के लिए मन ही मन योजना बना रहे थे। ज्यों ही दोनों सेनाओं में मुकाबला आरम्भ हुआ, विकट गाडियों ने आग उगलनी आरम्भ कर दी। और पदाति से पदाति, रथी से रथी, अश्वारोही से अश्वारोही तथा गजारोही से गजारोही जूझने लगे तलवारो की खनखन, धनुषों की टकार, हाथियो की भीषण चिंघाड़, मारकाट, गदाओं के परस्पर टकराव और रथो के दौड़ने से ऐसा भीषण ध्वनि हो रही थी कि कान फटे जाते थे। प्रत्येक अपनी अपनी रक्षा और अपने अपने मुकाबले के शत्रु को परास्त करने के लिए प्रयत्नशील था, फिर भी पाण्डवो की सेना को महाराज युधिष्टिर का विशेष रूप से ध्यान था जैसे पुष्प कॉंटो से रक्षित होता है, उसी प्रकार धर्मराज विराट सेना से रक्षित थे।

युद्ध का ग्यारहवां दिन था और आज कौरवो की ओर से मुख्य योद्धा थे द्रोणाचार्य। वे जिधर से निकलते सैनिको के जमघट का काई की भाति साफ करते चले जाते। जैसे अग्नि सूखे वन को

* चौवालीसवां परिच्छेद *

युधिष्ठिर को जीवत पकड़ने की चेष्टा

द्रोणाचार्य ने जान बूझ कर अपनी सेना की व्यूह रचना इस प्रकार की कि वे अन्य कौरव पक्षीय वीरों को एक एक पाण्डव महारथी के सामने छोड़ते हुए स्वयं युधिष्ठिर को पकड़ने जा सकें और अर्जुन आदि अन्य पाण्डव वीर कौरव-वीरों से उलझ कर रह जाय। युधिष्ठिर उनके पंजे मे आ जायें। उस दिन जब द्रोणाचार्य को कौरव वीरो ने सेनापति के रूप मे देखा तो उत्साह पूर्वक उनका अभिनन्दन किया और कर्ण को उनके साथ देखकर तो सैनिक कहने लगे—"अब पाण्डवों की पराजय निश्चित है। पितामह तो पाण्डवों से स्नेह रखते थे अतः वे स्वयं ही अर्जुन के सामने निष्क्रिय होकर खड़े रहे और मारे गए, पर कर्ण तो किसी को रियायत नहीं करने वाला।" कौरव पक्षीय वीरो ने कर्ण के स्वागत मे बार बार शंख नाद किए और द्रोणाचार्य के अभिनन्दन मे जय जयकार की।

उधर चूंकि पाण्डवों को दुर्योधन की योजना ज्ञात हो गई थी इस लिए धृष्टद्युम्न ने पाण्डव पक्षीय सेना की व्यूह रचना इस प्रकार की कि सारी सेना एक प्रकार से महाराज युधिष्ठिर की रक्षा मे हो गई।

सूर्य का रथ आकाश पथ पर बढ़ रहा था। किरणें ताप वर्षा करने लगी और पाण्डवों के सेनापति धृष्टद्युम्न ने अपना शंख बजाया। समस्त शूरवीर सेनापति की ओर किसी आदेश के सुनने की इच्छा से देखने लगे। सबका ध्यान उसी ओर आकर्षित होगया।

सेनापति एक हाथी पर खड़े हो गए और समस्त सेना को

प्रभाव ने दोनों तलवारें ऐसी चमक रही थी मानो तड़ित् रेखा आकाश के बजाये पृथ्वी पर आकर बार बार चमक रही हो।

शल्य ने अपने भानजे नकुल को अपने मुकाबले पर आते देख कर कहा—"नकुल, मैं नहीं चाहता कि तुम्हारा बध मेरे हाथों हो। मरना ही है तो यह सेवा किसी और कौरव वीर से जाकर लो।"

नकुल को मामा की बात बड़ी कड़वी लगी, गरज कर बोला—"मुझे लगता है कि आप को अपने भांजे के हाथों ही अपनी मुक्ति करानी है, अब आपका मस्तिष्क फिर गया है। मरते हुए लोगों की आखें फिरती हैं पर आपका मस्तिष्क भी फिर गया है, इसलिए सिंह को ठोकर मार कर जगा रहे हो।"

शल्य को बडा क्रोध आया, कहा—"रे मूर्ख ! मुझे क्रोध दिला कर अपनी मृत्यु को निमन्त्रित कर रहा है। तो ले अपने कर्मों का फल भोग।"

—और भीषण बाण वर्षा करदी। बाणो से अधिक चोट लगी नकुल को मामा के शब्दो से उसने दांत भीच कर ऐसे तीक्ष्ण बाण चलाए कि मामा के रथ की ध्वजा धूल मे आ रही, रथ की छतरी घोड़ों के पैरो मे लुढकने लगा और शल्य का रथ टूट फूट गया। मामा बड़े चिन्तित हुए। वे हतप्रभ होकर कुछ करने की सोच ही रहे थे, कि नकुल ने विजय का शख बजा दिया, शल्य हाथ मलते रह गए।

कृपाचार्य का पाला पड़ा धृष्टकेतु से। दोनो मे भीषण युद्ध हुआ, पर कृपाचार्य के सामने धृष्टकेतु अधिक देरि न ठहर सका। सात्यकि और कृतवर्मा तो दो भयानक जगली पशुओ की भाति एक दूसरे पर झपट रहे थे। और उधर विराट राज कर्ण से भिड़े थे। कर्ण को तो अपने पौरुष व रणकौशल पर अभिमान था, पर विराट राज के मुकाबले पर आकर उसे ज्ञात हो गया कि किसी वीर योद्धा को रण भूमि मे आकर परास्त करना हसी खेल नही है।

अभिमन्यु अर्जुन का ही दूसरा रूप है। वह जिधर जाता है, अर्जुन की भाति अपना पराक्रम दिखा कर शत्रुओ को चकित कर देता है। बल्कि युद्ध के दस दिन में ही उसका इतना दब दबा बैठ गया है कि जब कौरव सैनिक उस बालक के रथ को आते देखते हैं तो चीख चीख कर कहने लगते हैं—"अरे अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु आ

जलाती हुई फैलती है, ठीक उसी प्रकार पाण्डव सेना को भस्म करते हुए आचार्य द्रोण चक्कर काट रहे थे। उनके बाण जिस भाग पर पड जाते, वही त्राहिमान त्राहिमान करता हुआ, यमलोक सिधार जाता। कितने ही रथ खाली हो गए और अश्व बिना सवार के अनाथ की भांति भयभीत होकर भागने लगे। ऐसा भयंकर सग्राम हो रहा था कि किसी को यह भी पता नही चल रहा था कि द्रोण है किस मोरचे पर। वे विद्युत गति से अपना स्थान बदल रहे थे; कभी इस ओर तो कभी उस ओर, कभी इस दिशा मे मारकाट मचाई तो कभी दूसरी दिशा मे जहा देखो द्रोण ही द्रोण दिखाई देते। पाण्डव सैनिकों को भ्रम होने लगा कि कहीं द्रोण अनेक शरीर तो धारण करके नही आ गए।

धृष्टद्युम्न जिस मोरचे पर था, उस पर कौरव महारथियों ने मिलकर आक्रमण कर दिया। और सग्राम होने लगा और द्रोण तथा कर्ण के भीषण रूप धारण करके पाण्डव सेना पर यमराज की भांति टूट पड़ने से प्रोत्साहित होकर कौरव महारथी भीषण मारकाट मचाने लगे। जैसे उन्हें आशा हो कि वे अब हुए विजयी। कुछ ही देरि बाद पाण्डवों का व्यूह उस मोरचे पर टूट गया और पाण्डव तथा कौरव वीरों के बीच द्वन्द्व युद्ध छिड़ गया। माया युद्ध में निपुण शकुनि सहदेव से युद्ध करने लगा भयंकर दानव के रूप मे शकुनि टूट कर पडा पर सहदेव ने भी कच्ची गोलियां नही खेली थी। उसने ईंट का जवाब पत्थर से दिया। शकुनि के माथे पर पसीना छलक आया और सहदेव की आंखें चमकने लगी। तब शकुनि को सन्देह हुआ कि कहीं सहदेव विजय तो नहीं हो जायेगा, उसने सम्पूर्ण साहस बटोर कर आक्रमण किया और दोनों बुरी तरह जूझने लगे। इस भयंकर युद्ध मे दोनों के रथ टूट गए। तब दोनों वीर अपने अपने रथो से गदा लेकर कूद पडे। दोनों की भारी गदाएं टकराने लगी। ऐसी भीषण ध्वनि होती थी मानो दो पहाड़ सप्राण होकर आपस में टकरा रहे हो।

इधर भीमसेन और विविंशति आपस मे टकरा रहे थे। भीमसेन ने बाणों की मार से विविंशति के रथ की ध्वजा गिरा दी, फिर सारथि को मार डाला। कुपित होकर विविंशति ने भी भीम को खूब छकाया, कुछ ही देरि मे दोनों के रथ टूट गए और वे तलवार व ढाल सम्भाल कर नीचे उतर आये। सूर्य किरणों के

उनके निकट पहुंच गए। धृष्ट द्युम्न ने द्रोण को रोकने की हजार चेष्टा की पर किसी प्रकार भी द्रोण को न रोक पाये। उनका प्रचंड वेग किसी के रोके नही रुकता था।

कौरव पक्षीय वीरो ने द्रोण को युधिष्ठिर के निकट पहुंचते हुए देखकर ही शोर मचा दिया—"युधिष्ठिर पकड़े गए, युधिष्ठिर पकड़े गए।"

इस आवाज से सारा कुरुक्षेत्र गूंज उठा। भागते हुए कौरव सैनिक रुक गए। पाण्डव वीरो की गति मन्द पड़ गई। भीमसेन की भुजाएं शिथिल सी पड़ गईं।

इतने ही में अनायास ही अर्जुन उधर आ पहुंचा। द्रोणाचार्य द्वारा बहाई रक्त की नदी को पार करता, हड्डियों और शवो के ढेरों को लांघता और तीव्र गति से पृथ्वी को कपाता हुआ अर्जुन का रथ वहां आ खड़ा हुआ। श्री कृष्ण ने ललकारा—"देखते क्या हो धनंजय। चलाओ बाण। द्रोण तुम्हारे गुरु नही इस समय मुख्य शत्रु हैं।"

द्रोण देखते ही तनिक देरि के लिए तो सन्न रह गए। श्री कृष्ण की ललकार सुनकर अर्जुन ने आवेश में आकर जो गाण्डीव धनुष से बाणो की वर्षा आरम्भ की है, तो देखते ही देखते बाणों की बौछार हो गई। इतनी तीव्र गति से बाण चल रहे थे कि यह पता ही नहीं चलता था कि अर्जुन कब तीर चढ़ाता है, और कब छोड़ देता है। बाणो के मारे द्रोण के आगे अंधेरा सा छा गया। उसी समय अर्जुन ने एक ऐसा अस्त्र प्रयोग किया कि जिसके छूटते ही चारो ओर धुए और अंधकार का बादल सा फैल गया, द्रोणाचार्य अपने शिष्य के इस भीषण आक्रमण के मारे पीछे हट गए।

अर्जुन आगे बढ़ता रहा, तभी द्रोण की रक्षा के लिए कई कौरव महारथी आ डटे। अर्जुन सभी को एक साथ हटाता रहा। उस सेवा दिन समाप्त होने वाला था पश्चिम दिशा में लाली फैल रही थी, सूर्य किरणें पृथ्वी से विदा ले रही थी और अर्जुन के बाणों के आगे कौरव वीर पीछे हटने पर विवश थे, बल्कि बार बार आकाश की ओर देखने थे।

द्रोण ने युद्ध की समाप्ति का बिगुल बजवा दिया। और पाण्डवों ने विजय के बाजे बजाने आरम्भ कर दिए। कौरव सेना पर भय छा गया। परन्तु पाण्डव पक्षीय सैनिक बड़ी शान से अपने अपने शिविर को लौट चले। सब से पीछे थे कृष्ण और अर्जुन।

गया, सावधान, सावधान।"

जब ऐसी आवाजें अर्जुन के कान में पड़ती हैं तो उसे अपने पुत्र पर गर्व होने लगता है। परन्तु अभिमन्यु अपने बाणों से प्रलय मचाता हुआ चीखते हुए कौरव सैनिकों को खदेड़ देता है। उसने अकेले ही पौरव, कृतवर्मा जयद्रथ, शल्य आदि चार महारथियों का मुकाबला किया। और चारो महारथियों के डट कर मुकाबला करने पर भी अभिमन्यु ने उन्हें परास्त कर दिया।

इसके बाद भीम और शल्य के बीच गदायुद्ध छिड़ गया भीमसेन जब भीषण सिंहनाद करके झपटता तो दूर खड़े कौरव सैनिकों का दिल कांप जाता शल्य ने कितनी ही देर तक भीमसेन की गदा का मुकाबला किया। जब सूर्य सिर पर आ गया और आकाश से अग्नि बाण बरसाने लगे, शल्य पसीने से तरबतर होकर हांपने लगा, पर भीमसेन वार पर वार किए जा रहा था। अन्त में शल्य का साहस जाता रहा और उसे रण क्षेत्र छोड़ते ही बना।

शल्य को रण क्षेत्र से भागते देख और भीमसेन को पीछा करते हुए कौरव सैनिक पर वज्र की भांति टूटते देख कर कौरव सैना में खलबली मच गई। सैनिको का साहस डगमगाने लगा। 'भागो, भागो' की ध्वनि गूंज उठी। और कौरव सैनिक भीमसेन की गदा से बचने के लिए पीठ दिखा कर भागने लगे।

द्रोण ने यह देखा तो सैनिकों का साहस बढ़ाने के लिए उन्हों ने अपने सारथि को आदेश दिया— 'मेरा रथ तीव्र गति से उस ओर ले चलो जहां युधिष्टिर है"

द्रोण के रथ में सिन्धु देश के चार फुर्तीले और सुन्दर घोड़े जुते थे, सारथि ने चाबुक मारी और घोड़े कितने ही सैनिकों को कुचलते, तीव्र गति से युधिष्टिर की ओर बढ़ने लगे, घोड़े हवा से बातें कर रहे थे इतनी तीव्र गति से द्रोण के रथ को अपनी ओर आते देख कर युधिष्टिर ने बाज के पर लगे हुए तीक्ष्ण बाणों की वर्षा उस ओर आरम्भ करदी, ताकि द्रोण की गति अवरुद्ध हो सके! परन्तु बाणों की वर्षा भी द्रोण की गति को न रोक पाई। उन्होंने क्रुद्ध होकर युधिष्टिर के बाणों के उत्तर में ऐसे बाण चलाए कि युधिष्टिर को आत्म रक्षा कर सकना दुर्लभ हो गया। एक बाण ऐसा लगा कि धर्मराज का धनुष टूट गया। युधिष्टिर सम्भले और दूसरा धनुष लेकर युद्ध करें, इस से पहले ही द्रोणाचार्य बड़े वेग से

जाये कि वह अवकाश न ग्रहण कर सके मेरे निकट पहुंचने का, तो युधिष्ठिर को बन्दी बनाया जा सकता है।' इतनी बडी योजना बनाई है तो ऐसी भी योजना बनाओ कि अर्जुन का मुझ से मुकाबला हो और वह युधिष्ठिर की रक्षा को आ ही न सके।"

भला ऐसा उपाय क्या हो सकता है ? मेरी समझ में तो नही आता।"

"यदि कुछ वीर अपने प्राणों की आहुति देने को तैयार हो जायं तो यह भी सम्भव है।"

"जानबूझ कर प्राण खोने को भला कौन तैयार होगा ?"

"कुछ भी हो जब तक कुछ वीर संशप्तक व्रत धारण कर के अर्जुन को युद्ध के लिए नहीं ललकारेंगे, और अपने प्राणों का मोह छोड कर यमलोक जाने की तैयारी करके अर्जुन के मुकाबले पर नहीं जायेंगे तब तक काम न चलेगा"—द्रोणाचार्य ने सोचकर बताया।

'ऐसे वीर कौन हो सकते हैं ? आप ही बताएं।"

दुर्योधन के प्रश्न पर अभी द्रोणाचार्य विचार कर ही रहे थे कि सुशर्मा वहां से उठ गया। विचार मग्न द्रोण तथा दुर्योधन को इस का आभास भी न हुआ।

कुछ देरि तक दुर्योधन तथा द्रोणाचार्य में विचार विमर्श होता रहा, पर उन्होंने संशप्तक-व्रत धारन करके युद्ध करने के लिए तैयार हो सकने वाले वीरों को न खोज पाये।

रात्रि यौवन की ड्योढी पर पग रखने वाली थी, दिन भर युद्ध करने के कारण सभी थके हुए थे फिर भी द्रोण तथा दुर्योधन को नींद कहा, वे तो युद्ध की योजना बनाने और अपनी योजना की सफलता का उपाय खोजने में तल्लीन थे।

सुशर्मा ने कुछ देरि बाद शिविर मे पग रखा। सुशर्मा बाहर से आते देखकर कदाचित तब द्रोण को मान हुआ कि सुशर्मा बिना कुछ कहे सुने ही वहा से चला गया था।

सुशर्मा ने विनीत भाव से कहा।—"गुरु देव ! आपको चिन्तित रहने की आवश्यकता नहीं। मैंने आपकी समस्या हल कर दी है। मेरे देश के वीर संशप्तक-व्रत धारण करके कल अर्जुन

* पैंतालीसवां परिच्छेद *
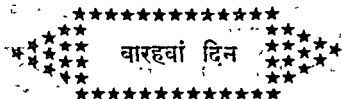
बारहवां दिन

ग्यारहवें दिन का युद्ध समाप्त करके लौटे तो रण बाण उतार कर, कुछ खा पी कर दुर्योधन सीधा द्रोणाचार्य के शिविर में पहुंचा। पीछे पीछे भिगर्त नरेश सुशर्मा भी पहुंच गया। दुर्योधन का मुंह लटका हुआ था, वह चिन्ता मग्न था। उस के मनोभाव को पढ़ कर द्रोणाचार्य बोले—"मैं जानता हूं तुम चिन्तित और दुखित हो क्यों कि मैं अपना वचन पूर्ण न कर सका। परन्तु इसका कारण है धनंजय श्री कृष्ण जिस के सारथि हैं, उस के सामने आने पर युधिष्ठिर को पकड़ पाना दुर्लभ है। इस बात को भी तुम समझ लो।"

"परन्तु आचार्य जी! बिना युधिष्ठिर को बन्दी बनाए हमारी विजय असम्भव है।" साफ जाहिर था कि उस दिन के युद्ध से दुर्योधन का मनोबल बहुत टूट गया था। उस के शब्द उसके विचार को प्रगट कर रहे थे।

द्रोण बोले—"तुम्हारी योजना की पूर्ति के लिए मनोबल का सशक्त होना आवश्यक है। अधीर क्यों होते हो।"

"आचार्य! ग्यारह दिन में मैं ने जो खोया है, उसे देखकर मैं सिहर उठता हूं। अब सान्त्वना तथा धैर्य बन्धाने से काम न चलेगा।" दुर्योधन ने अपने मनोदशा प्रगट करते हुए कहा। "बस, एक ही उपाय है—गम्भीरता पूर्वक द्रोण कहने लगे—यदि किसी प्रकार अर्जुन को कहीं उलझा दिया जाय। उलझाया भी ऐसा

क्षमा याचना करने के उपरान्त शपथ ली कि हम लोग युद्ध में धनंजय का वध किए बिना नहीं लौटेंगे। यदि भय के कारण पीठ दिखाकर भाग आये तो हमें महापाप का दोष प्राप्त हो। हम प्राणों तक का उत्सर्ग करने को प्रस्तुत रहेंगे।

शपथ लेने के पश्चात् वे संशप्तकों ने दान-पुण्य किए। अपने गुरुओं, बन्धु बाधवों को अन्तिम प्रणाम किया और अस्त्र शस्त्र सम्भाल कर तैयार हो गए।

दोनों ओर की सेनाएं सज गई। रण क्षेत्र में जाने से पूर्व दोनों ओर के सैनिक एक दूसरे से बन्धुओं की भांति मिलते जुलते थे, घायलों की खबर लेते थे। इसी प्रकार दोनों ओर के वीर परस्पर मिले और जब युद्ध का समय हो गया, सेनापतियों ने रण क्षेत्र की ओर जाने के लिए अपना शंख बजाया, दोनों ओर के सैनिक अपनी अपनी सेना मे आकर अपने अपने स्थान पर खडे हो गए। सेनापतियो ने उस दिन के युद्ध के लिए आवश्यक सूचनाएं तथा हिदायतें दी और फिर दोनों सेनाएं रण क्षेत्र की ओर चल दी।

सूर्य एक बांस ऊपर चढ चुका था, दोनो ओर से व्यूह रचना हो चुकी थी। तभी कौरवों की ओर से त्रिगर्तराज की सशप्तकों की टोली ने पुकार पुकार कर अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा। इस टोली को आत्मघाती सैनिक टोली भी कहा जा सकता है। इस प्रकार की सैनिक टोलियों का आजकल भी रिवाज है। कि सेना की कोई विशेष टुकडी किसी मुख्य कार्य को पूर्ण करने की शपथ लेकर जाती है और कार्य पूर्ण किए बिना नही लौटती।

इसी प्रकार की थी वह भी त्रिगर्त्त देश की सेना, जिसकी ललकार को सुनकर अर्जुन तडप गया। उन दिनो क्षत्रियो में यह प्रथा थी कि यदि रण क्षेत्र में किसी विशेष व्यक्ति को युद्ध की चुनौती दी जाती है तो वह बिना किसी का बहाना किए ही युद्ध करने के लिए आ डटता। उसी रीति के अनुसार जब अर्जुन ने एक विशेष सैन्य-दल को, जो सशप्तको के वेश मे था, युद्ध की चुनौती देते हुए देखा, तो युधिष्ठिर के पास जाकर बोला—"राजन्! देखिए वे लोग सशप्तक व्रत लेकर मुझे ललकार रहे हैं। आप तो जानते ही हैं कि मेरी प्रतिज्ञा है कि यदि कोई मुझे, युद्ध के लिए ललकारेगा

को युद्ध के लिए ललकारेंगे और आत्म आहुति देकर भी उस का वध करेंगे। अब आप निश्चिंत होकर युधिष्ठर को बन्दी बनाने की बात सोचें।"

सुशर्मा की बात सुनकर दुर्योधन एक दम प्रसन्न हो उठा। उसे अपार हर्ष हुआ। उसने आत्म सन्तोष के लिए पूछा—"क्या सच ?"

"हां, राजन ! मैं आपकी ओर से युद्ध करने के लिए आया हूं, अपने वीर साथियों अथवा अपने प्राणों की रक्षा करने नहीं। मैंने आप दोनों को चिन्ता मग्न देखा, और जाकर अपने भाईयों से मंत्रणा की। मुझे प्रसन्नता है कि ऐसे वीर शूरों की एक टोली मैंने तैयार कर ली है, जो आपकी आज्ञा मिलते ही संशप्तक-व्रत की दीक्षा ग्रहण करलेगी।" सुशर्मा ने उल्लास पूर्वक कहा। उसे बहुत सन्तोष था कि वह दुर्योधन के प्रति अपनी वफ़ादारी को सिद्ध कर पा रहा है। बल्कि वह ऐसे कार्य को सम्पन्न कर रहा है, जिसे पूर्ण करने के लिए कोई मिला ही नहीं।

द्रोणाचार्य को कोई प्रसन्नता हुई या नहीं यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वे उसी प्रकार शांत बठे रहे, अपनी ओर से कुछ कहना आवश्यक जानकर वे बोले—"त्रिगर्त्त नरेश ! तुम अपनी उस सैनिक टोली को संशप्तक-व्रत की दीक्षा दिलाओ। मरणसन्न पर पड़े लोगों के लिए जो दान-पुण्य आदि आवश्यक समझे जाते हैं, वे सभी सम्पन्न कराओ। प्रात: उस टोली को अपने प्राणों का मोह छोड़ कर अर्जुन के सामने जाना है।"

दुर्योधन को लक्ष्य करके उन्हों ने कहा—"बेटा ! रात्रि बहुत जा चुकी, अब आराम करो। कल फिर मैं अपने वचन को पूर्ण करने का भागीरथ प्रयत्न करूंगा।"

× × + × × × ×

ज्यों ही पूर्व क्षितिज की माग सिन्दूरी हुई। एक भारी सेना ने संशप्तक-व्रत की दीक्षा ली। सब ने घास के बने वस्त्र धारण किए। जिन भाषित धर्म के अनुसार उन्होंने प्रभु वन्दना की और फिर सांसारिक मोह तथा परिग्रह-आदि का त्याग करके, सभी से

दिखाकर इनका नशा तो चूर कर दो।"

इधर पाण्डव तथा कौरव सेनाएं एक दूसरे को परास्त करने के लिए भीषण संग्राम कर रही थी और उधर अर्जुन ने त्रिगर्त देशवासी सैनिकों पर इतना भयकर आक्रमण किया कि देखते ही देखते उनके सिर पर चढ़ा, प्रत का भूत हवा हो गया। अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों से त्रिगर्तों का सारा उत्साह भंग हो गया। एक बार जो अर्जुन ने अग्नि बाण मारा और उसकी लपटे जो विषैले विषधरों की लपलपाती जिव्हाओं की भांति लपलपाई, त्रिगर्त देशीय सशप्तक विचलित हो गए। सभी के मुह पर घबराहट नृत्य कर गई। अपने सैनिकों को भयभीत देखकर सुशर्मा ने ललकारा—

"शूरवीरो! याद रखो। तुम ने क्षत्रियों की भरी सभा में शपथ खाकर व्रत धारण किया है। घोर प्रतिज्ञा कर चुकने और प्राणो का मोह त्याग चुकने के बाद भय-विह्वल होना तुम्हें शोभा नही देता। तुम कही मैदान से यू ही वापिस चले गए, तो लोग तुम्हारी हसी उडायेंगे। कोई तुम्हें पास भी न बैठायेगा। डरो नही। आगे बढो। तुम इतनी बडी सख्या में हो और शत्रु अकेला है। आगे बढ़ो और प्राणो की बलि चढ़ा दो। या शत्रु का वध कर डालो। अरे यदि तुम अर्जुन को बांटने बैठो तो एक एक बोटी भी एक एक के भाग मे न पड़े।"

यह कहकर सुशर्मा ने शख नाद किया, फिर सैनिक भी एक दूसरे को प्रोत्साहित करने लगे। कितने ही शख एक साथ बज उठे और फिर भयानक युद्ध आरम्भ हो गया।

दोनों ओर से बाण वर्षा होती रही, पर त्रिगर्त नरेश के सशप्तक सैनिक हटे नहीं, तब अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा—"मधुसूदन! लगता है सुशर्मा की चेतावनी नव स्फूर्ति प्रदान करने मे सफल हो गई। अब जब तक इनके तन में प्राण हैं यह हटेंगे नहीं, इस लिए आप भी तनिक उत्साह में आ जाईये। हमें झिझकना नही है, इन्हें यमलोक पहुंचाना ही होगा।"

श्री कृष्ण पूर्ण कुशलता से रथ चलाने लगे। उस समय उन्हों ने ऐसी अद्भुत कुशलता का परिचय दिया कि शत्रु भी दांतों तले उगली दबाते रह गए और अर्जुन के गाण्डीव का कमाल तो देखने

तो मैं उस से युद्ध अवश्य करूंगा। वह देखिये, सुशर्मा और उसके साथी आज मुझे ही युद्ध की चुनौती दे रहे हैं। इसलिए मैं तो जा रहा हूं और उनका विनाश करके ही लौटूंगा। आप मुझे इसकी आज्ञा दीजिए।"

युधिष्ठिर ने सारी परिस्थिति पर विचार किया और बोले—"बडी विकट समस्या आ गई है। मेरी आज्ञा की बात जाने दो। तुम्हे दुर्योधन का इरादा मालूम ही है। द्रोणाचार्य का वचन भी ज्ञात है और यह भी जानते हो कि द्रोणाचार्य बड़े बली हैं, शूर हैं, कष्ट-सहिष्णु, शस्त्र विद्या में पारंगत, बुद्धिमान और पराक्रमी है और अपने वचन की पूर्ति के लिए हर सम्भव उपाय अपना सकते हैं। उनके प्रण और उनकी सामर्थ्य को ध्यान मे रखते हुए तथा शत्रु की चाल को समझ कर अपनी मर्यादा का ध्यान रखकर जो तुम उचित समझते हो करो।"

अर्जुन भी सोच में पड़ गया, तभी त्रिगर्त देश के वीरों ने ललकारा—"अर्जुन! कहां छुप गया है। यदि वह जीवित है तो आये और हम से लोहा ले। हम या तो उसका बध कर देंगे अथवा अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देंगे। अन्य किसी दशा में नही लौटेंगे।" अर्जुन यह सुनकर उद्विग्न हो गया। बोला—"राजन्! वह देखो फिर शत्रुओ ने मुझे ललकारा। मुझे जाना ही होगा। आपकी रक्षा पांचाल राज पुत्र सत्याजित करेंगे। जब तक वे जीवित रहेगे तब तक आप पर किसी प्रकार का सकट नही आ सकता।"

सत्यजित को बुलाकर अर्जुन ने कहा—"मैं आपने महाराज को तुम्हे सौंपता हू। मेरी ही तरह उनकी रक्षा करना और शत्रु तुम्हारे शव पर ही उतरकर हम तक जा सके। बस यही मैं चाहता हू।"

सत्यजित ने विश्वास दिलाया कि प्राणों की आहुति देकर भी वह युधिष्ठर की रक्षा करेगा।

और अर्जुन संशप्तको की ओर ऐसे लपका जैसे भूखा शेर शिकार पर लपकता है। श्री कृष्ण अर्जुन से कह रहे थे—"धनंजय। यह सब तुम्हारे ही बाणों की प्रतीक्षा में खड़े हैं। प्राणों के भय के कारण तो उन्हें रोना चाहिए था, पर व्रत के नशे में यह बड़े उत्साह तथा उल्लास के साथ खड़े हैं। तनिक इन्हें अपना रण कौशल

—और एक विशाल सेना लेकर, द्रोण के पास आने की प्रतीक्षा किए बिना ही, धृष्ट द्युम्न आगे बढ़ा बीच ही में जाकर वह उन्हें घेर लेना चाहता था। जब द्रोणाचार्य ने विशाल सेना सहित धृष्ट द्युम्न को अपनी ओर आते देखा तो उन्हें द्रुपद राज की प्रतिज्ञा और तपस्या तुरन्त याद आ गई, जो उनकी विस्मृति के गर्भ में सुरक्षित थी। उसी समय उन्हें पितामह की मृत्यु और शिखन्डी की याद आई। उनका मन कह उठा—"शिखण्डी का जन्म पितामह के वध के लिए हुआ, वह सार्थक हो गया, और धृष्ट द्युम्न मेरी मृत्यु का कारण बनेगा, यह बात भी सत्य ही सिद्ध होगी।" इतना मन में आना था कि वे धृष्टद्युम्न के तेजमयी मुख को देख कर सिहर उठे। उन्हें वह साक्षात यमदूत प्रतीत हुआ। और शीघ्रता से उन्होंने अपने रथ का रुख द्रुपद की ओर घुमवा दिया।

द्रुपद द्रोणाचार्य से भिड़ गये। भयंकर युद्ध होने लगा। क्षण भर में ही रक्त धारा बह निकली। दोनों ओर से सैनिक 'आह' करके गिरने लगे। तनिक तनिक देर बाद महमाती जीवन ज्योतियां बुझ जाती। शवों के ढेर लग गए। वे सुन्दर युवा शरीर जो किसी परिवार के रक्षक थे, रथों के नीचे, घोड़े और हाथियों के पैरों में कुचल जाते। पर दो सिंह, द्रोण तथा द्रुपद उसी प्रकार डटे हुए थे। फिर द्रोण ने अपना रथ पुनः युधिष्ठिर की ओर बढ़वा दिया।

आचार्य को अपनी ओर आते देख कर युधिष्ठिर अविचलित भाव से गुरुदेव पर बाण वर्षा करने लगे। पहले तीन बाण जा कर आचार्य के चरणों में गिरे और फिर दूसरे बाण उन को क्षति पहुंचाने लगे। पर आचार्य के बाणों की भी झड़ी लग गई। यह देख कर सत्यजित द्रोणाचार्य पर टूट पड़ा। भयानक युद्ध छिड़ गया। उस समय द्रोण साक्षात काल का रूप ग्रहण कर गए। उनके बाण पाण्डव पक्षीय वीर सैनिकों के प्राण हरने लगे। पांचाल राज कुमार वृक के प्राण उन के बाणों ने हर लिए और सत्यजित का भी वही हाल हुआ।

यह देख कुपित होकर विराट पुत्र शतानीक द्रोण पर झपटा। पर दूसरे ही क्षण शतानीक का कुण्डलों वाला सिर युद्ध-भूमि पर लुढ़कने लगा। इसी बीच केतुम नामक राजा द्रोणाचार्य के सामने आया, उसने भीषण बाण वर्षा आरम्भ की, पर इस से पूर्व कि वह

ही लायक था उस ने पूर्ण चतुराई का परिचय दिया। अर्जुन विद्युत गति से अपने स्थान बदल लेता था, जल्दी ही बाणों का रुख बदल जाता और प्रत्येक संशप्तक को अर्जुन अपने ही सामने प्रतीत होता। घोर सग्राम हो रहा था, एक बार क्रुद्ध होकर संशप्तको ने इतनी घोर बाण वर्षा की कि अर्जुन का रथ बाणो से ढक गया, उस समय श्री कृष्ण ने कहा—"अर्जुन ! कुशल तो है ?"

अर्जुन श्री कृष्ण की बात समझ गया और 'हा' कह कर भिगर्त्तों के बाणों से छाये अंधकार मे ही गाण्डीव से एक ऐसा अद्भुत बाण मारा कि भिगर्त्तों की बाण वर्षा बिल्कुल ऐसे ही हवा में उड गई जैसे आंधी से मेघखण्ड।

उस समय रणभूमि का दृश्य इतना भयानक था मानो प्रलय के समय सदृश की नृत्य भूमि का दृश्य हो। सारे क्षत्र मे जहा तक दृष्टि जाती, सिर विहीन धड़, भुजा विहीन धड, टूटे हाथ पैर, कटे सिर आदि ही दिखाई देते। स्थान स्थान पर मास पिंड और रक्त की धाराएं सी बहती दिखाई देती।

× × × × ×

ज्यो ही अर्जुन भिगर्त्त देशीय संशप्तकों से युद्ध करने के लिए गया, द्रोणाचार्य ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि पाण्डवो के व्यूह पर उस ओर आक्रमण करो जिहा पर युधिष्ठिर की पताका लहरा रही है। आज्ञा पाने की देरि थी कि सेना ने उसी ओर अभियान कर दिया।

द्रोणाचार्य को एक विशाल सेना सहित अपनी ओर आते देख युधिष्ठिर उनका मन्तव्य समझ गए, और उन्होने धृष्ट द्युम्न को सचेत करते हुए कहा—"वह देखो ब्राह्मण वीर आचार्य द्रोण अपने वचन की पूर्ति के लिए मेरी ओर आ रहे हैं। ऐसा न हो कि अर्जुन के दूसरो ओर होने का लाभ वे उठा जाय। शीघ्र ही उनकी प्रगति रोकने का प्रयत्न करो।"

धृष्ट द्युम्न ने कहा—"आप निश्चित रहिए। मैं द्रोण को आप के पास तक पहुचने का अवसर ही न दूगा।"

—और एक विशाल सेना लेकर, द्रोण के पास आने की प्रतीक्षा किए बिना ही, धृष्ट द्युम्न आगे बढा बीच ही में जाकर वह उन्हें घेर लेना चाहता था। जब द्रोणाचार्य ने विशाल सेना सहित धृष्ट द्युम्न को अपनी ओर आते देखा तो उन्हें द्रुपद राज की प्रतिज्ञा और तपस्या तुरन्त याद आ गई, जो उनकी विस्मृति के गर्भ मे सुरक्षित थी। उसी समय उन्हें पितामह की मृत्यु और शिखन्डी की याद आई। उनका मन कह उठा—"शिखण्डी का जन्म पितामह के बध के लिए हुआ, वह सार्थक हो गया, और धृष्ट द्युम्न मेरी मृत्यु का कारण बनेगा, यह बात भी सत्य ही सिद्ध होगी।" इतना मन में आना था कि वे धृष्टद्युम्न के तेजमयी मुख को देख कर सिहर उठे। उन्हे वह साक्षात यमदूत प्रतीत हुआ। ,और शीघ्रता से उन्होने अपने रथ का रुख द्रुपद की ओर घुमवा दिया।

द्रुपद द्रोणाचार्य से भिड गये। भयंकर युद्ध होने लगा। क्षण भर में ही रक्त धारा बह निकली। दोनों ओर से सैनिक 'आह' करके गिरने लगे। तनिक तनिक देर बाद महमाती जीवन ज्योतियां बुझ जाती। शवो के ढेर लग गए। वे सुन्दर युवा शरीर जो किसी परिवार के रक्त थे, रथो के नीचे, घोडे और हाथियों के पैरों मे कुचल जाते। पर दो सिंह, द्रोण तथा द्रुपद उसी प्रकार डटे हुए थे। फिर द्रोण ने अपना रथ पुनः युधिष्ठिर की ओर बढवा दिया।

आचार्य को अपनी ओर आते देख कर युधिष्ठिर अविचलित भाव से गुरुदेव पर बाण वर्षा करने लगे। पहले तीन बाण जा कर आचार्य के चरणों मे गिरे और फिर दूसरे बाण उन को क्षति पहुंचाने लगे। पर आचार्य के बाणों की भी झड़ी लग गई। यह देख कर सत्यजित द्रोणाचार्य पर टूट पड़ा। भयानक युद्ध छिड़ गया। उस समय द्रोण साक्षात काल का रूप ग्रहण कर गए। उनके बाण पाण्डव पक्षीय वीर सैनिकों के प्राण हरने लगे। पांचाल राज कुमार वृक के प्राण उन के बाणों ने हर लिए और सत्यजित का भी वही हाल हुआ।

यह देख कुपित होकर विराट पुत्र शतानीक द्रोण पर झपटा। पर दूसरे ही क्षण शतानीक का कुण्डलों वाला सिर युद्ध-भूमि पर लुढकने लगा। इसी बीच केदम नामक राजा द्रोणाचार्य के सामने आया, उसने भीषण बाण वर्षा आरम्भ की, पर इस से पूर्व कि वह

द्रोण का कुछ बिगाड़ पाता, उस के ही प्राण पखेरु द्रोण के बाणों से उड़ गए।

द्रोण आगे बढ़ते ही चले गए। उनके प्रबल वेग को रोकने के लिए साहस कर के वसुधान आया और वह भी यमलोक पहुंचा। युधामन्यु, सात्यकि, शिखण्डी, उत्तमौजा आदि कितने ही महारथियों को तितर बितर करते हुए द्रोणाचार्य युधिष्ठिर के निकट पहुंच गए। उस समय अपने प्राणों का मोह त्याग कर द्रुपद राज का एक और पुत्र पाचाल्य बिजली की भांति द्रोण पर टूट पड़ा। वह कितनी ही देरि तक भीषण संग्राम करता रहा। पर अन्त में वह बिल्कुल उसी प्रकार अपने रथ से नीचे लुढ़क गया, जैसे आकाश से कोई तारा टूटता है।

उस समय द्रोणाचार्य का अद्भुत रण कौशल देख कर दुर्योधन को अपार हर्ष हुआ। वह कर्ण से बोला—"कर्ण! द्रोणाचार्य का पराक्रम तो देखो। पाण्डवो की सेना को कैसे मूली गाजरो की भांति काटते हुए आगे बढ़ रहे हैं। सारे क्षेत्र मे जो शव ही शव दिखाई देते है और रक्त की जो नदी सी वह रही है, वह सब द्रोणाचार्य का ही प्रताप है। मैं कहता हूं अब पाण्डव अवश्य ही परास्त हो जायेंगे।"

इधर दुर्योधन ने यह बात कही, उधर भीमसेन, सात्यकि, युधामन्यु, उत्तमौजा, द्रुपद, विराट, शिखडी, धृष्टकेतु, आदि बहुत से वीर द्रोणाचार्य के सम्मुख आगए और बड़ा ही भयकर आक्रमण कर दिया।

उधर कर्ण दुर्योधन की बात का उत्तर देते हुए बोला—"दुर्योधन! पाण्डव यूं ही हार मानने वाले नही। वे इतनी जल्दी रण से पीछे हटने वाले। वे कभी उन यातनाओं को नही भूल सकते जो उन्हें विष से, आग से और जुए के खेल से पहुंची थी। वनवास और अज्ञात वास मे हुए उन के हृदय में घाव अभी तक रिस रहे होंगे। वे उन सब यातनाओं को भूलने वाले नहीं। वे अन्तिम क्षण तक मुकाबला करेंगे। और भीमसेन तथा नकुल सहदेव अपने प्राणो की आहुति देकर भी युधिष्ठिर की रक्षा करेंगे। वह देखो पाण्डव पक्षीय कितने ही वीरो ने एक साथ मिल कर द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर दिया है, वे द्रोण के आगे लोहे की दीवार बन गए हैं।

श्राचार्य कितने भी बलिष्ट और शास्त्र विद्या में पारंगत सही, पर सहन करने की भी एक सीमा होती है। हमे ऐसे समय पर चलकर उनकी सहायता करनी चाहिए।"

इतना कह कर कर्ण द्रोणाचार्य की सहायता को आगे बढा और उस के पीछे पीछे ही दुर्योधन का रथ चल पडा।

× × × ×

द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने की कितनी ही चेष्टा की, पर द्रुपद, भीम, सात्यकि और विराट आदि उनके आड़े आये और वे लाख प्रयत्न करने पर भी युधिष्ठिर को न पकड़ पाये। तब दुर्योधन ने एक भारी गज-सेना भीम की ओर बढ़ा दी। भीम सेन ने रथ पर से ही हाथियों पर बाणों की ऐसी वर्षा की कि समस्त हाथी बिलबिला उठे। बाणों की बौछार से उन की बुरी दशा होगई। और हाथियों के शरीर रक्त-प्रपात बन गए।

भीमसेन को ज्ञात था कि गज सेना को उसके सामने भेजने की उद्दण्डता किस धूर्त ने की है, अतः गजारोही सेना को निष्काम कर के उसने दुर्योधन के रथ को अपने बाणों का निशाना बनाया। उस के अर्द्ध-चन्द्र बाणों के प्रहार से दुर्योधन के रथ की ध्वजा काट कर गिर गई और धनुष भी टूट गया। दुर्योधन की यह दुर्दशा होते देख कर अग नामक एक नरेश हाथी पर सवार होकर भीमसेन के आगे जा डटा। उस मे कुपित होकर भीमसेन ने नाराच बाणों की वर्षा की। जिससे कुछ ही देरि मे अग का हाथी रक्त से लथ पथ होगया और एक नभ स्पर्शी चिंघाड मार कर रण क्षेत्र से भाग पड़ा बेचारा अंग बहुत प्रयत्न करने पर भी जब हाथी को न रोक पाया तो निराश होकर रण भूमि से जाने में ही अपना कल्याण समझ बैठा। उसे रण क्षेत्र से भागता देख सारी कौरव सेना भाग पड़ी। जो शूरवीर अपने प्राण हथेली पर रख कर रण क्षेत्र में आये थे। इस प्रकार भाग रहे थे मानो भेड़ के झुण्ड पर किसी भेड़िये ने आक्रमण कर दिया है।

हाथियों की सेना का भागना था कि अश्व भी कांप गए और वे भी हाथियों का अनुसरण करते हुए भागने लगे। फिर नम्बर रथों का आया। इस भाग दौड़ में पदाति सैनिक कुचले जाने लगे।

हाथियों व घोड़ों के पैरों तले सैकड़ों नरमुण्ड कुचले गए। त्राहि त्राहि और चीख पुकार से सारा क्षेत्र भर गया और ऐसा प्रतीत होने लगा मानो प्रलय आ गई है।

यह देख कर दुर्योधन पक्षीय भगदत्त नरेश से न रहा गया उस ने सेना को रोकने के लिए शख नाद किए। शोर मचाया। गला फाड फाड कर चिल्लाया—"रुक जाओ, रुक जाओ, भागो मत, तुम्हें माता के दूध की सौगंध।"

परन्तु वहा कौन सुनता था, सब को अपने अपने प्राणों की पड़ी थी, यह देखकर वह अपने सुप्रतीक हाथी पर सवार होकर, भीम सैन की ओर झपटा। वह हाथी बहुत ही हिंसक प्रकृति का था। ऐसे अवसरो के लिए ही शूर भगदत्त ने उसे पाल रक्खा था।

हाथी ने जाते ही अपनी सूण्ड गदा की भाति बड़े जोर से घुमाई और क्षण भर में ही उस ने भीमसेन के रथ को चूर चूर कर दिया। रथ के घोडो को सूण्ड मे दबा दबा कर दूर फेंक दिया। विवश होकर भीमसेन रथ से कूद पड़ा और गदा सम्भाल कर उस दुष्ट हाथी की ओर झपटा। वह हिंसक हाथी, भीमसेन को गदा लिए अपनी ओर आते देख कर और भी कुपित हो गया और भीमसेन को अपनी सूण्ड में दबोच कर मार डालने के लिए दौड़ा। परन्तु उस समय भीमसेन को एक उपाय सूझा। गदा घुमा कर उस ने हाथी के मस्तक पर फेंक कर मारी और स्वय दौड़कर हाथी के पैरों के पास पहुच गया उसे हाथियों के मर्मस्थलों का तो पूर्ण ज्ञान था ही, जाते ही घूसों से हाथी के नीचे के मर्मस्थानों पर चोट करने लगा। वज्रकाय भीमसेन के घूसों की मार से हाथी बिलबिला उठा। पर टांगो से सटे होने के कारण हाथी उसका कुछ न बिगाड सकता था। वह उसे पकडने और घूसो की मार से बचने के लिए कुम्हार के चाक की भाति चक्कर खाने लगा। पर भीमसेन भी उसे बुरी तरह चिपटा था, वह भी घूमता रहा।

घूमते घूमते अचानक उस हिंसक गज ने भीमसेन को अपनी सूण्ड में कस लिया और उठा कर दूर फेंक दिया। चोट तो लगी पर क्रोध के मारे भीमसेन जल उठा। दौड़ कर पुनः हाथी के पीछे से उसकी टांगो मे घुस गया और लगा मर्म स्थलों पर चोटें करने। आखिर हाथी बेचारा उसके घूंसो से तग आगया।

भीमसेन को आशा थी कि शीघ्र ही कोई गजारोही पाण्डव पक्षीय उधर आ निकले गा और भीमसेन को उस के सहारे इस खूंखार हाथी से छुटकारा मिल जाये गा, पर किसी का ध्यान इस ओर हो तो कोई आये भी। कितनी ही देरि तक हाथी और भीम सेन के बीच आख मिचौली का खेल सा चलता रहा। और इधर जब किसी ने भीमसेन को कहीं न पाया तो पाण्डव पक्षीय सेना में शोर मच गया—"अरे! भीमसेन को भगदत्त के हाथी ने मार डाला।"

इतनी आवाज उठनी थी कि सारी पाण्डव पक्षीय सेना मे कोलाहाल मच गया। यह शोर सुन कर युधिष्ठिर ने भी समझ लिया कि सचमुच ही भीमसेन मारा गया होगा। यह सोच कर उन्हे जितना शोक हुआ उस से अधिक भगदत्त पर क्रोध आया। उन्हो ने अपने जवानों को आदेश दिया कि चलो तुरन्त भगदत्त पर आक्रमण कर दो। भीमसेन के हत्यारे को उस की धृष्टता का फल चखा दो।"

दशार्ण देश के राजा ने अपने लडाकू हाथी पर सवार होकर अपने सभी साथी सैनिकों सहित भगदत्त पर भीषण आक्रमण कर दिया। दशार्ण के हाथी ने बडे जोर से युद्ध किया, फिर भी सुप्रतीक के आगे वह अधिक देर न ठहर सका। सुप्रतीक ने अपने दांतों से उस हाथी की पसलिया तोड डाली। और देखते ही देखते वह भूमि पर लुढक गया उसी समय भीमसेन को अवसर मिला और वह सुप्रतीक की टांगों के बीच से निकल भागा।

इधर दशार्ण के सैनिक और युधिष्ठिर के भेजे सैनिक एक साथ सुप्रतीक पर टूट पडे। उन के बाणो, भालों, गदाओं और तलवारों की मार से सुप्रतीक व भगदत्त की बुरी दशा हो गई तो भी भगदत्त ने हिम्मत न हारी। भगदत्त और सुप्रतीक घायल हो चुके थे, फिर वृद्ध भगदत्त का कलेजा दावानल की भांति जल रहा था। अपने चारों ओर पड़े सैनिकों की कोई चिन्ता न कर के, उस ने अपने हाथी को सात्यकि की ओर बढ़ा दिया। क्रुद्ध हाथी ने जाते ही सात्यकि के रथ पर आक्रमण कर दिया और रथ को उठा कर फेंक दिया। सात्यकि फुरती से रथ से कूद गया, वरना कदाचित वह स्वयं भी अपने रथ के साथ साथ नष्ट हो जाता। परन्तु सात्यकि

का सारथि बड़ा कुशल था, ज्यों ही रथ दूर जा गिरा, उस ने दौड़ कर रथ को सीधा किया, घोड़ो को पकड़ कर पुन: जोड़ा और सात्यकि के पास ले आया। परन्तु रथ की कील कील हिल गई थी, वह युद्ध के काम का न था, आश्रय लेने के लिए सात्यकि उस पर चढ गया अवश्य पर दूर भेजा कर वह उतर गया और दूसरे रथ पर चढ़ गया।

सुप्रतीक का क्रोध शांत न हुआ था, उसने दूसरे पाण्डव पक्षीय सैनिकों को मारा, रथ तोड़े और घोड़ो को धाराशांही कर दिया। जो पदाति सामने पड़ता हाथी उसे ही उठा कर गेंद की भांति फेंक देता, जो रथ सामने आ जाता, उसे ही तोड़ डालता। इस प्रकार उसने नाश का डंका बजा दिया, चारों ओर तबाही सी आ गई। पाण्डव पक्षीय सैनिकों में भय सा छा गया। भगदत्त शान से हाथी पर बैठा पाण्डवों के नाश की इस लीला पर गर्व कर रहा था, मानों इन्द्र अपने ऐरावत गज पर विराजमान होकर असुरों का नाश कर रहे हो।

इतने ही मे भगदत्त ने देखा कि सामने से बाण बरसाता भीमसेन का रथ उसकी ओर बढ़ता आ रहा है। भीम अपने धनुष से पैने बाणों की वर्षा कर रहा था। भगदत्त ने अपना हाथी उसी ओर बढ़ा दिया, स्वयं बाण वर्षा करनी आरम्भ कर दी। सुप्रतीक ने जब अपने वैरी को रथ पर सवार देखा उसकी आखों में खून उतर आया। जाते ही रथ पर सूण्ड की गदा की भांति मारने लगा, कुछ ही देरी में रथ की धुरज़ी तोड़ डाली और इतने ज़ोर की चिंघाड़ मारी कि उसे सुनकर भी भीमसेन के रथ के घोड़े भयभीत होकर भाग पड़े।

उस समय इतनी धूल उड़ रही थी कि आकाश की ओर पृथ्वी से बादल से उठते प्रतीत होते। बार बार सुप्रतीक की कलेजे को कम्पित कर डालने वाली चिंघाड़ें उठ रही थी यह चिंघाड़ संशप्तकों का मुकाबला करते हुए अर्जुन के कान में भी पड़ी। सुन कर वह स्तब्ध रह गया। इधर देखा और श्री कृष्ण से बोला—"मधु सूदन! रण क्षेत्र में धूल ही धूल उड़ रही है। हाथियों की चिंघाड़ सुनाई दे रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि क्रूर भगदत्त ने अपने सुप्रतीक हाथी पर सवार होकर भयंकर आक्रमण कर दिया

है। युद्ध के खूंख्वार हाथियों को चलाने में भगदत्त जैसा संसार में और कोई नहीं है। मुझे डर है कहीं भगदत्त हमारी सेना को तितर-बितर करके हमें हरा न दे।"

कृष्ण बोले—"भीमसेन तो वहां है ही। और तुम ठहरे संशप्तकों के मुकाबले पर, तुम कर ही क्या सकते हो।"

"मधु सूदन! मैं काफी संशप्तकों को मौत के घाट उतार चुका। काफी सेना को परास्त कर चुका अब इस मोर्चे को जोड़कर पहले मुझे उनकी खबर लेनी चाहिए। देखिये वहां चलना बड़ा आवश्यक है जहां द्रोणाचार्य युधिष्ठिर से लड़ रहे हैं।"—अर्जुन बोला।

श्री कृष्ण ने अर्जुन की बात मान ली और रथ उसी ओर घुमा दिया जिधर भीमसेन और भगदत्त के हाथी का युद्ध हो रहा था। पर सुशर्मराज और उसके भाई सशप्तक उसके रथ का पीछा करने लगे और चिल्लाने लगे—"ठहरो ठहरो जाते कहां हो।"

यह देख अर्जुन बड़ी दुविधा में पड़ा, क्षण भर के लिए किंकर्त्तव्य विमूढ़-सा होकर सोचने लगा कि "क्या करू? सुशर्मा इधर ललकार रहा है। उधर उत्तरी मोर्चे पर सेना व्यूह टूट रहा है, संकट आ गया है, उधर जाऊं तो सुशर्मा समझेगा कि अर्जुन डर कर भाग गया है। यदि यही डटा रहूं और उधर तुरन्त मदद न पहुंची तो किया कराया सब चौपट हो जायेगा और पराजय हो जायेगी।"

अर्जुन अभी इसी सोच विचार में पड़ा था कि इतने में सुशर्मा ने एक शक्ति-अस्त्र अर्जुन पर छोड़ा और एक तोमर श्री कृष्ण पर। सचेत होकर तुरन्त ही अर्जुन ने तीन बाण मारकर सुशर्मा को ईंट का जवाब पत्थर से दे दिया और श्री कृष्ण को तेजी से भगदत्त की ओर रथ दौड़ा ले चलने को कहा।

अर्जुन के पहुंचते ही पाण्डवों की सेना में नवीन उत्साह का संचार हुआ। सब जहां के तहां रुक गए और आक्रमण करने के लिए तैयार हो गए। कौरव सेना पर भीषण आक्रमण करके अर्जुन भगदत्त के हाथी की ओर बढ़ा। सुप्रतीक बुरी तरह अर्जुन के रथ पर झपटा, पर श्री कृष्ण की कुशलता के कारण हाथी रथ का कुछ न बिगाड़ सका। भगदत्त ने श्री कृष्ण और अर्जुन पर भीषण बाण

वर्षा आरम्भ कर दी। परन्तु अर्जुन ने पहले अपने बाणो से
के कवच को तोड़ डाला, इस से बाणों का प्रभाव हाथी
पर होने लगा। गाण्डीव से छूटे वाणों की मार से सुप्रतीक नाच
सा लगा। भगदत्त को वड़ा क्रोध आया उसने श्री कृष्ण पर ए
शक्ति फेंकी परन्तु धनुर्धारी अर्जुन ने शक्ति को अपने बाणों से तो
डाला। तब भगदत्त ने एक तोमर अर्जुन पर चलाया। जो जाकर
अर्जुन के मुकुट पर लगा। उसने अपना मुकुट तो सम्भाल लिया,
पर कुपित होकर गर्जना की—"भगदत्त लो, अब इस संसार को
अन्तिम बार अच्छी प्रकार देख लो।"

कहते कहते अपना गाण्डीव तान लिया। क्रुद्ध भगदत्त के
बाल पक गए थे, चेहरे पर झुर्रियां पड़ी हुई थी, भौहो का चमड़ा
आंखो की ओर लटक गया था, उसे देख कर सिंह का स्मरण हो
आता था, फिर भी वृद्ध सिंह भगदत्त अपने शील स्वभाव तथा
प्रताप के लिए बड़ा प्रसिद्ध था, लोग उसे इन्द्र का मित्र कहा करते
थे, अर्जुन की गर्जना सुन कर भी उसने हिम्मत न हारी, बाण
चलाता ही रहा। पर गाण्डीव से छूटे बाणो के कारण उस का
धनुष टूट गया, तरकश टूट कर दूर जा गिरा। अर्जुन ने भगदत्त के
मर्म स्थानों को छेद डाला।

अस्त्र शस्त्र विद्या सिखाते समय उन दिनों यह भी सिखाया
जाता था कि कवच धारी के शरीर को बीधने के लिए कहाँ प्रहार
करना चाहिए। अर्जुन अपने गुरु द्रोणाचार्य से यह सभी कुछ सीख
चुका था, इस लिए उस ने वही बाण जहा बाणो से शरीर बिंध
जाता था। उस ने भगदत्त के सभी अस्त्रों को भी काट डाला।
भगदत्त का शरीर लोहुलुहान हो गया। अन्त में उस ने हाथी का
अंकुश ही अभिमन्त्रित कर के अर्जुन पर इस प्रकार मारा कि यदि
उस समय श्री कृष्ण अपनी कुशलता से रथ को दूसरी ओर न मोड़
देते तो अर्जुन का सिर कट गया होता। हां, अर्जुन तो उस
अस्त्र से बच गया, परन्तु वह अभिमन्त्रित अंकुश जो प्राणहारी
अस्त्र बन गया था, श्री कृष्ण की छाती पर आ कर लगा। परन्तु
श्री कृष्ण का यह अस्त्र कुछ न बिगाड़ सका। यह सब उन की शुभ
प्रकृति का ही प्रभाव समझिए। कुछ लोग इस बात को इस प्रकार
मानते हैं कि वैष्णवास्त्र से अभिमन्त्रित होने के कारण श्री कृष्ण

की छाती पर लगते ही वह शक्ति वन-माला सी बन कर श्री कृष्ण की शोभा बढाने लगी।

अर्जुन के अभिमान को इस घटना से बड़ी ठेस लगी। वह श्री कृष्ण से बोला—"जनार्दन! शत्रु द्वारा चलाया हुआ अस्त्र अपनी छाती पर लेना क्या आप के लिए उचित था? जब आप ने प्रतिज्ञा की है कि महाभारत मे आप रथ हांकने के अतिरिक्त और कुछ न करेंगे तो फिर जब धनुष लिए तो मैं खडा हूं, और वार आप सह रहे है, यह कहां का न्याय है?"

श्री कृष्ण हस कर बोले—"मैं युद्ध में तो भाग नही ले रहा, पर यदि शत्रु का वार मेरे ऊपर होता है तो फिर क्या इस लिए कि मैं युद्ध नही कर रहा, उस से किसी प्रकार बच सकता हूं। मैं सारथि हूं इस लिए मेरा धर्म है कि रथ इस प्रकार हाकू कि रथ पर सवार योद्धा को कम से कम हानि हो।"

अर्जुन कुछ न बोला, बल्कि भगदत्त के उस वार का उत्तर दृढ़ता से देने के लिए एक तीक्ष्ण बाण गाण्डीव की डोरी को कान तक खींच कर इस प्रकार मारा कि सुप्रतीक हाथी के मस्तक को काटता हुआ वह बाण इस प्रकार निकल गया जैसे सांप अपने बिल में जाता है बाण का लगना था कि हाथी के मुह से चिघाड के रूप मे एक भयकर चीत्कार निकला। और वह वहीं पृथ्वी पर बैठ गया। भगदत्त ने अपने हाथी को बहुत उकसाया, बडा डांटा डपटा, बार बार उसे सहलाया पर हाथी जब बैठ गया तो बैठ गया, वह न उठा। पीड़ा के मारे उस का बुरा हाल था, वह रह रह कर चिघाड रहा था बेहाल होकर और पीड़ा से परेशान होकर वह अपने दांतों से धरती कुरेदने लगा और थोडी ही देरि बाद उस विषैले बाण की मार से ही पीडित होकर पैर पटक पटक कर उसने प्राण छोड दिये।

यह देख कर अर्जुन को मानसिक दुख हुआ, क्योंकि वह हाथी को मारना नही चाहता था, वह यदि मारना भी चाहता था, तो भगदत्त को, पर भगदत्त बच गया था, उसे देख कर अर्जुन फिर व्याकुल हो उठा। उस ने समझ बूझ कर एक ऐसा बाण मारा जिससे भगदत्त के सिर पर बधी रेशमी पट्टी कट गई। वह पट्टी इस लिए बंधी थी कि भौओं पर की खाल जो बुढ़ापे के कारण लटक

गई थी, उसे पट्टी ऊपर रोके रहती थी। वह खाल ऐसी थी कि उस के लटक जाने पर भगदत्त की आंखें पूरी तरह न खुलती थी। पट्टी का कटना हुआ है कि खाल पुनः आंखों के आगे आ गई। तब बेचारा भगदत्त अर्द्ध चक्षु हीन होगया और उस की आंखों के आगे अंधकार छा गया, तभी गाण्डीव से छूटा एक वाण और आया जो उसकी छाती को चीरता हुआ निकल गया। सोने की माला पहने हुए भगदत्त हाथी पर से नीचे लुढ़क गया। और अभी कुछ देरि पहले जो शूरवीर पाण्डव सेना के लिए काल रूप धर कर आया था, जिस के हाथी ने कोहराम मचा दिया था, वही भगदत्त मिट्टी में लुढ़कने लगा। और उस के रक्त से दो हाथ मिट्टी लाल कीचड़ की नाईं हो गई।

भगदत्त के मरते ही पाण्डव सेना में उत्साह छा गया, विजय के शंख बजने लगे। अर्जुन की जय जयकार होने लगी। कौरवों की सेना मे शोक छा गया। परन्तु शकुनि के भाई वृषक और अचल तब भी विचलित न हुए और वे जम कर लड़ते रहे। उन दोनों में से एक ने आगे से और दूसरे ने पीछे से अर्जुन पर वाण बरसाने आरम्भ कर दिये। अर्जुन को कुछ देरि तक तो उन सिंह-शिशुओं ने खूब तंग किया। पर अन्त मे अर्जुन से न रहा गया, उस ने भयंकर बाण वर्षा की और उन दोनों को मार गिराया।

अपने दोनो सुन्दर तथा चंचल भाईयों के मरने पर शकुनि के क्षोभ और क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने अर्जुन के विरुद्ध माया युद्ध आरम्भ कर दिया और वे सभी अस्त्र तथा उपाय प्रयोग करने लगा जिनमे उसे कुशलता प्राप्त थी। परन्तु अर्जुन भी किसी बात मे कम न था, उसने शकुनि के प्रत्येक अस्त्र को अपने अस्त्र से काट डाला। एक बार शकुनि ने ऐसी शक्ति प्रयोग की जिससे अर्जुन की ओर धुए का बादल सा उमड पड़ा। अर्जुन ने उसके उत्तर मे ऐसा अस्त्र प्रयोग किया, जिससे वह धुए का बादल घूमकर शकुनि की ओर बढने लगा और फिर बेचारे शकुनि को उससे पीछा छुड़ाना मुश्किल हो गया। अन्त मे अर्जुन के बाणो से शकुनि बुरी तरह घायल हो गया। निकट था कि अर्जुन के बाण उसके प्राण लेते कि शकुनि बच कर रण क्षेत्र से भाग निकला। रण से भागते सैनिक पर वीर पुरुष अस्त्र प्रयोग नही किया करते। इस

लिए अर्जुन ने उसे निकल जाने दिया।

भगदत्त के मारे जाने और शकुनि के भाग जाने के उपरान्त तो पाण्डव सेना में असीम उत्साह आ गया और वह द्रोणाचार्य की सेना पर टूट पड़ी मार काट होने लगी। असंख्य वीर खेत रहे। कितने ही योद्धा घायल हो गए। रक्त की धाराएं वह निकलीं। रण क्षेत्र की भूमि गारे की भांति हो गई। शवों से क्षेत्र पट गया। महारथियों के कवच टूट गए। घोड़ों की जिव्हा बाहर निकल आई। कौरव सेना का साहस टूट गया, त्राहिं त्राहि मच गई।

उधर आकाश में सूर्य आत्मुत्सर्ग की तैयारी कर रहा था। अपना ताप सूर्य ने समेट लिया था और रात्रि के आगमन के लक्षण साफ होते जा रहे थे। इधर कौरवों की सेना की दुर्दशा देखकर पाण्डवों की सेना को और भी प्रोत्साहन मिला। उसने कौरवों के हाथी घोड़ों को भी धाराशाही करना आरम्भ कर दिया। द्रोणाचार्य से भी उस समय कुछ करते न बना। इस दशा को देखकर कुछ कौरव महारथी तो मानसिक सन्तुलन तक खो बैठे।

ज्योंही सूर्य अस्त हुआ द्रोणाचार्य ने विनाश के उस अध्याय को स्थगित कर देने में ही कल्याण समझा। युद्ध के समाप्त करने के लिए शंख बजा दिए गए। पाण्डव विजय नाद करते हुए अपने शिविरों की ओर चले और कौरव मुह लटकाए हुए वापिस हुए।

बारहवें दिन का युद्ध इस प्रकार समाप्त हो गया।

* छयालीसवां परिच्छेद *

तेहरवां दिन

ज्योंही रात्रि का साम्राज्य समाप्त हुआ और सूर्य की किरणें पृथ्वी को आलोकित करने लगी, दुर्योधन क्रोध में भरा हुआ आचार्य द्रोण के शिविर में गया। उस समय कुछ सैनिक भी वहां उपस्थित थे और सेनापति द्रोण युद्ध का बाणा पहन रहे थे जाते ही दुर्योधन ने आचार्य को प्रणाम किया और सैनिकों की उपस्थिति का परवाह किए बिना ही बरस पड़ा:—

"आचार्य! युधिष्ठिर के निकट पहुंच जाने पर भी आप कल उसे पकड न सके। इस का अर्थ मैं क्या लगाऊ? यदि सच मुच आप को हमारी रक्षा की चिन्ता होती और अपने वचन की पूर्ति के लिए आप प्रयत्न शील होते तो मुझे विश्वास है, कल जो कुछ हुआ, वह न होता।"

आचार्य ने शांत मुद्रा में ही कहा—"कल जो कुछ हुआ उस का उत्तर दायित्व मुझ पर तो नहीं है। शत्रु बल के सामने हमारी न चले, तो इस मे मेरा क्या दोष?"

"नहीं, नहीं, यदि आप युधिष्ठिर को जीवित ही पकड़ने का दृढ सकल्प किए होते, तो फिर किस में इतनी शक्ति है कि जो आप की इच्छा पूर्ण होने से रोक सके? आप को अपने वचन की चिन्ता ही नहीं। आप तो ब्राह्मण है न, आप के वचन भी ऐसे ही होते हैं।"—उस समय दुर्योधन का मुख क्रोध के मारे लाल हो रहा था।

दुर्योधन के इन शब्दो से द्रोण को बड़ी चोट लगो। सैनिकों की उपस्थिति मे बात कही गई था, इस लिए उन्हें और भो असहय हो गई। वह उत्तोजित होकर बोले—"दुर्योधन ! तुम्हारी यह बाते बता रही हैं कि तुम मानसिक सन्तुलन खो बैठे हो। मैंने तो पहले ही कह दिया था कि जब तक अर्जुन हस्तक्षेप करता रहेगा, तुम्हारा उद्देश्य पूर्ण नही होगा। कल भी ठीक समय पर अर्जुन वहा पहुंच गया। फिर मैं क्या कर सकता था, अपना सा प्रयत्न मैंने बहुत किया। और भविष्य में भी करता रहूंगा। क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होकर भी तुम्हारे मुह से ऐसी बातें निकलतो है कि आश्चर्य होता है।"

क्रोध तो द्रोण को भी बहुत आया था, परन्तु वे क्रोध को पी गए, अपने को उन्होंने शांत कर लिया। दुर्योधन उत्तर में कुछ कहना ही चाहता था कि द्रोण बोल उठे—"युद्ध का समय होने वाला है। मुझे तैयार हो लेने दो। बातो से काम नही चले गा। युद्ध में शस्त्र और बल चाहिए। दुर्योधन चुप होकर वापिस चला गया।

कर्ण का दान

रात्रि का प्रथम पहर था। भोजन करके सैनिक विश्राम कर रहे थे। परन्तु अर्जुन के नेत्रों से तो निद्रा रूठी हुई थी। वह कभी शैया पर करवटें बदलता, तो कभी व्याकुल होकर उठ पड़ता और शिविर में इधर से उधर टहलने लगा। पर उसे शांति किसी भी प्रकार न मिलती। कोई समस्या उसके मस्तिष्क को मथे डाल रही थी। जब किसी भी प्रकार चैन न आया तो वह अपने शिविर से निकल कर श्री कृष्ण के शिविर की ओर चला।

उसने देखा कि मधुसूदन भी शैया पर पड़े करवटें बदल रहे हैं, जैसे शैया पर शूल बिछे हो और उनके कारण उन्हें चैन न पड़ती हो। श्री कृष्ण की व्याकुलता देखकर वह सोचने लगा—"मधुसूदन तो स्वयं ही चिन्ताकुल हैं। इस समय उनसे कुछ पूछना ठीक न होगा, जो स्वयं व्याकुल है वह दूसरे की व्याकुलता कैसे दूर कर सकेगा?— नहीं, इस समय उनसे कुछ कहना ठीक नहीं।"—यह सोचकर वह जैसे आया था वैसे ही उल्टे पैरों लौटने लगा।

उसी समय श्री कृष्ण ने पुकार कर कहा—"अर्जुन! क्यों आये थे और क्यों वापिस चल दिए?"

अर्जुन के पैर रुक गए, जैसे किसी ने शृंखलाएं डाल दी हों। बोला—"महाराज! एक समस्या का समाधान कराने आया था। पर यहाँ देखा कि आप स्वयं व्याकुल हैं। कोई जटिल समस्या आपके हृदय में शूल की भांति खटक रहा है। फिर एक व्याकुल दूसरे की

व्याकुलता कैसे हरेगा ? यही सोचकर मैं वापिस लौट रहा हूं।"

"नही, मुझे ऐसी कोई बात नही है। मेरी व्याकुलता का कारण तुम्हारा ही भविष्य है। मैं तुम्हारे ही बारे मे सोच रहा था। बोलो, तुम क्यों व्याकुल हो ?" – श्री कृष्ण ने पूछा।

"रहने दीजिए, मधुसूदन ! आप जब निश्चिंत होंगे, तभी पूछूंगा।"—यह कह कर अर्जुन ने जाने का उपक्रम किया।

"अर्जुन ! तुम यों चले जाओगे, तो मुझे एक और चिन्ता आ घेरेगी। बोलो क्या बात है ?"—मधुसूदन ने आग्रह करते हुए कहा।

अर्जुन को रुकना पड़ा। वह श्री कृष्ण के पास बैठ गया, बोला—"आज मुझे नीद ही नहीं आती, बार-बार मेरे सामने यही प्रश्न आ खडा होता है कि द्रोणाचार्य को कैसे मारा जाये। वे जब तक जीवित हैं, तब तक हमारी सेना के लिए कालरूप धारण किए रहेंगे। हमारी सफलता के लिए उनका वध होना आवश्यक है। पर हम में से कोई ऐसा नही दीख पडता, जो उन्हें मार सके। आप से यही जानना चाहता हूं कि द्रोण को मारने का क्या उपाय है ?"

श्री कृष्ण के अधरों पर मुस्कान खेल गई वे बोले—"पार्थ ! द्रोणाचार्य को मैदान से हटाना कोई बड़ी बात नही है परन्तु मैं सोच रहा हूं कि करण का क्या होगा ? उसे कैसे मारा जायेगा ?"

"ओह ! बस कर्ण के बारे में आप चिन्तित हैं ?—अर्जुन ने उतावलेपन से कहा—वह तो मेरे एक बाण का भक्षण है। आप व्यर्थ ही चिन्ता कर रहे हैं।"

"धनजय ! कर्ण न तेरे बाण का भक्षण है न मेरे। उसे न तुम मार सकोगे न मैं। वह वास्तव मे विकट वीर है, हमारे लिए वही विकट समस्या है।"– श्री कृष्ण ने कहा।

अर्जुन को बडा आश्चर्य हुआ उसने कहा—"मधुसूदन ! आप न जाने कर्ण को क्या समझ बैठे हैं ? मेरे विचार से तो उसका वध करना साधारण सी बात है।"

"नहीं, कर्ण जहां महाबली है, वही इस युग में सब से श्रेष्ठ दानवीर है। उसके पूर्व संचित पुण्य के प्रभाव से उसे मार डालना किसी के बस की बात नही। वह अपनी शुभ प्रकृति के कारण अजेय है। और उस समय तक वह अजेय है, जब तक उसके पास दैवी

कवच, कुण्डल हैं। जब तक उसके शरीर पर देवता द्वारा दिये गए कवच तथा कुण्डल हैं, तब तक तुम्हारा कोई अस्त्र भी उसका वध नहीं कर सकता।"—श्री कृष्ण ने कर्ण की अपराजिता का कारण बताते हुए कहा।

यह सुनकर अर्जुन को भी चिन्ता हो गई। उसने पूछा—"तो गोविन्द उसके शरीर से कुण्डल उतरवाने की युक्ति ही सोचिए।"

"बस इसी जटिल समस्या को सुलझाने के लिए मैं व्याकुल हूं।"—श्री कृष्ण बोले।

देवी कवच कुण्डल कर्ण को कैसे मिले? यह जाने बिना कर्ण की कथा अधूरी ही रह जायेगी, इस लिए यहां हम उसे भी बता देना आवश्यक समझते हैं।

युद्ध से बहुत दिनों पूर्व की बात है।

कर्ण की दानवीरता की चर्चा सारे संसार मे होने लगी। कोई याचक उस के द्वार से खाली हाथ नही लौटता था। कर्ण की प्रतिज्ञा थी कि याचक यदि प्राण भी मागे तो भी वह उसे निराश न करेगा। धन तथा सम्पत्ति दाम में देना तो उस के दैनिक कार्य क्रम की बात थी।

आखिर यह चर्चा देवताओं तक भी पहुंच गई और स्वयं इन्द्र ही कर्ण के प्रशसक हो गए।

एक दिन समस्त देवता गण उपस्थित थे। इन्द्र अपने सिंहासन पर विराजमान थे। मृत्यु लोक की बात चल पड़ी इन्द्र बोले —"भरत खण्ड के दानवीर कर्ण जैसा दानवीर न आज तक कोई हुआ, न है और कदाचित भविष्य में कोई हो भी न। वह किसी याचक को इकार करना ही नहीं जानता। उसकी प्रतिज्ञा है कि कोई उस के प्राण भी मागे तो वह प्रसन्नता पूर्वक दे देगा। सारा संसार उसका प्रशंसक हो गया है।"

एक देवता को शंका हो गई। बोला—"महाराज! मुझे इस बात मे सन्देह है। सम्भव है वह धन आदि दान में दे देता हो, इसी से नाम हो गया हो, पर किसी याचक को वह इंकार नहीं करता; यह गलत बात है।"

"तुम्हें सन्देह है तो तुम जाकर परीक्षा ले लो।" इन्द्र बोले।

"आप की आज्ञा हो तो मैं परीक्षा लू ।"

"हा; हां, तुम्हे पूर्ण स्वतन्त्रता है ।"

इस प्रकार इन्द्र की आज्ञा पा कर देवता कर्ण की परीक्षा को चला और उस ने जाते ही चम्पा पुरी पर जो कर्ण की राजधानी थी, मूसलाधार वर्षा करनी आरम्भ कर दी । लगातार वर्षा होती रही वह ऐसी वर्षा थी कि चम्पापुरी के इतिहास मे उस वर्षा से पूर्व कभी ऐसी घोर वर्षा का उदाहरण मिलता ही न था । वह घोर वर्षा लगातार सात दिन तक होती रही। नागरिको को रोटी के लाले पड गए । क्योंकि लकडियां भीग गई थी । जो कुछ सूखी थी, उन से चार पांच दिन तक रोटियां पकाते रहे। पर फिर तो चूल्हे मे आग जलाना असम्भव हो गया। एक दो दिन तो वेचारो ने किसी प्रकार गुजारा किया, पर जब वर्षा ने रुकने का नाम ही न लिया, तो वे विल विला उठे। अपने बच्चों को रोटी के लिए रोते व हा हा कार करते देख कर उनका हृदय चीत्कार कर उठा । सब लोग तग आ गए और अन्त मे विवश होकर वे एकत्रित हो कर कर्ण के पास गए। और जाकर दुहाई मचाई। कर्ण ने उनकी बात सहानुभूति पूर्वक सुनी और उन की विपदा को दूर करने के लिए उस ने अपने भण्डार की सारी लकड़ियां नागरिकों में वितरित करदी।

एक दो समय उन से नागिरकों ने काम लिया: पर वर्षा तो रुकने का नाम ही न लेती थी। वह देवता जो इतनी भयंकर वर्षा करा रहा था, सोचने लगा कि परीक्षा का समय तो अब आने वाला है । देखता हू अब नागरिको को कर्ण क्या देता है। उस ने वर्षा और भी तीव्र करदी। नागिरक पुन. कर्ण के पास गए और दुहाई मचाई ।

एक ही सवाल था कि- "महाराज लकड़िया चाहिए । वरना हमारे बालक भूखो मर जायेंगे।"

कर्ण ने उनकी बात सुनी और बोला—"प्रजा जन ! घबरामो नही । जब तक मेरे पास लकडी का एक भी टुकड़ा रहेगा, मैं देता रहूंगा । तुम्हारे बालकों को मैं भूखो नही मरने दूगा।"

और इतना कह कर उस ने धनुष उठाया, चल पड़ा शुद्ध चन्दन से निर्मित अपने राज प्रसाद को गिराने के लिए। कर्ण का

महल बहुत ही विशाल था, जो शुद्ध चन्दन की लकड़ियों से बनाया गया था. उस चन्दन की सुगन्ध ५२ कोस तक जाती थी। चारो ओर बावन कोस तक कर्ण का महल महकता रहता था। करोडो रुपये की लकड़ी उस मे लगी थी, वर्षों में वह तैयार हुआ था पर कर्ण ने अपने बाणो से गिरा दिया और सारे महल की लकडिया नागरिको में बाट दी। जहा विशाल महल था, वहाँ उजाड स्थान रह गया पर कर्ण के मुख पर पश्चाताप अथवा खेद का तनिक सा भाव भी नही आया, बल्कि वह बहुत प्रसन्न था कि उस के द्वार से याचक खाली वापिस नही लौटे। वह सन्तुष्ट था और जिन प्रभु के प्रति बार बार कृतज्ञता प्रगट कर रहा था कि उनकी कृपा से वह अपने नागरिको को विपदा से उबार पाया।

यह देख देवता को बड़ी प्रसन्नता हुई और वह कर्ण के पास पहुचा। उस ने कहा—"धन्य, धन्य दानवीर कर्ण, तुम धन्य हो।"

"क्या तुम्हे भी कुछ चाहिए। बोलो क्या चाहते हो।" देवता को याचक समझ कर कर्ण ने कहा।

"नही राजन्! मैं तो देवलोक से आप की परीक्षा के लिए आया था। देवराज इन्द्र ने जो कहा था, वही सत्य निकला। आप वास्तव मे महान दानवीर है। मैं आप से बहुत प्रसन्न हूं।"—देव ने कहा।

फिर कर्ण को उस वर्षा का रहस्य ज्ञात हुआ। देवता द्वारा प्रशसा होने पर भी कर्ण को गर्व न हुआ।

उस देवता ने कर्ण से प्रसन्न होकर कवच तथा कुण्डल दिए और बोला कि जब तक तुम्हारे शरीर पर यह रहेगे, तुम्हे कोई भी शत्रु न मार सकेगा।

तभी से कर्ण के पास वह कवच और कुण्डल थे।

× × × ×

श्री कृष्ण ने कवच तथा कुण्डल कर्ण से लेने की एक युक्ति सोची। उन्होने किसी प्रकार दोनों पक्षों को तीन दिन तक युद्ध स्थगित रखने के लिए रजामन्द कर दिया और स्वय तेला धारण करके बैठ गए। तीन दिन तक अखण्ड तपस्या की। जिसके कारण स्वयं देवराज इन्द्र को वासुदेव के पास आना पडा। उसने आते ही पूछा—"मधु सूदन! बतलाईये, कैसे याद किया?"

श्री कृष्ण बोले—"युद्ध तीन दिन के लिए स्थगित कराकर मैने आपको बुलाया है। समझ लीजिए कोई महत्व पूर्ण कार्य ही होगा।"

"हां, यह तो मैं समझता हूं। अब बताईये भी कि मुझ से आप क्या चाहते हैं?"—इन्द्र ने पूछा।

"बस आप से इतना ही चाहता हूं कि याचक का रूप धारण करके जाईये और कर्ण से दैवी कवच कुण्डल मांगकर ला दीजिए।"—श्री कृष्ण अपने उद्देश्य को प्रगट करते हुए बोले।

"कर्ण के कवच और कुण्डल से आप क्या लाभ उठाना चाहते हैं?"—इन्द्र ने पूछा।

"बात यह है कि कर्ण पर जब तक दैवी कवच कुण्डल रहेंगे, वह किसी प्रकार भी नहीं मारा जा सकता। और बिना कर्ण के मरे पाण्डवों की विजय नहीं हो सकती, सम्भव है कर्ण के हाथों अर्जुन ही मारा जाये इस लिए दुष्ट दुर्योधन को पराजित करने के लिए कर्ण से कवच कुण्डल ले आने की आवश्यकता है।"—श्री कृष्ण गम्भीरता पूर्वक बोले।

"मधु सूदन! आप भी ऐसे उपाय अपनाकर शत्रु को पराजित करना चाहेंगे, यह तो आशा नहीं थी।"—विस्मित होकर इन्द्र बोले।

"मैं न्याय के पक्ष में हूं। खेद की बात है कर्ण इतना महान व्यक्ति होते हुए भी परिस्थितियों वश दुष्ट दुर्योधन की ओर है, उस नीच को परास्त करने के लिए मुझ सन्खेद कर्ण का वध कराने की योजना करनी पड रही है।"—श्री कृष्ण ने कहा।

"लेकिन। कर्ण से धोखा देकर कवच कुण्डल लेना तो अन्याय है। मैं ऐसा कैसे करूं? कर्ण महान व्यक्ति है। मुझे उसके चरण छूने चाहिए। उस जैसा दानवीर संसार में और कौन है: फिर आप ही बताईये इतने पुण्यवान से धोखा करना कहां तक उचित है?"- इन्द्र ने श्री कृष्ण की आज्ञा का पालन न कर सकने की अपनी विवशता को दर्शाते हुए कहा।

"कर्ण! इतना दानवीर है कि वह यह जानते हुए भी कि कवच कुण्डल क्यों मांगे जा रहे हैं, वह सहर्ष दे देगा। आप निश्चिन्त रहिए कि इससे आपकी महानता पर आंच नहीं आने वाली। क्योंकि आप जो कुछ करेंगे वह धर्म व आपकी रक्षा के लिए ही करेंगे और

आपके कार्य से अधर्म तथा अन्याय का पक्ष कमजोर होगा।"—श्री कृष्ण ने समझाते हुए कहा।

"क्या आप इस कार्य को किसी दूसरे के द्वारा नहीं करा सकते ? कर्ण यह थोडे ही देखता है कि याचक छोटा है वडा। कोई साधारण व्यक्ति भी यदि उक्त याचना करेगा, तो वह उसे निराश नही लौटाएगा।"—इन्द्र ने कहा

"बात इतनी सी ही होती तो आपको कष्ट नहीं दिया जाता—श्री कृष्ण ने कहा—सवाल तो एक और भी गम्भीर है, वह यह कि कर्ण की शुभ प्रकृति के कारण आपका एक देवता, जिसने उसे कवच व कुण्डल दिये थे, उसकी रक्षा में रहता है। यदि कोई साधारण व्यक्ति जायेगा, तो कदाचित वह देवता विघ्न उत्पन्न कर देगा और हम सफल नही हो सकेंगे। इसीलिए आपको स्मरण किया है।"

इस प्रकार श्री कृष्ण ने इन्द्र को बाध्य कर दिया कि वही याचक बन कर जाये। वासुदेव होने के कारण इन्द्र उनकी आज्ञा का पालन करने को विवश था। वह वहा से याचक का वेष धारण करके चल पडा।

उधर उस देवता को भी इस बात का पता चल गया कि इन्द्र याचक बन कर कर्ण से कवच तथा कुण्डल मागने जा रहा है। उसने कहा :—

आग बन कर तू चला है मैं हवा हो जाऊंगा।
रोग बन कर तू चला है मैं दवा हो जाऊगा।

और वह इन्द्र के पहुचने से पूर्व ही कर्ण के पास पहुच गया और जाकर कहा--"सावधान, कर्ण ! सावधान !"

"क्यो क्या बात है ?" विस्मित होकर कर्ण ने पूछा।

"अभी ही एक याचक आयेगा—वह देवता बोला—वह आप से दैवी कवच कुण्डल मागेगा, आप कही उसे कवच कुण्डल मत दे बठना।"

कर्ण ने कहा—"यह भला कैसे सम्भव है, कि कोई याचक आये तथा मुझ से किसी वस्तु की याचना करे, और मै उसे इकार कर दू। यह तो मेरे स्वभाव के ही प्रतिकूल है। नही, मैं उसे निराश नही कर सकता।"

"कर्ण ! आप नहीं जानते कि वह कौन है ?"

'कोई भी हो।"

"वह देवराज इन्द्र है श्री कृष्ण ने उसे भेजा है।"

"यह तो और भी अच्छी बात है कि देवराज इन्द्र याचक बन कर मेरे पास आ रहा है मैं उसे कदापि निराश नही करूंगा।"

"परन्तु एक तरफ से वह तुम्हारा जीवन ही तुम से मांग रहा है।"

"प्राणों के रक्षक वस्त्रों की ही नही, वह चाहे मुझ से प्राण भी मांग ले, मैं सहर्ष दे दूंगा। यही तो मेरी प्रतिज्ञा है।"

कर्ण का उत्तर सुनकर वह देवता अवाक् रह गया। बहुत समझाया, पर कर्ण न माना। बेचारा निराश होकर चला गया, और सोचता रहा—"यह तो स्वामी हो जा रहा है, अब मैं क्या कर सकता हूं कोई दूसरा होता तो उसे जाने ही न देता।"

× × × ×

इन्द्र याचक के वेश मे पहुचे। कर्ण ने बढा कर आदर सत्कार किया। फिर पूछा—"कहिए क्या चाहिए ?"

इन्द्र बोले—"कर्ण ! मैंने आपकी दानवीरता की बडी प्रशसा सुनी है। यदि यह सत्य है कि आप किसी को निराश नही करते तो कृपया अपने दैवी कवच कुण्डल मुझ प्रदान कीजिए।"

सुनते ही कर्ण ने कवच उतारना आरम्भ कर दिया। कुण्डल भी उतार डाले और इन्द्र को देते हुए बोले—'और कुछ ? कुछ और चाहिए तो वह भी माग लो "

अरे इन्द्र कवच और कुण्डल तो क्या वस्तु है तुम जाओ और श्री कृष्ण की सम्मति लेकर आओ और तुम मेरे प्राण मांगो देखो मैं देता हू या नही। कर्ण ने हार्दिक प्रसन्नता के साथ कहा।

कर्ण की दानवीरता को देखकर इन्द्र मन ही मन लज्जित हुए। उन्हे खेद हुआ कि ऐसे महापुरुष से मैंने उसके प्राण ही मांग लिए। वे बोले—"कर्ण ! जानते हो मैं कौन हूं ?"

"हा, जानता हू, तुम याचक हो।

"नही, मैं इन्द्र हू।"

"गलत, बिल्कुल गलत ! तुम इन्द्र कैसे ? इन्द्र तो मैं हूं। तुम तो याचक हो।"

"नही, मैं याचक के रूप मे भले ही हू पर हूं देवता ही।"

"नही, नही, इन्द्र तो मैं हूं, जो तुम्हे दान दे रहा हू। तुम इन्द्र कैसे ? तुम तो मेरे सामने हाथ फैला रहे हो।"

इन्द्र लज्जित हो गए और मन ही मन कहा—"हां, कर्ण तुम वास्तव मे इन्द्र से भी महान हो।"

इन्द्र ने तब सोचा कि ऐसे महापुरुष के साथ मुझे अन्याय नही करना चाहिए। और उन्होने कहा—"कर्ण ! तुम चाहो तो मुझ से कुछ मांग सकते हो।"

कर्ण ने हस कर कहा—"तुम भला मुझे क्या दे सकते हो। मैं याचक से कुछ मांगू यह मुझे शोभा नहीं देता। मैं देना जानता हूं, मांगना नही।"

इन्द्र ने बहुत चाहा कि कर्ण कुछ मागे, पर उसने स्वीकार न किया, तब वे स्वय ही बोले—"लो मैं तुम्हे एक शक्ति देता हूं, जो युद्ध मे किसी भी महान योद्धा को मार सकती है। पर एक ही योद्धा का बध इस से हो सकेगा। तुम चाहो तो किसी पर भी इसे प्रयोग कर सकते हो।"

कर्ण ने हस कर कहा—"मुझे तुम कुछ न दो तो ही अच्छा है। क्या पता तुम पुन: याचक रूप धारण करके आओ और इस शक्ति को भी वापिस ले जाओ"

"नही, ऐसा नही होगा।"

यह कहकर इन्द्र ने वह शक्ति वहीं फेंक दी और वहां से चल पड़े। जाकर कवच कुण्डल श्री कृष्ण को दिए और कहा—"वासुदेव ! मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि उस महापुरुष के साथ मेरे द्वारा अन्याय हुआ है। वास्तव मे कर्ण बहुत ही महान पुरुष है। उसकी समता करने वाला ससार में कोई नहीं।"

× × × ×

इधर दोनों ओर की सेनाएं रण क्षेत्र में पहुंच गईं। सेनापतियों ने अपनी अपनी सेना को क्रम से खड़ा किया और आवश्यक हिदायतें करके शख बजाए। कल जो घायल हुए थे, उन मे से भी अधिकतर आज रण क्षेत्र मे लड़ रहे थे। कौरवों की ओर से युद्ध आरम्भ होते ही सशप्तकों (त्रिगर्त देशीय वीरों) ने आज पुनः अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा। दक्षिण दिशा की ओर खड़े सशप्तकों की चुनौती अर्जुन ने स्वीकार की और अपना रथ बढ़ाते हुए उधर चल पड़ा।

निकट जाकर उसने कहा—"तो तुम लोग यमलोक सिधारने के लिए बेताब हो रहे हो।"

सुशर्मा गरज वडा—"तनिक दो दो हाथ करलें तब तुम्हें पता चले कि कौन यमलोक सिधारता है।"

अर्जुन ने गाण्डीव उठाया और वाण वर्षा आरम्भ कर दी, संशप्तक भी टिड्डी दल की भांति अर्जुन पर टूट पड़े। घोर संग्राम छिड़ गया।

अर्जुन के दक्षिण की ओर चले जाने पर द्रोणाचार्य ने अपनी सेना की चक्र व्यूह मे रचना की। यह देख कर पाण्डव सेना का सेनापति धृष्टद्युम्न चिन्तित हो उठा। उसने जाकर युधिष्ठिर से कहा—"राजन्! आज बड़ी विकट समस्या आ गई। द्रोण ने आज चक्र व्यूह रचा है। उसे कौन तोड सकेगा?"

इतने ही मे द्रोण ने धावा बोल दिया। युधिष्ठिर की ओर से भीम, सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, कुंतिभोज, उतमौजा, विराट राज, कैकेय वीर आदि कितने ही महारथी थे। परन्तु चक्र व्यूह मे व्यवस्थित द्रोण की सेना के धावे को उन सभी सर्व विख्यात महारथियो मे से कोई न रोक पाया। सभी जी तोड प्रयत्न कर रहे थे, भीमसेन कभी धनुष उठाता, तो कभी गदा लेकर चलता। धृष्टद्युम्न कभी किसी ओर से आक्रमण करता, तो कभी किसी ओर से व्यूह तोडने का प्रयत्न करता, पर जहा भी जाता, अपने को घिरा पाता। यह दशा देखकर युधिष्ठिर चिन्तित हो उठे। सैनिकों को मोर्चे पर लगाकर उन्होने भीमसेन, नकुल और सहदेव को अपने पास बुलाया। बोले—"आज लगता है हमारी पराजय का दिन आ गया। द्रोणाचार्य ने ऐसे चक्र व्यूह की रचना की है कि हम में से सिवाय अर्जुन के और कोई इसे तोडने की विधि नही जानता। जिधर से हमारे महारथी, इस व्यूह को तोडने की चेष्टा करते हैं उसी ओर से अपने को घिरा पाते हैं। हमारे सभी किये कराये पर पानी फिरना चाहता है। अब क्या किया जाये?"

भीमसेन ने कहा—"महाराज! मैं अपने सभी अस्त्र प्रयोग कर चुका परन्तु इस व्यूह का तो रास्ता ही दिखाई नहीं देता। ऐसा चक्र है कि जिधर से जाता हूं उसी ओर से टिड्डी दल की भांति सैनिक और महारथी टूट पड़ते हैं। मैं स्वय निराश हो चुका हूं।"

नकुल ने कहा—"राजन् ! आज लक्षण अच्छे नहीं दिखाई देते। मैं स्वय विस्मित हूं कि यह व्यूह है तो कैसा ? एक ऐसा चक्करदार किला द्रोणाचार्य ने बनाया है कि हम कुछ कर ही नही पाते।"

सहदेव भी बोला—"महाराज ! मुझे तो लगता है कि यह जो कुछ हो रहा है। दुर्योधन और द्रोणाचार्य के पहले से सोचे समझे षडयन्त्र के अन्तर्गत है। द्रोणाचार्य को ज्ञात है कि चक्रव्यूह को तोडना हम मे से कोई नही जानता, जो जानता है, उसे पहले ही हम से अलग कर दिया गया है।"

युधिष्ठिर को आशा थी कि भाईयो मे परामर्श करके कोई न कोई उपाय निकल आयेगा, परन्तु उन सब की बातो से भी वे निराश ही हुए। अन्त मे सिर पकड कर बैठ गए और शोक विह्वल होकर कहने लगे—"हाय ! मैंने समझा था कि यह युद्ध हमारी विपत्तियो को समाप्त कर देगा, परन्तु अब तो यह दीख रहा है कि यह सब कुछ हमारे नाश का सामान हो रहा है। और इस नाश के बीज को बोने वाला मैं ही। मेरे ही कारण हमारे कुल के महान पितामह का वध हुआ, मेरे ही कारण भरत क्षेत्र के असख्य योद्धा मौत के घाट उतरे। मैं ही विनाश का कारण हूं। हा देव ! अपना विनाश होते मैं कैसे देख सकता हू। इस से तो अच्छा है कि मेरे जीवन ही का अन्त हो जाये।"

भीमसेन ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर को इस प्रकार विचलित होते देखकर बडा दुखी हुआ और सान्त्वना देते हुए बोला—"महाराज ! अब पश्चाताप से क्या लाभ। आपका इस मे क्या दोष ? दुष्ट दुर्योधन के षडयन्त्रो मे हम लोग फसते रहे और विपत्तियो मे पडते रहे। आज भी उसी दुष्ट के जाल मे फसे हैं। पर कोई विपत्ति सदैव नही रहती। समस्त महान आत्माओ का कथन है कि युद्ध में आप ही की विजय होगी। आप सन्तोष करके हमें प्रयत्न करते रहने का आदेश दीजिए। जब तक मेरे शरीर मे प्राण हैं, मैं आपकी पराजय नही होने दूगा।"

"भैया ! तुम से मुझे यही आशा है, पर भेडिया धसान से क्या लाभ ? मैं तुम्हे बिना मौत मरवाकर कैसे सुखी रह सकता हू ? और जब राज्य व सम्पत्ति को भोगने वाले मेरे भाई ही नहीं

रहेंगे तो मैं इस राज्य को लेकर क्या करूंगा? इस लिए मैं तुम्हारे प्राणों की आहुति दिलाना नहीं चाहता।"—युधिष्ठिर गम्भीरता पूर्वक बोले।

"राजन्! शत्रु की सेनाएं आगे बढ़ रही हैं, वह देखिए हमारे सैनिक मिट्टी के पुतलों की भांति ढहते चले जा रहे हैं। द्रोणाचार्य के रथ से बार-बार विजय शंख की ध्वनि आ रही है। हमारी सेना का मनोबल गिर रहा है। अब बातें करने से काम न चलेगा। चलिए सब मिलकर टूट पड़ें। जिएं या मरें, पर हम जीते जी दुष्ट दुर्योधन के हाथ में विजय पताका नहीं देख सकते।"—नकुल ने उत्साह पूर्वक कहा।

युधिष्ठिर ने पुनः दुःख प्रगट करते हुए कहा—"मुझे पराजय या विजय की इतनी चिन्ता नहीं, चिन्ता इस बात की है कि मेरा प्रिय भ्राता अर्जुन, जिस पर हमें गर्व है, मेरे लिए अपने प्राणों की बाजी लगा रहा है, यदि कहीं शत्रुओं की विजय हो गई तो हम उस वीर को क्या उत्तर देंगे? ......हा शोक!! आज रण क्षेत्र में मुझे यह भी दिन देखना पड़ा?"

युधिष्ठिर सिर पकड़े दुःख प्रगट कर ही रहे थे कि उधर से अर्जुन पुत्र अभिमन्यु आ निकला, जिसने बाल्यावस्था में ही गत १२ दिन में वह पराक्रम दिखाया था कि शत्रु उससे उसी प्रकार कांपते थे जैसे अर्जुन से। सभी कहते थे कि अभिमन्यु, श्री कृष्ण और अर्जुन से किसी बात में कम नहीं। वह आया और आते ही युधिष्ठिर को प्रणाम किया, फिर विस्फारित नेत्रों से सभी पर दृष्टि डाली उन्हें देखते ही उसके विस्मय का ठिकाना न रहा। उसने कहा—"महाराज! आप लोग इस समय किस सोच में बैठे हैं? आपके चेहरों से तो लगता कि आप पर कोई भारी विपत्ति आ गई है। या कोई भयानक घटना घटी है। आप किस का शोक मना रहे हैं? उधर शत्रु सेना प्रलय मचाती चली आ रही है। हमारे महारथी तक कान टेक गए। और इधर आप शोकावस्था में बैठे आंसू बहाते से दीख पड़ रहे हैं? क्या कारण है? कुछ मैं भी तो जानूं।"

युधिष्ठिर ने गरदन उठाई और उसे अपने पास बुलाकर कहा—"बेटा! तुम्हारी वीरता ... जितना भी गर्व करें कम

ही है। बारह दिन तक तुमने जिस पराक्रम का प्रदर्शन किया, उस ने हमें भी आश्चर्य में डाल दिया है। तुम ने बड़े बड़े विख्यात योद्धाओं के दांत खट्टे कर दिए हैं। तुम्हारे अन्दर उत्साह है, बल है और कौशल है। ठीक है हमें इस समय इस प्रकार देखकर तुम्हें आश्चर्य हुआ होगा। पर बेटा! दुःख है कि आज हमारे और तुम्हारे बारह दिन के सफलता पूर्ण युद्ध के कारनामे पर पानी फिर रहा है।"

"क्यों क्या हुआ?" आश्चर्य से अभिमन्यु ने कहा। "बात यह है कि दुष्ट दुर्योधन के कुचक्र में फिर एक बार हम फंस गए हैं। आज द्रोणाचार्य ने चक्र व्यूह रचा है, परन्तु उस में प्रवेश करने और उसे तोड़ने की विधि हम में से कोई नहीं जानता। और अर्जुन जानता था, पर वह तो दक्षिण की ओर संशप्तकों से लड़ने गया है। यही वह समस्या है जिसके कारण हम दुखित हैं। कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करें? आज हमारी पराजय निश्चित है।"—युधिष्ठिर ने बड़े प्रेम से अभिमन्यु को समझाया।

अभिमन्यु ने छाती तानकर कहा—"पिता जी यहां नहीं तो क्या हुआ, उनका पुत्र तो यहां है।"

युधिष्ठिर की आंखों में तुरन्त चमक आ गई। हर्षातिरेक से पूछा—"क्या तुम जानते हो चक्र व्यूह तोड़ना?"

"मैं चक्र व्यूह में प्रवेश करना तो जानता हूं परन्तु प्रवेश करने के उपरान्त कहीं कोई संकट आ जाये तो व्यूह से बाहर निकलने की विधि मुझे ज्ञात नहीं"—नम्र शब्दों में अभिमन्यु बोला।

भीम को अभिमन्यु की बात से बड़ी प्रसन्नता हुई, उस ने कहा—"प्रवेश करने के उपरान्त संकट की तुम ने एक ही कही। मैं जो तुम्हारे साथ रहूंगा।"

युधिष्ठिर बोले—"हां, हां हम सभी तुम्हारे पीछे पीछे चलेंगे व्यूह को तोड़कर एक बार तुम प्रवेश कर लो, फिर तो जिधर से तुम आगे बढ़ोगे, हम तुम्हारे पीछे पीछे चले आवेंगे और तुम्हारी सहायता को तैयार रहेंगे।"

भीमसेन ने पुनः कहा—तुम्हारे ठीक पीछे मैं रहूंगा। उस समय तुम्हारे अंगरक्षक जैसा काम करूंगा और धृष्टद्युम्न, सात्यकि,

आदि वीरों को भी साथ लेलेंगे, वे सब अपनी अपनी सेनाओं सहित तुम्हारा अनुकरण करेंगे। एक बार तुम ने व्यूह तोड़ दिया, तो फिर यह निश्चित समझो कि हम सब कौरव सेना को तहस नहस करके छोड़ेंगे।

युधिष्ठिर ने तब कुछ सोचकर कहा—'लेकिन तुम्हें कुछ हो गया तो मैं अर्जुन भैया को क्या उत्तर दूंगा। नहीं, यह ठीक नहीं है। मैं अपनी विजय की कामना के लिए, तुम्हें संकट में नहीं डाल सकता।"

"महाराज! आप क्यों ऐसी चिन्ता करते हैं। मैं अपने मामा श्री कृष्ण और अपने पिता को दिखा दूंगा कि उनकी अनुपस्थिति में मैं उनके कार्य को पूर्ण कर सकता हूं। अपने पराक्रम से मैं उन्हें प्रसन्न कर दूंगा" बड़े जोश के साथ अभिमन्यु ने श्री कृष्ण और अर्जुन की वीरता को स्मरण करके कहा।

'हां, हां ठीक है। अभिमंन्यु अपने पिता के अनुरूप ही है। और हम जो साथ होंगे: तो इस पर संकट हो कैसे सकता है। मैं अपनी गदा से एक-एक कौरव को मौत के घाट उतार दूंगा।"—भीमसेन ने उत्साह दर्शाते हुए कहा।

युधिष्ठिर ने आशीर्वाद देते हुए कहा—"बेटा! तुम्हारा बल हमेशा बढ़ता रहेगा। तुम यशस्वी होवोगे।"

अभिमन्यु का वध

युधिष्ठिर चाहते थे कि अभिमन्यु को किसी संकट में न डाला जाय अतः उन्होंने धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, भीमसेन, सात्यकि, नकुल और सहदेव आदि सभी महारथियों को साथ लेकर एक विशाल सेना सहित अभिमन्यु का अनुकरण करना आरम्भ किया।

अभिमन्यु गर्व के साथ अपने रथ पर सवार होकर द्रोण की चक्रव्यूह मे व्यवस्थित सेना की ओर बढ़ा। उसने अपने सारथि को उत्साहित करते हुए कहा—"सुमित्र! वह देखो द्रोण के रथ की ध्वजा। बस उसी ओर रथ बढ़ाओ। जल्दी करो।"

सारथि ने अभिमन्यु की आज्ञा पाकर रथ को तीव्र गति से उसी ओर हांकना आरम्भ कर दिया। परन्तु रथ की गति से अभिमन्यु सन्तुष्ट न हुआ। उसने रथ को तेजी से हांकने के लिए पुनः सारथि को उकसाया। उत्साह मे आकर वह बार-बार कहने लगा —"सुमित्र चलाओ, और तेज चलाओ।"

सारथि ने घोड़ों को तेजी से हांकते हुए नम्र भाव से कहा —"भैया! चक्र व्यूह तोड़ना, वह भी द्रोणाचार्य जैसे रण चातुर्य में पारंगत विद्या भास्कर द्वारा रचित, बड़ा ही जटिल कार्य है। तुम्हें महाराज युधिष्ठिर ने बड़ा ही भारी काम सौंप दिया है। द्रोणाचार्य अस्त्र विद्या के महान आचार्य हैं और महाबली हैं। आप तो उनके सामने अवस्था में अभी बिलकुल बालक समान ही हैं। इस लिए एक बार पुनः सोच लीजिए, ऐसा न हो कि ...."

अभिमन्यु सारथि की बात सुन कर हंस पड़ा और बोला— "सुमित्र! तुम जानते हो कि मैं वासुदेव श्री कृष्ण का भानजा और सर्व विख्यात धनुर्धारी वीर अर्जुन का पुत्र हूं। मेरी रगों में वह रक्त दौड़ रहा है कि भय और आशंका तो मेरे पास भी नहीं फटक सकते। तुम जिन्हें महाबली कह रहे हो इस की सारी सेना को मिला कर भी मेरा बल उन से अधिक है। और फिर कुल नायक को चिन्तित पड़ा देख कर मैं चुप रह जाऊं यह मुझ से नहीं होगा। तुम चिन्ता मत करो। बस तेज चलाओ। मुझे शीघ्र ही उस ओर पहुंचादो।"

अभिमन्यु की आज्ञा मान कर सारथि ने उसी ओर रथ बढ़ा दिया। पीछे पीछे अन्य पान्डव वीरों के रथ और उन के सैनिक थे।

× × × ×

आकाश में सूर्य चमक रहा था, उसकी किरण अग्निबाणों की भांति पृथ्वी पर बरस रही थीं, इधर अभिमन्यु का रथ बडे वेग से कौरव सेना की ओर बढ़ रहा था। तीन तीन वर्ष की आयु के बड़े ही सुन्दर, चचल और वेगवान घोड़े, अभिमन्यु के सुनहरे रथ मे जुते थे। अभिमन्यु की भांति उन में भी उत्साह था। मानो वे भी शीघ्र ही कौरव सेना मैं पहुंच कर उन के चक्र व्यूह को तोड डालने के लिए उत्सुक हों।

अभिमन्यु का रथ ज्यों ही कौरव सेना के व्यूह के निकट पहुंचा कौरव सेना मे हल चल मच गई। "—वह देखो अर्जुन पुत्र अभिमन्यु आ रहा है।" बहुत से सैनिक अभिमन्यु के रथ की ओर संकेत कर के एक साथ चीख उठे।

कुछ दूसरे सैनिक चिल्लाए—"और उस के पीछे पाण्डव-वीर अपनी सेना सहित बड़ी तेजी से बढ़े चले आ रहे हैं।"

"अर्जुन न सही अभिमन्यु ही आज प्रलय मचा देगा।" किसी ने आशंका प्रकट करते हुए कहा।

"अजी! द्रोणाचार्य ने आज वह व्यूह रचा है कि अभिमन्यु जैसे कल के छोकरे को तो प्रवेश मार्ग का पता भी नहीं चलेगा।" एक सैनिक बोला।

"वह भी सिंहनी का एक केहरी ही है देखो तो किस शान से चला आ रहा है।" दूसरे ने कहा।

कर्णिकार वृक्ष की ध्वजा लहराते हुए अभिमन्यु के रथ के

संतालीसवां परिच्छेद

अभिमन्यु का वध

युधिष्ठिर चाहते थे कि अभिमन्यु को किसी संकट में न डाला जाय अतः उन्होंने धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, भीमसेन, सात्यकि, नकुल और सहदेव आदि सभी महारथियों को साथ लेकर एक विशाल सेना सहित अभिमन्यु का अनुकरण करना आरम्भ किया।

अभिमन्यु गर्व के साथ अपने रथ पर सवार होकर द्रोण की चक्र व्यूह में व्यवस्थित सेना की ओर बढ़ा। उसने अपने सारथि को उत्साहित करते हुए कहा—"सुमित्र! वह देखो द्रोण के रथ की ध्वजा। बस उसी ओर रथ बढ़ाओ। जल्दी करो।"

सारथि ने अभिमन्यु की आज्ञा पाकर रथ को तीव्र गति से उसी ओर हांकना आरम्भ कर दिया। परन्तु रथ की गति से अभिमन्यु सन्तुष्ट न हुआ। उसने रथ को तेजी से हांकने के लिए पुनः सारथि को उकसाया। उत्साह में आकर वह बार-बार कहने लगा —"सुमित्र चलाओ, और तेज चलाओ।"

सारथि ने घोड़ों को तेजी से हांकते हुए नम्र भाव से कहा —"भैया! चक्र व्यूह तोड़ना, वह भी द्रोणाचार्य जैसे रण चातुर्य में पारंगत विद्या भास्कर द्वारा रचित, बड़ा ही जटिल कार्य है। तुम्हें महाराज युधिष्ठिर ने बड़ा ही भारी काम सौंप दिया है। द्रोणाचार्य अस्त्र विद्या के महान आचार्य हैं और महाबली हैं। आप तो उनके सामने अवस्था में अभी बिलकुल बालक समान ही हैं। इस लिए एक बार पुनः सोच लीजिए, ऐसा न हो कि ...."

तो वह स्वयं ही जोश में आकर बाल वीर से जा भिड़ा। परन्तु दुर्योधन को क्रुद्ध होकर अपने सामने आया देख कर अभिमन्यु की वाछें खिल गई। बड़े जोश से बोला—"आईये! महाराज मैं आप ही की सेवा के लिए तो यहां आया हूं। अभी तक आप कहां छुपे हुए थे?"

दुर्योधन की कनपटी जलने लगीं, आवेश में आकर बोला—"क्यों रे छोकरे! कुछ सैनिकों पर तेरा वार क्या चल गया तू होश ही खो बैठा। सिंह की मांद में आकर भी छाती तानता है। ठहर अभी ही तुझे बताता हूं।"

कह कर दुर्योधन अभिमन्यु की ओर झपटा, पर इस से पहले कि वह कोई वार कर सके, अभिमन्यु के बाण उसकी ओर फुफकारे नागों की भांति झपटे।

"ओह! तू तो सिपोलिया है।"—इतना कह कर दुर्योधन वहीं रुक गया और बाण बरसाने लगा परन्तु अभिमन्यु के बाणों के आगे उस के बाण कुछ न कर पाये। दुर्योधन कितनी बार दिशा बदल बदल कर वार करने का प्रयत्न करता रहा, परन्तु अभिमन्यु दुर्योधन के बाणों को बीच ही में काटता रहा। इस प्रकार दोनों में घोर युद्ध छिड़ गया। अभिमन्यु के प्रहारों को देख कर कौरव सैनिकों को शंका होने लगी कि कहीं महाराज दुर्योधन बालक के हाथों ही न मारे जायें। भयभीत होकर सैनिक शोर मचाने लगे।

द्रोणाचार्य को जब पता चला कि दुर्योधन अभिमन्यु से जा भिड़ा है और वह वीर बालक दुर्योधन का नाकों दम किए हुए है। उन्हें बड़ी ही चिन्ता हुई और तुरन्त कुछ वीरों को आदेश दिया कि वे जाकर शीघ्र ही दुर्योधन की रक्षा करें। जैसे भी हो दुर्योधन को उस सिंह-शिशु के पंजे से सुरक्षित छुड़ा लें। आदेश पाते ही कितने ही वीर दुर्योधन की सहायता के लिए दौड़ पड़े।

दुर्योधन अपनी सी बहुत कोशिशें कर रहा था कि किसी प्रकार अभिमन्यु के चक्कर से निकला जाये पर वह वीर बालक उसे होश लेने दे तभी तो दुर्योधन निकले। इतने में ही द्रोणाचार्य की कुमक वहां पहुंच गई। जब एक साथ कितने ही वीरों ने दुर्योधन की रक्षा करनी आरम्भ कर दी, तो दुर्योधन को बड़ा सन्तोष हुआ। सभी वीर बड़े परिश्रम से अभिमन्यु से युद्ध करने लगे, परन्तु अभि-

कौरव सेना के निकट पहुंचते ही, एक बार तो कौरव सैनिकों के दिल दहल गए। सभी मन ही मन सोचने लगे—"वीरता में अभिमन्यु अर्जुन से किसी प्रकार कम नहीं। आज के युद्ध में देखना ही चाहिए।"

—और अभिमन्यु का रथ घड़ घड़ाता हुआ ऐसे आ धमका जैसे छलांग लगा कर सिंह अपने शिकार के सिर पर आ धमकता है। एक मुहूर्त के लिए तो कौरव सेना की वह गति हो गई जैसे बिजली टूटने पर भयभीत असहाय मनुष्य की हो जाती है। आन की आन में अभिमन्यु का रथ आया और बड़े वेग से आक्रमण कर के उस ने अपने लिए मार्ग बना लिया। बड़े यत्न से बनाया हुआ द्रोणाचार्य का व्यूह देखते ही देखते टूट गया और अभिमन्यु ने व्यूह में प्रवेश कर लिया।

जैसे तूफान के सामने आने वाली चट्टानें भी ढहती चली जाती है। इसी प्रकार अभिमण्यु के सामने जो भी कौरव वीर आया वही यमलोक कूच करता गया। जैसे आग में पड़ कर पतगे भस्म हो जाते हैं उसी प्रकार अभिमन्यु की गति को रोकने की चेष्टा करने वाले कौरव वीर अभिमन्यु के शौर्य की ज्वाला में भस्म हो गए शवों और नर मुन्डों के ढेरों पर से उतरता हुआ अभिमन्यु का रथ आगे ही बढता गया। शिशु सिंह का प्रत्येक बाण यमदूत बन कर निकलता जिस पर पड़ता उसी के प्राण लेकर छोड़ता। जिधर से उसका रथ निकलता उधर ही सैनिकों के शव भूमि पर बिछ जाते यहां तक कि पैर रखने को स्थान न मिलता। जिधर दृष्टि जाती उधर ही धनुष वाण, ढाल, तलवार, फरसे, गदा, अंकुश, भाले, रास, चाबुक, शख, नर मंड, कटे हुए मानव अंग, फटे कवच, रथों के टुकड़े आदि बिखरे पड़े थे। कटे हुए हाथों, फटे सिरो, कुचली हुई खोपड़ियों, हाथ पाव विहीन धड़ों आदि इस प्रकार बिछ गए कि भूमि दिखाई ही नहीं देती थी। कौरव सैनिक जान हथेली पर रख कर आते, परन्तु क्षण भर में वे यमलोक सिधार जाते। यह दशा देख कर कौरव सैनिक भय विह्वल होकर इधर उधर भागने की चेष्टा करने लगे।

द्रोण के व्यवस्थित व्यूह की यह दुर्दशा देख कर दुर्योधन विक्षुब्ध हो उठा। उस ने अपने सनिकों को फटकारना आरम्भ कर दिया और जब उसकी फटकारो से भी सैनिकों को उत्साह न आया

रथों पर चढकर एक साथ ही उस पर हल्ला बोल दिया। इसी बीच अश्नख नासक एक राजा बड़ वेग से अभिमन्यु के सामने पहुंचा और जाकर भीषण प्रहार करने लगा। अपने बाणों से अभिमन्यु ने उसके वेग को रोक दिया और दो ही बाणों की मार से उसका शरीर आहत होकर रथ से नीचे लुढक गया। क्रुद्ध होकर कर्ण ने तब बाण वर्षा आरम्भ की और मुकाबले पर जा डटा। अभिमन्यु ने कर्ण को देखा तो तनिक सा मुस्करा कर बोला—"पिता से पराजित होने की कामना छोडकर पुत्र के हाथों अपनी मिट्टी खराब कराने आये हो तो लो।"

बस बाण वर्षा आरम्भ कर दी, उसके अभेद्य कवच को तोड़ डाला और काफ़ी परेशान किया। कर्ण की बुरी दशा देख दूसरे वीर आ डटे, पर सभी को अभिमन्यु ने अधिक देर तक न टिकने दिया। कितने ही वीरों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। मद्रराज शल्य भी बुरी तरह घायल हुए, और अपने रथ पर ही अचेत पड़ गए। यह देखकर मद्रराज का छोटा भाई क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गया और गरज कर बोला—"अभिमन्यु अब सम्भल। देख मैं तेरा काल बनकर आता हू" इतना कहकर वह अभिमन्यु की ओर झपटा, परन्तु अभिमन्यु ने उसके रथ को तोड़ डाला और अन्त में यह कहकर कि—"जा तू भी, मृत्यु को प्राप्त हो।" एक बाण मारा जो उसके सिर को दो भागो मे विभाजित करते हुए दूर निकल गया।

अपने मामा श्री कृष्ण और पिता वीर अर्जुन से सीखी अस्त्र विद्या को काम मे लाकर कौरव दल के लिए सर्वनाश का दृश्य प्रस्तुत करने वाले अभिमन्यु की वीरता तथा रण कौशल को देखकर द्रोणाचार्य मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। वे गदगद हो उठे। और कृपाचार्य को सम्बोधित करके कहने लगे – 'मुझे सन्देह है कि अर्जुन भी इस वीर के समान पराक्रम दिखा सकता है।"

द्रोण ने मुग्ध होकर यह शब्द कहे थे, जो दुर्योधन ने भी सुन लिए। अभिमन्यु की प्रशंसा द्रोण के मुंह से सुनकर दुर्योधन को बड़ा क्रोध आया। कहने लगा—"आचार्य को अर्जुन से कितना स्नेह है, यह उसके पुत्र की प्रशंसा सुनकर ही कोई समझ सकता है। अभिमन्यु ठहरा उनके परम शिष्य का पुत्र। फिर आचार्य उसका

मन्यु इतने वीरों के मुकाबले पर आने के पश्चात तनिक भी विचलित न हुआ। वह उसी तरह बहादुरी से लडता रहा। यह देख कर दुर्योधन सहित सभी कौरव-वीर चकित रह गए और मन ही मन उसकी प्रशंसा करने लगे।

कौरव वीर जो जान तोड कर लड रहे थे, इस घोर युद्ध में दुर्योधन का दाँव चल गया, और वह वहां से बच निकला। और "खैर से बुद्धु घर को आये" की कहावत चरितार्थ करता हुए, वह अपने प्राणों की खैर मनाते हुए वहाँ से चला गया।

जब अभिमन्यु ने अपने सामने के योद्धाओं में दुर्योधन को न पाया, तो वह पश्चाताप करते हुए सोचने लगा—"अफसोस हाथ मे आया हुआ शिकार बच कर निकल गया।"

उसे दुःख तो हुआ पर युद्ध करने में शिथिलता न आई। उसी प्रकार वह लडता रहा और सोचता रहा कि शीघ्र ही इन वीरों को मार कर वह दुर्योधन को जा घेरे। उस ने बडे उत्साह से उन्हें मार भगाया और आगे बढा। इसी आशा से कि आगे कहीं न कहीं तो फिर दुर्योधन से सामना होगा और अब की बार वह उसे बच निकलने का अवसर ही न देगा। वह मार काट करता हुआ आगे बढता जा रहा था, पर उसकी चंचल दृष्टि बार बार दुर्योधन को ही खोज रही थी।

कौरव सेना ने जब देखा कि बालक अभिमन्यु प्रलय मचाता हुआ आगे बढा ही जाता है, और यदि यही गति रही तो शीघ्र ही वह समस्त कौरव सेना को मार भगायेगा, तो युद्ध-धर्म और लज्जा को उसने ताण पर रख दिया। और बहुत से वीर इकट्ठे होकर एक साथ चारों ओर से उस वीर बालक पर टूट पड़े। परन्तु जैसे बढती हुई बाढ़ के सामने रेत के असख्य टीले तहस महस होते चले जाते हैं, वर्षा-ऋतु में उफनती नदियां अपनी रेती ले किनारो को ढहाती हुई चली जाती हैं, इसी प्रकार अभिमन्यु अपने सामने आये हुए वीरों को ढहाता, मार काट करता आगे बढ गया। कौरवों की विशाल सेना के मध्य अभिमन्यु मेरु पर्वत की भांति दृढ़ होकर खड़ा था, जो टकराता वहीं टुकड़े टुकड़े हो जाता।

कौरव वीरों में ही हा हा कार मच गया और यह देखकर द्रोण, अश्वत्थामा, कर्ण, शकुनि आदि सात महारथियों ने अपने अपने

कर्ण को जब अभिमन्यु ने खदेड़ दिया, तो कौरवों की पंक्तियां जगह जगह से टूट गईं। सैनिक अपने प्राण लेकर भागने लगे। यह दशा देखकर द्रोणाचार्य को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने सैनिकों को ललकारा, उन्हें रोका और युद्ध के लिए उकसाया। पर जो भी अभिमन्यु के सामने आने का साहस करता वही मारा जाता। वह उस समय उस ज्वाला के समान था, जिसमें कोई भी सैनिक रूपी लकड़ी जाने पर धू धू करके जलने लगती थी।

× × × ×

अभिमन्यु तो उस ओर साक्षात यमराज का रूप धारण किए प्रलय का ताण्डव नृत्य कर रहा है। आओ हम दूसरी ओर लौट चलें। जैसा कि हम पहले कह आये हैं, पाण्डव-वीर अपनी सेना सहित अभिमन्यु के पीछे पीछे आ रहे थे, जब अभिमन्यु ने व्यूह तोड़ कर अपने लिए मार्ग लिया, और कौरव सैनिक उसकी गति को अवरुद्ध करने के लिए उससे युद्ध करने लगे, तो उधर पाण्डव वीरों ने भी व्यूह में घुसने की चेष्टा की। परन्तु उसी क्षण जयद्रथ अपने सैनिकों को लेकर वहां पहुंच गया और उसने पाण्डवों पर भीषण आक्रमण कर दिया। धृतराष्ट्र के भांजे, सिंधु नरेश जयद्रथ के इस साहस पूर्ण कार्य और सूझ को देखकर उस मोरचे के कौरव सैनिकों को उत्साह की लहर दौड़ गई। दूसरी ओर के कौरव सैनिक शीघ्र ही दौड़कर वहां पहुंच गए, जहां जयद्रथ पाण्डव-वीरों का रास्ता रोके खड़ा था। शीघ्र ही व्यूह में आई दरार भर गई। इतने सैनिक वहां पहुंच गए, कि अभिमन्यु ने जिन पंक्तियों को तोड़कर अपने लिए मार्ग बनाया था, वे पूर्ण हो गई और पहले से भी अधिक सुदृढ़ हो गई। पाण्डव वीर जयद्रथ से टक्कर लेने लगे। व्यूह के द्वार पर युधिष्ठिर तथा भीमसेन जयद्रथ से भिड़ गए। भीषण संग्राम हो रहा था, कि युधिष्ठिर ने एक बार भाला फेंक कर जयद्रथ पर मारा, जिससे जयद्रथ का धनुष टूट गया। क्षण भर में ही जयद्रथ ने दूसरा धनुष सम्भाल लिया। और युधिष्ठिर पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी।

भीमसेन ने जयद्रथ के भीषण आक्रमण के उत्तर में बाण बरसाये और उसके रथ की ध्वजा तथा छतरी कट कर रण भूमि में गिर गई। जयद्रथ का धनुष भी टूट गया, फिर भी वह किंचित-

दमन कैसे कर सकते हैं ? वे चाहते तो अब तक भला यह बालक जीता बच सकता था ?"

दुर्योधन का मन अपराधी था, अपराधी जैसे दूसरों की ओर से शंकित रहता है, इसी प्रकार दुर्योधन सदैव ही द्रोण के प्रति सशंक रहता था उसने यह बात कहकर द्रोणाचार्य के मन को अशांत कर दिया। तभी दुःशासन बोला—"राजन् ! द्रोणाचार्य उससे स्नेह रखने के कारण उसे क्षमा कर रहे हैं तो क्या हुआ ? मैं जो हूं। लो मैं अभी ही इस अभिमानी बालक को ठिकाने लगाये देता हूं।"

इतना कहकर वह अभिमन्यु की ओर झपटा। दोनों में घोर संग्राम होने लगा। वे दोनों एक दूसरे को चकमा देते, पैंतरे बदलते और अद्भुत अस्त्रों का प्रयोग करके परास्त करने का प्रयत्न करते रहे। जब बहुत देरि हो गई, युद्ध चलते तो एक बार अभिमन्यु ने क्रुद्ध होकर एक तीक्ष्ण बाण मारा, जिसे खाकर दुःशासन पुनः बाण न चला सका। अचेत होकर अपने रथ में हीं चित गिर पड़ा। उसके चतुर साथी ने दु.शासन की दशा देखकर अपने रण को रण स्थल से दूर ले गया। पराक्रमी दुःशासन की पराजय को देखकर कौरवों मे सर्वत्र भय छा गया और जो थोड़े बहुत पाण्डव सैनिक इस दृश्य को देख रहे थे, वे हर्षातिरेक में अभिमण्यु की जय जयकार करने लगे।

महाबली कर्ण अभिमन्यु की जय जयकार को सुनकर क्रोध से जलने लगा, वह पुनः ताल ठोककर अभिमन्यु के सामने आ डटा। दोनों मे भयंकर युद्ध होने लगा, अन्त मे एक बार अभिमन्यु ने जोर से कहा—"कर्ण ! पहले तो बच गए थे, अब की बार सावधान।"

कर्ण ने उसी क्षण एक भयानक बाण धनुष पर चढ़ाया पर अभिमन्यु ने उसका धनुष ही तोड डाला। कर्ण दांत पीसने लगा, पर अभिमन्यु ने उसे इतना अवकाश ही न दिया कि वह दूसरा धनुष ले सके। तभी कर्ण के भाई सूत पुत्र ने अभिमन्यु पर आक्रमण कर दिया। वह कर्ण का बदला लेना चाहता था, परन्तु अभिमन्यु के एक बाण से ही उसका सिर धड़ से भिन्न होकर पृथ्वी पर गिर गया। लगे हाथों अभिमन्यु ने कर्ण को भी फिर खबर ले ली और कर्ण को अपने प्राण बचाने के लिए अपनी सेना सहित रण क्षेत्र से हट जाना पड़ा।

कर्ण को जब अभिमन्यु ने खदेड़ दिया, तो कौरवों की पंक्तियां जगह जगह से टूट गईं। सैनिक अपने प्राण लेकर भागने लगे। यह दशा देखकर द्रोणाचार्य को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने सनिकों को ललकारा, उन्हें रोका और युद्ध के लिए उकसाया। पर जो भी अभिमन्यु के सामने आने का साहस करता वही मारा जाता। वह उस समय उस ज्वाला के समान था, जिसमे कोई भी सैनिक रूपी लकड़ी जाने पर धू धू करके जलने लगती थी।

× × × ×

अभिमन्यु तो उस ओर साक्षात यमराज का रूप धारण किए प्रलय का ताण्डव नृत्य कर रहा है। आओ हम दूसरी ओर लौट चलें। जैसा कि हम पहले कह आये हैं, पाण्डव-वीर अपनी सेना सहित अभिमन्यु के पीछे पीछे आ रहे थे, जब अभिमन्यु ने व्यूह तोड़ कर अपने लिए मार्ग लिया, और कौरव सैनिक उसकी गति को अवरुद्ध करने के लिए उससे युद्ध करने लगे, तो उधर पाण्डव वीरों ने भी व्यूह में घुसने की चेष्टा की। परन्तु उसी क्षण जयद्रथ अपने सैनिकों को लेकर वहां पहुच गया और उसने पाण्डवों पर भीषण आक्रमण कर दिया। धृतराष्ट्र के भांजे, सिंधु नरेश जयद्रथ के इस साहस पूर्ण कार्य और सूफ को देखकर उस मोरचे के कौरव सैनिको को उत्साह की लहर दौड़ गई। दूसरी ओर के कौरव सैनिक शीघ्र ही दौड़कर वहां पहुच गए, जहां जयद्रथ पाण्डव-वीरो का रास्ता रोके खड़ा था। शीघ्र ही व्यूह मे आई दरार भर गई। इतने सैनिक वहां पहुच गए, कि अभिमन्यु ने जिन पंक्तियो को तोड़कर अपने लिए मार्ग बनाया था, वे पूर्ण हो गई और पहले से भी अधिक सुदृढ़ हो गई। पाण्डव वीर जयद्रथ से टक्कर लेने लगे। व्यूह के द्वार पर युधिष्ठिर तथा भीमसेन जयद्रथ से भिड़ गए। भीषण संग्राम हो रहा था, कि युधिष्ठिर ने एक बार भाला फेंक कर जयद्रथ पर मारा, जिससे जयद्रथ का धनुष टूट गया। क्षण भर में ही जयद्रथ ने दूसरा धनुष सम्भाल लिया। और युधिष्ठिर पर बाणों की वर्षा प्रारम्भ कर दी।

भीमसेन ने जयद्रथ के भीषण आक्रमण के उत्तर में बाण बरसाये और उसके रथ की ध्वजा तथा छतरी कट कर रण भूमि में गिर गई। जयद्रथ का धनुष भी टूट गया, फिर भी वह विचित-

मात्र भी विचलित न हुआ। उसने पुनः एक दूसरा धनुष सम्भाला और भीमसेन पर ही बाण बरसाने लगा, जिससे भीमसेन का धनुष कट कर गिर गया पल भर में ही जयद्रथ के बाणों से भीमसेन के रथ के घोड़े ढेर हो गए। लाचार होकर भीमसेन को अपना रथ छोड़कर सात्यकि के रथ पर चढ़ना पड़ा।

जयद्रथ ने जिस कुशलता से व्यूह की टूटो किले बन्दी को फिर से पूरा करके और वीरता से पाण्डवों को रोके रखकर व्यूह को ज्यों का त्यों बना दिया और पाण्डवों को व्यूह में प्रवेश न करने दिया, इस लिए अकेला अभिमन्यु कुछ सैनिकों सहित ही व्यूह में पहुंच पाया और समस्त पाण्डव-वीर जो संकट के समय अभिमन्यु की रक्षा करने के उद्देश्य से चले थे, व्यूह से बाहर ही रह गए। अभिमन्यु व्यूह में अकेला महाबली होने हुए भी कौरवों का नाश कर रहा था, जो भी उसके सामने आता उसे वह मार गिराता। पाण्डव-वीर बाहर खडे खड़े तो उनका तमाशा देखते रहे या कभी-कभी व्यूह में प्रवेश करने के लिए भीषण आक्रमण करते रहे। परन्तु जयद्रथ वहां से न टला। उसने एक बार ललकार कर कहा भी—"मैं जीते जी अब किसी को भी व्यूह में प्रवेश न करने दूंगा।"

—और हुआ भी यही भीमसेन की गदा, नकुल सहदेव का रण कौशल और अन्य वीरों की चतुरता भी किसी काम न आई।

इधर पाण्डव वीर व्यूह में प्रवेश करने के लिए असफल प्रयत्न कर रहे थे, उधर बालक अभिमन्यु सभी कौरव वीरों और उनकी सेना के बीच खड़ा अपने बाणों से सेना को तहस नहस कर रहा था। दुर्योधन पुत्र लक्ष्मण अभी बालक ही था, बिल्कुल अभिमन्यु की आयु का ही परन्तु अभिमन्यु की भांति उस में भी वीरता फूट रही थी। उसे भय छू तक न गया था। अभिमन्यु की बाण वर्षा से व्याकुल हो कर जब सभी योद्धा पीछे हटने लगे, तो लक्ष्मण से न रहा गया। वह अकेले ही जाकर अभिमन्यु से जा भिड़ा। बालक लक्ष्मण की इस निर्भयता तथा वीरता को देख कर भागती हुई कौरव सेना पुनः इकट्ठी हो गई और बालक लक्ष्मण का साथ देकर लड़ने लगी। उस ने बड़े वेग से अभिमन्यु पर बाण वर्षा करनी आरम्भ करदी, पर वे बाण उसे ऐसे लगे, जैसे पर्वत पर मेघ बूंदे।

दुर्योधन पुत्र अपने अदभुत पराक्रम का परिचय देता हुआ बड़ी वीरता से युद्ध करता रहा। जब बहुत देरि हो गई और

वालक लक्ष्मण ने हार न मानी तो आवेश में आकर अभिमन्यु ने उस पर एक भाला चलाया। केंचुली से निकले सांप की भांति चमकता हुआ वह भाला वीर लक्ष्मण के बड़े जोर से लगा। घुंघराले बालों वाला वह परम सुन्दर बालक भाले की चोट न सह सका बेचारा घायल हो कर भूमि पर लुढ़क गया और देखते ही देखते कुंडल धारी, सुन्दर नासिका व सुन्दर भौंहों वाले उस राजकुमार लक्ष्मण के प्राण पखेरू उड़ गए।

सैनिकों में शोर हुआ—"राजकुमार लक्ष्मण मारा गया। लक्ष्मण काम आया।"

इस शोर को सुन कर विस्मित नेत्रों से दुर्योधन ने भूमि पर तड़प तड़प कर प्राण देते अपने प्रिय पुत्र को देखा। वह आपे से बाहर हो गया। उस के नेत्रों में खून उतर आया, उसका मुख मण्डल प्रातः काल के उदय होते सूर्य की भाँति लाल हो उठा अंग अंग गरम हो गया और चिल्ला कर कहा—"इस दुष्ट अभिमन्यु का इसी क्षण वध करो मार डालो इस संपोलिये को सब मिलकर मेरे पुत्र के हत्यारे को एक क्षण मत जीवित रहने दो।"

आर्त स्वर में हा हा कार कर रहे कौरव सैनिक एक दम अभिमन्यु पर टूट पड़े।

दुर्योधन ने द्रोणाचार्य की ओर देखकर कहा—"अब तो आप को सन्तोष आया आचार्य ! मेरे बेटे को मरवा दिया ना।"

दुर्योधन की बात से द्रोणाचार्य के तन, बदन में आग सी लग गई पर पुत्र शोक का आघात पहुंचने की अवस्था में दुर्योधन को जानकर उन्होंने शांत भाव से कहा—"लक्ष्मण जैसे वीर के वध होने से किसे दुःख न हुआ होगा। पर किया ही क्या जा सकता है। मैं तो अपने प्राण देकर भी उसे बचा सकता तो प्रसन्नता होती।"

"आप तो अभी अभी ऐसे खड़े हुए है, मानो कुछ हुआ ही नही। मैं अभिमन्यु को जीवित नही देखना चाहता आचार्य ! अभी ही सब महारथियों को लेकर उस दुष्ट को मार डालना होगा।"—दुर्योधन ने दांत पीसते हुए चिल्लाकर कहा।

"एक वीर बालक के मुकाबले पर हम सब का जाना तो युद्ध धर्म के विपरीत होगा।" द्रोणाचार्य बोले।

"युद्ध-धर्म, युद्ध-धर्म-जल कर दुर्योधन ने कहा—क्या है आप का युद्ध धर्म। मेरा बेटा मारा गया और आप ने युद्ध धर्म की रट

लगा रक्खी है। आप सेनापति हैं या धर्म गुरू? मुझे अभिमन्यु का सिर चाहिए।"

"ठीक है इस दुष्ट को अभी ही मार डालेंगे।" समस्त महारथी चिल्लाए।

"चलिए! देख क्या रहे हैं वह दुष्ट हमारे सैनिकों को खा जायेगा।"—दुर्योधन पुनः गरजा।

द्रोणाचार्य क्रोध में आकर अश्वत्थामा, वृहद्वल, कृतवर्मा, आदि पाँच महारथियों को साथ लेकर तेजी से अभिमन्यु की ओर बढ़े। और क्षण भर में ही छः महारथियों ने उस वीर बालक को चारों ओर से जा घेरा। अब तक दुर्योधन की आज्ञा पा कर चारों ओर से घरने वाले सैनिकों को अभिमन्यु मौत के घाट उतार चुका था।

कौरव महारथी जी तोड़ कर युद्ध करने लगे। पर अभिमन्यु चारों ओर से प्रहार कर रहे महारथियों का सफलता से मुकाबला करता रहा। उस ने एक बार द्रोण की ओर अबाध गति से बाण बरसाते हुए गरज कर कहा—"आचार्य जी! क्या यही है आप और आप के साथियों की वीरता? आप तो ब्राह्मण है, विद्वद्, धर्म शास्त्रों के ज्ञाता, नीतिवान होकर, अधर्म पर कमर बांध ली? कहाँ गया तुम्हारा युद्ध धर्म?"

कर्ण की ओर बाण बरसाते हुए उसने ताना मारा—"बड़े दानवीर व नीतिवान बनते हो। हारने लगे तो न्याय और धर्म को ही तिलांजलि दे दो? धिक्कार है तुम्हारी वीरता पर। दो चुल्लू पानी में डूब मरो।"

चारों ओर बाण वर्षा करता हुआ वह वीर बालक रथ पर खड़ा नाच सा रहा था। अकेला ही छहों महारथियों का डट कर मुकाबला कर रहा था। अपने बाणों से शत्रुओं के बाण तोड़ता और स्वयं प्रहार कर के उन के नाकों दम कर रहा था। द्रोणाचार्य पूर्ण कौशल का प्रयोग कर के लड़ रहे थे तभी एक बार पुनः अभिमन्यु ने ताना मारा—"तो आप हैं शस्त्र, व युद्ध विद्या के गुरू। दुर्योधन के साथ रह कर लाज, धर्म और नीति सभी बेच खाये। एक बालक को छः महारथियों और उन के सैनिकों ने घेर रखा है। कहाँ है आपकी वह विद्या? कहाँ है आपकी आँखों का पानी? क्या वृद्धा-

वस्था मे सभी भूल गए ? युद्ध धर्म को तिलांजलि देदी है तो कुछ कर के भी दिखाओ।"

व त ठीक थी। उस स्थिति में उसे यही कहना भी चाहिए था। वह अकेला ही छ महारथियों से टक्कर ले रहा था, फिर भी किसी के बाण उस पर असर न कर रहे थे। शत्रुओं से घिरा होने पर भी उस के मुख पर चिन्ता का कोई लक्षण दिखाई न देता था। वह पहले की ही भांति निश्चित हो कर युद्ध कर रहा था। द्रोणाचार्य मन ही मन लज्जित थे, पर लडने पर विवश थे। कर्ण बहुतेरा निशाना बांध कर बाण चलाता पर अभिमन्य तो क्षण क्षण में पैंतरे बदल रहा था। अपने निशाने खाली जाने से वह भी घबरा गया, लज्जित भी हुआ और अन्त में क्रोध भी आया; न जाने अपने पर या अभिमन्यु पर। फिर भी वह लड़ता रहा। कदाचित अकेला उस स्थिति में लडता तो अब तक अभिमन्यु के बाणों से बिंध गया होता आकाश में अपने विमानों पर चढे जो देवता इस महा समर को देख रहे थे अभिमन्यु के पराक्रम, वीरता तथा साहस पर मुग्ध हो गए। उनका मन हुआ कि दौड कर इस वीर बालक को छाती से लगा लें।

तभी कर्ण ने धीरे से द्रोणाचार्य से कहा—"गुरुदेव! यह बालक है या माया मयी योद्धा। किसी तरह मार ही नहीं खाता। कुछ कीजिए गुरुदेव! वरना दुर्योधन हमें अपने वाग्बाणों से बींध डालेगा।"

द्रोण ने कर्ण को उत्तर देते हुए कहा—"बात यह है कि इस ने जो कवच पहन रक्खा है, वह भेदा नही जा सकता। ठीक से निशाना बांध कर इस के घोड़ों की रास काट डालो और पीछे की ओर से इस पर अस्त्र चलाओ।"

कर्ण ने आचार्य के परामर्श के अनुसार कार्य किया। पीछे की ओर से अस्त्र चलाए। अभिमन्यु का धनुष कट गया। तब क्रुद्ध हो कर अभिमन्यु ने ललकारा—"अधर्मियों! पीछे से अस्त्र चलाते तुम्हें लज्जा नहीं आई। इसी बिरते पर वीर बनते हो। एक बालक के ऊपर यह अन्याय। धिक्कार है तुम्हारे बाहुबल पर।"

कर्ण रुका नहीं, वह अस्त्र चलाता ही रहा और शीघ्र ही समस्त महारथियों ने मिल कर अभिमन्यु के सारथि और उस के

घोडो को मार डाला। वह रथ विहीन हो गया। धनुष भी उस के पास न रहा। पर उस वीर के मुख पर भय का कोई भाव प्रकट न हुआ। वह साहस पूर्वक ढाल तलवार लेकर मैदान में आ डटा उस समय उस के मुख पर अदम्भ वीरता झलक रही थी. मानो क्षत्रियोचित शूरता था वह मूर्त रूप हो।

ढाल तलवार लेकर ही उस वीर ने रण कौशल का ऐसा अदभुत प्रदर्शन किया कि शत्रु विस्मय में पड़ गए। अभिमन्यु विद्युत गति से तलवार घुमाता रहा और जो भी उस के सामने पडा उसी की अच्छी खासी खबर लेता रहा। तलवार का चक्कर इस जोर से उस ने बांधा कि तलवार चलती हो दिखाई न देती थी ऐसा लगता था कि जैसे कोई तेज धार का चक्र उसके हाथों मे हो। पर तभी द्रोण ने उसकी तलवार काट डाली और कर्ण ने कई तीक्ष्ण बाण चला कर उसकी ढाल काट डाली।

उस समय वीर अभिमन्यु का साहस अभूत पूर्व था, जिसने देखा उससे प्रशंसा करते न बनी। ढाल तलवार के समाप्त होने ही उसके पास कोई अस्त्र न रह गया था परन्तु उस की सूझ देखिए। दौड कर उसने तुरन्त ही टूटे रथ का पहिया हाथ में उठा लिया और उसे ही चक्र की भांति घुमाने लगा। ऐसा करते हुए लगता था मानो श्री कृष्ण के भांजे के हाथ मे सुदर्शन चक्र आ गया हो। बल्कि मानो सुदर्शन चक्र लिए ही स्वय वासुदेव ही रण क्षेत्र में आगए हो। द्रोण के मुह से भी हठात निकल गया—"धन्य वीर बालक! तुम अजेय हो।"

रथ के पहिए को ही अस्त्र के रूप से प्रयोग करके कितने ही कौरव सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। कुपित होकर यह समझ कर अस्त्रहीन वीर बालक अब कर ही क्या सकता है, कौरव सैनिको ने उसे चारों ओर से घेर लिया। भालो, गदाओ, तलवारो और बाणों से उस पर आक्रमण करने लगे और कुछ ही देरि मे वीर अभिमन्यु के हाथ का रथ का पहिया चूर—चूर हो गया। इसी बीच दु शासन पुत्र गदा लेकर अभिमन्यु पर आ झपटा। परन्तु दूर पडी एक गदा अभिमन्यु के हाथ भी लग गई। दोनों मे घोर युद्ध छिड़ गया। दोनो वीर एक दूसरे पर भभकर गदा प्रहार करते रहे दोनो ही कई बार गिरे, पुन: उठे और भिड़ गए। दूसरे सैनिक

भी कभी कभी दुःशासन के पुत्र का माथ दे देते। अभिमन्यु बुरी तरह घायल हो चुका था, उसका सारा शरीर चूर-चूर हो रहा था एक बार जब दोनो गिरे तो अभिमन्यु के उठने मे कुछ देरि हो गई। दुःशासन का पुत्र तनिक पहले ही उठ खड़ा हुआ। तब तो समस्त कौरव चिल्ला उठे—"मारो, देर न करो।" और उसने अभिमन्यु पर गदा का एक भीषण प्रहार किया। अभिमन्यु गदा की मार से उठ न सका। फिर क्या था, कितने ही प्रहार उस पर हुए। जब कौरव सैनिको ने उसे बेजान समझ कर छोडा, तो अभिमन्यु ने अपनी डूबती आवाज मे कहा—"अरे पापियो एक व्यक्ति को चारों ओर मे घेरकर मारना कहां का धर्म है ? जाओ अब भी मुझे विश्वास है कि मेरे पिता तुम दुष्टों के इस अन्याय का बदला लेगे। तुम अपने किए पर पछताओगे और तुम्हारी वह गति होगी कि तुम्हारी सन्तानो तक तुम पर थूकेंगी विश्वास रक्खो अधर्म तथा अन्याय की कभी विजय नहीं होगी"

फिर उसने अपनी डूबती आवाज मे धीरे धीरे कहा—"मातेश्वरी ! तुम्हे अन्तिम प्रणाम ! खेद कि मैं अन्तिम समय तुम्हारे दर्शन न कर सका। पिता जी ! आप जहाँ भी हो, मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार करें। आप विश्वास रक्खें कि आप के पुत्र ने आपके नाम को बट्टा नही लगाया। आप मेरी त्रुटियो को क्षमा कर दें और इन दुष्टो को इन के अपराध का अवश्य दण्ड दे। .. मामा जी ! आप कहा है, आपका भानजा शत्रुओ के बीच अकेला प्राण दे रहा है जहा हो मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार करें।" इतना कहते कहते उसकी जबान बन्द होगई। आंखें फिर गई और गरदन एक ओर लढक गई।

सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु के शव को घेर कर कौरव जंगली व्याघों की भाति नाचने कूदने और आनन्द मनाने लगे। लेकिन जो सच्चे वीर थे उनकी आंखो मे आसू आ गए। आकाश के पक्षी तक चीत्कार करने लगे और देवतागण उस वीर बालक के शव पर पुष्प पखुडियाँ बरसाने लगे। यह देख कर दुर्योधन को बड़ा क्रोध आया। द्रोण का मुख लज्जा से लटक गया।

जब कौरव वीर अभिमन्यु की मृत्यु पर आनन्द मना रहे थे और रह रह कर दुर्योधन, दुःशासन के पुत्र और द्रोणाचार्य की जय

जयकार मना रहे थे, उस समय ही युधिष्ठिर व्यूह से बाहर खड़े अभिमन्यु की पताका और रथ कहीं न देख कर मन ही मन सशंक हो उठे और अपने धड़कते हृदय मे बार बार पूछने लगे—यह जय जयकार कैसी ? कहीं सुभद्रा पुत्र......"

आगे उनसे कुछ न कहा जाता

एक महारथी ने द्रोण को उल्लास पूर्वक कहा—"आचार्य ! आज बड़ी कठिनाई से उस दुष्ट का अन्त हुआ। कैसा शुभ दिन है आज कि......"

"आज हम सब परास्त हो गए। हम सब पथ विमुख हो गए। आज शोक का दिन है।" द्रोण बोले।

सुनकर दुर्योधन की आंखों मे खून उत्तर आया।

महारथी वहां बैठे उन्हें सान्त्वना दे रहे थे। युधिष्ठिर बोले—"हा, शोक! कृपाचार्य, दुर्योधन कर्ण और दुःशासन को खदेड़ देने वाला परम प्रतापी मेधावी वीर बालक अभिमन्यु मेरी ही भूल के कारण मारा गया। अब मैं अर्जुन को क्या उत्तर दूंगा। जब वह अपने प्रिय पुत्र को मुझ से पूछेगा तो मैं किस मुंह से कहूंगा कि मैंने अपनी विजय की कामना से चक्र व्यूह में भेज कर मरवा डाला। सुभद्रा और उत्तरा जब मुझ से उस वीर की मृत्यु के लिए उत्तर मांगेगी तो मैं कैसे कहूंगा कि वह बालक मेरे लिए रण करता हुआ शहीद हो गया। हाय! सुभद्रा का लाल और उत्तरा का सुहाग मेरे रहते हुए दुष्ट कौरव महारथियों द्वारा मारा गया और मैं कुछ न कर सका। नहीं, नहीं उसकी मृत्यु का जिम्मेदार मैं हूं। मैंने ही उसे चक्रव्यूह में भेजा था। संसार क्या कहेगा? यही ना, कि युधिष्ठिर ने अपने भाग्य की आग में अर्जुन पुत्र की आहुति देदी।"

युधिष्ठिर को इस प्रकार विलाप करते देख कर समस्त उपस्थित पाण्डव वीरों का हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा था। भीमसेन ने सान्त्वना देते हुए कहा—"महाराज! वीर अभिमन्यु मरा नहीं, वह अमर हो गया, उस ने ऐसे पराक्रम का प्रदर्शन किया कि शत्रु तक मंत्र मुग्ध हो गए। वह आज भी, अब भी जीवित है। उस ने अपने पिता और अपनी माता का नाम उज्जवल कर दिया। धन्य है अर्जुन, धन्य है सुभद्रा। हमें उस के लिए शोक नहीं करना चाहिए। वह वीर गति को प्राप्त हुआ।" पर प्रेम, मोह शक्ति जिन्हों में है उन्हें दुख होता ही है।

कहने को तो भीम ने यह शब्द कह दिए, पर स्वयं उन का हृदय भी उस के शब्दों से सन्तुष्ट नहीं हो रहा था। यह तो सभी जानते हैं कि जिस ने जन्म लिया है, उसे एक न एक दिन मरना है। शोक और विलाप करने से भी कुछ होता नहीं, फिर भी महान आत्माएं तक अपने प्रिय व्यक्तियों की मृत्यु पर विलाप करती ही हैं। अभिमन्यु का विछोह तो ऐसा विछोह था कि सुनने वाले भी बेबस रो पड़े। उसकी वीरता और शत्रुओं के अधर्म की गाथा ने तो और अग्नि में घृत की आहुति का काम किया।

युधिष्ठिर सुबकते हुए बोले—"मैं किस तरह अपने मन को समझाऊं। उस वीर की मृत्यु ने मेरे मन को क्षत-विक्षत कर दिया

है। ऐसा लगता है मानो वीर बालक मेरी आंखों के सामने अदम्य उत्साह से शत्रु के व्यूह की ओर बढ़ रहा है और कह रहा है— "ताऊ जी ! आप चिन्ता मत करें यह शत्रु तो कुल मिला कर भी मेरी शक्ति के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं, मैं अभी ही उन्हें मार भगाता हूं।"—ओह ! किस उत्साह से वह गया। पलक झपकते ही उस ने कौरवों का व्यूह तोड कर अपने लिए मार्ग बना लिया। और हम सब मिल कर भी उस व्यूह में प्रवेश न कर सके। पापी जयद्रथ ने मुझ से मेरे वीर-बालक को छीन लिया।"

सात्यकि बोला—"राजन् ! अब इस शोक से क्या लाभ धैर्य रखिये। अर्जुन उन दुष्टों में से एक एक से अभिमन्यु की हत्या का बदला लेगा। आप को ही यह दशा है तो सोचिये कि उस की क्या दशा होगी, अभिमन्यु जिस के दिल का टुकड़ा था अर्जुन अभी आता ही होगा। आप ही है जो उसे सान्त्वना दे सकते हैं। इस लिए सम्भलिए और अर्जुन को धैर्य बन्धाने के लिए तैयार हो जाईये। उस वीर बालक की मृत्यु पर आंसू बहाना आप को शोभा नहीं देता आप को तो गर्व होना चाहिए कि आप के परिवार का एक बालक सारी शत्रु सेना को नाकों चने चबा गया और यदि शत्रु दल अधर्म पर न उतरता, तो वह विजय पताका फहराता हुआ लौटता।"

"आप जो कह रहे हैं अक्षरशः सत्य है। पर मैं क्या करूं दिल तो नहीं मानता। मैं सोच रहा हूं कि जब राजकुमारी उत्तरा विधवा के वेश में बाल खोले हुए मेरे सामने से निकलेगी तो मैं अपने हृदय को फटने से कैसे रोकूगा ? सुभद्रा के नेत्रों से बहती अश्रुधारा को कैसे रोकूगा। वह दोनों सन्नारीयां मुझे जीवित देखकर क्या कहेगी ? यही ना कि राज्य पाने के लिए स्वयं तो जीवित रहा, और अभिमन्यु की बलि दे आया।"—दुख-विह्वल होकर युधिष्ठिर ने कहा।

द्रुपद बोले—"राजन् ! मौत से किसका चारा है, कौन है जो मृत्यु को रोक सके। मौत किसी के टाले नहीं टलती। एक दिन सब ने मरना ही है। आप कर ही क्या सकते थे। जिन भगवान के वचन अटल हैं—

जान ही लेने की हिकमत में तरक्की देखी,
मौत का रोकने वाला कोई पैदा न हुआ।"

इसी प्रकार सभी महाराज युधिष्ठिर को सान्त्वना दे रहे थे। पर युधिष्ठिर बार-बार अपने मन को समझाते, पर हृदय में उठ रहे शोक के तूफान को वे रोक न पाते।

युधिष्ठिर के शिविर में शोक और विलाप चल रहा था, सान्त्वना तथा धैर्य के वार्तालाप हो रहे थे कभी कभी कोई वीर अभिमन्यु की वीरता के राग छेड़ देता, कोई उसके असीम साहस का गुणगान करता; तो कोई उसके उठ जाने से हुई हानि को याद करके रो उठता। शोक सभा थी वह प्रत्येक एक दूसरे को धैर्य बन्धा रहा था, और प्रत्येक आसू भी बहाता जाता था। उस वीर बालक की मृत्यु पर युधिष्ठिर के शिविर मे ही नही कौरवों के भी शिविरों में शोक प्रकट किया जा रहा था जाने वाला जा चुका था, हां उसकी बातें रह गई थी उसकी चर्चा शेष थी—

छुप गए वे साजे हस्ती छोड कर।
अब तो बस आवाज ही आवाज है।

× × × ×

सशप्तको का सहार करके जब अर्जुन अपने शिविर की ओर लौट रहा था, बार-बार उसका मन किसी अज्ञात शोक से बोझल हो जाता। बार-बार उसके मन पर कोई आघात सा लगता और वह आप ही आप शोक विह्वल सा हो जाता उसने एक बार श्री कृष्ण से कहा—"मधुसूदन ! न जाने क्यों मेरा मन दुखित हो रहा है। बार-बार कोई अज्ञात खेद मेरे हृदय पर छा जाता है और ऐसा होता है मानो मेरे हृदय पर शोक का पहाड़ टूट पड़ा हो। मेरा मन बोझल हो रहा है, आखें बरस पडने को ही रही हैं। जाने क्या बात है ?"

श्री कृष्ण मुस्करा पड़े—"शत्रुओ का सहार करके लौट रहे हो और बता रहे हो अपने मन को दुखित, बडे आश्चर्य की बात है। सम्भव है मन मे तुम्हारे कोई आशका छुपी हो हमे कभी कभी विश्वास का रूप धारण करके तुम्हारे मन को शोकातुर कर जाती हो। पर यह तो युद्ध है, इस मे कितनी ही घटनाए ऐसी भी घट सकती हैं, जिन्हे सुनकर ही तुम्हारे हृदय पर वज्राघात हो। किन्तु तुम्हें दुखित होना शोभा नही देता। धैर्य और साहस से काम लो"

अर्जुन शात हो गया। परन्तु कुछ ही दूर आगे आने पर जब

उसका रथ शिविर के इतना निकट हो गया कि वह शिविर के सामने खड़े व्यक्ति को देख सके, दुखित होकर फिर बोला— "गोविन्द ! आज कुछ लक्षण ही उलटे हो रहे हैं प्रतिदिन जब मैं युद्ध से लौटता था, तो सभी मेरे स्वागत को बाहर निकल आते थे। मेरा पुत्र वीर अभिमन्यु शिविर से बाहर खड़ा मुस्कराता होता, पर आज तो कोई भी नहीं दीख पड रहा, बल्कि शिविर के सामने खड़ा सैनिक भी बार-बार मुझे देखकर सिर नीचा कर लेता है। कहीं कोई दुखद घटना तो नहीं घट गई ? आज मेरे दक्षिण की ओर चले जाने के पश्चात्, सुना है, द्रोणाचार्य ने चक्र व्यूह रचा था। उसे तोडना मेरे अतिरिक्त हम मे से और कोई नहीं जानता। हाँ अभिमन्यु को अभी मैं चक्र व्यूह मे प्रवेश करना ही सिखा सका हूँ, व्यूह से निकलना अभी उसे नहीं बताया कहीं महाराज युधिष्ठिर या मेरे किसी दूसरे भ्राता के ऊपर कोई विपत्ति तो नहीं टूट गई ? मेरा हृदय बोझल हो रहा है। मुझे सारा शिविर शोक मे डूबा प्रतीत हो रहा है। क्या कारण है ?"

"धनंजय ! विश्वास रखो कि युधिष्ठिर का वध कोई कर पायेगा, अभी ऐसा कोई नहीं जन्मा।—श्री कृष्ण ने घोड़ों की रास ढीली करते हुए कहा—रही किसी के युद्ध मे काम आने की बात, सो दावानल जले और उसमे लोग कूदें तो यह आशा करना कि दावानल का उन पर कोई प्रभाव ही नहीं होगा, मूर्खता है। युद्ध मे आये हैं तो कितने ही प्रियजन मारे ही जायेंगे। मरने वालों का शोक करने मे क्या लाभ ? जो आया है उसे जाना ही है। जब भीष्म जैसे मारे गए तो दूसरों की तो बात ही क्या ? फिर भी निश्चिन्त रहो, तुम्हारे भाईयों मे से सभी सुरक्षित हैं।"

अर्जुन का मन फिर भी दुखित रहा, वह शोक को अपने से अलग न कर पाया। बोझल मन लिए वह शिविर पर जाकर उतरा, तो सैनिकों ने उसे सामने देखकर गरदन झुका ली। उसका हृदय धड़क उठा।

'क्या बात है ?'

सैनिक कुछ न बोला।

उसने पुनः प्रश्न किया—"यह रोनी सी सूरत क्यों बना ली है ? क्या कोई विशेष घटना हुई ?

सैनिक ने अपनी दृष्टि पृथ्वी पर जमा दी और पैर से मिट्टी कुरेदने लगा।

अर्जुन सिहर उठा—"अभिमन्यु आज कहां गया ?"

सैनिक पुनः कुछ न बोला।

आहत पक्षी की भांति उसका मन तड़प उठा। वह अन्दर गया, जहां युधिष्ठिर अपने भ्राताओ तथा सगी साथियों सहित बैठे थे। जाते ही उसने चारो ओर दृष्टि डाली। सभी की गरदनें लटक रही थीं। अर्जुन के मन में खेदयुक्त आशका का बवडर उठ खड़ा हुआ। उसने युधिष्ठिर को प्रणाम किया और छूटते ही पूछा—"क्या बात है आप इस प्रकार मुरझाये हुए क्यो बैठे हैं ? क्या हुआ है ? क्या कोई .. ...?"

उसने उपस्थित वीरो पर दृष्टि डाली। उसके सभी भ्राता और अन्य स्नेही बन्धु बान्धव वहां बैठे थे। फिर पूछा—"महाराज! आप सभी के चेहरे क्यो उतरे हुए हैं ? क्या बात हुई है ? आप सभी शोक विह्वल दिखाई देते हैं ?

महाराज युधिष्ठिर फिर भी कुछ न बोले। किस मुह से वे उस दुखद समाचार को सुनाते। उनका मन तुरन्त चीत्कार कर उठने को हुआ, पर अपने को उन्होने नियन्त्रित किया।

"आप मौन क्यो है, बताईये, मुझे शीघ्र बताईये, हुआ क्या है ? मेरा मन आशकित हो गया है। अभिमन्यु कहां है, वह रोज़ की भांति आज कही दिखाई क्यो नही पड़ता ?"—अर्जुन ने पूछा।

कुछ कहने के लिए युधिष्ठिर ने मुह खोला, पर आवाज कण्ठ में ही अटक कर रह गई।

अर्जुन ने दुखित होकर कहा—"तो क्या मेरा प्रिय पुत्र......"

आगे वह कुछ न कह पाया, उसके नेत्रो मे आंसू आ गए।

"हम ने तो बहुत प्रयत्न किया कि उस वीर बालक की सहायता को पहुंचें पर ......"

युधिष्ठिर के इतने शब्द सुनकर ही अर्जुन ने सारी बात समझ ली। उसके मन पर भयकर वज्राघात हुआ। वह खड़ा न रह सका और बालकों की भांति बिलख बिलख कर रोने लगा। उसके रुदन को देखकर अन्य वीर भी अश्रुपात करने लगे।

अर्जुन ने विलाप करते हुए कहा—"हाय! मैं कही का न

रहा। मेरे लिए आज सारा ससार अंधकारपूर्ण हो गया। अब मैं सुभद्रा को क्या जवाब दूंगा। और राजकुमारी उत्तरा जिसके हाथों को मेहन्दी भी अभी तक न मिटी, उसको क्या कहकर सान्त्वना दूगा। हा! जिसका पालन पोषण मैंने इतने प्यार से किया, जिसके कौशल, साहस और वीरता पर मुझे सदा ही गर्व रहा, मेरे रहते वह होनहार मुझे बिलखता छोड कर मुझ से मुह मोड़ कर चला गया। हा! मेरा गाण्डीव, मेरा भुजबल उस सुकुमार मेरे हृदय पाश के किसी काम न आ सका। ओह! जब मैंने द्रोणाचार्य द्वारा चक्र व्यूह रचना की बात सुनी थी, मेरा माथा तो तभी ठनका था। पर खेद कि मैंने सशप्तकों का सामना छोड़कर आत्म सम्मान को ठेस देना गवारा न किया। मैं क्या जानता था कि मेरे चार महाबली भ्राताओं और अनेक महारथियों के रहते हुए शत्रु उस वीर बालक को निगल जायेंगे? मैं होता तो एक बार उसकी रक्षा के लिए साक्षात यमराज से भी टकरा जाता और प्राण रहते मैं उसे ससार से मुह न मोडने देता। हाय! सुभद्रा सोचती होगी कि उसका लाल शीघ्र ही विजय सन्देश लेकर आयेगा, उत्तरा उसके स्वागत के लिए आरती का थाल सजाए बैठी होगी। द्रौपदी उससे उसके शत्रुओं के संहार का शुभ सम्वाद सुनने के लिए बेताब बैठी होगी। लेकिन वह वीरवर चला गया। और मैं असहायों की भांति रोने के लिए रह गया।"

अर्जुन की हिचकियां बंध गईं। जो वीर सदा सिंह की भांति गर्जना करता रहता था, जो सदा साहस और वीरता की बातें करते रहने के लिए प्रसिद्ध था, जिसके नेत्रों से सदा हर्ष, उत्साह, यौवन, साहस, आलोक, तेज और चिनगारियां निकलती थीं, वह अश्रुपात कर रहा था देखने वालों से भी न रहा गया और वे अपने करुण कुन्दन को तो बड़ी कठिनाई से रोक पाये पर अपनी आखों से बहती अविरल अश्रुधारा को किसी प्रकार भी न रोक पाये।

अर्जुन ने फिर अपने को धिक्कारते हुए कहा—"टूट जाओ ऐ अतुल्य बलवाहिनी भुजाओ टूट जाओ, फट जा ऐ वज्र के समान विशाल छाती फट जा, जब मैं अपने लाडले की रक्षा ही न कर सका तो फिर मुझे तुम्हारी क्या जरूरत। नहीं, नहीं मुझे नहीं चाहिए

यह शरीर।

उसी समय श्री कृष्ण ने उसे समझाते हुए कहा—धनंजय! तुम्हें क्या हो गया है? अपने को सम्भालो। तुम तो शत्रु के लिए साक्षात काल हो। तुम्हारी आखो मे आंसू? छीः छीः तुम्हे यह शोभा नही देता। मुझे तो आशा थी कि इस दुःखद समाचार को सुनकर तुम्हारे नेत्रों से क्रोध की चिंगारियां निकल पड़ेंगी और तुम वीर-अभिमन्यु के हत्यारों से बदला लेने के लिए बेचैन हो जाओगे। परन्तु तुम तो नारियों की भांति विलाप करने लगे। वह वीर वीर-गति को प्राप्त हुआ है, उस पर अश्रु बहाना उसका अपमान करना है। धनंजय! मनुष्य सभी कुछ टाल सकता है, पर मृत्यु को टालना उसके बस की बात नहीं। जिसने जन्म लिया है उसे मरना ही है। हां,

फूल तो दो दिन बहारे गुलिस्तां दिखला गए।
हसरत उन गुंचो पे है, जो बिन खिले मुरझा गए।"

परन्तु वह वीर तो कली होते हुए भी अपने अभूत पूर्व गुणो से अपने को अमर कर गया। अर्जुन! आत्मा कभी नही मरता, वह चोला बदल सकता है, परन्तु उसका कभी नाश नही होता। अभिमन्यु के शरीर को शत्रुओ ने निर्जीव कर दिया तो क्या हुआ, उस की आत्मा जिस रूप मे भी जायेगी, उसी रूप मे वह अपना उज्ज्वल रूप दिखायेगी। तुम विश्वास रक्खो कि वह वीर मर कर भी अमर है। उसने तुम्हारे नाम को उज्ज्वल ही किया है। तुम्हे गर्व होना चाहिए कि तुम्हारी अनुपस्थिति मे उस ने वही काम किया जो तुम्हे करना चाहिए था।"

इसी प्रकार कितनी ही प्रकार से श्री कृष्ण अर्जुन को धैर्य बन्धाने लगे। वे अभिमन्यु के मामा थे, उस की मृत्यु से उन्हे भी धक्का लगा, पर उन के लिए शोक और हर्ष समान ही थे। उन्होने अनेक धार्मिक गाथाए सुना कर और जिन प्रभु की वाणी बताकर इस नश्वर संसार की वास्तविकता दर्शाते हुए अर्जुन को धैर्य बन्धाया जब श्री कृष्ण के उपदेश से अर्जुन को कुछ सन्तोष हुआ तो उस ने युधिष्ठिर से कहा—"महाराज! मुझे यह तो बताईये कि वीर अभिमन्यु किस प्रकार मारा गया और कौन उसकी हत्या के लिए

जिम्मेदार है !"

तब युधिष्ठिर बोले—"तुम्हारे सशप्तकों से युद्ध करने जाने के उपरान्त द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह रचा। हम मे से कोई उस व्यूह को तोडना नहीं जानता था, हमारी सेना का संहार होने लगा मैं बड़ा ही दुखी हुआ तभी उस वीर ने आकर बताया कि वह व्यूह मे प्रवेश करना जानता है। हमने सोचा कि हम भी उस के पीछे व्यूह में चले जायेंगे ताकि संकट के समय हम उस की रक्षा कर सके। यह सोच कर मैंने उसे व्यूह तोडने की आज्ञा देदी। और हम सब उस के पीछे पीछे चले। एक विशाल सेना हमारे साथ थी, परन्तु पापी जयद्रथ ने हमारा रास्ता रोक लिया और वीर अभिमन्यु तो व्यूह मे चला गया, जयद्रथ ने हमें न जाने दिया वह वीर अकेला ही शत्रुओ को तहस नहस करता हुआ आगे बढता रहा। जहा से व्यूह टूटा था जयद्रथ ने अपने सैनिको से वह दरार तुरन्त भर दी और फिर दुष्ट कौरव महारथियों ने मिल कर चारो तरफ से घेर कर उसे मार डाला "

इतना सुन कर ही अर्जुन की भृकुटि धनुष के समान तन गई आखों मे ज्वाला झाकने लगी और उस ने उसी समय प्रतिज्ञा की— 'मैं अपने गाण्डीव की सौगन्ध खाकर प्रतिज्ञा करता हूं कि कल सूर्य अस्त होने से पहले ही दुष्ट जयद्रथ का जो मेरे पुत्र के वध का कारण बना सिर काट डालूंगा। अन्यथा मैं स्वय ही जीवित चिता मे प्रवेश करूगा।"

अर्जुन की प्रतिज्ञा सुन कर वहा उपस्थित पाण्डव कांप उठे। बडी ही दृढ प्रतिज्ञा थी। और सभी जानते थे कि अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा अवश्य ही पूर्ण करेगा। श्री कृष्ण भी उस की प्रतिज्ञा सुन कर विस्मित रह गए।

उस के बाद युधिष्ठिर ने सारी कथा विस्तार सुनाई। जिसे सुन कर अर्जुन बिगड कर बोला—"द्रोणाचार्य को लज्जा न आई। एक बालक को छः महारथियों ने घेर कर मारा इस अधर्म पर वे डूब न मरे। अच्छा कोई बात नही मैं इस युद्ध मे इन सबको मौत के घाट उतार दूगा।"

फिर उस ने अपनी दृढ प्रतिज्ञा को दोहराया और कहा कि

तडप रहा था, मानो उस के हृदय मे विष से बुझा तीर चुभ गया हो ।

' दुर्योधन ! सुना आप ने ? अर्जुन ने मुझे कल सूर्यास्त तक मारने की प्रतिज्ञा की है ।"—भय विह्वल जयद्रथ ने दुर्योधन से जाकर कहा ।

दुर्योधन ने उसका भय विह्वल चेहरा देखा तो स्वय व्याकुल हो गया—"हा, दूतो ने ऐसा ही समाचार दिया है ।" उस ने कहा ।

"तो फिर अब क्या होगा ?"

—"जो होगा देखा जाये गा । चिन्ता क्यों करते हो ?"

"नही दुर्योधन ! अर्जुन अपनी बात का धनी है, वह मुझे मारे बिना न छोड़ेगा । देखो तो अभिमन्यु को मारा किसी ने और फल भोगे कोई है न यह अन्याय । मुझे तो अपने देश लौट जाने की आज्ञा दे दीजिए । बस मैं अब और यहा नही ठहर सकता ।"—कापता हुआ जयद्रथ बोला ।

"क्या कह रहे हो ? युद्ध छोड कर चले जाना चाहते हो ?" विस्मित होकर दुर्योधन ने प्रश्न किया ।

"हा, मुझे नहीं चाहिए यह युद्ध आप के साथियो ने वास्तव मे अभिमन्यु के साथ अन्याय किया, और अब उस अन्याय का बदला मुझ से लिया जायेगा । मैं दूसरे की आई मे क्यो मरू ? मुझे तो बस आज्ञा दीजिए ताकि मैं अभी ही अपने देश लौट जाऊ "—जयद्रथ ने अपनी मानसिक दशा का परिचय देते हुए कहा ।

दुर्योधन समझ गया कि जयद्रथ बुरी तरह घबरा गया है, उस ने उसे धीरज बधाते हुए कहा— 'आप भय न करें मैं विश्वास दिलाता हूं कि अर्जुन आपका बाल भी बांका नही कर सकता । आप की रक्षा के लिए मैं कर्ण चित्रसेन, विविशति, भूरिश्रवा, शल्य, वृषसेन पुरुमित्र, जय, काभोज, सुदक्षिण, सत्यव्रत, विकर्ण, दुर्मुख दुःशासन, सुबाहु, कालिंगव, अवन्तिदेश के दोनों राजाओं, आचार्य द्रोण, अश्वस्थामा, शकुनि आदि समस्त महारथियों को लगा दूगा। हम प्राण देकर भी आपकी रक्षा करेंगे । फिर अर्जुन की क्या मजाल है आप के पास भी फटक सके । प्रसन्नता की बात तो यह है कि कल को हम आप का पता भी न चलने देंगे । और सूर्यास्त

होने पर हमारा मुख्य शत्रु अर्जुन स्वयं ही जीवित जल मरेगा इस लिए आप को तो प्रसन्न होना चाहिए कि क्रोध में आकर हमारा शत्रु स्वयं ही अपने नाश का जाल रच गया।"

"किन्तु यदि अर्जुन ने मुझे खोज निकाला तो ?"

"मैं कहता हूं हम तुम्हे ऐसे स्थान पर रक्खेंगे कि हम सब मारे गए तभी अर्जुन आप के पास तक पहुंच सकता है, जो कि असम्भव है।"

"अर्जुन बड़ा वीर है, उसके लिए कुछ भी असम्भव नही।"

मैं समझता हूं कि भय के मारे आप पर अर्जुन को भूत सवार हो गया है।"

जयद्रथ स्वय भी एक महावली था पहले तो भय के मारे वह अपने मनोभावों को छुपा न सका, पर जब उसे दुर्योधन का सहारा मिला और कुछ धैर्य बधा तो वह आत्म सम्मान और व्याभिमान की रक्षा के लिए सचेत होगया और दुर्योधन की अन्तिम बात से वह स्वय ही आत्म ग्लानि के मारे कुछ कह सकने योग्य न रहा। हा उसने इतना अवश्य कहा—"दुर्योधन ! कल यदि थोडी सी भी भूल हो गई, तो आप अपने एक परम सहयोगी से हाथ धो बैठेंगे।"

"नही, ऐसा कदापि नही होगा।" दृढता से दुर्योधन बोला।

जयद्रथ सन्तुष्ट होकर वहा से चला गया तो दुर्योधन ने एक भयकर अट्टहास किया और फिर स्वयं ही बोला—"अवश्य ही मेरा भाग्य जाग रहा है। आज भयकर शत्रु, अर्जुन पुत्र अभिमन्यु का पत्ता कटा और कल अर्जुन भी समाप्त हो जायेगा। फिर तो विजय का श्रेय मुझे मिला ही रक्खा है।"

उस के पापी मन ने शकित होकर पूछा—"और यदि अर्जुन जयद्रथ तक पहुच गया तथा उसका बध कर डालने में ही सफल हो गया तो ? .. ..स्मरण है कि उस के सारथि हैं श्री कृष्ण और सहयोगी हैं भोमसेन,, धृष्टद्युम्न आदि।"

वह बोला—"तो भी मेरा ही लाभ है, जीत फिर भी मेरी ही है क्योंकि जयद्रथ के पिता की भविष्य वाणी के अनुसार जो जयद्रथ का सिर काट कर भूमि पर गिरा देगा उसी के सिर के उसी समय सौ टुकड़े हो जायेंगे। जयद्रथ का पिता बड़ा ही पुण्यवान

तथा शुभ प्रकृति वाला व्यक्ति है, उसकी बात कभी असत्य सिद्ध नहीं होगी। इस लिए मेरे तो दोनों हाथों में लड्डू हैं। जीत हर प्रकार से मेरी हो है। अहा हाइ हाइ हाइ"

बात यह थी कि सिन्धु देश के प्रसिद्ध नरेश वृद्ध क्षय के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम रक्खा गया जयद्रथ। बड़ी तपस्या के पश्चात यह पुत्र हुआ था। इस कारण बडा ही आनन्द मनाया गया। ज्योतिषियों से इसके जीवन के सम्बन्ध मे पूछा गया। तब उन्होंने बताया कि जयद्रथ बड़ा ही यशस्वी व परम प्रतापी राजा बनेगा, किन्तु एक श्रेष्ठ क्षत्रिय के हाथों सिर काटे जाने से इसकी मृत्यु होगी।

यद्यपि वृद्ध क्षय बड़ा ही धर्म ध्यानी, सच्चरित्र, सुशील, गुणी, विद्यावान और धर्म के मर्म का ज्ञाता था, और वह जानता था कि यह शरीर नाशवान है, आत्मा अपने किए कर्मों का फल भोगता ही है, उसे अपने कर्मानुसार चोले बदलने होते है, जिसे जीवन मिला, उसके लिए मृत्यु अवश्यमभावी है, तथापि बड़े बड़े ज्ञानियो और तपस्वियों तक को अपने प्रिय जनो की मृत्यु पर खेद होता ही है अतः वृद्ध क्षय भी घोर तपस्या से प्राप्त पुत्र रत्न की मृत्यु को भविष्य वाणी सुनकर व्यथित हो गया और उसने कई सप्ताह निराहार जाप किया, फिर घोषणा की कि जो मेरे पुत्र का सिर काट कर पृथ्वी पर गिरायेगा, उसी क्षण उसके भी सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे।

जयद्रथ के व्यस्क हो जाने पर वृद्ध क्षय ने राज-सिंहासन पर जयद्रथ को बैठाया और स्वयं पंच महा व्रती, साधु वृत्ति धारण कर ली।

द्रोणाचार्य अपनी शैय्या पर पड़े करवटें बदल रहे थे। जयद्रथ वहां पहुंचा और चरण पकड़ कर प्रणाम किया। फिर विनीत भाव से पूछा—"आचार्य! इस समय आने के लिये मुझे क्षमा करें। मैं यह जानना चाहता हूं कि आप ने मुझे और अर्जुन को एक साथ ही अस्त्र-विद्या सिखाई थी। क्या हम दोनों की शिक्षा में कोई अन्तर है? अर्जुन मुझ से किसी बात में अधिक तो नहीं?"

द्रोण जानते थे कि यह प्रश्न क्यों पूछा गया है, वे बोले—

"जयद्रथ ! तुम दोनों को मैंने तो एक जैसी ही शिक्षा दी थी। परन्तु अपने लगातार अभ्यास और अपनी कठिन तपस्या के कारण, साथ ही अपने पूर्व संचित पुण्य तथा शुभ प्रकृति के कारण अर्जुन तुम से बढा-चढा है इस में कोई सन्देह नहीं।"

जयद्रथ का हृदय कांप उठा। बोला—'तो फिर क्या अर्जुन मुझे . .. . ?"

"नहीं, नहीं, तुम्हें भयभीत न होना चाहिए—द्रोण ने बात समझते हुए बीच में ही कहा—कल हम ऐसे व्यूह की रचना करेंगे जिसे तोडना अर्जुन के लिए भी दुःसाहस होगा। उस व्यूह के सबसे पिछले मोर्चे पर हम तुम्हें रक्खेंगे, तुम्हारी रक्षा में अनेक वीर रहेंगे। व्यूह के अगले मोर्चों पर मैं स्वय रहूंगा। फिर तुम तो क्षत्रिय हो। अपने पूर्वजों की शानदार परम्परा को जीवित रखते हुए निर्भय होकर युद्ध करो। यमराज तो हम सब का पीछा कर रहे हैं, अन्तर इतना है कि कोई पहले जाता है, किसी को पीछे जाना है। सभी को अपने अपने कर्मों का फल भोगना है, तुम्हें भी और मुझे भी। तुम या मैं इस से बचकर भागकर और कहीं जा ही कहां सकते हैं।"

सारी रात बेचारे जयद्रथ ने व्याकुलता से गुजारी। बिल्कुल उसी सैनिक की भांति जिसे स्वर्ण सिंहासन पर बैठाकर उसके सिर पर नंगी तीक्ष्ण तलवार बाल में बांध कर लटका दी गई हो। उसे चारों ओर अर्जुन ही गाण्डीव लिए हुए दिखाई देता।

× × × × × × ×

पक्षियों का कलरव आरम्भ हो गया, अंधकार की चादर को विदीर्ण करती सूर्य की स्वर्णिम किरणें फूट निकली। छावनियों में चहल पहल आरम्भ हो गई। ज्यों ही सूर्य की किरणें सफेद हुईं, द्रोणाचार्य अपने शिविर से बाहर निकले, तैयारी का शंख नाद हुआ और कुछ ही देरि बाद सेनाएं रण क्षेत्र में पहुंच गईं।—द्रोणाचार्य अपनी सेना की व्यवस्था में लग गए। सबसे पीछे जयद्रथ को अपनी सेना व संरक्षकों के साथ रक्खा गया। उसकी रक्षा के लिए भूरिश्रवा, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य वृषसेन आदि महारथी अपनी सेनाओं सहित सुसज्जित खड़े थे। इन वीरों की सेना और पाण्डवों की

सेना के बीच में शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ आचार्य द्रोण ने एक भारी सेना को शकट चक्र-व्यूह में रचा। शकट व्यूह के अन्दर कुछ दूर आगे पद्म-व्यूह बनाया। उससे आगे एक सूची-मुख-व्यूह रचा। उस व्यूह मे जयद्रथ सुरक्षित था। शकट व्यूह के द्वार पर स्वयं द्रोणाचार्य खडे हुए। उस दिन उन्होने सफेद वस्त्र धारण किए हुए थे, उनका कवच भी सफेद रंग का था। उनके रथ के घोड़ों का रंग भी सफेद ही था। वे अपने अपूर्व तेज के साथ प्रकाशवान हो रहे थे। व्यूह की व्यवस्था तथा मजबूती देखकर दुर्योधन को धीरज बधा।

धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्मर्षण ने कौरव सेना के आगे लाकर अपनी सेना खडी कर दी। उस सेना मे एक हजार रथ, एक सौ हाथी, तीन हजार घोडे, दस हजार पैदल और डेढ़ हजार धनुर्धारी वीर सुव्यवस्थित रूप से खडे थे। अपनी इस सेना के आगे अपना रथ खडा करके दुर्मर्षण ने अपना शंख बजाया और पाण्डवो को युद्ध के लिए ललकारा—

"कहां है वह अर्जुन, जिसे अपने बल पर बड़ा अभिमान है, जिसके बारे मे पाण्डवों ने उडा रक्खा है कि उसे युद्ध में परास्त ही नही किया जा सकता। कहा है वह? आये तो हमारे सामने। मैं अभी ससार को दिखा दूगा कि अभिमानी का सिर नीचा होता है। वह हमारी सेना से टकराकर इसी प्रकार चूर चूर हो जायेगा जिस प्रकार मिट्टी का घडा पहाड मे टकराकर टुकड़े टुकड़े हो जाता है।"

अर्जुन ने चुनौती सुनी तो पाण्डवो की व्यवस्थित सेना से निकलकर दुर्मर्षण की सेना के सामने आ खडा हुआ और अपना शंख बजाया, जिसका अर्थ था कि उसे चुनौती स्वीकार है। उसने गरज कर कहा—"दुर्मर्षण! घबराते क्यों हो, तुम्हे अभी ही अपनी शक्ति का पता चल जायेगा, ठीक ही कहा है कि जब चींटी की मौत आती है तो उसके पख निकल आते हैं।"

कौरव सेना में बार-बार शख बजने लगे। तब अर्जुन ने श्री कृष्ण को कहा—"केशव! अब रथ दुर्मर्षण की सेना की ओर चलाईये, उधर जो गज सेना है, उसको तोड़ते हुए अन्दर घुसेंगे।"

जाते ही अर्जुन ने दुर्मर्षण की सेना पर भयंकर प्रहार किया।

गज सेना उसके बाणों का ताव न ला सकी और कुछ ही देरि में तितर बितर हो गई। दुर्मर्षण बार-बार ललकारता रहा। पर सेना में उत्साह का मचार न हुआ। बल्कि जो भी वीर अर्जुन के सामने आया, वही मृत्यु को प्राप्त हुआ। तीव्र अंधड़ के चलने पर जैसे मेघ खण्ड बिखर जाते हैं इसी प्रकार अर्जुन के बाणों से दुर्मर्षण की सेना बिखर गई यह देख दुःशासन को बड़ा क्रोध आया और वह अपनी सेना सहित अर्जुन के सामने आ डटा बड़ा ही रोमांचकारी और वीभत्स दृश्य उपस्थित हो गया। अर्जुन के बाणों की मार से सैनिकों के शरीर निष्प्राण होने लगे। चारों ओर शवों के ढेर लग गए। रथ टूट गए और सिर, धड़ तथा हाथ पैर इधर-उधर बिखर गए। उस वीभत्स दृश्य को देखकर दुःशासन की बची खुची सेना का साहस टूट गया और वह मैदान छोड़कर भाग निकली। दुःशासन ने बहुतेरा जोर मारा, पर जैसे सिंह के सामने भेड़ों की एक नहीं चलती, इसी प्रकार दुर्मर्षण तिलमिलाने के उपरान्त कुछ न कर पाया वह भागा और जाकर द्रोणाचार्य के पास भय विह्वल होकर पुकार की—"आचार्य! अर्जुन की गति को रोकिए वह तो साक्षात काल रूप धारण करके तबाही मचाता हुआ बढ़ा चला आ रहा है।"

द्रोण बोले—"दुर्मर्षण! उसकी गति को रोक पाना बच्चों का खेल नहीं है।"

इतने ही में अर्जुन का रथ भी द्रोण के पास पहुंच गया। जाते ही उसने तीन बाण उनके चरणों में फेंके और वीरोचित प्रणाम के उपरान्त उसने कहा—"गुरुदेव! अपने प्रिय पुत्र को गवाकर और दुःख से व्यथित होकर, अपने पुत्र की हत्या के लिए जिम्मेदार जयद्रथ की खोज में मैं आया हू। मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनी है। आज आप कृपया मुझे अनुगृहीत करें।"

अर्जुन के नम्र निवेदन को सुनकर द्रोण बोले—"पार्थ! आज तो तुम मुझ से टक्कर लिए बिना आगे न जा सकोगे।"

"क्या आप मेरी प्रतिज्ञा पूर्ति के पथ पर दीवार बनकर खड़े रहना चाहते हैं?"—अर्जुन ने प्रश्न किया।

"मैं तुम्हारे शत्रु-दल का सेनापति जो हूं।"—द्रोण बोले।

अर्जुन ने द्रोण के शब्दों का उत्तर अपने तीक्ष्ण बाणों से

दिया।

भयंकर संग्राम छिड़ गया। अर्जुन तीक्ष्ण वाणों का प्रहार कर रहा था और द्रोण उसके वाणों को तोड़ जा रहे थे। तब कुपित होकर अर्जुन ने पैतरा बदल कर बाण चलाने आरम्भ कर दिए। एक दो बाण द्रोण को चोट पहुंचाने में सफल हुए तो उन्हें भी क्रोध आया और कुपित होकर ऐसे बाण चलाये कि अर्जुन तथा श्री कृष्ण दोनों ही घायल हो गए इस से कुपित होकर अर्जुन गाण्डीव पर बाण चला ही रहा था कि द्रोण ने उसके धनुष की डोरी काट डाली। और फिर मुस्करा कर आचार्य ने उसके घोड़ों रथ और उसके चारों ओर बाणों की वर्षा कर दी। अर्जुन ने दूसरा धनुष लेकर बाण चलाये और आचार्य पर हावी होने की इच्छा से तीक्ष्ण बाण चलाने आरम्भ कर दिए।

परन्तु द्रोण भी उसी प्रकार अर्जुन का मुकाबला करने लगे। फिर क्या था वे रोक वाणो से उन्होने अर्जुन को घने अधकार मे डाल दिया। यह देखकर वासुदेव अर्जुन से बोले—शस्त्र विद्या में पारगत द्रोण से ही जूझते रहे तो यही शाम हो जायेगी। अब देरि करना ठीक नही कहो तो द्रोण को यही छोड़ कर रथ आगे बढ़ा दू। आचार्य थकने वाले नही है

अर्जुन ने स्वीकृति दे दी, तब श्री कृष्ण ने बडी कुशलता से आचार्य की बाई ओर से रथ हांक दिया और आगे निकल गए। यह देख द्रोण ने कहा—"पार्थ! तुम तो शत्रु को परास्त किए बिना आगे बढ़ते ही न थ। आज कैसे निकले जा रहे हो?"

अर्जुन ने मुस्कराकर कहा—"आप कहीं शत्रु थोड़े ही है, आप तो गुरु देव हैं। भला आप को हराने की क्षमता मुझ में कहां? मैं तो आपका शिष्य हूं पुत्र के समान। आप को परास्त करने की समता भला संसार मे किस रण बांकुरे मे हो सकती है"

यह कहता हुआ अर्जुन आगे बढ गया। श्री कृष्ण घोड़ों को तेजी से दौड़ा रहे थ। द्रोण के सामने से हट कर अर्जुन का रथ कौरव-सेना की ओर चला।

अर्जुन जाते ही भोजों की सेना पर टूट पड़ा। कृत वर्मा और सुदक्षिण पर उसने एक साथ ही आक्रमण कर दिया और उन दोनों

को परास्त करके श्रुतायुध से जा भिड़ा । भयंकर संग्राम छिड़ गया । श्रुतायुध के घोड़े मारे गए इस पर क्रुद्ध होकर वह गदा हाथ में लेकर रथ से उतर आया और क्रोध वश गदा का प्रहार श्री कृष्ण पर कर दिया । पर निःशस्त्र और युद्ध में न लड़ रहे श्री कृष्ण पर चलाई गदा उलटी श्रुतायुध को ही जा लगी, जिसकी चोट खाकर उसका शरीर तड़पने लगा । कुछ ही क्षण पश्चात उसकी यईं लीला समाप्त हो गई । यह उस वर दान का परिणाम था जो उसकी मा ने प्राप्त किया था ।

इस वर दान की भी एक कथा है ।

× × × ×

कहते हैं श्रुतायुध की मा पर्णशम बड़ी पुण्यवती थी । उस ने अपनी तपस्या से वैसंमण देवता के प्रसन्न होने पर वर दान मांगा था कि उसका पुत्र किसी शत्रु के हाथों न मारा जाये ।

उत्तर में देवता ने कृपा कर एक गदा उसे भेंट की और कहा कि तेरा बेटा इस गदा को लेकर लड़ेगा तो कोई भी शत्रु उसका वध न कर सकेगा परन्तु शर्त यह है कि यह गदा उस पर न चलाई जाय, जो निःशस्त्र हो, अथवा जो युद्ध में शरीक न हो । यदि इन में से किसी पर चलाई गई तो यह गदा उलटकर चलाने वाले का ही वध कर देगी ।

तो यही थी वह गदा जो श्रुतायुध ने चलाई थी और क्रोधवश देवता की शर्त वह भूल गया, जिसके कारण श्री कृष्ण जो निःशस्त्र भी थे और लड़ भी न रहे थे पर गदा का वार कर बैठने से उस गदा ने उसी का वध कर दिया ।

× × × ×

श्रुतायुध के मरते ही कांभोज राज सुदक्षिण ने अर्जुन पर प्रहार किया । परन्तु अर्जुन के बाणों के सामने उसकी एक न चली । अर्जुन ने उसके घोड़ों को मार डाला । धनुष तोड़ डाला और उस के कवच को चूर २ कर दिया । अन्त में एक ऐसा तीक्ष्ण बाण खींच कर मारा जो सीधे जाकर उसकी छाती पर लगा और वह हाथ फैला कर भूमि पर गिर पड़ा । उसके मुह से एक चीत्कार निकला और छाती से रक्त का फव्वारा ।

श्रुतायुध और कांमोज,का इस प्रकार अन्त देख कर श्रुतायु व अच्छुतायु दो राजा अर्जुन पर टूट पड़े । वे दोनों दो ओर से अर्जुन पर बाण बरसाने लगे । दोनों ही बड़े चचल और बलवान राजा थे, उनका मुकाबला करते २ अर्जुन बहुत थक गया बड़ा घोर सग्राम छिड़ा था । दोनों ने मिलकर अर्जुन, को घायल कर दिया। थक कर अर्जुन ध्वज स्तम्भ के सहारे खड़ा हो गया।

उस समय श्री कृष्ण बोले "पार्थ! रुक कैसे गए । इन दोनों राजाओं की आत्मा इनके शरीर के बन्धन से मुक्त होने को लालायित है । और तुम्हारे बाणों की प्रतीक्षा कर रहीं हैं । देखो सूर्य का रथ बहुत आगे जा चुका है । तुम्हें जयद्रथ का वध करना है "

अर्जुन को फिर उत्साह हुआ और उसने धनुप हाथ में सम्भाल लिया। देखते ही देखते उसने उन दोनों राजाओं का मार डाला। यह देख उनके दो पुत्र क्रुद्ध हो कर अर्जुन पर झपटे। पर जैसे इस्पात की दीवार से सिर टकराने पर सिर टकराने वाले को ही हानि पहुचती है, उसी प्रकार उन दोनों के प्रहार करने से उनके प्राणो पर ही बन आई। अर्जुन ने दोनो को ही चिरनिद्रा मे सुला दिया।

गाण्डीव पर दूसरी डोरी चढाकर, अर्जुन कौरव-सेना सागर को चीरता हुआ आगे बढ़ा । उसके बाणों की मार से चारो ओर शव ही शव दिखाई देने लगे । कहीं कुचली हुई खोपड़ियां पड़ी थीं, तो कही कटे हुए सिर रक्त के धारायें बह रही थीं। टूटे हुए कवचों, चूर चूर हुए रथों और घोड़ों के शवों से धरती पट गई । कुछ ही देर मे, वह स्थान,. जो पहले छटे हुए कडियेले जवानों की पंक्तियों से भरा था, मास पिण्डों, रक्त धाराओं, हड्डियों और रथो के अवशेषों से भर गया और तिल धरने को भी भूमि नहीं मिलती थी। अर्जुन का रथ शवों को कुचलता हुआ आगे जा रहा था।

उस समय वह भयानक अस्त्र प्रयोग कर रहा था। कभी उस के अस्त्रों से आग की लपटें निकलती थी तो कभी धुआं छूटता था। चिनगारियां सी छोड़ते उसके बाण क्षणभर में अनेक प्राणियो को मौत के घाट उतार देते थे। घोड़ो व मनुष्यों के चीत्कारों ने उस

स्थान पर वीत्स वातावरण बना दिया।

मार काट करता, रथों और हाथियो को मिटाता विनाश की ज्वाला वखेरता अर्जुन उस स्थान पर पहुंच गया जहां जयद्रथ था।

अर्जुन का रथ जयद्रथ की ओर जाते देख दुर्योधन बहुत चिन्तित हुआ। तुरन्त ही वह द्रोणाचार्य के पास पहुंचा और बोला—

"आचार्य ! अर्जुन तो हमारे व्यूह को तोड़कर अन्दर प्रवेश कर चुका है और वह मार काट करता उस स्थान पर पहुंच गया है, जहां अनेक वीरों से सुरक्षित जयद्रथ खडा है । हमारी इस हार से वह वीर विचलित हो उठेंगे जो जयद्रथ की रक्षा पर तैनात हैं। हम सब को आशा थी कि अर्जुन विना आचार्य जी से निवटे आगे नही जायेगा, न आचार्य हो उसे आगे जाने देंगे। पर वह आशा तो झूठी निकली। आप के देखते २ अर्जुन अपना रथ आगे वढा ले गया मालूम होता है कि आप पाण्डवों की विजय का रास्ता साफ करने को सदा ही प्रस्तुत रहते हैं। यह देख कर मेरा मन अधीर हो उठा है। आप ही वताईये कि मैंने आप का क्या बिगाडा है, जो आप मुझे पराजित करने पर तुले हैं। यदि पहले ही मुझे आपका इरादा ज्ञात हो जाता तो वेचारे जयद्रथ से यहां रुकने का आग्रह ही न करता। वह तो अपने देश जाना चाहता था। परन्तु मैंने ही उसे न जाने दिया। मेरी भूल से उस बेचारे के प्राणो पर आ बनी अर्जुन ने यदि उस पर आक्रमण कर दिया तो फिर वह किसी प्रकार न बच पायेगा"

दुर्योधन के शब्दो से द्रोणाचार्य को वडी ठेस लगी । तो भी समय के अनुसार उन्होंने क्रोध को पी लिया और बोले—"दुर्योधन! तुम ने इस समय जो शब्द कहे हैं, यद्यपि वे मेरे हृदय में बाणों की भांति लगे हैं तथापि में उनका बुरा नही मानता ! क्योंकि में तुम्हें पुत्रवत मानता हूं, जैसा अश्वत्थामा, वैसे ही मेरे लिए तुम । इस लिए तुम्हारी बात को छोड़कर मे इस समय जो उचित समझता हूं वही बताता हूं। देखो ! पाण्डवों की सेना हमारे सैनिकों को मारती काटती बड़ी तीव्र गति से बढ़ी चली आ रही है। इस समय मैं यह उचित नही समझता कि यह मोरचा छोड़कर अर्जुन का पीछा करने जाऊं। यदि मे यहाँ से हट गया तो अनर्थ हो जायेगा। देखो ! इस समय अर्जुन तो जयद्रथ की खोज में गया है और युधिष्टिर इधर आ

रहा है। मैं उसे जीवत पकड कर तुम्हें सौंपना चाहता हूं। इस प्रकार तुम्हारी एक इच्छा की पूर्ति हो जायेगी।"

बीच ही में दुर्योधन बोल उठा—"पर जयद्रथ बेचारे का क्या होगा?"

"हाँ, तुम भी बड़े शूरवीर हो। अर्जुन का सामना करने के लिए तुम तुरन्त वहा जाओ।"

"क्या आपको आशा है कि क्रुद्ध अर्जुन को मै रोक पाऊगा।"

"मैं तुम्हे एक अभिमान्त्रित कवच दूगा। इस दैवी कवच को पहन कर यदि तुम युद्ध करोगे तो तुम पर शत्रु का कोई भी अस्त्र प्रभाव न डाल सकेगा। और इस कवच के सहारे तुम जयद्रथ की रक्षा कर सकोगे। इधर मै युधिष्ठिर को पकड लूंगा।"

द्रोण की बात सुनकर दुर्योधन को अपार हर्ष हुआ। उसने दैवी कवच लिया और उसे पहन कर एक बड़ी सेना साथ ले अर्जुन का सामना करने चल पड़ा।

× × × ×

अर्जुन कौरव सेना को तहस नहस करता हुआ आगे बढा चला जा रहा था। बहुत दूर निकल जाने पर श्री कृष्ण ने देखा कि घोड़े थके हुए हैं। उन्होने रथ एक स्थान पर रोक दिया ताकि घोड़े सुस्ता लें। रथ रुका देखकर विन्द और अनुविन्द नामक दो वीरों ने आक्रमण कर दिया। अर्जुन ने बड़े कौशल से उनकी सेना को तितर बितर कर दिया और उन्हे भी मौत के घाट उतार दिया। इसके बाद थोडी देर श्री कृष्ण ने घोड़ों को सुस्ताने का अवसर देकर फिर रथ हाक दिया और जयद्रथ की ओर तेजी से रथ बढ़ाने लगे।

पीछे से शोर उठा तो श्री कृष्ण ने घूम कर देखा और अर्जुन को सचेत करते हुए बोले "पार्थ! देखो, पाछे से दुर्योधन आ रहा है, उसके साथ एक बड़ी सेना है चिरकाल से मन में क्रोध की जो आग दबा रक्खी है, आज उसे प्रगट करो। इस अनर्थ की जड़ को जला कर भस्म कर दो। इससे अच्छा अवसर नहीं मिलेगा! आज यह तुम्हारा शत्रु तुम्हारे बाणों का लक्ष्य बनने को आ रहा है! स्मरण रहे यह महारथी है। दूर से भी आक्रमण करने की सामर्थ्य

रखता है। अस्त्र विद्या का कुशल जानकार है। जोश के साथ युद्ध करेगा। शरीर का गठीला और बली है तनिक सावधानी से गाण्डीव के कमाल दिखाना।"

यह कह कर श्री कृष्ण ने रथ घुमा दिया और अर्जुन ने एका एक दुर्योधन पर हमला कर दिया।

इस अचानक आक्रमण से दुर्योधन तनिक भी न घबराया बल्कि गरज कर बोला—"अर्जुन! सुना तो बहुत है कि तुम बड़े वीर हो, वीरोचित रोमांचकारी कृत्य तुम ने किए हैं, किन्तु तुम्हारी वीरता का सही परिचय तो हम अब तक मिला नहीं है। जरा देखें तो सही कि तुम में कौन सा ऐसा पराक्रम है कि जिसकी इतनी प्रशंसा सुनने में आ रही है" तनिक सी गरमी पाकर या शरद ऋतु में बर्फानी हवा से जैसे कच्चे चमड़े का जूता है, इसी प्रकार दैवी कवच पाकर दुर्योधन अकड़ गया था। और दोनों में घोर संग्राम छिड़ गया।

बहुत देरि तक दोनों एक दूसरे पर बाण वर्षा करते रहे। फिर भी दुर्योधन उसी प्रकार डटा रहा। गाण्डीव से निकले प्राण बाण उसका कुछ न बिगाड़ रहे थे तब श्रीकृष्ण ने विस्मय पूर्वक कहा- 'पार्थ! यह कैसे आश्चर्य की बात है कि जो बाण बलिष्ट लोगों के प्राण ले लेते हैं, उन्हीं का दुर्योधन पर कोइ प्रभाव नहीं हो रहा। गाण्डीव से निकला बाण और उसका शत्रु पर कोई प्रभाव न हो। आश्चर्य की बात है मुझे तो कभी ऐसी आशा न थी। अर्जुन! कहीं तुम्हारी पकड़ में ढील तो नहीं रहती ? भुजाओं का बल तो कम नहीं हो गया ? गाण्डीव का तनाव तो स्वाभाविक है ? फिर क्या बात है जो तुम्हारे बाण दुर्योधन पर असर नहीं करते ?"

अर्जुन ने कहा—"मधु सूदन! लगता है द्रोण ने अपना अभिमन्त्रित कवच इसे दे दिया है उसी को दुर्योधन पहने हुए है। आचार्य ने इस कवच का भेद मुझे भी बताया था। यही कारण है कि मेरे बाण उस पर असर नहीं करते। यह उसी के बल पर साहस बांध अभी तक रुका है। फिर भी आप अभी हो देखिये कि दूसरे के कवच को शरीर पर लादे, लदे बैल की भांति खड़े दुर्योधन का क्या दशा होती है ?"

रहा है। मैं उसे जीवित पकड कर तुम्हें सौंपना चाहता हूं। इस प्रकार तुम्हारी एक इच्छा की पूर्ति हो जायेगी।"

बीच ही में दुर्योधन बोल उठा—"पर जयद्रथ बेचारे का क्या होगा ?"

"हाँ, तुम भी बडे शूरवीर हो। अर्जुन का सामना करने के लिए तुम तुरन्त वहा जाओ।"

"क्या आपको आशा है कि क्रुद्ध अर्जुन को मे रोक पाऊगा।"

"मैं तुम्हे एक अभिमान्त्रित कवच दूगा। इस दैवी कवच को पहन कर यदि तुम युद्ध करोगे तो तुम पर शत्रु का कोई भी अस्त्र प्रभाव न डाल सकेगा। और इस कवच के सहारे तुम जयद्रथ की रक्षा कर सकोगे। इधर मे युधिष्ठिर को पकड लूंगा।"

द्रोण की वात सुनकर दुर्योधन को अपार हर्ष हुआ। उसने दैवी कवच लिया और उसे पहन कर एक बडी सेना साथ ले अर्जुन का सामना करने चल पडा।

× × × ×

अर्जुन कौरव सेना को तहस नहस करता हुआ आगे बढा चला जा रहा था। बहुत दूर निकल जाने पर श्री कृष्ण ने देखा कि घोडे थके हुए हे। उन्होंने रथ एक स्थान पर रोक दिया ताकि घोडे सुस्ता लें। रथ रुका देखकर विन्द और अनुविन्द नामक दो वीरों ने आक्रमण कर दिया। अर्जुन ने बडे कौशल से उनकी सेना को तितर बितर कर दिया और उन्हे भी मौत के घाट उतार दिया। इसके वाद थोडी देर श्री कृष्ण ने घोडों को सुस्ताने का अवसर देकर फिर रथ हाक दिया और जयद्रथ की ओर तेजी से रथ बढ़ाने लगे।

पीछे से शोर उठा तो श्री कृष्ण ने घूम कर देखा और अर्जुन को सचेत करते हुए बोले "पार्थ ! देखो, पाछे से दुर्योधन आ रहा है, उसके साथ एक बडी सेना है चिरकाल से मन में क्रोध की जो आग दबा रक्खी है, आज उसे प्रगट करो। इस अनर्थ की जड को जला कर भस्म कर दो। इससे अच्छा अवसर नहीं मिलेगा ! आज यह तुम्हारा शत्रु तुम्हारे बाणों का लक्ष्य बनने को आ रहा है। स्मरण रहे यह महारथी है। दूर से भी आक्रमण करने की सामर्थ्य

रखता है। अस्त्र विद्या का कुशल जानकार है। जोश के साथ युद्ध करेगा। शरीर का गठीला और बली है तनिक सावधानी से गाण्डीव के कमाल दिखाना।"

यह कह कर श्री कृष्ण ने रथ घुमा दिया और अर्जुन ने एका एक दुर्योधन पर हमला कर दिया।

इस अचानक आक्रमण से दुर्योधन तनिक भी न घबराया बल्कि गरज कर बोला—"अर्जुन! सुना तो बहुत है कि तुम बड़े वीर हो, वीरोचित रोमांचकारी कृत्य तुम ने किए हैं, किन्तु तुम्हारी वीरता का सही परिचय तो हम अब तक मिला नही है। जरा देखें तो सही कि तुम मे कौन सा ऐसा पराक्रम है कि जिसकी इतनी प्रशसा सुनने में आ रही है" तनिक सी गरमी पाकर या शरद ऋतु मे पछानी हवा से जैसे कच्चे चमड़े का जूता है, इसी प्रकार दैवी कवच पाकर दुर्योधन अकड़ गया था। और दोनो में घोर सग्राम छिड़ गया।

बहुत देर तक दोनो एक दूसरे पर बाण वर्षा करते रहे। फिर भी दुर्योधन उसी प्रकार डटा रहा। गाण्डीव से निकले प्राण बाण उसका कुछ न बिगाड़ रहे थे तब श्रीकृष्ण ने विस्मय पूर्वक कहा-"पार्थ! यह कैसे आश्चर्य की बात है कि जो बाण बलिष्ट लोगो के प्राण ले लेते हैं, उन्ही का दुर्योधन पर कोइ प्रभाव नही हो रहा। गाण्डीव से निकला बाण और उसका शत्रु पर कोई प्रभाव न हो। आश्चर्य की बात है मुझे तो कभी ऐसी आशा न थी। अर्जुन! कही तुम्हारी पकड़ मे ढील तो नही रहती? भुजाओं का बल तो कम नही हो गया? गाण्डीव का तनाव तो स्वाभाविक है? फिर क्या बात है जो तुम्हारे बाण दुर्योधन पर असर नही करते?"

अर्जुन ने कहा—"मधु सूदन! लगता है द्रोण ने अपना अभिमन्त्रित कवच इसे दे दिया है उसी को दुर्योधन पहने हुए है। आचार्य ने इस कवच का भेद मुझे भी बताया था। यही कारण है कि मेरे बाण उस पर असर नही करते। यह उसी के बल पर साहस बांध अभी तक रुका है। फिर भी आप अभी हो देखिये कि दूसरे के कवच को शरीर पर लादे, लदे बैल की भांति खड़े दुर्योधन की क्या दशा होती है?"

यह कहते अर्जुन ने पैंतरे बदल कर ऐसे तीक्ष्ण बाण चलाये, कि उनकी मार से क्षण भर में ही दुर्योधन के रथ के घोड़े धराशायी हो गए। सारथि नीचे लुढक गया और रथ चूर चूर हो गया। कुछ ही देरि में दुर्योधन का धनुष भी अर्जुन ने काट डाला। दस्ताने फाड डाले और दुर्योधन के शरीर का वह भाग जो कवच से ढका नहीं था, अर्जुन के बाणों से बिंध गया। अर्थात जिन वस्तुओं व भागों पर अभिमन्त्रित कवच नहीं था, अर्जुन के बाणों की मार उन्ही पर अपना रंग दिखा गई।

अर्जुन के बाणों से दुर्योधन के हाथ, पांव, नाखून, उंगलियां तक बिंध गए और अन्त में दुर्योधन को हार माननी पड़ी। वह समर भूमि में पीठ दिखा कर भाग खड़ा हुआ। श्री कृष्ण ने पांचजन्य बजाया और बड़े जोर से विजय नाद किया।

जयद्रथ की रक्षा पर नियत वीरों ने जब यह देखा उनके दिल एक बारगी दहल उठे। पर मरता क्या न करता की लोकोक्ति के अनुसार भूरि श्रवा, कर्ण, वृषसेन, शल्य, अश्वथामा, जयद्रथ आदि आठों महारथी अर्जुन के मुकाबले पर आगए। परन्तु अर्जुन ने गाण्डीव की एक टंकार करके उनकी सेना का दिल दहला दिया। बाण वर्षा आरम्भ हो गई।

× × ·|· ×

दुर्योधन को अर्जुन का पीछा करते देख कर पाण्डव सेना ने शत्रुओं पर और भी जोर का आक्रमण कर दिया। धृष्टद्युम्न ने सोचा कि जयद्रथ की रक्षा करने यदि द्रोणाचार्य भी चले गए तो बड़ा अनर्थ हो जायेगा। इसलिए उन्हें रोक रखना चाहिए। इसी उद्देश्य से उसने द्रोण पर लगातार आक्रमण जारी रखा। धृष्टद्युम्न की इस चाल के कारण कौरव सेना तीन भागों में विभाजित होकर कमजोर पड गई।

एक बार अवसर पाकर धृष्टद्युम्न ने अपना रथ द्रोण के रथ से टकरा दिया। दोनों के रथ एक दूसरे से भिड गए। दोनों रथ आस पास खड़े बड़े ही भले प्रतीत हो रहे थे। धृष्टद्युम्न ने अपने धनुष-बाण फेंक दिए और तलवार लेकर द्रोण के रथ पर जा चढा और उन पर उन्मत होकर प्रहार करने लगा। वह तो था उनका जन्म का वैरी।

उस पर वे बिल्कुल उसी प्रकार झपटे जैसे किसी मृग को अपनी माद पर आया देख सिंह झपटता है। धृष्टद्युम्न की आंखों में रक्त-पिपासा झलक रही थी। बहुत देर तक वह आक्रमण करता रहा। एक बार द्रोण ने ऐसा पैना वार किया कि वह धृष्टद्युम्न के प्राण ही ले लेता, यदि ठीक उसी समय सात्यकि बाण से उनके प्रहार को न काट देता। अचानक सात्यकि की बाण वर्षा हो जाने से द्रोण का ध्यान उसकी ओर चला गया। इसी बीच पांचाल देश के रथ सवार धृष्टद्युम्न को वहां से हटा ले गए।

काले नाग के समान फुफकारते हुए और लाल-लाल नेत्रों से चिनगारियां बरसाते हुए द्रोणाचार्य सात्यकि पर टूट पड़े। परन्तु सात्यकि भी कोई मामूली योद्धा न था। पाण्डव-सेना के सब से चतुर योद्धाओं में उसका स्थान था। जब उसने द्रोणाचार्य को अपनी ओर झपटते हुए देखा तो वह खुद भी उनकी ओर झपट पड़ा।

चलते २ सात्यकि ने अपने सारथि से कहा—"सारथि! यह है द्रोणाचार्य! जो अपनी ब्राह्मणोचित वृत्ति को छोड़कर धर्म राज को पीड़ा पहुंचाने वाले क्षत्रियोचित कार्य कर रहे हैं: इन्हीं के कारण दुर्योधन को घमण्ड है। स्वयं यह भी अपने बल के घमण्ड में बौराये रहते हैं चलाओ वेग व कुशलता से रथ, तनिक इनका भी दर्प चूर्ण कर दूं।"

सात्यकि का संकेत पाते ही सारथि ने घोड़े छोड़ दिए। चांदी से सफेद चमकने वाले घोड़े हवा से बातें करने लगे और सात्यकि को द्रोणाचार्य की ओर ले दौड़े। पास पहुंचने २ सात्यकि और द्रोण ने एक दूसरे पर बाण बरसाने आरम्भ कर दिए। दोनों में भयंकर युद्ध छिड़ गया। दोनों ओर से नाराच बाणों की वर्षा हो रही थी। दोनों वीर कब बाण तरकश से लेते हैं कब खींचते हैं और कब छोड़ देते हैं। इस बात का पता ही न चलता था दोनों के बाणों से रथों के बीच की दूरि बाणों से पट गई। इस रोमांचकारी दृश्य को देख कर दूसरे सैनिक परस्पर युद्ध करना भूल गए और सात्यकि दोनों के रथों की ध्वजाएं टूट कर गिर गईं। रथों की छतरियां भी टूट गईं। पर वे आपस में भिड़े ही हुए थे। कोई भी हार मानने को तैयार न था। सात्यकि बार बार सिंह गर्जना करता और उनके

यह कहते अर्जुन ने पैंतरे बदल कर ऐसे तीक्ष्ण बाण चलाये, कि उनकी मार से क्षण भर में ही दुर्योधन के रथ के घोड़े धाराशायी हो गए। सारथि नीचे लुढक गया और रथ चूर चूर हो गया। कुछ ही देरि मे दुर्योधन का धनुष भी अर्जुन ने काट डाला। दस्ताने फाड डाले और दुर्योधन के शरीर का वह भाग जो कवच से ढका नहीं था, अर्जुन के बाणो से बिंध गया। अर्थात जिन वस्तुओं व भागो पर अभिमन्त्रित कवच नही था, अर्जुन के बाणों की मार उन्ही पर अपना रंग दिखा गई।

अर्जुन के बाणो से दुर्योधन के हाथ, पांव, नाखून, उगलियां तक बिंध गए और अन्त मे दुर्योधन को हार माननी पड़ी। वह समर भूमि में पीठ दिखा कर भाग खड़ा हुआ। श्री कृष्ण ने पाचजन्य बजाया और बड़े जोर से विजय नाद किया।

जयद्रथ की रक्षा पर नियत वीरो ने जब यह देखा उनके दिल एक बारगी दहल उठे। पर मरता क्या न करता की लोकोक्ति के अनुसार भूरि श्रवा, कर्ण, वृषसेन, शल्य, अश्वथामा, जयद्रथ आदि आठों महारथी अर्जुन के मुकाबले पर आगए। परन्तु अर्जुन ने गाण्डीव की एक टकार करके उनकी सेना का दिल दहला दिया। बाण वर्षा आरम्भ हो गई।

× × ·|· ×

दुर्योधन को अर्जुन का पीछा करते देख कर पाण्डव सेना ने शत्रुओ पर और भी जोर का आक्रमण कर दिया। धृष्टद्युम्न ने सोचा कि जयद्रथ की रक्षा करने यदि द्रोणाचार्य भी चले गए तो बड़ा अनर्थ हो जायेगा। इसलिए उन्हे रोक रखना चाहिए। इसी उद्देश्य से उसने द्रोण पर लगातार आक्रमण जारी रखा। धृष्टद्युम्न की इस चाल के कारण कौरव सेना तीन भागों मे विभाजित होकर कमजोर पड़ गई।

एक बार अवसर पाकर धृष्टद्युम्न ने अपना रथ द्रोण के रथ से टकरा दिया। दोनो के रथ एक दूसरे से भिड गए। दोनो रथ पास पास खड़े बड़े ही भले प्रतीत हो रहे थे। धृष्टद्युम्न ने अपने धनुष-बाण फेंक दिए और तलवार लेकर द्रोण के रथ पर जा चढा और उन पर उन्मत होकर प्रहार करने लगा। वह तो था उनका जन्म का बैरी।

"ठीक है द्रुपद कुमार ! तुम तुरन्त जाओ—युधिष्ठिर बोले-अपने साथ कुशल वीरों को लेते जाओ। सात्यकि कमजोर पड़ रहा है, कहीं अवसर पाकर द्रोणाचार्य उसका वध करने में सफल हो गए तो हमें भयकर क्षति होगी। जाओ, देरि न करो।"

एक बड़ी सेना को लेकर धृष्टद्युम्न तुरन्त उस ओर चल पड़ा। बड़ी कठिनाई से उसने सात्यकि को द्रोण के फन्दे से बचाया।

× × × ×

दूर से श्री कृष्ण के पांच जन्य की आवाज सुनाई दे रही थी। युधिष्ठिर के कान उसी ओर थे। सात्यकि को सम्बोधित करते हुए वह अपनी चिन्ता प्रगट करते हुए बोले—"सात्यकि ! सुना तुमने। अकेले पाच जन्य की ही आवाज आ रही है, गाण्डीव धनुष की टकार सुनाई नहीं देती अर्जुन को कहीं कुछ हो तो नहीं गया ?"

सात्यकि ने ध्यान से सुना और बोला—"बात तो आपकी ठीक है पर पांच जन्य भी तो अर्जुन के लिए ही बज रहा होगा। अर्जुन के प्रहारों से शत्रु मर रहे होंगे तभी तो श्री कृष्ण शख बजाते होंगे। यदि अर्जुन को कुछ हो जाता। तो पांच जन्य ही क्यों सुनाई देता ?"

"नहीं सात्यकि, सम्भव है श्री कृष्ण ही उस दशा में स्वयं लड़ने लग गए हों। जान पड़ता है अर्जुन सकट मे पड़ गया है। आगे सिन्धु राज की सेना है, पीछे द्रोण की। अर्जुन सुबह से व्यूह मे घुसा है और अब शाम होने को आई, अभी तक उसका पता नहीं चला। जरूर दाल मे कुछ काला है।"—युधिष्ठिर चिन्ता व्यक्त करते हुए बोले।

"नहीं धर्मराज ! आप व्यर्थ ही चिन्तित हो गए। अर्जुन को कोई परास्त कर सके, असम्भव है।" सात्यकि ने दृढ़ता पूर्वक कहा।

"वह देखो फिर पाच जन्य की ही ध्वनि सुनाई दी-युधिष्ठिर फिर चिन्तातुर होकर बोले—गाण्डीव की टकार सुनाई ही नहीं देती। सात्यकि ! तुम अर्जुन के मित्र हो। वह तुम से बड़ा स्नेह रखता है। वह तुम्हारी बड़ी प्रशसा किया करता। जब हम वनवास मे थे तो कितनी ही बार अर्जुन को मैंने कहते सुना कि सात्यकि

उत्तर मे द्रोण वृद्ध सिंह की भांति गरजते। दोनों के धनुषों की टकारें बड़े जोरो से सुनाई दे रही थी। उनके आस पास युद्ध रत सभी सैनिक रुक गए थे। मृदग, शंख आदि की ध्वनियां मौन हो गईं। आकाश मे देवता, विद्याधर गंधर्व, यक्ष आदि इन दोनों के युद्ध को विस्मय पूर्वक देख रहे थे।

द्रोण का धनुष सात्यकि के बाण से टूट गया, तो उन्होंने दूसरा धनुष सम्भाला, पर उसकी डोरी चढा ही रहे थे कि वह भी सात्यकि ने तोड डाला। द्रोण ने तीसरा धनुष उठाया, कुछ ही देरि मे वह भी टूट गया। इस प्रकार द्रोण के पूरे एक सौ धनुष सात्यिक ने तोड डाले। द्रोण उसके पराक्रम को देखकर मन ही मन कहने लगे—"सात्यकि तो धुरन्धर रामचन्द्र, कार्तिकेय, भीष्म और धनंजय आदि कुशल योद्धाओ की टक्कर का वीर है।"

सात्यकि ने और भी कुशलता का परिचय दिया। द्रोण जिस अस्त्र का प्रयोग करते, सात्यकि भी उसी अस्त्र का उसी प्रकार प्रयोग करता। द्रोण तग आगए। तो उन्होंने सात्यकि के वध की इच्छा से आग्नेयास्त्र चलाया। आग की लपटें बखेरता आग्नेयास्त्र चला। तभी सात्यकि ने वरुणास्त्र चलाया, जो पानी बरसाता हुआ चला और उस ने बीच ही मे आग्नेयास्त्र को ठण्डा कर दिया। इस प्रकार बहुत देरि तक भयकर अस्त्रो का प्रयाग होता रहा परन्तु सात्यकि ने किसी से भी हार न मानी वह डटा ही रहा और प्रत्येक अस्त्र की काट करता रहा। द्रोणाचार्य यह देखकर बड़े क्षुब्ध हुए, तब उन्होंने एक दिव्यास्त्र छोडा, जिसे सात्यकि न काट पाया, तो भी उसने अपने को बचा लिया पर तभी से वह कुछ कमजोर पडने लगा। यह देख कौरव-सेना मे हर्ष की लहर दौड़ गई।

तभी युधिष्ठिर को पता चला कि सात्यकि पर सकट आया हुआ है, उन्होंने अपने आस-पास के वीरो से कहा—"कुशल योद्धा नरोत्तम और सच्चे वीर सात्यकि द्रोण के बाणो से बहुत ही पीड़ित हो रहे हैं। चलो, हम लोग उधर चल कर उस वीर पुरुष की सहायता करें।"

धृष्टद्युम्न ने युधिष्ठिर को रोकते हुए कहा—"धर्मराज! आप का वहां जाना ठीक नही है। मुझे आज्ञा दीजिए कि सात्यकि की सहायता करू।"

"ठीक है द्रुपद कुमार ! तुम तुरन्त जाओ—युधिष्ठिर बोले-अपने साथ कुशल वीरों को लेते जाओ। सात्यकि कमजोर पड़ रहा है, कहीं अवसर पाकर द्रोणाचार्य उसका वध करने में सफल हो गए तो हमें भयंकर क्षति होगी। जाओ, देरि न करो।"

एक बड़ी सेना को लेकर धृष्टद्युम्न तुरन्त उस ओर चल पड़ा। बड़ी कठिनाई से उसने सात्यकि को द्रोण के फन्दे से बचाया।

× × × ×

दूर से श्री कृष्ण के पांच जन्य की आवाज़ सुनाई दे रही थी। युधिष्ठिर के कान उसी ओर थे। सात्यकि को सम्बोधित करते हुए वह अपनी चिन्ता प्रगट करते हुए बोले—"सात्यकि ! सुना तुमने। अकेले पाच जन्य की ही आवाज आ रही है, गाण्डीव धनुष की टंकार सुनाई नहीं देती अर्जुन को कहीं कुछ हो तो नहीं गया ?"

सात्यकि ने ध्यान से सुना और बोला—"बात तो आपकी ठीक है पर पाच जन्य भी तो अर्जुन के लिए ही बज रहा होगा। अर्जुन के प्रहारों से शत्रु मर रहे होंगे तभी तो श्री कृष्ण शंख बजाते होंगे। यदि अर्जुन को कुछ हो जाता। तो पाच जन्य ही क्यों सुनाई देता ?"

"नहीं सात्यकि, सम्भव है श्री कृष्ण ही उस दशा में स्वयं लड़ने लग गए हों। जान पड़ता है अर्जुन संकट में पड़ गया है। आगे सिन्धु राज की सेना है, पीछे द्रोण की। अर्जुन सुबह से व्यूह में घुसा है और अब शाम होने को आई, अभी तक उसका पता नहीं चला। जरूर दाल में कुछ काला है।"—युधिष्ठिर चिन्ता व्यक्त करते हुए बोले।

"नहीं धर्मराज ! आप व्यर्थ ही चिन्तित हो गए। अर्जुन को कोई परास्त कर सके, असम्भव है।" सात्यकि ने दृढ़ता पूर्वक कहा।

"यह देखो फिर पाच जन्य की ही ध्वनि सुनाई दी-युधिष्ठिर फिर चिन्तातुर होकर बोले—गाण्डीव की टंकार सुनाई ही नहीं देती। सात्यकि ! तुम अर्जुन के मित्र हो। वह तुम से बड़ा स्नेह रखता है। वह तुम्हारी बड़ी प्रशंसा किया करता। जब हम वनवास में थे तो कितनी ही बार अर्जुन को मैंने कहते सुना कि सात्यकि

उत्तर मे द्रोण वृद्ध सिंह की भांति गरजते। दोनों के धनुषों की टकारें बड़े जोरों से सुनाई दे रही थी। उनके आस पास युद्ध रत सभी सैनिक रुक गए थे। मृदग, शख आदि की ध्वनियां मौन हो गई। आकाश मे देवता, विद्याधर गंधर्व, यक्ष आदि इन दोनों के युद्ध को विस्मय पूर्वक देख रहे थे।

द्रोण का धनुष सात्यकि के बाण से टूट गया, तो उन्होंने दूसरा धनुष सम्भाला पर उसकी डोरी चढा ही रहे थे कि वह भी सात्यकि ने तोड डाला। द्रोण ने तीसरा धनुष उठाया, कुछ ही देरि में वह भी टूट गया। इस प्रकार द्रोण के पूरे एक सौ धनुष सात्यिक ने तोड डाले। द्रोण उसके पराक्रम को देखकर मन ही मन कहने लगे— 'सात्यकि तो धुरन्धर रामचन्द्र, कार्तिकेय, भीष्म और धनंजय आदि कुशल योद्धाओं की टक्कर का वीर है।"

सात्यकि ने और भी कुशलता का परिचय दिया। द्रोण जिस अस्त्र का प्रयोग करते, सात्यकि भी उसी अस्त्र का उसी प्रकार प्रयोग करता। द्रोण तग आगए। तो उन्होंने सात्यकि के वध की इच्छा से आग्नेयास्त्र चलाया। आग की लपटें बखेरता आग्नेयास्त्र चला। तभी सात्यकि ने वरुणास्त्र चलाया, जो पानी बरसाता हुआ चला और उस ने बीच ही मे आग्नेयास्त्र को ठण्डा कर दिया। इस प्रकार बहुत देरि तक भयकर अस्त्रों का प्रयोग होता रहा परन्तु सात्यकि ने किसी से भी हार न मानी वह डटा ही रहा और प्रत्येक अस्त्र की काट करता रहा। द्रोणाचार्य यह देखकर बड़े क्रुध हुए, तब उन्होंने एक दिव्यास्त्र छोडा, जिसे सात्यकि न काट पाया, तो भी उसने अपने को बचा लिया पर तभी से वह कुछ कमजोर पडने लगा। यह देख कौरव-सेना मे हर्ष की लहर दौड गई।

तभी युधिष्ठिर को पता चला कि सात्यकि पर सकट आया हुआ है, उन्होंने अपने आस-पास के वीरो से कहा—"कुशल योद्धा नरोत्तम और सच्चे वीर सात्यकि द्रोण के बाणो से बहुत ही पीड़ित हो रहे हैं। चलो, हम लोग उधर चल कर उस वीर पुरुष की सहायता करें।"

धृष्टद्युम्न ने युधिष्ठिर को रोकते हुए कहा—"धर्मराज! आप का वहा जाना ठीक नही है। मुझे आज्ञा दीजिए कि सात्यकि की सहायता करू।"

'नहीं, नही यह तो तुम्हारा बहाना है । साफ क्यों नही कहते कि उस सकट पूर्ण स्थान पर तुम जाना ही नही चाहते ।"— युधिष्ठिर अर्जुन के स्नेह मे आकर वह गए ।

सात्यकि के हृदय को इन शब्दों से ठेस लगी, आहत पक्षी की भाति तडप कर वह बोला—"महाराज ! मुझे ज्ञात नहीं था कि आप रण क्षेत्र में खडे होकर अपने इस अनन्य भक्त के लिए यह कटु शब्द भी प्रयोग कर सकेंगे । मुझे इसका बडा ही खेद है । तो भी आपको ललकारने और फटकारने का अधिकार है, इसलिए मैं सब कुछ सहन करूंगा । फिर भी शत्रुओं से आपकी रक्षा के लिए अन्त समय तक डटा रहूंगा ।"

यह सुन युधिष्ठिर अपने शब्दों पर पश्चाताप करने लगे और बहुत सोच विचार के बाद बोले—"सात्यकि ! मुझे क्षमा करना । वास्तव में अर्जुन मुझ अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय है । जब कभी मैं उसे सकट मे पडा महसूस करता हूं तो बेचैन हो जाता हूं । तुम मेरी बात मानो और उसकी जाकर खबर लो । यहा मेरी रक्षा के लिए भीमसेन है, धृष्टद्युम्न है और भी कितने ही वार हैं, तुम्हे मेरी आज्ञा माननी ही होगी ।"

विवश होकर सात्यकि चलने को तैयार हुआ । धर्मराज ने सात्यकि के रथ पर हर प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और युद्ध सामग्री रखवा दी और खूब विश्राम करके ताजे हो रहे चपल तथा चतुर घोडे भी जुतवा दिए आशीर्वाद देकर सात्यकि को विदा किया ।

सात्यकि ने रथ पर सवार होकर भीमसेन से कहा—"महाबली भीमसेन ! केशव और धनंजय ने तो धर्मराज का मुझे सौंपा था, उसी भरोसे के साथ मैं युधिष्ठिर को तुम्हें सौंपता हूं । उनकी अच्छी तरह देख भाल करना और द्रोण से सावधान रहना ।"

सारथि ने घोडे छोड़ दिए । हवा मे बातें करते घोडे कौरव सेना की ओर तीव्र गति से भागने लगे । रास्ते मे कौरव-सेना ने सात्यकि का डटकर मुकाबला किया । पर सात्यकि उनकी भारी सेना को तितर बितर करता हुआ आगे बढता रहा ।

जैसे ही सात्यकि युधिष्ठिर को छोड़कर अर्जुन की ओर चला, वैसे ही द्रोणाचार्य ने पाण्डव सेना पर हमले करने आरम्भ

जैसा ऊंचा और कहीं देखने को भी न मिलेगा। उस ओर तो देखो! आकाश में कैसी धूल उड़ रही है। अर्जुन जरूर शत्रुओं से घिरा हुआ है और संकट में है। जयद्रथ कोई असाधारण महारथी नहीं, फिर उसकी रक्षा के लिए आज कई महारथी अपने प्राणों की बाजी लगाने को तैयार हैं। तुम अभी ही इसी घड़ी अर्जुन की सहायता को चले जाओ।

कहते कहते युधिष्ठिर बड़े ही अधीर हो उठे।

महाराज युधिष्ठिर के बार बार आग्रह पर सात्यकि ने नम्र भाव से कहा—'धर्मराज! आपकी आज्ञा मेरे सिर-आंखों पर है और फिर अर्जुन के लिए मैं क्या नहीं कर सकता? मैं उसके लिए अपने प्राण भी न्योछावर कर सकता हूं। आपकी आज्ञा होने पर तो मैं एक बार देवताओं से भी टक्कर ले सकता हूं। परन्तु मुझे वासुदेव और धनंजय ने जो आज्ञा दी है, वह भी मुझे याद है: उसी के कारण मैं आपको अकेला नहीं छोड़ सकता।"

उतावले होकर युधिष्ठिर पूछ बैठे—"वह कौन सी आज्ञा है, जो मेरी आज्ञा के रास्ते में रोड़ा बन गई है?"

"महाराज! रुष्ट न हों। उन्होंने जाते समय मुझ से कहा था कि—'जब तक हम दोनों जयद्रथ का वध करके न लौटें तब तक तुम युधिष्ठिर की रक्षा करते रहना। खूब सावधान रहना, तनिक सी भी असावधानी न हो। तुम्हारे ही भरोसे हम युधिष्ठिर को छोड़ जाते हैं। द्रोण की प्रतिज्ञा को ध्यान में रखना और उनकी रक्षा में प्रत्येक प्रकार का बाजी लगा देना।' —अब आप ही बताईये मैं कैसे यहां से जा सकता हूं? वे मुझ पर भरोसा करके इतनी बड़ी जिम्मेदारी डाल गए हैं।"—सात्यकि ने विनीत भाव से कहा।

"जिसके आदेश की तुम्हें इतनी चिन्ता है उसके प्राणों की तुम्हें तनिक भी चिन्ता नहीं! तुम इसी समय उसके काम न आओगे, तो कब आवेगी तुम्हारी मित्रता?—आवेश में आकर युधिष्ठिर बोले।

"महाराज! मुझे विश्वास है कि शत्रुओं की सम्मिलित शक्ति धनंजय की शक्ति के सोलहवें भाग के समान भी नहीं है। धनंजय अजेय है। आप व्यर्थ ही चिन्ता कर रहे हैं।"—सात्यकि ने कहा।

भीम सेन ने एक आज्ञाकारी अर्जुन की भांति कहा—"आप की आज्ञा सिर-आंखों पर। मैं जाता हूं और वहां यदि अर्जुन भईया पर कोई सकट होगा तो अपने प्राण देकर भी उन्हें सकट-मुक्त करूंगा। पर आप अपने को सम्भाले रहें। कहीं ऐसा न हो कि अर्जुन की चिन्ता ही में आप अपने को भूल जायें और शत्रु का दांव चल जाय। और ऐसा भी न हो कि आप मेरी तरह किसी और का भी मेरे पीछे पीछे ही भेज दें, और शत्रु के लिए मैदान साफ हो जाये।"

"तुम निश्चित रहो भीम! मैं सावधान हूं। हां, तुम ज्योंही अर्जुन के पास पहुंचो और वह कुशल से हो तो सिंह-नाद करना। मैं तुम्हारे नाद को सुनकर समझ लूंगा कि अर्जुन सकुशल है।"—युधिष्ठिर बोले।

भीमसेन ने अपने रथ में आवश्यक अस्त्र-शस्त्र रक्खे और जाने से पूर्व धृष्टद्युम्न को पास बुलाकर कहा—महाराज युधिष्ठिर अर्जुन के लिए बड़े चिन्तित हैं। उनकी आज्ञा से मैं उसकी सहायता के लिए जा रहा हूं। राजा की आज्ञा का पालन करना हमारा कर्तव्य है इसलिए मैं यह जानता हुआ भी कि अर्जुन भैया सकुशल होंगे और शत्रु की कोई शक्ति भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगी, मैं उस ओर जा रहा हूं। अब मैं महाराज की रक्षा का भार तुम पर सौंपता हूं द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा तो तुम्हें ज्ञात ही है। उनसे सावधान रहना।"

"तुम विश्वास रक्खो जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं, महाराज के पास भी कोई नहीं फटक सकता।" धृष्टद्युम्न ने आश्वासन देते हुए कहा।—और भीम सेन का रथ कौरव सेना की ओर तीव्र गति से बढ़ने लगा।

भीम के रथ को अपनी ओर आते देख कौरव-सेना में कोलाहल मच गया। सब ने उसका रास्ता रोक लिया, पर भीम सेन की बाण वर्षा के आगे किसी की न चली। रक्त की नदियां बहाता हुआ, कौरव सैनिकों के शवों पर से बढ़ाता हुआ भीम सेन आगे बढ़ता गया। धृतराष्ट्र के ग्यारह बेटों को उसने यम लोक पहुंचाया।

भीम इस प्रकार कौरव-सेना का संहार करता करता दूर निकल गया और आगे जाकर उसका वास्ता पड़ा, द्रोणाचार्य से।

कर दिए। पाण्डव सेना की पंक्तियां कई जगह से टूट गईं और उन्हें पीछे हटना पड़ गया। यह देख युधिष्ठिर बड़े चिन्तित हुए।

× × × ×

युधिष्ठिर पुनः चिन्तित हो उठे। बोले—"अर्जुन अभी तक लौटा नहीं और सात्यकि की भी कोई खबर नहीं आई और उधर से बार बार पांचजन्य की ध्वनि आ रही है, गाण्डीव की टंकार सुनने को मेरे कान बेचैन हो रहे हैं, टंकार सुनाई ही नहीं देती। मेरा मन शंका के मारे कांप रहा है न जाने क्यों मुझे चिन्ता हो रही है। कहीं मेरे प्रिय भ्राता अर्जुन पर कोई संकट तो नहीं आ गया। भीमसेन? मैं बहुत चिन्ताकुल हो रहा हूं। मेरी समझ में ही नहीं आता कि क्या करूं?"

युधिष्ठिर को इस प्रकार व्याकुल देखकर भीम सेन भी चिन्ताकुल हो गया, उसने कहा—"महाराज! यद्यपि मैं आपको चिन्ता रहित करने के लिए आपकी आज्ञानुसार सब कुछ करने को तत्पर हूं। तो भी मैं आपको चिन्तानिर्मूल समझता हूं क्योंकि प्रिय भ्राता अर्जुन का कुछ बिगाड सके, ऐसा तो मुझे कोई दिखाई नहीं देता। आपको मैंने कभी इतना अधीर होते नहीं देखा। आप निश्चिन्त रहिए अथवा मुझ से बताईये कि क्या करूं?"

"भैया! न जाने क्यों मेरा दिल बहुत घबरा रहा है तुम तुरन्त जाओ और अर्जुन की खबर लो"—युधिष्ठिर बोले! "मेरे लिए तो अर्जुन की खबर लेना भी उतना आवश्यक है जितना आपकी रक्षा करना। सात्यकि आपकी रक्षा का भार मुझ पर छोड़ कर गए हैं, अब आप ही बताईये कि मैं क्या करूं? आपकी आज्ञा का पालन करूं या आपके प्रति अपने कर्तव्य को पूर्ण करने के लिए यहीं रहूं?"—भीम सेन ने कहा।

"तुम मेरी चिन्ता न करो। मुझे यहां कोई खाये नहीं जा रहा। अर्जुन के प्राण बहुत मूल्यवान हैं। उसकी रक्षा पहले करो। वह है तो हमारे लिए सब कुछ है। वह न रहा और तुमने मेरे प्राणों की रक्षा कर ली तो भी सब कुछ चौपट हो जायेगा। मैं जो कुछ कहता हूं वही करो। तुरन्त अर्जुन की सहायता को पहुंचो।"—युधिष्ठिर ने व्याकुल होकर कहा उस समय यह साफ जाहिर हो रहा था कि अर्जुन के प्रति उन्हें कितना स्नेह है।

रथ पर जा चढे, उसे भी भीम ने अपनी गदा से चूर चूर कर दिया। तब विवश हो द्रोण एक और रथ पर जा चढे, क्रुद्ध होकर पागल हाथी की भांति भीम उस रथ की ओर भागा और इससे पहले कि द्रोण अपने बाणों से उसकी गति को रोक पायें, उसने उस रथ को अपनी बलिष्ट भुजाओं से ऊपर उठा लिया और ऊपर की ओर फेंक कर अपने रथ पर आ चढा। द्रोण उस बार भी बड़ी कठिनाई से बच सके।

भीम सेन इस प्रकार गुरु ऋण चुका कर आगे बढ गया। स्मरण रहे कि इस अद्भुत बल-प्रदर्शक के कारण ही भीम को मदोन्मत्त हाथी की उपमा दी जाती है, वास्तव मे उसमे विचित्र बल था। वह अपनी गदा घुमाता हुआ कौरव सेना पर टूट पड़ा और असंख्य सनिकों को यमलोक पहुंचाता हुआ व्यूह मे घुस गया। उस दिन उसने द्रोण के कइ रथ तोड़े थ, जिससे कौरव-सनिक भय विह्वल हो गए थे और उसके सामने पड़ कर युद्ध करने का साहस उन्हे न होता था वह कौरव-सेना को चीरता फोड़ता जा रहा था कि भोजो ने उसका सामना किया। परन्तु जिस प्रकार अग्नि सूखे वन को जला कर भस्म कर डालती है, इसी प्रकार भीम ने भोजो को भी नष्ट कर डाला और आगे बढने लगा। जितने भी सैनिक बल उसके सामने आये, उन्हे मारता, पछाडता वह आगे ही बढ़ा। कही बाणो से वार करता तो कही गदा से सनिको का सहार करता आखिर वह उस स्थान पर पहुच ही गया जहां अर्जुन जयद्रथ की सेना से लड रहा था।

अर्जुन को सुरक्षित देखते ही भीम सेन ने सिंह नाद किया। भीम का सिंह नाद सुन कर श्री कृष्ण और अर्जुन आनन्द के मारे उछल पड़े और उन्होने भी जोरों से सिंह नाद किया। इन सिंह नादों को सुन कर युधिष्ठिर बहुत ही प्रसन्न हुए। उनके मन के शोक के बादल हट गए। उन्होंने अर्जुन को मन ही मन आशीर्वाद दिया। वे सोचने लगे—"अर्जुन अवश्य ही सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ का वध कर देगा। उसके करने मे दुर्योधन का साहस टूट जायेगा। भीष्म पितामह के वध के उपरान्त यह दूसरी बड़ी क्षति दुर्योधन को होगी, जो उसकी कमर तोड़ देगी। इससे वह युद्ध के भावी परिणाम

द्रोण उसका रास्ता रोक कर बोले—"भीम सेन ! मैं तुम्हारा शत्रु हूं। मुझे परास्त किए बिना तुम आगे नहीं बढ़ सकोगे। मेरी अनुमति पाकर ही तुम्हारा भाई अर्जुन व्यूह मे प्रवेश कर सका है। पर तुम्हे जाने की मैं आज्ञा नही दूंगा"

आचार्य का विचार था कि अर्जुन की ही भांति भीम सेन भी उनके प्रति आदर प्रगट करेगा। परन्तु भीम सेन तो उल्टा क्रुद्ध हो गया। उसने गरज कर कहा—"ब्राह्मण श्रेष्ठ ! अर्जुन व्यूह में घुस गया है तो आप से आज्ञा लेकर नही आपकी कृपा वश ; नहीं, वरन अपने बल के बूते पर उसने व्यूह को तोड कर प्रवेश किया है। परन्तु आप याद रखिये कि अर्जुन ने आप पर दया की होगी, किन्तु आप मुझ से ऐसी आशा न रखिये। मै आप का शत्रु हूं और मेरे सामने जो कोई आयेगा, चाहे वह मेरा गुरु ही क्यो न हो, मेरे हाथो अपनी धृष्टता का फल चखे बिना न रहेगा। भीम किसी की दया का मोहताज नहीं है, वह बल के द्वारा अपना रास्ता बनाना जानता है।"

द्रोण तो उसके स्वभाव से परिचित थे ही, उन्होने क्रुद्ध भीम को शांत करने के लिए कहा—'अरे वृकोदर ! पहले गुरु-ऋण तो चुकाता जा। जाता कहाँ है ?"

भीम और भी क्रुद्ध हो गया और खिसिया कर बोला—"हां ठीक है, आपका ऋण भी चुकाता चलूं। पर याद रहे कि मैं आपको पूरी तरह छका दूंगा।"

"मूर्ख ! यह मत भूल कि मुझ से ही तूने वह विद्या प्राप्त की है, जिसके बल पर तू अकंड रहा है।"—कुपित होकर द्रोण बोले 'ब्राह्मण श्रेष्ठ ! वह दिन लद गए, जब आप हमारे गुरु थे हमारे पिता तुल्य थे। तब हम आपका शीश झुकाते थे आप को पूजते थे। पर आज तो आप छूटते ही स्वयं अपने को मेरा शत्रु कह चुके हैं। फिर भी आप चाहते है तो आप को शत्रु गुरु मानकर आप का गुरु-ऋण चुकाए ही देता हू।"

"यह कहता हुआ भीम सेन भूखे भेडिये की भाँति अपने रथ से उतरा और दौडकर उसने द्रोण का रथ उठाकर फेंक दिया। द्रोण बडी कठिनाई से कूद कर अपने प्राण बचा सके। वे दौड कर दूसरे

रथ पर जा चढ़े, उसे भी भीम ने अपनी गदा से चूर चूर कर दिया। तब विवश हो द्रोण एक और रथ पर जा चढ़े, क्रुद्ध होकर पागल हाथी की भांति भीम उस रथ की ओर भागा और इससे पहले कि द्रोण अपने बाणों से उसकी गति को रोक पायें, उसने उस रथ को अपनी बलिष्ट भुजाओं से ऊपर उठा लिया और ऊपर की ओर फेंक कर अपने रथ पर आ चढ़ा। द्रोण उस बार भी बड़ी कठिनाई से बच सके।

भीम सेन इस प्रकार गुरु ऋण चुका कर आगे बढ़ गया। स्मरण रहे कि इस अद्भुत बल-प्रदर्शन के कारण ही भीम को मदोन्मत्त हाथी की उपमा दी जाती है, वास्तव में उसमें विचित्र बल था। वह अपनी गदा घुमाता हुआ कौरव सेना पर टूट पड़ा और असंख्य सैनिकों को यमलोक पहुंचाता हुआ व्यूह में घुस गया। उस दिन उसने द्रोण के कई रथ तोड़े थे, जिससे कौरव-सैनिक भय विह्वल हो गए थे और उसके सामने पड़ कर युद्ध करने का साहस उन्हें न होता था। वह कौरव-सेना को चीरता फोड़ता जा रहा था कि भोजों ने उसका सामना किया। परन्तु जिस प्रकार अग्नि सूखे वन को जला कर भस्म कर डालती है, इसी प्रकार भीम ने भोजों को भी नष्ट कर डाला और आगे बढ़ने लगा। जितने भी सैनिक बल उसके सामने आये, उन्हें मारता, पछाड़ता वह आगे ही बढ़ा। कहीं बाणों से वार करता तो कहीं गदा से सैनिकों का संहार करता आखिर वह उस स्थान पर पहुंच ही गया जहां अर्जुन जयद्रथ की सेना से लड़ रहा था।

अर्जुन को सुरक्षित देखते ही भीम सेन ने सिंह नाद किया। भीम का सिंह नाद सुन कर श्री कृष्ण और अर्जुन आनन्द के मारे उछल पड़े और उन्होंने भी जोरों से सिंह नाद किया। इन सिंह नादों को सुन कर युधिष्ठिर बहुत ही प्रसन्न हुए। उनके मन के शोक के बादल हट गए। उन्होंने अर्जुन को मन ही मन आशीर्वाद दिया। वे सोचने लगे—"अर्जुन अवश्य ही सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ का वध कर देगा। उसके करने से दुर्योधन का साहस टूट जायेगा। भीष्म पितामह के वध के उपरान्त यह दूसरी बड़ी क्षति दुर्योधन को होगी, जो उसकी कमर तोड़ देगी। इससे यह युद्ध के भावी परिणाम

के सम्बन्ध में शकित हो जायेगा और सन्धि के लिए तैयार हो जायेगा सम्भव है कि जयद्रथ की समाप्ति पर ही इस युद्ध की समाप्ति हो जाय। मैं राज्य का न्यूनतम भाग लेकर भी सन्धि कर सकता हूं। फिर हम दोनो, कौरव तथा पाण्डव भाईयो की भाति प्रेम से रहने लगेंगे।"

इधर युधिष्ठिर के मन मे ऐसे विचार उठ रहे थे, उधर भीम तथा कर्ण मे भयकर सग्राम हो रहा था। कर्ण ने भीम का रास्ता रोक कर कहा—अरे मूर्ख ! तू भी अर्जुन के साथ ही यमलोक जाने के लिए यहा पहुच गया ?"

भीम कर्ण के शब्दो को सुन कर क्रुद्ध हो गया और आवेश मे आकर उस पर टूट पड़ा बडा ही भयकर सग्राम होने लगा। भीम के बाणो से कर्ण का धनुष टूट गया। उसने दूसरा धनुष उठाया, पर भीम ने उसे भी तोड़ दिया। फिर कर्ण ने एक और धनुष उठा लिया, और बाण वर्षा आरम्भ करदी। भीम सेन ने उसका रथ तोड डाला और घोडो व सारथि को मार डाला। दुर्योधन ने अपने दो भाईयों को कर्ण की रक्षा के लिए भेजा। परन्तु उनको भीम ने काल का ग्रास बना दिया।

इस प्रकार दुर्योधन के कई भाईयों को भीम सेन ने मार गिराया। और कर्ण को बुरी तरह घायल कर दिया। दुर्योधन को कर्ण की दशा देखकर बडी चिन्ता हुई। उसने वार वार अपने भ्राताओ को कर्ण की रक्षा को भेजा, पर प्रत्येक भीम के हाथों मारा गया। कर्ण पहले तो शात भाव से लड़ता रहा और बार बार ऐसे शब्दो का प्रयोग करता रहा, जिन से भीम विचलित हो जाता वह आवेश मे आ जाता और पागल हाथी की भांति प्रहार करता, परन्तु अन्त मे कर्ण का मन दुर्योधन के भाईयो का वध होने के कारण क्षुब्ध हो गया। उसने जी तोड कर युद्ध आरम्भ कर दिया।

भीम सेन ने कर्ण के कई रथ तोड़ डाले। अनेक धनुष काट डाले और बार बार ऐसे भीषण प्रहार किए जिनसे कर्ण के प्राणों पर आ बनती। कर्ण था बड़ा ही यशस्वी प्रतापी योद्धा। वह अपनी रक्षा कर लेता। अन्त में कर्ण ने कुपित होकर भीम सेन के रथ को तोड़ डाला। उसके रथ के घोडों और सारथि को मार डाला।

भीम सेन ने रथ से कूद कर हाथियों के शवों के पीछे मोरचा जमाया। वहां से उसके हाथ जो भी लगा, रथों के टुकड़े, पहिए, टूटे हुए भाले, टूटी गदाए आदि, वहीं फेंक कर कर्ण को मारी। उस समय यदि कर्ण चाहता तो भीम को मार डालता, परन्तु जब ऐसा अवसार आया, जो उसे कुन्ती को दिया वचन याद आगया। उसने वचन दिया था कि वह अर्जुन के अतिरिक्त और किसी पाण्डव को न मारेगा। उसी वचन के अनुसार उसने भीम सेन का वध न किया।

इतने में ही श्री कृष्ण की नजर भीम सेन पर पड गई जो निःशस्त्र होकर भी कर्ण के ऊपर प्रहार कर रहा था उन्होंने अर्जुन से कहा—"पार्थ ! उधर देखो भीम सेन को कर्ण मारे डाल रहा है।"

अर्जुन औरों मे लड़ना भूल तुरन्त भीम सेन की रक्षा के लिए पहुंच गया।

× × × ×

इधर सात्यकि और भूरि श्रवा मे युद्ध हो रहा था। लड़ते लड़ते सात्यकि और भूरि श्रवा दोनो के घोड़े मारे गए, धनुष कट गए और रथ भी बेकार हो गए। इसके पश्चात दोनों वीर ढाल तलवार लेकर भूमि पर उतर आये। और आपस मे भिड गए। दोनो ने ही बड़े पराक्रम का प्रदर्शन किया। दोनो ही एक दूसरे से बढ कर थे। अतः दोनों अपने अपने बाहु बल से एक दूसरे को पराजित करने की चेष्टा करते रहे। परन्तु किसी ने भी हार न मानी और दोनों की ढालें कट गई। तब वे आपस में मल्ल युद्ध करने लगे।

दोनों एक दूसरे की छाती से छाती टकराते और गिर पडते। एक दूसरे को कसकर पकड लेते और जमीन पर लोटने लगते। फिर अचानक उछल कर खडे हो जाते। और एक दूसरे को धक्का देकर मार गिराते। इसी प्रकार दोनों युद्ध रत रहे।

इतने मे श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा—"धनंजय ! सात्यकि थक गया प्रतीत होता है। जान पडता है भूरि श्रवा उसकी जान ही लेकर छोड़ेगा।"

के सम्बन्ध में शंकित हो जायेगा और सन्धि के लिए तैयार हो जायेगा सम्भव है कि जयद्रथ की समाप्ति पर ही इस युद्ध की समाप्ति हो जाय। मैं राज्य का न्यूनतम भाग लेकर भी सन्धि कर सकता हूं। फिर हम दोनो, कौरव तथा पाण्डव भाईयो की भाति प्रेम से रहने लगेंगे।"

इधर युधिष्ठिर के मन में ऐसे विचार उठ रहे थे, उधर भीम तथा कर्ण में भयकर सग्राम हो रहा था। कर्ण ने भीम का रास्ता रोक कर कहा—अरे मूर्ख ! तू भी अर्जुन के साथ ही यमलोक जाने के लिए यहा पहुच गया ?"

भीम कर्ण के शब्दो को सुन कर क्रुद्ध हो गया और आवेश मे आकर उस पर टूट पडा बडा ही भयकर सग्राम होने लगा। भीम के बाणों से कर्ण का धनुष टूट गया। उसने दूसरा धनुष उठाया, पर भीम ने उसे भी तोड दिया। फिर कर्ण ने एक और धनुष उठा लिया, और बाण वर्षा आरम्भ करदी। भीम सेन ने उसका रथ तोड डाला और घोडो व सारथि को मार डाला। दुर्योधन ने अपने दो भाईयो को कर्ण की रक्षा के लिए भेजा। परन्तु उनको भीम ने काल का ग्रास बना दिया।

इस प्रकार दुर्योधन के कई भाईयों को भीम सेन ने मार गिराया। और कर्ण को बुरी तरह घायल कर दिया। दुर्योधन को कर्ण की दशा देखकर बडी चिन्ता हुई। उसने बार बार अपने भ्राताओ को कर्ण की रक्षा को भेजा, पर प्रत्येक भीम के हाथों मारा गया। कर्ण पहले तो शात भाव से लड़ता रहा और बार बार ऐसे शब्दो का प्रयोग करता रहा, जिन से भीम विचलित हो जाता वह आवेश मे आ जाता और पागल हाथी की भाति प्रहार करता, परन्तु अन्त मे कर्ण का मन दुर्योधन के भाईयो का वध होने के कारण क्रुद्ध हो गया। उसने जी तोड़ कर युद्ध आरम्भ कर दिया।

भीम सेन ने कर्ण के कई रथ तोड़ डाले। अनेक धनुष काट डाले और बार बार ऐसे भीषण प्रहार किए जिनसे कर्ण के प्राणो पर आ बनती। कर्ण था बड़ा ही यशस्वी प्रतापी योद्धा। वह अपनी रक्षा कर लेता। अन्त मे कर्ण ने कुपित होकर भीम सेन के रथ को तोड़ डाला। उसके रथ के घोडो और सारथि को मार डाला

तरह भूरि श्रवा के हाथों में फंसा है तुम्हें इस समय इस सम्बन्ध में तटस्थता नहीं बरतनी चाहिए।"

ज्यों ही अर्जुन ने सात्यकि की ओर देखा, उस समय सात्यकि नीचे पड़ा था और भूरि श्रवा उसके शरीर को एक पांव से दबा कर दाहिने हाथ में तलवार लेकर उस पर वार करने को उद्यत था। यह देख अर्जुन से न रहा गया। उसने उसी क्षण तान कर बाण चलाया। बाण लगते ही भूरि श्रवा का दाहिना हाथ कटकर तलवार सहित दूर भूमि में जा गिरा।

हाथ कटे हुए भूरि श्रवा ने पीछे मुड कर अर्जुन को देखा तो क्रुद्ध होकर बोला :—

"अरे, कुन्ती पुत्र, मुझे तुम से ऐसे अवीरोचित कार्य की आशा न थी। जब मैं दूसरे से लड रहा था, तुम्हारी ओर देख तक न रहा था, तो तुमने पीछे से मुझ पर आक्रमण क्यों किया? ऐसा अधार्मिक, अनियमित और अवीरोचित युद्ध करना तुम्हें किसने सिखाया, कृप ने या द्रोण ने? मैं जानता हूं कि क्षत्रियों को कलंकित करने वाला यह कृत्य तुमने स्वयं नहीं किया होगा, अवश्य ही तुम्हें श्री कृष्ण ने उकसाया होगा? वही हैं ऐसे अधर्मों के मूल।"

इस प्रकार भूरि श्रवा के मुख से अपनी और श्री कृष्ण की निंदा सुनकर अर्जुन ने कहा—"भूरि श्रवा! दूसरे के मुंह पर थूकने से पहले अपना मुह पानी में देख लिया होता। तुम मेरे दाहिने हाथ सात्यकि का वध कर रहे थे, जब कि वह निशस्त्र था और भूमि पर पड़ा था। तुम्हारे इस अधर्म को मैं सह लेता, तो क्यों? वह कृत्य तुम्हारा कौन सा ही धर्म के अनुसार था? और जब अभिमन्यु बुरी तरह थक गया था, निःशस्त्र था, उसका कवच फट गया था, तब कई महारथियों द्वारा चारों ओर से घेर कर उस निहत्थे बालक को मारना कौन से धर्म के अनुसार उचित था? हमारा नाश करने के लिए तुम धर्म को भूल जाते हो, और जब तुम्हारे अधर्म को हम रोकते हैं तो तुम धर्म की दुहाई देते हो। वृद्धावस्था में क्या बुद्धि भी गया सी है?"

भूरि श्रवा सुनकर मौन रह गया और प्रायश्चित करने के लिए वह वहीं एक स्थान पर आमरण अनशन कर के बैठ गया।

परन्तु अर्जुन तो कौरव सेना से भिड़ा था, फिर उसे यह बात भी भली नहीं लगी थी कि जब वह सात्यकि को युधिष्टिर की रक्षा का भार सौंप कर आया था, तो सात्यकि वहां युधिष्टिर को छोड़कर चला क्यों आया। इसलिए वह युद्ध करने मे दत्तचित्त रहा। उसने सात्यकि की चिन्ता नहीं की।

परन्तु श्री कृष्ण ने पुन अर्जुन का ध्यान उसी ओर खींचा। बोले—"अर्जुन ! सात्यकि को जब भूरि श्रवा ने युद्ध के लिए ललकारा था, वह तभी थका हुआ था और अब तो वह बहुत ही थक गया है। उसकी रक्षा करो वरना तुम्हारा प्रिय मित्र भूरि श्रवा के हाथों मारा जायेगा।"

इतने मे भूरि श्रवा ने सात्यकि को दोनों हाथों मे दबोच कर ऊपर उठा लिया और भूमि पर पटक दिया। कौरव सैनिक चीख पड़े—"सात्यकि मारा गया। सात्यकि मारा गया।"

"अर्जुन ! देखो वृष्णि कुल को सब से प्रतापी वीर सात्यकि भूमि पर असहाय सा पड़ा है। जो तुम्हारे प्राण बचाने और तुम्हारी सहायता करने आया था, उसी की तुम्हारे सामने हत्या हो रही है। तुम्हारे देखते ही देखते तुम्हारा मित्र अपने प्राण गंवाने वाला है।" श्री कृष्ण ने अर्जुन से एक बार पुनः सात्यकि की सहायता करने का आग्रह किया।

अर्जुन ने देखा कि भूमि पर पड़े उसके मित्र सात्यकि को भूरि श्रवा उसी प्रकार खींच रहा है, जिस प्रकार सिंह हाथी को घसीट रहा हो। यह देख अर्जुन भारी चिन्ता मे पड़ गया। उसे कुछ सूझ न पड़ा कि क्या करें ?

अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा—' मधु सूदन ! भूरि श्रवा मुझ से नहीं लड़ रहा, फिर मैं क्या करूं ? जब कोई वीर दूसरे से लड़ रहा हो तो तीसरे को उस में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होता। पर मैं अपने मित्र का वध भी अपनी आंखों के आगे नहीं देख सकता अब आप ही बताईये कि क्या करूं ?'

श्री कृष्ण बोले—"अर्जुन ! कई वीरों से युद्ध कर चुकने के कारण सात्यकि अब निहत्था, निस्हाय और थका हुआ है, यह बुरी

अर्जुन भी विस्मित था। श्री कृष्ण बोले—"पार्थ ! चकित न हो। मैंने ही एक विद्या के द्वारा सूर्य पर अंधकार का परदा डाल दिया था, ताकि जयद्रथ बाहर आ जाये । सो मेरी इच्छा पूर्ण हुई इससे तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई।"

अर्जुन ने श्री कृष्ण के प्रति बड़ी ही कृतज्ञता प्रगट की।

इधर कौरव सेना में शोक छा गया और पाण्डव सेना सिंह नाद कर उठी।

तभी सात्यकि को होश आया और उसने चारो ओर देखा। अपने अपमान से क्रोध के मारे वह जल रहा था, उसने आव देखा न ताव, तलवार से ध्यान मग्न भूरि श्रवा का सिर काट दिया।

× × ×

अर्जुन जयद्रथ की खोज में चारो ओर रक्त की नदिया बहाता फिर रहा था, पर कही जयद्रथ नजर ही न आता था। तब वह चिन्तित होकर बोला "सखे! सूर्य अस्त होने वाला है और जयद्रथ कही दिखाई नही देता! क्या करू? क्या मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न कर पाऊंगा?"

श्री कृष्ण ने पश्चिमी दिशा की ओर देखा। वे भी चिन्ता मग्न हो गए और कुछ ही देरि मे सूर्य प्रकाश लुप्त हो गया। कौरव सेना में हर्ष छा गया और पाण्डव सेना का एक एक महारथी और सैनिक चिन्ताकुल हो गया। स्वयं अर्जुन दुःख के मारे शिथिल हो गया।

तभी जयद्रथ आनन्द के मारे उछलता हुआ सामने आ गया और बार बार पश्चिम की ओर देखने लगा। तभी श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा—"पार्थ! वह देखो जयद्रथ प्रफुल्लित होकर बारम्बार पश्चिम को ओर देख रहा है। बस इसी समय निशाना बाधकर ऐसा बाण मारो, जो उसके सिर को काटता हुआ निकल जाये। हा देखो वह अपना दैवी, अभिमन्त्रित बाण चलाना, ताकि वह सिर काटता हुआ निकल ही न जाये, बल्कि सिर को लेजा करे जयद्रथ के पिता की गोद में गिराये।"

श्री कृष्ण ने एक ऐसा बाण पहले ही जयद्रथ बध के लिए रख छोड़ा था, श्री कृष्ण की आज्ञा पाकर उसी बाण को गाण्डीव पर चढाकर अर्जुन ने मारा, और बाण जयद्रथ का सिर उड़ाता हुआ निकला। जयद्रथ का सिर उस बाण की मार से कट कर उसके बाप की गोद मे जाकर पड़ा। और जब उसका बाप शोकातुर होकर उठा तो सिर भूमि पर गिर पड़ा और उसके सिर के सौ टुकड़े हो गए।

इधर ज्यो ही जयद्रथ का सिर कटा, त्यो ही सूर्य चमक उठा। इस अद्भुत चमत्कार को देख कर सभी चकित रह गए।

अर्जुन भी विस्मित था। श्री कृष्ण बोले—"पार्थ ! चकित न हो। मैंने ही एक विद्या के द्वारा सूर्य पर अंधकार का परदा डाल दिया था, ताकि जयद्रथ बाहर आ जाये। सो मेरी इच्छा पूर्ण हुई इसमें तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई।"

अर्जुन ने श्री कृष्ण के प्रति बड़ी ही कृतज्ञता प्रगट की।

इधर कौरव सेना में शोक छा गया और पाण्डव सेना सिंह नाद कर उठी।

* पचासवां परिच्छेद *

द्रोणाचार्य का अन्त

युद्ध के चौदहवें दिन जब सायंकाल के उपरान्त भी युद्ध जारी रहा और बडी बडी मशालो के प्रकाश में दोनो ओर की सेनाएं जूझती रही।

कर्ण और घटोत्कच में उस रात बडा ही भयानक युद्ध हुआ घटोत्कच और उसकी सेना ने इतनी भयंकर बाण वर्षा की कि दुर्योधन के झुण्ड के झुण्ड सैनिक मारे गए। प्रलय सा मच गया। यह देख कर दुर्योधन का दिल कांपने लगा।

कौरव वीरों ने कर्ण से अनुरोध किया कि किसी न किसी तरह आज घटोत्कच का काम तमाम कर दिया जाय। वरना यह राक्षस हमारी सेना को तबाह कर डालेगा। घटोत्कच ने कर्ण को भी इतनी पीडा पहुचाई थी कि वह भी क्रुद्ध हो रहा था। कौरवों का अनुरोध सुनकर उसकी उत्तेजना और भी प्रबल हो उठी। वह आपे मे न रहा और उसने देवराज इन्द्र द्वारा दी हुई उस शक्ति-अस्त्र का प्रयोग घटोत्कच पर कर दिया, जिसे उसने बड़े यत्न से अर्जुन का वध करने के लिए सम्भाल कर रक्खा हुआ था। घटोत्कच मारा गया। कौरव सेना की जान मे जान आई। पाण्डवों की सेना को बड़ा शोक हुआ।

इतने पर भी युद्ध बन्द नही हुआ। द्रोणाचार्य बाणों की इतनी तीव्र बौछार कर रहे थे कि पाण्डव सैनिक गाजर मूली की भांति

कट रहे थे। रहे सहे पाण्डव सैनिक भी भयभीत हो गए थे।

पाण्डव महारथी चिन्तित हो उठे। श्री कृष्ण ने कहा—"अर्जुन! आज द्रोणाचार्य से अपनी सेना की रक्षा करना आसान नहीं है। जब तक वे हैं, तुम्हें अपनी सफलता की आशा ही नहीं करनी चाहिए। और जब तक उनके हाथों मे शस्त्र है, तब तक तुम्हे उनके परास्त होने की आशा नहीं होनी चाहिए।"

"फिर क्या किया जाय, मधु सूदन! कुछ तो उपाय बताईये।"—अर्जुन ने विनीत भाव से पूछा।

कृष्ण बोले—"एक ही उपाय है वह यह कि किसी प्रकार उन्हें हत प्रद कर दिया जाये। वे जब किसी अपने प्रिय के वध का समाचार सुनेगे, तो वे व्याकुल होकर रह जायेंगे और उनसे शस्त्र चलेगा ही नहीं, बस उसी समय उन्हें मारा जा सकता है।"

"परन्तु पहले उनके किसी प्रिय जन का मृत्यु होनी चाहिए।"—अर्जुन सोचते हुए बोला।

"नहीं, इसके लिए यह उपाय किया जा सकता है कि कोई उनके पास जाकर यह समाचार सुनाये कि अश्वस्थामा मारा गया, बस काम बन जायेगा।"—श्री कृष्ण बोले। अर्जुन सुनकर सन्न रह गया। इस प्रकार असत्य मार्ग का अनुकरण करना उसे ठीक न जचा। ऐसा करने से उसने साफ इन्कार कर दिया। पाण्डव पक्ष के दूसरे वीरों ने भी इसे नापसन्द कर दिया।

तब श्री कृष्ण ने कहा—"सोच लो! आज द्रोणाचार्य तुम्हारी सेना को तहस नहस कर देंगे। कल तुम्हारे महारथियों को मार डालेगे और इस प्रकार तुम सब मारे जाओगे। यही नहीं, बल्कि तुम्हारे परिवार का भी एक प्रकार से नाश हो जायेगा, जो तुम्हें विजय दिलाने अथवा दुर्योधन के अन्याय को परास्त करने के लिए तुम्हारे साथ जीवन की आशा त्याग कर यहा आये हैं।"

कृष्ण की बातों का जादू की भांति प्रभाव हुआ। और युधिष्टिर सोचने लगे—"मेरी भूल से मेरे भ्राता जी मेरे साथ वनों मे भटकते फिरे, और दास बनकर रहे और आज मेरे ही कारण सहस्रो शूरवीर द्रोण के हाथों मारे जायेंगे। सहस्रो ललनाए विधवा होगी, लाखों बालक अनाथ हो जायेंगे। उसके बाद भी अन्याय का

साम्राज रह जायेगा। इसलिए जहां अपना यश बढ़ाने के लिए मैंने अपने भ्राताओं तथा अपने सहयोगियों को यातनाए पहुंचाई हैं, वहा आज अपने यश को हानि पहुंचाने का एक कार्य करके मैं इतने प्राण बचा सकता हूं। अपने परिवार की रक्षा कर सकता हूं और अन्याय का सिर नीचा होने का रास्ता खोल सकता हूं।"

यह सोच कर वे बोले—"ठीक है, इस असत्य भाषण द्वारा द्रोण को मैदान से हटाने का अपयश मैं अपने ऊपर लूंगा। श्री कृष्ण की बताई युक्ति हमें अपनानी ही चाहिए।"

इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर असत्य भाषण द्वारा शत्रु को परास्त करने को तैयार हो गए। और फिर तो सभी पाण्डव पक्षीय वीर उसके पक्ष मे हुए। भीम सेन को एक उपाय और सूझा। उसने अपनी गदा से अश्वस्थामा हाथी को मार डाला और ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लगा—"अश्वस्थामा को मैंने मार डाला, अश्वस्थामा मारा गया।"

जब यह शब्द द्रोणाचार्य के कान में पड़े तो वे सन्न रह गए। उन्होंने पुनः ध्यान से सुना और निकट ही खड़े युधिष्ठिर से पूछा—"युधिष्ठिर क्या यह सही है कि अश्वस्थामा मारा गया।"

उस समय युधिष्ठिर जी कड़ा करके कह गए—"हां यह ठीक है कि अश्वस्थामा मारा गया, उसी समय उन्हे धर्म का ध्यान आया और वे धीरे से बोले—"परन्तु मनुष्य नही वरन हाथी" इन शब्दों को द्रोणाचार्य के कानों में न पड़ने देने के लिए, पाण्डव पक्षीय सैनिकों ने उसी समय ढोल, मृदंग और शंख बजाने आरम्भ कर दिए और उनकी ऊंची आवाज़ में युधिष्ठिर की आवाज़ दब कर रह गई।

फिर तो द्रोणाचार्य शोकातुर होकर खड़े के खड़े रह गए। इस समाचार से उन्हे इतना धक्का लगा कि वे शस्त्र सुध बुध खोकर लड़ना भूल गए और अपने हृदय को सम्भालने की चेष्टा करने लगे। तभी भीम सेन ने आकर उन्हें बड़ी जली कटी सुनाईं। बोले—"कहिए ब्राह्मण श्रेष्ट! अपना धर्म छोड़ कर क्षत्रियों का धर्म अपनाया और वह भी अन्याय का पक्ष लेने के लिए? कहा गई आप की नीति आपका धर्म? आप ने बेचारे अभिमन्यु बालक को

अधर्म पूर्वक मरवा दिया। इसी बल पर विद्वान तथा नीतिवान बनते हो ?"

एक तो वह अश्वस्थामा की मृत्यु का मिथ्या समाचार सुन कर ही खिन्न हो रहे थे, इन शब्दों से वे और भी दुखित हो गए। उन्होने अपने शस्त्र फेंक दिए। अपने को उन्होंने युद्ध करने मे असमर्थ पाया। तभी धृष्टद्युम्न ने दौड़ कर उनका सिर काट डाला। और द्रोणाचार्य ससार से उठ गए।

कौरवों की सेना मे हा हाकार मच गया, और पाण्डव सेना आनन्द मनाने लगी। परन्तु युधिष्ठिर बहुत दुखित थे।

✻ इकावनवां परिच्छेद ✻
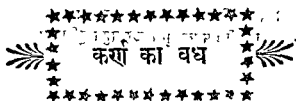
द्रोण के मारे जाने से दुर्योधन को बड़ा दुःख हुआ । भीष्म गए, जयद्रथ गया और फिर द्रोणाचार्य चले गए । दुर्योधन के कितने ही भाई भी काल का ग्रास हो गए. अब दुर्योधन को चारों ओर पराजय मानो यमराज उसका भी पीछा कर रहे हैं ।

कर्ण से अपने मन की व्यथा उसने सुनाई, तो कर्ण उसे धैर्य बन्धाते हुए बोला—"दुर्योधन ! साहस से काम लो मैं अपने प्राण देकर भी तुम्हारी रक्षा करूंगा । मेरे आगे कौन पाण्डव हैं जो ठहर सके । तुम्हारी सेना की व्यवस्था मैं करूंगा ! और तुम्हें विजयी बनाने के लिए कोई कसर उठा न रक्खूंगा ।"

'तुम बस किसी प्रकार अर्जुन को मार सको तो काम चले ।' दुर्योधन ने कहा । उसे कर्ण की बातों से कुछ सन्तोष हुआ था ।

कर्ण ने उत्साह पूर्वक कहा—"दुर्योधन ! तुम चिन्ता न करो मैं अर्जुन का वध करने के लिए ही दृढ़ प्रतिज्ञ हूं । परन्तु भीम, धृष्टद्युम्न आदि को रोके रखना तुम्हारा और दुःशासन का काम होगा ।"

"हां, उन्हें तुम हमारे लिए छोड़ दो ।"—उत्साह पूर्वक दुर्योधन ने कहा ।

बात तय हो गई और दुर्योधन ने अपने शेष रहे भ्राताओं तथा सारे राजाओं को बुला कर, उनके सामने कर्ण को अपनी

सेना का सेनापति नियुक्त कर दिया। उसी समय कर्ण ने अपनी प्रतिज्ञा को दोहराते हुए कहा—"जिसने मेरा भरी सभा में अपमान किया था, जिसने वीर जयद्रथ का बध किया और भूरि श्रवा पर पीछे से वार करके मारा, मैं उस अर्जुन का जब तक वध न कर लूंगा तब तक चैन नहीं लूंगा तुम सब लोग भीम और धृष्टद्युम्न आदि को मारने का उत्तरदायित्व लो। और विश्वास रक्खो कि विजय हमारी ही होगी।"

सभी ने कर्ण की जय जयकार की और शंख बजाकर उसके सेनापति चुने जाने पर हर्ष प्रगट किया।

× × × ×

भद्रराज शल्य कर्ण के सारथि बने, शल्य के द्वारा चलाये जाने वाले स्वर्णिम रथ पर बैठे हुए कर्ण की छवि ही न्यारी थी। वह ऐसा प्रतीत होता था मानो साक्षात् इन्द्र ही रण में उतर आये है।

पाण्डवो ने उस दिन ज्योतिषियो से युद्ध मे विजय प्राप्त करने की इच्छा से कर्ण के सेनापतित्व में सुव्यवस्थित कौरव-सेना पर आक्रमण के लिए श्रेष्ठ मुहूर्त पूछली थी।

"नियत समय पर अर्जुन का रथ आक्रमण के लिए चला। भीमसेन उसकी रक्षा के लिए पीछे पीछे थे। अर्जुन ने जाते ही ठीक समय पर कर्ण पर भीषण आक्रमण कर दिया। भीम भी अर्जुन की सहायता के लिए धनुष सम्भाले वहीं रहा। कभी कभी वह भी कर्ण पर बाण वर्षा कर देता...

यह देख दुःशासन को बड़ा क्रोध आया और आवेश मे आकर बोला "दुष्ट भीम! इसी बिरते पर महाबली बनता है। अर्जुन के अंग रक्षक की भांति कार्य करके फूला नहीं समाता, साहस हो तो मेरा सामना कर।"

भीम सेन से न रहा गया, क्रुद्ध होकर बोला—अरे मूर्ख दुःशासन! बस अब तू अपने को गया ही समझ। जो अत्याचार तूने किए थे उनका बदला अभी ही ब्याज सहित चुकाता हूं। द्रौपदी का जो अपमान तेरे द्वारा हुआ था उसका बदला अभी ही लूंगा और अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करूंगा। याद रख मैं भीम हूं। जो क्षमा करना नहीं जानता"—कहते कहते वह दुःशासन की ओर झपटा, जैसे

बाज् कबूतर की ओर झपटता है।

दु.शासन ने भीम को अपनी ओर झपटते हुए देख कुछ घबरा सा गया, फिर भी वह वहां खड़े रहने पर विवश था बाण धनुष पर चढाकर उसने भीम पर प्रहार किया ही था कि भीम ने अपने बाण से उसके बाण को तोड डाला और धनुष को काट डाला। उसके बाद उसने एक छलांग मारी और दुःशासन को धर दाबा। दोनों भुजाओ मे उसे दाब कर नीचे गिरा दिया, फिर लगा उसके हाथ पांव तोड़ने। घूसों की मार से ही दु:शासन अधमरा हो गया। नीचे पडा पडा ही वह गाली बके जा रहा था और भीम सेन उसे इस प्रकार मार रहा था जैसे कुम्हार मिट्टी को ठीक करने के लिए ऊपर घूसे लगाता है। थोड़ी ही देरि मे भीम ने दु शासन का एक हाथ तोड़ कर फेंक दिया। वह दृश्य बड़ा ही बीभत्स था। भीम उसे मार रहा था और कहता जाता था – "बुला कौन है तेरा सहायक ? देखू तो कौन आता है तुझे बचाने के लिए ? मूर्ख ! द्रौपदी को असहाय देखकर तो तूने अपनी वीरता दिखाने के लिए नीचता पूर्ण कार्य किए और उस पर भी अपने पर गर्व करता रहा। अब बता कौन है जो तेरी मुझ से रक्षा कर सके ? कौन है जो तुझे छुड़ा सके ?"

भीम सेन की मार से दु:शासन के प्राण पखेरू उड गए। इस प्रकार भीम ने उसका रक्त बहा दिया उस समय भीम सेन का रूप बडा भयानक था। वह उठा और चारों ओर आनन्द तथा गर्व मे नृत्य सा करने लगा, उस समय उसके भीषण रूप को देखकर कौरव सैनिक कांप उठे। भीम ने सिंह नाद किए और गर्जना की—"कहां है दु:शासन का दुष्ट भाई दुर्योधन ! अब उसका नम्बर है। कहां छुपा बैठा है, मेरे सामने आये ताकि उसे भी शीघ्र ही यमलोक पहुंचा दू। अब वह मरने को तैयार हो जाय।"

उस समय भीम की सिंह गर्जना, उसके भयानक रूप और उसकी दहाड़ कौरवो का दिल दहला रही थी। यहां तक कि एक बार तो कर्ण भी काप उठा। कर्ण की ऐसी दशा देख कर शल्य ने उसे दिलासा देते हुए कहा :—

"कर्ण ! तुम जैसे वीर को साहस त्यागना शोभा नहीं देता। दु:शासन की मृत्यु से दुर्योधन बहुत शोकातुर हो गया है अब उसको

आखें तुम्ही पर हैं। यदि तुम धीरज खो दोगे तो कैसे काम चलेगा? वह देखो अर्जुन तुम्हारा वध करने की इच्छा से बाण वर्षा कर रहा है।"

इतना सुनते ही कर्ण को होश आया। और वह क्रुद्ध होकर अर्जुन पर टूट पडा।

× × × ×

दुर्योधन दुःशासन की मृत्यु के कारण बहुत ही शोक विह्वल था। वह चिन्ता मग्न खड़ा था, अश्वस्थामा उसके पास आया और बोला—"भैया दुःशासन का जिस प्रकार बध हुआ, उसे देखकर ही रोगटे खड़े हो जाते हैं। भीम ने बडा ही अमानुषिक व्यवहार किया है जो हो, अब हमारे लिए युद्ध बन्द कर लेना ही उचित है। आप पाण्डवों से सन्धि कर लीजिए।"

सन्धि का नाम सुनते ही दुर्योधन का खून खौल उठा और क्रुद्ध होकर बोला, "पापी भीम सेन ने जगली पशुओ सा व्यवहार किया और तुम कहते हो उन लोगो से मै सन्धि कर लू जो ऐसे असभ्य है जिन्हो ने मेरे भाईयो को जयद्रथ को और मेरे सेना पतियो को मार डाला। नही मैं लड़ूगा। अन्तिम समय तक लडता रहूंगा।"

उसके सिर पर तो मृत्यु नाच रही थी, वह भला कैसे मानता आवेश मे आकर उसने पाण्डवों पर भयकर आक्रमण कर दिया।

× × × ×

कर्ण और अर्जुन मे भीषण संग्राम छिडा था। दोनों ही टक्कर के महारथी थे। कर्ण ने एक ऐसा बाण चलाया जो काले नाग की भांति विष की आग बरसाता हुआ अर्जुन की ओर चला। श्री कृष्ण ने जब देखा कि सर्पमुखास्त्र अर्जुन की ओर आ रहा है, तो उन्होने युक्ति पूर्वक रथ नीचा कर लिया और वह अस्त्र अर्जुन के मुकुट को गिराता हुआ निकल गया। यदि श्री कृष्ण ऐसा न करते, तो वह अस्त्र अर्जुन के प्राण ले लेता। अर्जुन को इस बात से बडा क्रोध आया और उसने बड़ी तीव्र गति से बाण वर्षा आरम्भ करदी। इतने मे ही समयवश कर्ण के रथ का एक पहिया अचानक धरती मे धस गया। कर्ण घबरा गया और बोला—"अर्जुन! मेरे रथ का पहिया कीचड़ में धस गया है, तनिक ठहरो मैं उसे कीचड़ से निकाल

बाज़ कबूतर की ओर झपटता है।

दु शासन ने भीम को अपनी ओर झपटते हुए देख कुछ घबरा मा गया, फिर भी वह वहां खड़े रहने पर विवश था वाण धनुप पर चढाकर उसने भीम पर प्रहार किया ही था कि भीम ने अपने वाण से उसके वाण को तोड डाला और धनुप को काट डाला। उसके वाद उसने एक छलांग मारी और दुःशासन को धर दाबा। दोनों भुजाओ मे उसे दाब कर नीचे गिरा दिया, फिर लगा उसके हाथ पांव तोड़ने। घूसों की मार से ही दुःशासन अधमरा हो गया। नीचे पडा पडा ही वह गाली बके जा रहा था और भीम सेन उसे इस प्रकार मार रहा था जैसे कुम्हार मिट्टी को ठीक करने के लिए ऊपर घूसे लगाता है। थोड़ी ही देरि मे भीम ने दु.शासन का एक हाथ तोड़ कर फेंक दिया। वह दृश्य बड़ा ही वीभत्स था। भीम उसे मार रहा था और कहता जाता था - "बुला कौन है तेरा सहायक? देखूं तो कौन आता है तुझे बचाने के लिए? मूर्ख! द्रौपदी को असहाय देखकर तो तूने अपनी वीरता दिखाने के लिए नीचता पूर्ण कार्य किए और उस पर भी अपने पर गर्व करता रहा। अब बता कौन है जो तेरी मुझ से रक्षा कर सके? कौन है जो तुझे छुडा सके?"

भीम सेन की मार से दु.शासन के प्राण पखेरू उड गए। इस प्रकार भीम ने उसका रक्त बहा दिया उस समय भीम सेन का रूप वडा भयानक था। वह उठा और चारों ओर आनन्द तथा गर्व मे नृत्य सा करने लगा, उस समय उसके भीषण रूप को देखकर कौरव सैनिक काप उठे। भीम ने सिंह नाद किए और गर्जना की—"कहा है दुःशासन का दुष्ट भाई दुर्योधन! अब उसका नम्बर है। कहीं छुपा बैठा है, मेरे सामने आये ताकि उसे भी शीघ्र ही यमलोक पहुचा दू। अब वह मरने को तैयार हो जाय।"

उस समय भीम की सिंह गर्जना, उसके भयानक रूप और उसकी दहाड़ कौरवों का दिल दहला रही थी। यहा तक कि एक वार तो कर्ण भी काप उठा। कर्ण की ऐसी दशा देख-कर शल्य ने उसे दिलासा देते हुए कहा :—

"कर्ण! तुम जैसे वीर को साहस त्यागना शोभा नहीं देता। दुःशासन की मृत्यु से दुर्योधन बहुत शोकातुर हो गया है अब उसकी

* बावनवां परिच्छेद *

दुर्योधन का अन्त

हिंसात्मक युद्ध के द्वारा अधर्म अथवा अत्याचार को नष्ट करने की आशा करना व्यर्थ है। हथियार बन्द युद्ध से अत्याचार तथा अन्याय कभी नही मिटते। तभी तो भगवान महावीर ने कहा है कि :—

"वैर से वैर निकालने मे वैर ही की वृद्धि होती है।" धार्मिक उद्देश्यो के जो भी युद्ध किए जाते है, उनमे भी अनिवार्य रूप से अन्याय और अधर्म होते ही हैं। ऐसे युद्धो के परिणाम स्वरूप अधर्म की वृद्धि ही होती है।

इसी सिद्धान्त के अनुसार यदि हम महाभारत के युद्ध को देखें तो इस परिणाम पर पहुचेंगे कि कितनी ही बातें पाण्डवो की ओर से भी धर्म विरोधी ही हुई। कर्ण का वध किस प्रकार हुआ, इसे देखकर, द्रोणाचार्य के बध की गाथा पढ़कर और भूरिश्रवा के वध मे अपनाए गए उपायो को देखकर तो यह और भी प्रगट हो जाता है कि युद्ध दूसरे पापो अधर्मों तथा अन्यायो का कारण बन जाता है, चाहे वह किया गया हो अधर्म अथवा अन्याय के प्रतिकार के ही लिए।

जब दुर्योधन को कर्ण के वध का समाचार मिला तो उसके शोक की सीमा न रही। यह दुःख उसके लिए असहाय हो उठा। वह बार बार कर्ण को स्मरण करके विलाप करने लगा। उसकी इस शोचनीय स्थिति को देखकर कृपाचार्य ने कहा—"राजन्! आपने जो जो कार्य, जिस जिस व्यक्ति को सौंपा, उसी ने प्रसन्नता पूर्वक

कर सूखी धरती पर रख दूं। तुम तो धर्म-युद्ध के धनी हो । युद्ध धर्म को निभा कर तुमने जो यश कमाया है, उसे कलंकित न करना तनिक वाण वर्षा बन्द करलो ।"

श्री कृष्ण ने चिढकर कहा—"अरे वाह रे ! धर्म के ठेकेदार जब अपनी जान पर बन आई तो तुम्हें धर्म याद आया, पर जब द्रौपदी को अपमानित करा रहे थे, तब तुम्हें धर्म याद नहीं आया ? नो सिखिये युधिष्ठर को कुचक्र में फंसाते समय तुम्हे धर्म याद नहीं आया । दुधमुए बालक अभिमन्यु को तुम सात महारथी घरकर मार रहे थे तब तुम्हे धर्म याद क्यों नहीं आया ?"

श्री कृष्ण की झिड़की सुनकर कर्ण को कुछ कहते न बना और वह अपने अटके हुए रथ पर से ही युद्ध करने लगा। उसने एक बाण बड़ा ही ताक कर मारा, जो अर्जुन को जा लगा जिससे अर्जुन कुछ देरि के लिए विचलित हो गया। बस इस समय का ही उपयोग करने के लिए कर्ण झट से कूद पडा, रथ का पहिया कीचड से निकालने के लिए। उसने भरसक प्रयास किया पर उस का भाग्य उससे रूठ चुका था, पहिया हजार प्रयत्न करने पर भी न निकला।

यह स्थिति देख श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा—"पार्थ ! इस सुन्दर अवसर को हाथ से मत जाने दो ।"

और अर्जुन ने बाण वर्षा आरम्भ करदी । कर्ण ने उस समय परशुराम से सीखी विद्या को प्रयोग करना चाहा पर उसे वह याद न रही। और अर्जुन के एक बाण ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया।

दुर्योधन का अन्त

हिंसात्मक युद्ध के द्वारा अधर्म अथवा अत्याचार को नष्ट करने की आशा करना व्यर्थ है। हथियार बन्द युद्ध से अत्याचार तथा अन्याय कभी नही मिटते। तभी तो भगवान महावीर ने कहा है कि :—

"वैर से वैर निकालने मे वैर ही की वृद्धि होती है।" धार्मिक उद्देश्यो के जो भी युद्ध किए जाते हैं, उनमे भी अनिवार्य रूप से अन्याय और अधर्म होते ही हैं। ऐसे युद्धो के परिणाम स्वरूप अधर्म की वृद्धि ही होती है।

इसी सिद्धान्त के अनुसार यदि हम महाभारत के युद्ध को देखें तो इस परिणाम पर पहुचेंगे कि कितनी ही बाते पाण्डवो की ओर से भी धर्म विरोधी ही हुई। कर्ण का वध किस प्रकार हुआ, इसे देखकर, द्रोणाचार्य के वध की गाथा पढकर और भूरिश्रवा के वध मे अपनाए गए उपायो को देखकर तो यह और भी प्रगट हो जाता है कि युद्ध दूसरे पापो अधर्मों तथा अन्यायो का कारण बन जाता है, चाहे वह किया गया हो अधम अथवा अन्याय के प्रतिकार के ही लिए।

जब दुर्योधन को कर्ण के वध का समाचार मिला तो उसके शोक की सीमा न रही। यह दुःख उसके लिए असहाय हो उठा। वह बार बार कर्ण को स्मरण करके विलाप करने लगा। उसकी इस शोचनीय स्थिति को देखकर कृपाचार्य ने कहा—"राजन् ! आपने जो जो कार्य, जिस जिस व्यक्ति को सौंपा, उसी ने प्रसन्नता पूर्वक

उसे किया और करते करते अपने प्राणो का उत्सर्ग भी कर दिया। इस प्रकार हमारे कितने ही महारथी मारे गए । अब युद्ध के इस भयानक दावानल को शात करना ही उचित है । आपको अपनी रक्षा के लिए अब सन्धि कर लेनी चाहिए । युद्ध बन्द ही आपको श्रेयस्कर होगा ।

यद्यपि दुर्योधन हताश हो चुका था तथापि कृपाचार्य के मुख से सन्धि का शब्द सुनकर वह आवेश मे आगया। कहने लगा— "आचार्य! क्या आप चाहते है कि मैं अपने प्राण बचाने के लिए पाण्डवों से सन्धि कर लू ? नही, यह तो कायरता होगी। हमे वीरता से काम लेना होगा क्या मैं भीरु की भाति अपने प्राण बचालू जब कि मेरी खातिर मेरे बन्धु बांधवो व मित्रो ने अपने प्राणो का उत्सर्ग कर दिया है। यदि मैं ऐसा करुगा तो ससार मुझ पर थूकेगा, लोग कहेगे कि दुर्योधन ने अपने वृद्ध जनों, मित्रो तथा बन्धु बांधवो को तो मरवा डाला और जब वे सब मारे गए और अपने प्राणो का प्रश्न आया तो सन्धि करली। लोक निन्दा सहकर मैं कौन सा सुख भोगने को जीता रहू ? जब मेरे अपने सभी मित्र व बन्धु मारे जा चुके तो सन्धि करके कौन सा सुख भोग सकूगा ? अब तो जो भी हो, हमे लडते ही रहना है । क्या तो अन्त मे हम विजयी होंगे, अन्यथा अपने प्राण देकर अपने बन्धु बान्धवो के पास पहुच जायेंगे।"

सभी कौरव वीरो ने दुर्योधन की इन बातो की सराहना की। सभी ने उसका समर्थन किया और सब ने युद्ध जारी रखना ही उचित ठहराया। इस पर सब की सम्मति से मद्र राज शल्य को सेनापति बनाया गया। शल्य बड़ा ही पराक्रमी, वीर और शक्तिमान था। उसकी वीरता अन्य मृत कौरव सेनापतियों से किसी भाति कम न थी। शल्य के सेनापतित्व मे आगे युद्ध आरम्भ हुआ।

पाण्डवो की सेना के सचालन का कार्य स्वय युधिष्ठिर ने सम्भाला युद्ध आरम्भ होते ही महाराज युधिष्ठिर ने स्वय ही शल्य पर आक्रमण किया। जो शांति की मूर्ति से प्रतीत होते थे अब क्रोध की प्रति मूर्ति से बनकर बड़ प्रचण्ड वेग से शल्य पर टूट पड़े। उनका भीषण-स्वरूप बड़ा ही आश्चर्य जनक था। देर तक दोनों में द्वन्द्व युद्ध होता रहा। आखिर युधिष्ठिर ने शल्य पर एक शक्ति-

अस्त्र का प्रयोग किया जिसके द्वारा मद्रराज शल्य घायल होकर धड़ाम से रथ पर से इस प्रकार गिरे जसे उत्सव-समाप्ति के बाद इन्द्र-ध्वजा।

उनके गिरते ही बची खुशी कौरव-सेना मे कोलाहल मच गया। शल्य के मर जाने से कौरव-सेना नि:सहाय सी हो गई। भय विह्वल होकर सभी सैनिक कापने लगे। परन्तु रहे सहे धृतराष्ट्र पुत्रों ने साहस से काम लिया और सब मिलकर भीम सेन पर टूट पड़े। बाणो की वर्षा आरम्भ करदी, पर उन्मत्त हाथी की भाँति भीम सेन बार बार सिंह नाद करता हुआ उन पर झपटता रहा और कुछ ही देरि मे उसने अपने बाणो से उन सभी को मार गिराया। फिर तो कौरव सैनिको मे और भी भय छा गया। भीम सेन तो आनन्द के मारे उछलता कूदता रण भूमि मे दहाड़े मारता घूमने लगा, मानो आज ही उसका जीवन सार्थक हुआ हो। तेरह वर्ष तक दबा रखी क्रोध की अग्नि उस दिन भड़की और दुर्योधन क अतिरिक्त शेष रहे सभी धृतराष्ट्र के पुत्रो को मार कर वह सन्तुष्ट सा प्रतीत होता था। वह हर्ष से फूला न समाता था।

दूसरी ओर शकुनि और सहदेव का युद्ध हो रहा था। तलवार की पैनी धार के समान नोक वाला एक बाण शकुनि पर चलाते हुए सहदेव ने कहा—"मूर्ख शकुनि! ले अपने पापो का दण्ड भुगत ही ले।"

वह बाण शकुनि के हृदय मे प्रविष्ट हो गया, जिससे वास्तव मे उसको अपने पापो का फल मिल ही गया। एक चीत्कार के साथ वह ढेर हो गया। युधिष्ठिर, भीम और सहदेव ने उस दिन इसी प्रकार अनक दुर्योधन पक्षीय वीरो को मार गिराया।

× × × ×

कौरव-सेना के लगभग सारे वीर सदा के लिए सो गए। कुरु क्षेत्र मानव शवो से पटा पडा था। चारों ओर कटे हुए हाथ पैर, धड़ और सिर बिखरे हुए थे। उनमे दुर्गन्ध उठने लगी थी। अकेला दुर्योधन रह गया था, जिसका हृदय टूट गया था और वह अपने प्राणो की रक्षा के लिए इधर उधर भटकता फिर रहा था। परन्तु उस शाति न मिलती थी।

अभी कृपाचार्य शेष थे। उन्हें अपने मन की व्यथा सुनाते हुए दुर्योधन बोला—'आचार्य ! अब तो सब तहस नहस हो गया। मैं अकेला हूं न जाने मुझे भी कब मृत्यु आ दबाये। दूरदर्शी विदुर शायद पहले ही इस युद्ध के परिणाम को जानते थे, तभी तो वे मुझे बार बार समझाते रहते थे और युद्ध करने को भी उन्होंने बहुत मना किया था। वे चाहते थे कि मैं सन्धि कर लू। पर मुझ पर न जाने कैसा भूत चढ़ा था कि मैंने उनकी एक न सुनी और अपनी हठ से अपना सब कुछ गवा बैठा ! अब मैं निस्सहाय हूं। कुछ समझ मे नहीं आता कि क्या करू ! राज्य पाण्डवो के हाथ मे चला गया, इसका मुझे दुःख नहीं है, दुःख है तो इस बात का कि मेरे अपने सभी चले गए। मैं उनकी याद मे तड़पने रहने के लिए जीवित बचा हू। पिता जी जन्म के अन्ध हैं और माता पिता जी के कारण चक्षु हीन है। वे हमें याद कर करके रोते रहा करेगी। हाय ! मेरा अन्त इस प्रकार होगा, मुझे इसकी कभी आशा नहीं थी।"

कृपाचार्य ने उसे धैर्य बन्धाते हुए कहा—"दुर्योधन ! इस प्रकार अधीर क्यो होते हो। तुमने तो साहस त्यागना कभी सीखा नहीं। तुम अभी अपने को अकेला क्यो समझते हो। अश्वत्थामा और मैं अभी तुम्हारे साथ है। तुम साहस पूर्वक युद्ध करो। देखो ! तुम्ही ने तो कहा था कि तुम भीरू की भांति जीना नहीं चाहते। जिस मनुष्य ने सदा शत्रुओ को ललकारा है वह विपदा आने पर इस प्रकार विलाप करने लगे, यह उसके लिए लज्जा की बात है।"

"नहीं, आचार्य जी ! अब क्या रह गया है, जिस पर मैं गर्व करू। मैं जिन पर गर्व करता था, वे सभी मारे गए। अब युद्ध की बात मैं चाहे न करू तो भी युद्ध तो मेरे बध के बाद ही बन्द होगा। मैं भाग कर कहा जा सकता हू। भीम मुझे जीवित थोड़े ही छोड़ेगा। पर मैं निराश हो चुका हूं। युद्ध से मैं ऊब गया हूं। मेरे जीवित रहने का तो कोई उपाय ही नहीं। पर खेद है तो इस बात का कि समय रहते मेरी आखें न खुली और अपने बन्धु, बाधवो के हत्यारों से मैं बदला न ले सका।" दुर्योधन ने व्याकुल व निराश होकर कहा।

कृपाचार्य बोले—"दुर्योधन ! तुम्हे इतना हताश होने की

आवश्यकता नहीं है। तुम चाहो तो तुम में अब भी ऐसी शक्ति आ सकती है कि कोई शत्रु तुम्हें न मार सके। किन्तु बदला लेने की भावना छोड दो सर्वज्ञ जिन देव का कथन है की बदला लेने की भावना वाला उतना ही कर्मबंधन करता है, पार्थ विस्मय पूर्वक दुर्योधन ने पूछा—"क्या कह रहे हैं आचार्य जी ! क्या वास्तव मे कोई ऐसा उपाय भी है कि मैं शत्रुओ द्वारा न मारा जा सकू ?"

"हां हा तुम्हारे घर ही एक ऐसी सन्नारी है, बल्कि देवी है, जिसकी दृष्टि तुम्हारे जिस अग पर पड जायेगी, उसी अग पर शत्रु का कोई शस्त्र या अस्त्र असर न कर सकेगा।" कारण ससार का वरणक हस्त स्पष्ट नही देखता नीचो भावना से शुभ प्रकृति सग्रह है ऐसा जिन देव भगवान का कथन है वह शुभ प्रकृति नम्रो और भावना द्वारा तुम्हे आयेगी फिर कोई शस्त्र अस्त्र असर नही करेगा।—"कौन है वह देवी ! मुझ शीघ्र बताईये।"

"वह है तुम्हारी जननी, गाधारी। वह पतिव्रता नारी यदि तुम्हारे शरीर पर एक बार दृष्टि डाल दे तो तुम्हारा शरीर इस्पात का हो जायेगा। परन्तु तुम्हें उसके आगे बिल्कुल नग्नावस्था मे जाना होगा।"—कृपाचार्य ने कहा।

"पर मेरी माता की आंखों पर तो पट्टी बन्धी रहती है, वे कभी अपनी आंखों से पट्टी खोलती ही नही, वे अपनी पट्टी खोल सकेंगी ?"

"हा, हा पुत्र प्रेम के कारण वे ऐसा कर सकती है।"

"पर मैं उनके सामने नग्न कैसे जाऊ ?"

"यदि तुम्हे अपने प्राणों की रक्षा करनी है, तो यह करना ही होगा।"

कृपाचार्य के शब्द सुनकर दुर्योधन सोचने लगा कि वह क्या करे। बहुत देरि तक वह सोचता रहा और अन्त मे उसने वैसा ही करने का निश्चय कर लिया।

नग्न होकर वह अपनी माता के पास चला। श्री कृष्ण ने उसे देख लिया और वे समझ गए कि दुर्योधन कैसा क्या कर रहा है। उन्होंने तुरन्त ही एक बहुत बड़ा बड़े बड़े मोटे पत्तों से बना

अभी कृपाचार्य शेप थे। उन्हें अपने मन की व्यथा सुनाते हुए दुर्योधन बोला—"आचार्य! अब तो सब तहस नहस हो गया। मैं अकेला हू न जाने मुझे भी कब मृत्यु आ दबाये। दूरदर्शी विदुर शायद पहले ही इस युद्ध के परिणाम को जानते थे, तभी तो वे मुझे बार बार समझाते रहते थे और युद्ध करने को भी उन्होंने बहुत मना किया था। वे चाहते थे कि मैं सन्धि कर लूं। पर मुझपर न जाने कैसा भूत चढ़ा था कि मैंने उनकी एक न सुनी और अपनी हठ से अपना सब कुछ गवा बैठा! अब मैं निस्सहाय हूं। कुछ समझ में नही आता कि क्या करूं! राज्य पाण्डवों के हाथ मे चला गया, इसका मुझे दुख नही है, दुख है तो इस बात का कि मेरे अपने सभी चले गए। मैं उनकी याद में तड़पने रहने के लिए जीवित बचा हू। पिता जी जन्म के अन्ध हैं और माता पिता जी के कारण चक्षु हीन है। वे हमे याद कर करके रोते रहा करेंगे। हाय! मेरा अन्त इस प्रकार होगा, मुझे इसकी कभी आशा नही थी।"

कृपाचार्य ने उसे धैर्य बन्धाते हुए कहा—"दुर्योधन! इस प्रकार अधीर क्यो होते हो। तुमने तो साहस त्यागना कभी सीखा नही। तुम अभी अपने को अकेला क्यो समझते हो। अश्वत्थामा और मैं अभी तुम्हारे साथ है। तुम साहस पूर्वक युद्ध करो। देखो! तुम्ही ने तो कहा था कि तुम भीरू की भांति जीना नही चाहते। जिस मनुष्य ने सदा शत्रुओं को ललकारा है वह विपदा आने पर इस प्रकार विलाप करने लगे, यह उसके लिए लज्जा की बात है।"

"नही, आचार्य जी! अब क्या रह गया है, जिस पर मैं गर्व करू। मैं जिन पर गर्व करता था, वे सभी मारे गए। अब युद्ध की बात मैं चाहे न करू तो भी युद्ध तो मेरे बध के बाद ही बन्द होगा। मैं भाग कर कहां जा सकता हूं। भीम मुझे जीवित थोड़े ही छोड़ेगा। पर मैं निराश हो चुका हूं। युद्ध से मैं ऊब गया हूं। मेरे जीवित रहने का तो कोई उपाय ही नही। पर खेद है तो इस बात का कि समय रहते मेरी आखें न खुली और अपने बन्धु, बाधवों के हत्यारों से मैं बदला न ले सका।" दुर्योधन ने व्याकुल व निराश होकर कहा।

कृपाचार्य बोले—"दुर्योधन! तुम्हे इतना हताश होने की

गाधारी के यह वचन सुनकर दुर्योधन को बड़ा खेद हुआ हताश व निराश होकर वह वापिस चला आया।

× × × ×

अपने शोक विह्वल हृदय को लिए दुर्योधन इधर उधर फिरता था। श्री कृष्ण द्वारा उसकी योजना असफल कर दिए जाने से वह बहुत दुखित हुआ और अन्त मे जब उसे कही भी शांति न मिली तो गदा लेकर एक जलाशय की ओर चला गया। जहां वह छुपकर अपने जीवन पर विचार करने लगा। जितना वह विचार करता, उतना ही उसे दुख होता। वह अपने को सर्व प्रकार से असफल व्यक्ति समझने लगा।

दूसरे दिन जब रणक्षेत्र में दुर्योधन दिखाई न पड़ा, तो पाडव सोचने लगे कि वह कही जा छुपा है। पाचों ने सोचा कि उसे खोजना चाहिए। जहा कहीं हो, ढूंढकर उसे दण्ड दिया जाय। पाचों श्री कृष्ण सहित उसकी खोज में निकले। चलते चलते वे उसी जलाशय पर पहुच गए जहाँ दुर्योधन छिपा बैठा था। युधिष्ठिर ने उसे ललकार कर कहा—"धूर्त ! अब अपने प्राण बचाने के लिए यहा आ छुपा है। अपने परिवार और मित्रों का नाश कराने के पश्चात स्वय बच निकलना चाहते हो। तुम्हारा हर्ष और अभिमान क्या हुआ ? तुम क्षत्रिय कुल मे पैदा होकर भी कायरता दर्शाते हो ? बाहर निकलो और क्षत्रियोचित ढग से युद्ध करो। युद्ध से भाग कर जीवित रहने की चेष्टा करके कौरव कुल को कलकित करने वाले दुर्योधन। तुम अपने कर्मों से अपने कुल पर बहुत कालिख पोत चुके, अन्त समय पर और कालिख क्यों पोतते हो ?"

युधिष्ठिर की ललकार सुनकर दुर्योधन व्यथित होकर बोला- "युधिष्ठिर ! यह मत समझना कि मैं प्राण बचाने के लिए यहा छुप कर बैठा हूं। मैं भयभीत होकर भी नहीं आया।"

"तो फिर किस लिए आये हैं यहां श्रीमान् ?"—भीम ने चिढ़कर पूछा।

"मैं अपनी थकान मिटाने के लिए इस ठण्डे स्थान पर चला आया था, युधिष्ठिर ! मैं न तो डरा हुआ हूं न मुझे प्राणो का ही मोह है। फिर भी, सच पूछो तो युद्ध से मेरा जी ऊब गया है। मेरे

हुआ हार लिया। जिसकी कई लड़ियां थीं। और दुर्योधन के निकट पहुंच कर कहा—"दुर्योधन! नग्नावस्था में कहाँ चल दिए।"

"माता जी के पास जा रहा हूं।" दुर्योधन ने सत्य ही कहा।

"माता के पास जा रहे हो और नग्नावस्था मे? बड़े आश्चर्य की बात है।" श्री कृष्ण ने आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा।

"बात ही कुछ ऐसी है।"—केशव समझ गये और विचार किया की हारे हुये शत्रु का विश्वास नही करना चाहिए और दाव नही देना चाहिये—

कोई भी बात हो पर गुप्तांगों को तो ढक लिया होता। लो यह पुष्प हार पहन लो जिससे जंघाओं का भाग ढक जाये। तुम्हारा उद्देश्य भी पूरा हो जायेगा और व्यवहार धर्म भो निभ जायेगा"

उसने खुशी खुशी हार पहन लिया।

माता के पास जाकर उसने अनुनय विनय की। गांधारी ने अपनी आंखो की पट्टी उतार डाली और उस पर दृष्टि डाली। गले मे पडी पुष्प माला देखकर बोली—"मूर्ख! तूने यह क्या किया? यह हार गले मे क्यो डाल लिया?"

"लाज के मारे।"

"कही तुझे रास्ते मे श्री कृष्ण तो नही मिल गए थे?" गाधारी ने शंकित होकर पूछा।

"हां, उन्होने ही तो मुझे यह माला पहनाई है।"

"मूर्ख! बस उन्होंने तुझे माला क्यों पहनाई तेरे प्राण ही हर लिए।"

"वह क्यो!"

"पगले! माता ने कहा—फूलों से ढकी जंघाओं पर ही शत्रु वार करेगा और याद रख इसके कारण तेरी मृत्यु होगी।"

"यदि मैं अब पुष्प मालाए उतार फेंकूं तो........।"

"अब क्या होता है। वह वही समय था पट्टी उतारने से। जा श्री कृष्ण इस अवसर पर भी तुझे मात दे गए। मुझे खेद है कि मेरी दृष्टि से तू लाभ न उठा पाया।"

गांधारी के यह वचन सुनकर दुर्योधन को बड़ा खेद हुआ हताश व निराश होकर वह वापिस चला आया।

× × × ×

अपने शोक विह्वल हृदय को लिए दुर्योधन इधर उधर फिरता था। श्री कृष्ण द्वारा उसकी योजना असफल कर दिए जाने से वह बहुत दुखित हुआ और अन्त मे जब उसे कही भी शांति न मिली तो गदा लेकर एक जलाशय को ओर चला गया। जहा वह छुपकर अपने जीवन पर विचार करने लगा। जितना वह विचार करता, उतना ही उसे दुख होता। वह अपने को सर्व प्रकार से असफल व्यक्ति समझने लगा।

दूसरे दिन जब रणक्षेत्र में दुर्योधन दिखाई न पड़ा, तो पाडव सोचने लगे कि वह कहीं जा छुपा है। पाचों ने सोचा कि उसे खोजना चाहिए। जहा कहीं हो, ढूंढकर उसे दण्ड दिया जाय। पाचों श्री कृष्ण सहित उसकी खोज में निकले। चलते चलते वे उसी जलाशय पर पहुच गए जहां दुर्योधन छिपा बैठा था। युधिष्ठिर ने उसे ललकार कर कहा—"धूर्त ! अब अपने प्राण बचाने के लिए यहा आ छुपा है। अपने परिवार और मित्रों का नाश कराने के पश्चात स्वय बच निकलना चाहते हो। तुम्हारा हर्ष और अभिमान क्या हुआ ? तुम क्षत्रिय कुल में पैदा होकर भो कायरता दर्शाते हो ? बाहर निकलो और क्षत्रियोचित ढग से युद्ध करो। युद्ध से भाग कर जीवित रहने की चेष्टा करके कौरव कुल को कलंकित करने वाले दुर्योधन। तुम अपने कर्मों से अपने कुल पर बहुत कालिख पोत चुके, अन्त समय पर और कालिख क्यों पोतते हो ?"

युधिष्ठिर की ललकार सुनकर दुर्योधन व्यथित होकर बोला- "युधिष्ठर ! यह मत समझना कि मैं प्राण बचाने के लिए यहां छुप कर बैठा हू। मैं भयभीत होकर भी नहीं आया।"

"तो फिर किस लिए आये हैं यहां श्रीमान् ?"—भीम ने चिढ़कर पूछा।

"मैं अपनी थकान मिटाने के लिए इस ठण्डे स्थान पर चला आया था, युधिष्ठिर ! मैं न तो डरा हुआ हूं न मुझे प्राणो का ही मोह है। फिर भी, सच पूछो तो युद्ध से मेरा जी ऊब गया है। मेरे

सगे सम्बन्धी सब मारे जा चुके हैं। बस मैं अकेला ही बचा हूं। राज्य सुख का मुझे लोभ नहीं। यह सारा राज्य अब तुम्हारा ही है। जाओ और निश्चित होकर राज्य काज सम्भालो।"—दुर्योधन ने क्षुब्ध होकर कहा।

"दुर्योधन! कदाचित तुम्हें याद होगा कि एक दिन तुम्हीं ने कहा था कि सुई की नोक जितनी भी भूमि नहीं दूंगा। शांति प्रस्ताव जब हमने तुम्हारे पास भेजा, तुमने उसे ठुकरा दिया। श्री कृष्ण को भी तुमने निराश लौटाया। हमें पांच गाव देना भी तुम्हें स्वीकार न हुआ। अब कहते हो कि सारा राज्य तुम्हारा ही है। शायद तुम्हें अपने सारे पाप याद नहीं रहे। तुमने हमें जो यातनाएं पहुचाई और द्रौपदी का जो अपमान किया था, वे सब तुम्हारे महा पाप तुम्हारे प्राणों की बाल माग रहे हैं। अब तुम बच नहीं पाओगे।"—युधिष्ठिर ने गरजते हुए कहा।

युधिष्ठिर के मुख से जब दुर्योधन ने यह कठोर बातें सुनी तो उसने गदा उठा ली और आगे आकर बोला—"अच्छा, यही सही, बिना युद्ध किए तुम्हे चैन नहीं पड़ने वाला, तो फिर आजाओ। मैं अकेला हूं, थका हुआ हूं। मेरे पास कवच भी नहीं है। और तुम पाच हो, तथा तरो ताजा हो। इसलिए एक एक करके निबट लो। चलो।"

यह सुन युधिष्ठिर बोले—"यदि अकेले पर कईयों का आक्रमण करना धर्म नहीं है, तो इसका ध्यान तुम्हें बालक अभिमन्यु को मारते समय क्यों नहीं आया था? तुम्ही ने तो घिरवाकर अभिमन्यु को मरवाया था। सात सात महारथी एक बालक को इकट्ठे मिल कर मारें तो धर्म है, और जब हम पाच हो और तुम अकेले हो तो अधर्म है। अब तुम्हे धर्म के उपदेश सूझ है। सारे जीवन भर अधर्म किये और अब अन्त समय मे धर्म की आड़ लेते हो? चलो, हम तुम्हारी ही बात मान लेते है, चुन लो हम में से किसी एक को। जिसे तुम चाहो वही तुम से युद्ध करेगा। यदि द्वन्द्व युद्ध मे तुमने हम मे से किसी को, जिससे तुम लडोगे, हरा दिया तो सारा राज्य तुम्हारा ही होगा, तुम्हारी विजय हो जायेगी और यदि मारे गए, तो अपने पापों का बदला नरक मे पाओगे।"

यह सुन दुर्योधन ने भीम से गदा युद्ध करने की इच्छा प्रगट की। भीम सेन भी राज़ी हो गया और गदा युद्ध आरम्भ हो गया। दोनो की गदाएं जब परस्पर टकराती तो उनमे से चिनगारिया निकल पड़ती थी। इस प्रकार बडी देर तक युद्ध जारी रहा।

इसी बीच दर्शक आपस मे चर्चा करने लगे कि दोनो मे जीत किस की होगी उस समय श्री कृष्ण ने अर्जुन से इशारों में ही बताया कि यदि भीम दुर्योधन की जाघ पर गदा मारेगा तो जीत जायेगा भीम सेन ने उस सकेत को देख लिया और आव देखा न ताव एक गदा पूरा शक्ति से दुर्योधन की जाघ पर दे मारी। जाघ पर गदा लगनी थी कि दुर्योधन पृथ्वी पर कटे पेड़ की भाँति गिर पड़ा। यह देख भीम सेन और उन्मत्त हो गया। मन मे बसी घृणा क्रोध के साथ उबल पड़ी। उसी उन्मत्त दशा मे उसने घायल पड़े दुर्योधन के माथे पर जोर की लात जमाई।

उसका यह कार्य श्री कृष्ण को अच्छा न लगा उन्होने बहुत बुरा भला कहा। भीम सेन चुप रह गया दुर्योधन जाँघ टूट जाने के कारण अधमरी अवस्था मे वहीं पडा रहा। और पाण्डव अपने शिविर की ओर लौटने लगे तो दुर्योधन ने श्री कृष्ण को बडी जली कटी सुनाई।

* त्रेपनवाँ परिच्छेद *

दुर्योधन पर जो कुछ बीती उसका वृतांत सुनकर अश्वस्थामा बहुत क्षब्ध हो उठा। उसे इस बात का बड़ा दुःख हुआ कि भीम सेन ने दुर्योधन की जांघ पर गदा प्रहार किया और इस प्रकार युद्ध के नियमों का उल्लघन करके अधर्म तथा पाप किया। साथ ही उसे अपने पिता द्रोणाचार्य के मरने के लिए जो कुछ कुचक्र रचा गया था, वह भी अभी भूला नही था। वह मारे क्रोध के आपे से बाहर हो गया। उसकी मुट्ठिया वार बार बन्ध जाती और दांत पीसने लगता। उसके जी में आया कि वह कहीं भीम को अकेला पाये तो उसे अपने क्रोध की ज्वाला मे भस्म करके रखदे। वह तुरन्त दुर्योधन के बचे खुचे सैनिको को लेकर उस स्थान की ओर चल पड़ा, जहां दुर्योधन पड़ा हुआ मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा था।

जाते ही उसने दुर्योधन के सामने प्रतिज्ञा की कि आज ही रात्रि को मैं पाण्डवो का बीज नष्ट करके रहूगा मृत्यु की प्रतीक्षा करते दुर्योधन के मन मे पुनः पाण्डवों के प्रति विद्वेष की ज्वाला भडक उठी। उसने पड़े पडे ही आस पास खडे लोगो के सामने विधिवत अश्वस्थामा को अपनी सेना का सेनापति बना दिया और बोला—"प्यारे अश्वस्थामा! अब तुम्हीं मुझे शांति दिला सकते हो। तुम्हे सेनापति बनाना कदाचित मेरे जीवन का अन्तिम कार्य है। मैं बड़ी आशा से तुम्हारी बाट जोहता रहूगा। मत भूलना कि

पांडवों ने तुम्हारे यशस्वी पिताका असत्य भाषण के द्वारा वध किया था।

× × × ×

सूर्य डूब चुका था, रात्रि का अन्धकार धीरे धीरे बढ़ रहा था। चारो ओर अन्धेरा ही अन्धेरा था। तारों के धूमिल प्रकाश के होते हुए भी अन्धकार का साम्राज्य छाया था। अश्वस्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा एक बरगद के पेड़ के नीचे रात बिता रहे थे। कृप और अश्वस्थामा बहुत थके हुए थे, वे पड़ते ही खर्राटे भरने लगे। पर विद्वेष की ज्वाला मे जल रहे अश्वस्थामा को नींद कहां। वह तो पाण्डवों के नाश का उपाय सोच रहा था।

चारो ओर कई प्रकार के पशु पक्षियों की बोलियां गूँज रही थी। उनके होते हुए भी अश्वस्थामा की विचार तरग चल रही थी।

उस बरगद की शाखाओं पर कौरवों के झुण्ड के झुण्ड बसेरा कर रहे थे। रात्रि मे वे सब सोये हुए थे कि कहीं से एक उल्लू उड़ कर आया और आते ही उन सोते कौओं पर प्रहार कर दिया। एक एक करके चोंचें मार मार कर उल्लू उन्हें चीरने-फाड़ने लगा। रात का समय था। उल्लू तो भलि भाँति देख रहा था, किन्तु कौओं को अन्धेरे मे कुछ दिखाई ही नहीं देता था।। वे चिल्ला चिल्ला कर मरते गए। अकेले उल्लू के आगे सैकड़ों कौओं की भी एक न चली।

यह देख अश्वस्थामा सोचने लगा—"जिस प्रकार अकेले उल्लू ने सोते हुए सैकडों कौओं को मार डाला, यदि मैं भी सोते हुए पाण्डवों, जिन्होने मेरे साथियों को मार डाला है, धृष्टद्युम्न जिसने मेरे पिता की हत्या की और उनके साथियों पर आक्रमण कर दू तो उन्हे मार सकता हू। वे बहुत हैं, मैं अकेला हूं। इसी प्रकार मैं उनसे बदला ले सकता हूं।' 'वे सोते होंगे, इस लिए मेरा सामना न कर पायेंगे।"

तभी उसके मन मे प्रश्न हुआ—',क्या यह धर्म युक्त कार्य होगा ?"

अश्वस्थामा सोचने लगा—"पाण्डवों ने भी तो अधर्म से मेरे पिता का वध किया है, भीम ने भी तो अधर्म से दुर्योधन की जांघ तोड़ी है। फिर अधर्म पाण्डवों को अधर्म से मार डालने मे क्या

* त्रेपनवाँ परिच्छेद *

अश्वस्थामा

दुर्योधन पर जो कुछ बीती उसका वृतात सुनकर अश्वस्थामा बहुत क्षुब्ध हो उठा। उसे इस बात का बड़ा दुःख हुआ कि भीम सेन ने दुर्योधन की जांघ पर गदा प्रहार किया और इस प्रकार युद्ध के नियमो का उल्लघन करके अधर्म तथा पाप किया। साथ ही उसे अपने पिता द्रोणाचार्य के मरने के लिए जो कुछ कुचक्र रचा गया था, वह भी अभी भूला नही था। वह मारे क्रोध के आपे से बाहर हो गया। उसकी मुट्ठिया बार बार बन्ध जाती और दात पीसने लगता। उसके जी मे आया कि वह कही भीम को अकेला पाये तो उसे अपने क्रोध की ज्वाला मे भस्म करके रखदे। वह तुरन्त दुर्योधन के बचे खुचे सैनिकों को लेकर उस स्थान की ओर चल पड़ा, जहां दुर्योधन पड़ा हुआ मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा था।

जाते ही उसने दुर्योधन के सामने प्रतिज्ञा की कि आज ही रात्रि को मैं पाण्डवो का बीज नष्ट करके रहूंगा मृत्यु की प्रतीक्षा करते दुर्योधन के मन मे पुनः पाण्डवों के प्रति विद्वेष की ज्वाला भड़क उठी। उसने पड़े पड़े ही आस पास खड़े लोगों के सामने विधिवत अश्वस्थामा को अपनी सेना का सेनापति बना दिया और बोला—"प्यारे अश्वस्थामा! अब तुम्हीं मुझे शांति दिला सकते हो। तुम्हें सेनापति बनाना कदाचित मेरे जीवन का अन्तिम कार्य है। मैं बड़ी आशा से तुम्हारी बाट जोहता रहूंगा। मत भूलना कि

झल्लाकर अश्वत्थामा बोला—"मामा जी ! आपने यह क्या धर्म धर्म की रट लगा रक्खी है, पिता जी का वध धृष्टद्युम्न ने उस समय किया था जब वे अस्त्र शस्त्र फेंक कर ध्यान मग्न बैठे थे। इस प्रकार कर्म का बन्धन पाण्डवों के हाथों कभी का टूट चुका ! कर्ण कीचड में फंसे रथ के पहिए को निकाल रहा था अर्जुन ने तब उस पर प्रहार किया, भूरिश्रुवा पर अर्जुन ने पीछे से वार किया और भीम सेन ने दुर्योधन की कमर के नीचे वार किया, क्या तब भी धर्म रह गया। पाण्डवों ने तो अधर्म की बाढ ही ला दी, तब मैं धर्म से बन्धा रहूं तो क्यों ? आप चाहे इसे धर्म कहें अथवा अधर्म, मैं तो जा रहा हू अपने पिता और दुर्योधन का बदला लेने।"

इतना कह कर अश्वत्थामा पाण्डवो के शिविर की ओर जाने को उठा। यह देख कृपाचार्य और कृतवर्मा भी उठ खड़े हुए और बोले—"अश्वत्थामा ! आज तुम महा पाप करने पर उतारु हो गए हो। पर हम तुम्हे अकेले शत्रु के मुंह में नहीं जाने देगे।"

यह कहकर वे दोनो भी अश्वत्थामा के साथ हो लिए।

× × × ×

आधी रात बीत चुकी थी। पाण्डवो के शिविरों मे सभी सैनिक मृदु निद्रा मे सोये पड़े थे। धृष्टद्युम्न भी पड़ा था। इतने मे ही अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा के साथ वहां पहुंच गया। अश्वत्थामा पहले धृष्टद्युम्न के शिविर मे घुसा और जाते ही धृष्टद्युम्न पर कूद पड़ा। सोये पड़े धृष्टद्युम्न को उसने कुचल कुचल कर मार डाला और फिर सभी पांचाल राज कुमारों को इसी प्रकार मार डाला। इसके बाद उसने द्रौपदी के पुत्रों की हत्या की।

कृपाचार्य और कृतवर्मा ने भी अश्वत्थामा का हाथ बटाया और तीनों ने ऐसे ऐसे अमानुषिक अत्याचार किए जैसे कि कभी सुनने मे भी नही आये। यह कुकृत्य करके अश्वत्थामा ने शिविरो मे आग लगा दी। आग बड़े जोरों से भड़क उठी और शिविरों में फैल गई। इससे सोये पड़े सभी सैनिक जाग पड़े और भयभीत हो कर इधर उधर भागने लगे। अश्वत्थामा ने उन सभी को मार डाला जो उसके हाथ लगे। फिर उल्लास पूर्वक बोला—"अब मैं प्रसन्न हूं। मैंने अपना कर्तव्य पूर्ण किया, अब मैं दुर्योधन को यह शुभ

हानि। शत्रु की कमजोरी से लाभ उठाना अनुचित नहीं है। और फिर हमारे पास अब इतनी सेना कहां जो धर्म युद्ध में उनसे जीत सकें। मुझे अपनी प्रतिज्ञा भी तो पूर्ण करनी है।"

बहुत सोच विचार के उपरान्त अश्वत्थामा ने उल्लू और कौओं वाली नीति का पालन करने का ही निश्चय किया और कृपाचार्य को जगा कर उनसे अपना निश्चय कह सुनाया। अश्वत्थामा की बात सुनकर कृपाचार्य बहुत लज्जित हुए। वे बोले—"अश्वत्थामा ऐसे अन्याय पूर्ण विचार और तुम जैसे शूरवीर के मन में। बेटा! हमने जिसके लिए शस्त्र उठाये थे, वह तो मृत्यु की बाट जोह रहा है। हम उस अधर्मी तथा अन्यायी की ओर से लड़े, और हार गए। अब अन्त में हमें ऐसा अनुचित कार्य नहीं करना चाहिए, जिससे हमारा आत्मा कलंकित हो जाये। अब तो हमारे लिए यही उचित है कि धृतराष्ट्र महा सती गांधारी और महा बुद्धिमान विदुर के पास चलें और जो वे आज्ञा दें वही करें। हमें यह शोभा नहीं देता कि इस प्रकार महा पाप कमाएं। यह तो महा अधर्म की बात है। तुम्हें ऐसी बात सोचनी भी नहीं चाहिए।"

यह सुनकर अश्वत्थामा का क्रोध तथा शोक और भी प्रबल हो गया। बोला—"मामा जी! धर्म भी धर्मियों के साथ ही चलता है। जिसे आप अधर्म कह रहे हैं, वह मेरी दृष्टि में धर्म है। पिता जी और दुर्योधन को जिस प्रकार मारा गया क्या वह धर्म के अनुकूल है? तो फिर उसका बदला लेने के लिए मैं भी अधर्म का रास्ता क्यों न लूं? मैं तो निश्चय कर चुका हूं कि अभी ही पाण्डवों के शिविर में घुस जाऊंगा और अपने पिता के हत्यारे धृष्टद्युम्न, दुर्योधन के हत्यारे भीम सेन और उसके भाईयों को जो कि कवच उतारे सो रहे हैं, जाकर मार डालूंगा मैं अपने पिता और दुर्योधन का ऋण इसी प्रकार चुका सकता हूं।"

कृपाचार्य अपने भाजे की बातें सुनकर बड़े व्यथित हुए कहने लगे—"अश्वत्थामा तुम्हारा यश सारे संसार में फैला है, क्रोध में आकर ऐसा कार्य मत करो जो तुम्हारे यश की सफेद चादर पर रक्त के छींटे लगा दें। सोते हुए शत्रु को मारना कदापि धर्म नहीं है। तुम यह विचार त्याग दो।"

तक किसी ने प्रहार नहीं किया—पर सम्भव है यह मेरे उस कर्म का फल हो जो मैंने द्रोण के साथ किया था। हाय ! मैं युद्ध जीत कर भी बुरी तरह हारा। अब द्रौपदी के दिल पर क्या बीतेगी ? मेरी दशा उस पाजी की सी हो गई जो महा सागर को तो सफलता पूर्वक पार कर लेता है,पर अन्त मे छोटे-से नाले में डूबकर नष्ट हो जाता है।

श्री कृष्ण उन्हें सांत्वना देते हुए बोले–"महाराज युधिष्ठिर ! व्यर्थ शोक करने से क्या लाभ ? जो होना था हो गया। मरता क्या न करता की लोकोक्ति को चरितार्थ करते हुए अश्वत्थामा ने यह सब कुछ किया है। उसने जो कुछ किया वह अपनी आत्मा के साथ ही अन्याय किया है। वीरों का कर्तव्य है कि वे खोकर दुखी और पाकर प्रफुल्लित न हों। आप तो धर्म राज हैं। आपको विलाप करना शोभा नही देता। जो हुआ, उसे भूल जाओ।"

द्रौपदी की दशा तो बडी हो दयनीय थी। जब उसने अपने बेटों के मारे जाने का समाचार सुना, वह सन्न रह गई। पागलो की भांति अपने बाल नोचने लगी, कपड़े फाड़ने लगी। बडी कठिनाई से उसे होश मे लाया गया। तब वह बल खाती नागिन की भांति जल्दी से पाण्डवों के पास पहुंची और उसने गरज कर कहा—"क्या आप लोगों में कोई भी ऐसा नही है जो मेरे पुत्रों की हत्या का बदला ले सके ?"

इस चुनौती के उत्तर मे भीम सेन धड़क कर बोला—"जब तक भीम सेन जीवित है। तुम्हें किसी प्रकार की चिन्ता नही है। मैं शपथ लेता हू कि कोई मेरा साथ दे अथवा न दे जब तक तुम्हारे पुत्रों के हत्यारे अश्वत्थामा से बदला न ले लूंगा, तब तक चैन से न बैठूगा।"

भीम सेन की इस भीष्म प्रतिज्ञा को सुनकर एक बार तो सभी सन्न रह गए। परन्तु फिर उसकी प्रतिज्ञा को पूर्ण कराने के लिए सभी उसके साथ चलने को तैयार हो गए। सभी भ्राता अश्वत्थामा की खोज मे निकल पड़े। ढूंढते ढूंढते आखिर उन्होंने गंगा के तट पर व्यास के आश्रम में छुपे अश्वत्थामा का पता लगा ही लिया और जाकर उसे घेर लिया।

अश्वत्थामा और भीम सेन मे युद्ध छिड़ गया। दोनों वीर

समाचार जाकर सुनाता हूं।"

यह कहकर वह अपने मामा कृपाचार्य और कृतवर्मा के साथ उस स्थान की ओर चला जहां दुर्योधन अन्तिम घड़ियां गिन रहा था।

× × × ×

दुर्योधन के पास पहुंच कर अश्वस्थामा ने हर्षातिरेक से कहा—"महाराज दुर्योधन ! आप अभी जीवित हैं क्या ? देखिये मैं आपके लिए कैसा शुभ समाचार लाया हूँ, जिसे सुनकर आपका कलेजा अवश्य ही ठण्डा हो जायेगा और आप शांति से मर सकेंगे। देखिये ! मैंने कृपाचार्य व कृतवर्मा ने सारे पाचाल समाप्त कर दिए। पाण्डवों के भी सारे पुत्र हमने मार डाले। द्रौपदी का कोई पुत्र जीवित नहीं छोड़ा। पाण्डवों की सारी सेना को हमने या तो जलाकर मार डाला अथवा कुचल कर या अंग प्रत्यग तोड़ कर खत्म कर डाला। इस प्रकार पाण्डवों के वीरों और सनिकों का सर्व नाश हो गया, बस पाण्डवों के पक्ष मे अब सात ही व्यक्ति जीवित है और आपके पक्ष के हम तीन। अब तो आपको अवश्य ही शांति मिली होगी। हम ने उन सभी को सोते हुए ही जा घेरा था और इस प्रकार आपके साथ हुए अन्याय का बदला ले लिया।"

दुर्योधन को यह समाचार सुनकर अपार हर्ष हुआ, बोला—"प्रिय गुरु भाई ! आज तुमने वह कार्य किया है जिसे भीष्म पितामह, वीर कर्ण और द्रोणाचार्य भी न कर पाये। मेरी आत्मा सन्तुष्ट हो गई। अब मैं शांति पूर्वक मर सकूँगा। तुम्हारे समाचार सुनने के लिए ही जी रहा था।" इतना कह कर दुर्योधन ने तीन हिचकियां ली और उसके प्राण पखेरू उड़ गए।

× × × ×

पाण्डवों को अपनी सेना, अपने वीरों और द्रौपदी के पुत्रों के इस प्रकार मारे जाने से बड़ा ही दुख हुआ। युधिष्ठिर बोले—"अभी अभी हमें विजय प्राप्त हुई थी। और मैं समझता था कि यह नाशकारी युद्ध समाप्त हो गया। पर अश्वस्थामा के पापी हाथों ने पांसा पलट दिया। उसने एक पाप करके हमारी जीत को भी पराजय में परिवर्तित कर डाला। ओह ! हम क्या जानते थे कि द्रोण पुत्र अश्वस्थामा इतना नीच हो सकता है। सोते शत्रुओं पर तो आज

तक किसी ने प्रहार नहीं किया—पर सम्भव है यह मेरे उस कर्म का फल हो जो मैंने द्रोण के साथ किया था। हाय ! मैं युद्ध जीत कर भी बुरी तरह हारा। अब द्रौपदी के दिल पर क्या बीतेगी ? मेरी दशा उस पाजी की सी हो गई जो महा सागर को तो सफलता पूर्वक पार कर लेता है,पर अन्त मे छोटे-से नाले में डूबकर नष्ट हो जाता है।

श्री कृष्ण उन्हें सात्वना देते हुए बोले—"महाराज युधिष्टिर ! व्यर्थ शोक करने से क्या लाभ ? जो होना था हो गया। मरता क्या न करता की लोकोक्ति को चरितार्थ करते हुए अश्वस्थामा ने यह सब कुछ किया है। उसने जो कुछ किया वह अपनी आत्मा के साथ ही अन्याय किया हैं। वीरो का कर्तव्य है कि वे खोकर दुखी और पाकर प्रफुल्लित न हों। आप तो धर्म राज है। आपको विलाप करना शोभा नहीं देता। जो हुआ, उसे भूल जाओ।"

द्रौपदी की दशा तो बड़ी हो दयनीय थी। जब उसने अपने बेटो के मारे जाने का समाचार सुना, वह सन्न रह गई। पागलो की भाति अपने व ल नोचने लगी, कपड़ें फाडने लगी। बडी कठिनाई से उसे होश में लाया गया। तब वह बल खाती नागिन की भाति जल्दी से पाण्डवों के पास पहुची और उसने गरज कर कहा—"क्या आप लोगों में कोई भी ऐसा नही है जो मेरे पुत्रों की हत्या का बदला ले सके ?"

इस चुनौती के उत्तर मे भीम सेन कड़क कर बोला—"जब तक भीम सेन जीवित है। तुम्हें किसी प्रकार की चिन्ता नही है। मैं शपथ लेता हूं कि कोई मेरा साथ दे अथवा न दे जब तक तुम्हारे पुत्रों के हत्यारे अश्वस्थामा से बदला न ले लूंगा, तब तक चैन से न बैठूगा।"

भीम सेन की इस भीष्म प्रतिज्ञा को सुनकर एक बार तो सभी सन्न रह गए। परन्तु फिर उसकी प्रतिज्ञा को पूर्ण कराने के लिए सभी उसके साथ चलने को तैयार हो गए। सभी भ्राता अश्वस्थामा की खोज में निकल पड़े। ढूढ़ते ढूंढ़ते आखिर उन्होंने गंगा के तट पर व्यास के आश्रम मे छुपे अश्वस्थामा का पता लगा ही लिया और जाकर उसे घेर लिया।

अश्वस्थामा और भीम सेन में युद्ध छिड़ गया। दोनों वीर

पहले धनुष वाणों से लड़ें, जब धनुष कट गए तो ढाल तलवार हाथ में लेकर मैदान मे आगए। अर्जुन को एक बार ऐसा क्रोध आया कि उसने गाण्डीव पर बाण चढाया, ताकि भीम सेन से लड़ रहे अश्वस्थामा का काम तमाम करदे, परन्तु युधिष्टिर ने उसे रोकते हुए कहा—"भीम ने प्रतिज्ञा की है इसलिए उसे ही लड़ने दो। वीर जब आपस में लड़ रहे हों तो तीसरे को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। अश्वस्थामा ऐसी कोई धर्म विरुद्ध बात नही कर रहा, जिसके कारण तुम्हे हस्तक्षेप करने की आवश्यकता पड़े।"

अर्जुन ने हाथ रोक लिया। उधर ढाल तलवार के भी टूट फूट जाने पर भीम सेन और अश्वस्थामा ने गदा सम्भाल ली। जब दोनों अपनी गदाओं को टकराते तो भयंकर ध्वनि निकलती, चिनगारियां झड़ जाती। दोनों उन्मत्त हाथियों की भांति लड़ते रहे। ....और फिर उनमे मल्ल युद्ध होने लगा। आखिर मे एक बार भीम सेन ने अश्वस्थामा को ऊपर उठा कर भूमि पर बड़े जोरों से पटक दिया। और झट वह उसकी छाती पर चढ़ बैठा। घुटने की एक ही चोट पडनी थी कि अश्वस्थामा 'चीं' बोल गया। उसने कहा—"भीम सेन ! मैंने हार मान ली। अब मुझे क्षमा कर दो।"

परन्तु भीम सेन तो और भी जोश मे आ गया, उसने क्रुद्ध होकर कहा—"निद्रामग्न द्रौपदी के पुत्रों को मारने वाले और रात्रि मे आग लगा कर सहस्रों सैनिकों को जला मारने वाले कलकी तुझे क्षमा करदू ! नही, मैं तेरे प्राण लेकर ही छोड़ूगा।"

उसने फिर विनती की—"भीम सेन तुम महाबली हो। तुम क्षत्रिय वीर हो। मैं तुम्हारी शरण आता हू। क्षत्रिय कभी शरण आये पर हाथ नहीं उठाया करते।"

"क्षत्रिय धर्म की दुहाई देकर जान बचाना चाहता है नीच ?

आवेश मे आकर भीम सेन ने कहा—मैं तुझे बिना मारे नही छोड सकता। कायर जब परास्त हो गया तो क्षमा याचना करता है। धूर्त ! जब तू धृष्टद्युम्न और उसके भाईयो को तथा द्रौपदी पुत्रों का मार रहा था तब तुझे ब्राह्मण धर्म का ध्यान नही आया, अब मुझे क्षत्रिय धर्म की दुहाई देकर अपने प्राणों की भिक्षा मांगता है ? ठहरा ना भिक्षा मांग कर जीवन निर्वाह करने वाला ब्राह्मण ही।"

उसी समय युधिष्ठिर दौड पड़े बोले—"भीम सेन ! शरण आये वीर पर हाथ उठाना तुम्हें शोभा नही देता है । अश्वस्थामा प्राण दान मांग रहा है । और तीर्थंकरों का कथन है कि दानों में सर्व श्रेष्ठ दान है अभय दान ! अब इसे छोड़ दो ।"

"नही मुझे तो द्रौपदी भाभी को इसका सिर पेश करना है, ताकि इनके कटे सिर को देखकर वह अपने हृदय मे धधक रही शोक एव क्रोध की ज्वाला को शांत कर सके ।"—भीम सेन ने कहा ।

"मैं उस सती के लिए अपने माथे का उज्ज्वल रत्न दूगा । वही मेरी पराजय की निशानी होगी—अश्वस्थामा ने दीनता पूर्वक कहा—महाबला भीम अब मुझे क्षमा करदो । और मेरे माथे का रत्न उस सन्नारी को समर्पित करके कहो कि अश्वस्थामा अपने प्राणो का दान लेकर, पराजय के रूप में यह रत्न देकर, वन मे चला गया मैं वन में चला जाऊगा और अपने पापो के प्रायश्चित के रूप मे घोर तपस्या करूंगा ।"

यह सुनकर युधिष्ठिर और भी प्रसन्न हुए । उन्होंने भीम के चंगुल मे अश्वस्थामा को मुक्त कराया । अश्वस्थामा ने माथे का रत्न भीम सेन को दे दिया और वन की ओर चल पड़ा ।

भीम सेन उस रत्न को लेकर द्रोपदी के पास पहुचा और रत्न देकर बोला—"भाभी ! यह रत्न तुम्हारी ही खातिर लाया हू । यह अश्वस्थामा की पराजय का चिन्ह है । उसने हम से प्राण दान मांगा और अपने माथे का यह रत्न तुम्हारे लिए दिया है । जिस दुष्ट ने तुम्हारे पुत्रों को मारा था, वह परास्त हो गया । दुःशासन का मैंने रक्त बहा दिया, दुर्योधन भी मारा गया । अब अपने हृदय से क्रोध का दावा नल बुझा दो और शात हो जाओ ।"

भीम सेन द्वारा दिया रत्न द्रौपदी युधिष्ठिर को देते हुए बोली—"धर्मराज ! इस रत्न को आप अपने मस्तक पर धारण करे ।"

× × × ×

सारा हस्तिनापुर नगर निस्सहाय व विधवा स्त्रियों और अनाथ बालको के करुण चीत्कारो रोने व कलपने के हृदय विदारक शब्दो से गूज उठा । जिधर जाईये उधर ही रोने पीटने की आवाजें आ रही थी, प्रत्येक घर मे शोक मनाया जा रहा था । ऐसा कोई

नही था जिसका कोई मरा न हो । सब हा हा कार कर रहे थे। सभी की आंखों से सावन भादों की झड़ी लगी थी । सारे नगर मे चीत्कारों का इतना शोर था कि नगर मे प्रवेश करते हुए दिल घबराता था। धृतराष्ट्र अपने साथ निस्सहाय स्त्रियों को लेकर कुरुक्षेत्र की ओर चले, रोने पीटने वालों का यह दल जब कुरुक्षेत्र मे पहुंचा तो एक बार सारा क्षेत्र विलाप से भर गया । जहां लगभग तीन सप्ताह तक तलवारें, धनुष, भाले, बर्छियां, सिंह नाद, हाथियों की चिंघाड़ें, घोड़ों की हिनहिनाहट सुनाई देती थी, वही अब स्त्रियों का करुण क्रन्दन गूंज रहा था। पृथ्वी से उठने चीत्कार आकाश को छूने लगे। एक भयानक विलाप सारे क्षेत्र की छाती दहला रहा था। उस क्षेत्र में चारों ओर लाशें ही लाशें दिखाई देती थी । कुत्ते और शृगाल वीरों के शवों को खीच रहे थे । चीलो और गिद्धो के झुण्ड के झुण्ड लाशों पर टूट पड़े थे। जब चीलों, गिद्धों, कुत्तों और शृगालो ने जब मनुष्यो के रोने पीटने की आवाज़ सुनी तो वे भी एक साथ मिल कर बोल उठे । उस समय इतना शोर हुआ कि कान पडी आवाज सुनाई नही देती थी। लगता था कि पशु पक्षी मनुष्यों के चीत्कारो की खिल्ली उडा रहे हों और कह रहे हों—"विनाश की लीला रचाते समय नही सूझा था अब आंसू बहाते हो। अब विलाप करने से क्या लाभ ?"

सब अपने अपने प्रिय जनों के शवों को खोज रहे थे । कोई किसी खोपडी को हसरत भरी नजरो से देखकर आंसू बहा रही थी तो कोई किसी धड से लिपट कर रुदन कर रही थी। और धृतराष्ट्र तो एक ओर खडे आसू बहाते रहे । वह बेचारे अपने पुत्रों के शवों को भी पहचान सकने की शक्ति न रखते थे।

* चव्वनवां परिच्छेद *

गांधारी की फटकार

संजय धृतराष्ट्र का एक प्रकार से दायां हाथ था, वह सदा उसके साथ रहता था, उनके समस्त रहस्य संजय को ज्ञात थे। कहते हैं वह प्रतिदिन कुरुक्षेत्र के युद्ध का वर्णन जाकर धृतराष्ट्र को सुनाया करता था। वैष्णवों के मतानुसार महाभारत के सारे युद्ध का वृतांत उसी का कहा हुआ है। जो भी हो संजय था धृतराष्ट्र का आत्मा ही।

जब वृद्ध धृतराष्ट्र अपने बेटों के शोक में आंसू बहा रहे थे, तब संजय उन्हें धैर्य बंधाता हुआ बोला—"महाराज! आप जैसे वयो वृद्ध और अनुभवी व्यक्ति को समझाने की क्या आवश्यकता? आप तो स्वयं समझदार और जानकार हैं। आप जानते ही हैं कि जो होना था वह हो गया। मृत वीरों के लिए आंसू बहाने से कोई लाभ नहीं है। अब तो धैर्य ही एक मात्र उपाय है। प्रत्येक प्राणी अपने कर्मों का फल भोगता है। मृतात्माओं को आपके आंसुओं से कोई लाभ नहीं पहुंच सकता। इसलिए आप शांत हो जाईये और अपने मन को समझाईये।"

विदुर जी भी उस समय धृतराष्ट्र के पास पहुंच गए। उन्होंने कहा—"आपके इन बेटों को मैंने बहुत समझाया, पर वे न माने। इसी का कारण है कि आज उनकी यह गति हुई। तो भी हमें यह जान लेना चाहिए कि आत्मा अजर अमर है। यह शरीर अनित्य है। किसी न किसी दिन शरीर का नाश होता ही है। जो लोग इस युद्ध में मारे गए हैं, वे वीर गति को प्राप्त हुए हैं। उनके लिए आंसू

नही था जिसका कोई मरा न हो । सब हा हा कार कर रहे थे। सभी की आंखों से सावन भादों की झड़ी लगी थी । सारे नगर मे चीत्कारों का इतना शोर था कि नगर में प्रवेश करते हुए दिल घबराता था। धृतराष्ट्र अपने साथ निस्सहाय स्त्रियों को लेकर कुरुक्षेत्र की ओर चले, रोने पीटने वालों का यह दल जब कुरुक्षेत्र मे पहुचा तो एक बार सारा क्षेत्र विलाप से भर गया । जहां लगभग तीन सप्ताह तक तलवारें, धनुष, भाले, बर्छियां, सिंह नाद, हाथियों की चिंघाड़ें, घोड़ों की हिनहिनाहट सुनाई देती थी, वही अब स्त्रियों का करुण क्रन्दन गूंज रहा था। पृथ्वी से उठते चीत्कार आकाश को छने लगे। एक भयानक विलाप सारे क्षेत्र की छाती दहला रहा था। उस क्षेत्र में चारों ओर लाशें ही लाशें दिखाई देती थी । कुत्ते और शृगाल वीरों के शवों को खीच रहे थे । चीलो और गिद्धो के झुण्ड के झुण्ड लाशों पर टूट पड़े थे। जब चीलो, गिद्धों, कुत्तो और शृगालो ने जब मनुष्यों के रोने पीटने को आवाज़ सुनी तो वे भी एक साथ मिल कर बोल उठे । उस समय इतना शोर हुआ कि कान पडी आवाज सुनाई नही देती थी। लगता था कि पशु पक्षी मनुष्यों के चीत्कारो की खिल्ली उडा रहे हो और कह रहे हो—"विनाश की लीला रचाते समय नही सूझा था अब आंसू बहाते हो। अब विलाप करने से क्या लाभ ?"

सब अपने अपने प्रिय जनों के शवो को खोज रहे थे । कोई किसी खोपडी को हसरत भरी नजरो से देखकर आंसू बहा रही थी तो कोई किसी धड से लिपट कर रुदन कर रही थी। और धृतराष्ट्र तो एक ओर खडे आंसू बहाते रहे । वह बेचारे अपने पुत्रों के शवों को भी पहचान सकने की शक्ति न रखते थे।

स्थान पर एक लोहे की प्रतिमा अन्धे धृतराष्ट्र के सामने खड़ी करदी, श्री कृष्ण का भय सही साबित हुआ। क्योंकि पहले तो उन्होंने उस प्रतिमा से स्नेह प्रगट किया। परन्तु तभी उन्हें अपने बेटों की याद आ गई और उन्होंने प्रतिमा को इतने जोर से भींचा कि प्रतिमा चूर चूर हो गई।

परन्तु प्रतिमा के चूर हो जाने के उपरान्त धृतराष्ट्र को ध्यान आया कि मैंने यह क्या कर डाला। वे दुखित हो कर बोले—"हाय मैंने यह क्या कर डाला, क्रोध में आकर भीमसेन की हत्या करदी।" इतना कह कर वे विलाप करने लगे। तभी श्री कृष्ण बोले—"महाराज! आप चिन्तित न हों। भीम सेन सकुशल है।"

"तो फिर यह कौन था, जो मेरे हाथों चूर हो गया।"

"वह तो लोहे की प्रतिमा।"

धृतराष्ट्र को क्रोध तो आया, पर उसे पीकर बोले—"श्री कृष्ण! तुम ने बहुत अच्छा किया कि मुझे एक पाप से बचा लिया।"

फिर तो धृतराष्ट्र ने भीम सेन को अपने पास बुलाकर बड़ा स्नेह दर्शाया। इसी प्रकार अर्जुन, नकुल और सहदेव को भी छाती से लगा कर प्यार किया। उन्हें आशीर्वाद दिया और सुख पूर्वक राज्य काज करने को कहा।

गांधारी एक ओर खड़ी विलाप कर रही थी। विदुर जी ने आकर उसे ढाढ़स बन्धाया। और इसके लिए उन्होंने आत्मा के सम्बन्ध में ज्ञानपूर्ण उपदेश दिया। फिर पाण्डव उसके पास गए और [illegible] प्रणाम किया। जब श्री कृष्ण पहुंचे तो प्रणाम करके बोले—"माता गान्धारी! अब विलाप बन्द करो जाने वाले अब वापिस तो आते नहीं। अब तो पाण्डवों को ही अपना बेटा समझो। तुम्हारे पुत्र यदि मेरा कहा मान लेते और पाण्डवों से सन्धि कर लेते तो आज उनकी यह गति नहीं होती और न आपको यह दिन देखना पड़ता। ठीक है अभिमान विनाश का कारण बनता है। जो समझदार [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] करा देता है। तुम ज्ञानवती हो, [illegible] के मन की समझती हो, मृत पुत्रों के लिए आंसू बहाने से कुछ लाभ नहीं। सन्तोष करो।"

गान्धारी के हृदय में [illegible] का [illegible] सब [illegible] उठा। उसने

बहाना और पश्चाताप करना व्यर्थ ही है। अतः अब आप विलाप समाप्त करके पाण्डवों को ही अपना पुत्र समझिए। युद्ध मे एक न एक पक्ष की हार तो होती ही है और जब इतना भयकर युद्ध ठना था तो एक न एक पक्ष के वीरों की तो यह गति होती ही है। इसलिए आपका विलाप बेकार है। पाण्डव आपके भाई की ही सन्तान हैं। उन्हे आपना आत्मज जान कर आप सन्तोष करेंगे तो आपको शांति मिलेगी। वरना इस व्याकुलता से आप का स्वास्थ्य बिगड जायेगा और खोये हुए पुत्रों की आत्मा को भी आप कोई लाभ नहीं पहुचा सकेगे।"

इस प्रकार कई बार विदुर जी ने धृतराष्ट्र को सान्त्वना दी। उन्हे अनेक प्रकार से समझाया। किसी प्रकार उनके आसू रुके। तब रोती बिलखती स्त्रियों के झुण्ड को पार करते हुए पाण्डव श्री कृष्ण के साथ धृतराष्ट्र के पास आये और नम्रता पूर्वक हाथ जोडे हुए उनके सामने जाकर खडे हो गए। विदुर जी ने कहा—"महाराज! आपके पुत्रवत् भतीजे आपके सामने हाथ जोडे खडे हैं।"

धृतराष्ट्र की आखो से पुन: आसू बह निकले। उन्होने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—"बेटा युधिष्ठिर! तुम सब सकुशल तो हो!"

युधिष्ठिर बोले—"आप की कृपा से हम जीवित है और अब आपके चरणों मे आज्ञाकारी पुत्रों के समान स्थान पाना चाहते है। हमारे कारण यदि आपको कुछ कष्ट पहुंचा हो तो आप क्षमा करदें। हम नही चाहते थे कि युद्ध हो, वह हमारे लाख प्रयत्न करने पर भी युद्ध टला नही मुझे अपने भाईयों के लिए बडा शोक है। अब मैं स्वय दुर्योधन की कमी, जो कदाचित आपको खटके, पूरी करने का प्रयत्न करूगा। पिता जी के मुनिव्रत धारण करने के उपरान्त से हम ने आप ही को अपना पिता माना है। पिता उद्दण्ड बालक को भी स्नेह करता है। इसी प्रकार आप हमें अपना स्नेह प्रदान करें।"

धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को छाती से लगा लिया। पर वह आलिंगन स्नेह पूर्ण न था।

इतिहास कारों का कथन है कि उसके पश्चात धृतराष्ट्र ने भीमसेन को अपने पास बुलाया। पर धृतराष्ट्र के हाव भाव से श्री कृष्ण भीम के प्रति उनके मनोभाव जान गए और उन्होने भीम के

स्थान पर एक लोहे की प्रतिमा अन्धे धृतराष्ट्र के सामने खडी करदी, श्री कृष्ण का भय सही साबित हुआ। क्योंकि पहले तो उन्होंने उस प्रतिमा से स्नेह प्रगट किया। परन्तु तभी उन्हें अपने बेटों की याद आ गई और उन्होंने प्रतिमा को इतने जोर से भींचा कि प्रतिमा चूर चूर हो गई।

परन्तु प्रतिमा के चूर हो जाने के उपरान्त धृतराष्ट्र को ध्यान आया कि मैंने यह क्या कर डाला। वे दुखित हो कर बोले—"हाय मैंने यह क्या कर डाला, क्रोध मे आकर भीमसेन की हत्या करदी।" इतना कह कर वे विलाप करने लगे। तभी श्री कृष्ण बोले—"महाराज! आप चिन्तित न हो। भीम सेन सकुशल है।"

"तो फिर यह कौन था, जो मेरे हाथो चूर हो गया।"

"वह तो लोहे की प्रतिमा।"

धृतराष्ट्र को क्रोध तो आया, पर उसे पीकर बोले—"श्री कृष्ण! तुम ने बहुत अच्छा किया कि मुझे एक पाप से बचा लिया।"

फिर तो धृतराष्ट्र ने भीम सेन को अपने पास बुलाकर बड़ा स्नेह दर्शाया। इसी प्रकार अर्जुन, नकुल और सहदेव को भी छाती से लगा कर प्यार किया। उन्हे आशीर्वाद दिया और सुख पूर्वक राज्य काज करने को कहा।

गांधारी एक ओर खड़ी विलाप कर रही थी। विदुर जी ने जाकर उसे ढाढस बन्धाया। और इसके लिए उन्होंने आत्मा के सम्बन्ध मे ज्ञानपूर्ण उपदेश दिया। फिर पाण्डव उसके पास गए और पैर छूकर प्रणाम किया। जब श्री कृष्ण पहुंचे तो प्रणाम करके बोले—"सती गांधारी! अब विलाप बन्द करो जाने वाले अब वापिस तो आने नहीं। अब तो पाण्डवों को ही अपना बेटा समझो। तुम्हारे पुत्र यदि मेरी बात मान लेते और पाण्डवों से सन्धि कर लेते तो आज उनकी यह गति नहीं होती और न आपको यह दिन देखना पड़ता ठीक है अभिमान विध्वंस का कारण बनता है। जो समस्याएं शान्ति से सुलझ सकती है, वही हिंसा से विनाश का कारण बन जाती है। तुम जैसी सती, जो धर्म के मर्म को समझती है, मृत व्यक्तियों के लिए आंसू बहाये, यह अच्छा नहीं लगता। सन्तोष करो।"

गांधारी के हृदय में क्रोध का दावा नल धधक उठा। उसने

श्री कृष्ण को फटकारते हुए कहा—"कृष्ण तू अब मुझे उपदेश देने आया है। क्या मैं नही जानती कि यह सब युद्ध की जड़ तू ही था। तेरे ही कारण मेरे परिवार का नाश हुआ। तेरे ही कारण रक्त की नदियां बही। तेरे ही कारण मेरे सौ पुत्र मारे गए। तेरे ही कारण भारत खण्ड के असंख्य वीर बलि चढे। तू न होता तो असंख्य नारियों का सुहाग न उजडता असख्य बालक अनाथ न होते। और कुरुक्षेत्र इस प्रकार हड्डियो से भरा न होता। तूने ही युद्ध के बीज बोये। तूने ही भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन और दुःशासन आदि का वध कराया और जिनका तू पक्षपाती बना, उन्हें भी इस योग्य कर दिया, कि वे कभी तेरे सामने छाती तान कर खडे न हो सकेगे। मैं जानती हूं कि त्रिखण्डी होने के उपरान्त मुझे चाह हुई कि भारत खण्ड मे कोई ऐसा क्षत्रिय कुल न रहे, जो यादवों से किसी भी समय टक्कर ले सके। हमारा कुल तेरी आखो में खटक रहा था और उसी का तू ने नाश करा दिया। पर याद रख कि तूने मेरा कुल मिटाया हैं, तो तेरे कुल का भी नाश हो जायेगा और तू अपने पाप का भयकर फल भोगेगा। तेरे सारे कुचक्र के बाद भी मुझे तो पानी देने वाला भी होगा, तू निस्सहाय होकर तडप तडप कर प्यासा ही मर जायेगा। यह एक सती का वचन हैं, जो कभी खाली न जायेगा।"

गाधारी के इन शब्दो को सुनकर सभी कांप उठे। श्री कृष्ण का दिल भी दहल गया और पाण्डव भी भयभीत हो गए। पर तीर हाथ से छूट चूका था। सती के मुह से शाप निकल ही गया था। अब क्या हो सकता था। श्री कृष्ण ने अपनी ओर से बहुत ही स्पष्टी करण दिया, पर गाधारी को वे सन्तुष्ट न कर सके।

इस समय व्यास जी ने क्रुद्ध सती को शांत करने के उद्देश्य से कहा—"देवी! तुम महान सती हो। तुम पाण्डवो पर क्रुद्ध न होओ। उनके प्रति मन मे द्वेष न रखो क्योंकि द्वेष अधर्म को जन्म देता है। याद है तुम्ही ने तो युद्ध आरम्भ होने से पूर्व कहा था कि जहा धर्म होगा, जीत भी उन्ही की होगी। और आखिर वही हुआ। जो बातें बीत चुकी उन्हे याद करके मन मे वैर रखना अच्छा नहीं है। तुम्हारी सहन शीलता और धैर्य का यश समस्त संसार में फैल रहा है। अब तुम अपने स्वभाव को मत बदलो। यही ठीक है कि तुम मा हो, माँ के हृदय मे अपने पुत्रो के प्रति जो ममता होती है,

उसी के वशीभूत होकर तुम्हें अपने पुत्रों के प्रति शोक है, पर तुम साधारण स्त्री तो नहीं हो । तुम्हें तो उच्चादर्श प्रस्तुत करना ही शोभा देता है।"

गांधारी ने उत्तर दिया—"मैं जानती हूं कि पुत्रों के वियोग के कारण मेरी बुद्धि अस्थिर हो चुकी है, परन्तु फिर भी पाण्डवों के सौभाग्य पर मैं ईर्ष्या नहीं करती। आखिर वे भी मेरे लिए पुत्रों के ही समान हैं। मैं जानती हूं कि दुःशासन और शकुनि ही इस कुल के नाश के मूल कारण थे, परन्तु श्री कृष्ण ने शकुनि तथा दुःशासन द्वारा प्रज्वलित अग्नि को हवा दी और यह ज्वाला दावानल बन गई। मुझे यह भी विदित है कि अर्जुन तथा भीम निर्दोष हैं। अपनी सत्ता के मद में आकर मेरे पुत्रों ने यह विनाशकारी युद्ध छेड़ा था और अपने अत्याचारी कर्मों के कारण मारे भी गए। परन्तु एक बात का मुझे बहुत खेद एवं शोक है। श्री कृष्ण की कृपा से दुर्योधन और भीम सेन में गदा युद्ध हुआ, यहां तक तो ठीक है। लेकिन कृष्ण के संकेत पर भीम सेन ने कमर के नीचे गदा मार कर गिराया, यह मुझ से नहीं सहा जाता।"

भीम को इस बात का दुःख था कि उसने दुर्योधन को अनीति से मारा है। गांधारी की बातें सुनकर वह क्षमा याचना करते हुए बोला—"मां! युद्ध में अपने बचाव के लिए क्रोध वश मुझ से ऐसा हुआ, वह धर्म हुआ या अधर्म, आप इसके लिए मुझे क्षमा कर दें। उस समय मैं क्रोध में था, क्रोध से पाप होते हैं, मुझ से भी यह पाप हुआ। मैं यह स्वीकार करता हूं कि धर्म-युद्ध करके मैं दुर्योधन को परास्त नहीं कर सकता था, और दुर्योधन की ओर से युद्ध में बार बार अधर्म हुआ, बार बार युद्ध-नियमों का उल्लंघन होता रहा, बस इसी कारण मैं भी अधर्म कर बैठा। पर यह तो सोचिये कि मेरे द्वारा की गई अनीति की जड़ क्या थी। दुर्योधन ने युधिष्ठिर को जुए के खेल में फंसा कर हमारा राज्य छीन लिया और दुःशासन ने भरी सभा में द्रौपदी का अपमान किया, इससे हमारे हृदय धधक उठे। तेरह वर्ष तक हम दुर्योधन की अनीति के कारण उत्पन्न हुई क्रोध की चिनगारी को छिपाये रहे। प्रकट होने पर हम ने सिर्फ पांच गांव मांगे, उसने सुई की नोक जितनी भूमि भी देने से इन्कार

श्री कृष्ण को फटकारते हुए कहा—"कृष्ण तू अब मुझे उपदेश देने आया है। क्या मैं नहीं जानती कि यह सब युद्ध की जड़ तू ही था। तेरे ही कारण मेरे परिवार का नाश हुआ। तेरे ही कारण रक्त की नदियां बही। तेरे ही कारण मेरे सौ पुत्र मारे गए। तेरे ही कारण भारत खण्ड के असंख्य वीर बलि चढ़े। तू न होता तो असंख्य नारियों का सुहाग न उजड़ता असंख्य बालक अनाथ न होते। और कुरुक्षेत्र इस प्रकार हड्डियों से भरा न होता। तूने ही युद्ध के बीज बोये। तूने ही भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन और दुःशासन आदि का बध कराया और जिनका तू पक्षपाती बना, उन्हें भी इस योग्य कर दिया, कि वे कभी तेरे सामने छाती तान कर खड़े न हो सकेंगे। मैं जानती हूं कि त्रिखण्डी होने के उपरान्त मुझे चाह हुई कि भारत खण्ड में कोई ऐसा क्षत्रिय कुल न रहे, जो यादवों से किसी भी समय टक्कर ले सके। हमारा कुल तेरी आंखों में खटक रहा था और उसी का तू ने नाश करा दिया। पर याद रख कि तूने मेरा कुल मिटाया है, तो तेरे कुल का भी नाश हो जायेगा और तू अपने पाप का भयंकर फल भोगेगा। तेरे मारे कुचक्र के बाद भी मुझे तो पानी देने वाला भी होगा, तू निस्सहाय होकर तड़प तड़प कर प्यासा ही मर जायेगा। यह एक सती का वचन है, जो कभी खाली न जायेगा।"

गांधारी के इन शब्दों को सुनकर सभी कांप उठे। श्री कृष्ण का दिल भी दहल गया और पाण्डव भी भयभीत हो गए। पर तीर हाथ से छूट चूका था। सती के मुह से शाप निकल ही गया था। अब क्या हो सकता था। श्री कृष्ण ने अपनी ओर से बहुत ही स्पष्टी करण दिया, पर गांधारी को वे सन्तुष्ट न कर सके।

इस समय व्यास जी ने क्रुद्ध सती को शांत करने के उद्देश्य से कहा—"देवी! तुम महान सती हो। तुम पाण्डवों पर क्रुद्ध न होओ। उनके प्रति मन मे द्वेष न रक्खो क्योंकि द्वेष अधर्म को जन्म देता है। याद है तुम्ही ने तो युद्ध आरम्भ होने से पूर्व कहा था कि जहा धर्म होगा, जीत भी उन्हीं की होगी। और आखिर वही हुआ। जो बातें बीत चुकी उन्हें याद करके मन मे वैर रखना अच्छा नहीं है। तुम्हारी सहन शीलता और धैर्य का यश समस्त संसार मे फैल रहा है। अब तुम अपने स्वभाव को मत बदलो। यहीं ठीक है कि तुम मा हो, माँ के हृदय में अपने पुत्रो के प्रति जो ममता होती है,

धृतराष्ट्र पाण्डवों को अपने साथ ले गए। एक बार पुनः हस्तिनापुर में उत्सव मनाया गया। बड़े ठाठ से युधिष्ठिर की सवारी निकली। और फिर युधिष्ठिर आनन्द पूर्वक राज करने लगे।

धृतराष्ट्र को वे सभी प्रकार का सुख देते थे। तो भी उसके मन की वेदना मिटती न थी। वे भूमि पर ही सोते थे और लम्बे लम्बे उपवास करते थे। कुन्ती गांधारी के मन को बहलाने की चेष्टा करती रहती।
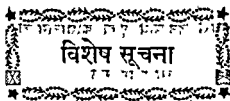
इसके आगे श्री नेमनाथ जी का विवाह देवकी का लाल गज सुकमाल को वर्णन महा सति द्रौपता का हरण श्री कृष्ण जी महाराज का धात्री खण्ड में जाना विजय प्राप्त करना और द्रौपता को वापिस लाना द्वारका नगरी दहन श्री नेमनाथ भगवान् का त्याग पाण्डवों की त्यागवृति मोक्ष गमन 'सती राजमती का' त्याग सती द्रौपता का त्याग और मोक्ष गमन इत्यादि जैन महाभारत के तृतीय भाग में पढ़ें।

कर दिया। हमारे शांति-दूत श्री कृष्ण को अपने ही दरबार में उसने हत्या करनी चाही हमारे मामा को उसने धोखा देकर अपने पक्ष मे लिया। युद्ध में बालक अभिमन्यु को अनीति से मरवाया। यह कितनी ही ऐसी बातें थी कि मेरे हृदय को छलनी कर गई थी। उसी की अनीतियों के फल स्वरूप मुझ से यह दुष्कर्म हुआ। इसलिए मुझे क्षमा कर दीजिए। मैं जीवन भर आपकी ऐसी सेवा करूंगा कि आपको पुत्र हीना होने का खेद ही नहीं रहेगा। मैं दुर्योधन को आप को नहीं दे सका तो इसके बदले, अपने आप को देता हूँ।" बाकि सर्वज्ञ देव का कथन है कि यह सामुदाणी कर्म होते हैं जो प्राणियों के कई कारणों से संहार होते हैं—

यह सुन गांधारी करुण स्वर में बोली—"बेटा! मुझे दुःख इस बात का है कि तुम लोगों ने मेरे सौ के सौ पुत्र मार डाले, एक तो छोड़ ही दिया होता, जिस पर हम सन्तोष कर लेते।"

फिर उस देवी ने युधिष्ठिर को अपने पास बुलाया। युधिष्ठिर कांपते हुए उसके सामने गए और हाथ जोड़कर खड़े हो गए। वे बहुत ही भय विह्वल हो रहे थे। बड़े ही नम्र शब्दों मे बोले—"देवी! जिस अत्याचारी ने आप के पुत्रों की हत्या कराई, वह यदि आप के शाप के योग्य हो तो शाप दे दीजिये। सचमुच मैं बड़ा कृतघ्न हूं। मैंने बड़ा पाप किया। आप से क्षमा मांगू तो किस मुंह से?" आखिर सामुदाणी कर्म ही होते हैं जो किसी समय जीव अशुभ भावना से बांधते है—

गांधारी को क्रोध आ रहा था, पर वह कुछ बोली नहीं। युधिष्ठिर की बातों से वह नम्र हो गई। इतने में ही द्रौपदी रोती हुई गांधारी के पास गई। उसे रोता देख गांधारी बोली—"बेटी! मेरी ही भांति तू भी दुखी है। पर विलाप करने से क्या होता है? तू मुझे इसके लिए दोषी समझ कर क्षमा कर दे।"

पाण्डव वहां से चले गए। गांधारी द्रौपदी को धैर्य बंधाती रही। कितना करुण दृश्य था वह, एक शोक विह्वल नारी दूसरी नारी को धैर्य बंधा रही थी, उस नारी को जो उसकी पत्नी थी जिस के प्रति गांधारी कुपित थी।

धृतराष्ट्र पाण्डवों को अपने साथ ले गए। एक बार पुनः हस्तिनापुर में उत्सव मनाया गया। बड़े ठाठ से युधिष्ठिर की सवारी निकली। और फिर युधिष्ठिर आनन्द पूर्वक राज करने लगे।

धृतराष्ट्र को वे सभी प्रकार का सुख देते थे। तो भी उसके मन की वेदना मिटती न थी। वे भूमि पर ही सोते थे और लम्बे लम्बे उपवास करते थे। कुन्ती गांधारी के मन को बहलाने की चेष्टा करती रहती।
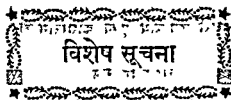
इसके आगे श्री नेमनाथ जी का विवाह देवकी का लाल गंज सुकमाल का वर्णन महा सति द्रोपता का हरण श्री कृष्ण जी महाराज का धात्री खण्ड में जाना विजय प्राप्त करना और द्रोपता को वापिस लाना द्वारका नगरी दहन श्री नेमनाथ भगवान् का त्याग पाण्डवों की संयमवर्ति मोक्ष गमन सती राजमती का त्याग सती द्रोपता का त्याग और मोक्ष गमन इत्यादि जैन महाभारत के तृतीय भाग में पढ़ें।

हमारे मौलिक प्रकाशन :—

संख्या	पुस्तक नाम	मूल्य
1	शुक्ल जैन रामायण (पूर्वार्द्ध)	3—0—0
2	,, ,, उत्तरार्द्ध	4—0—0
3	प्रधानाचार्य पूज्य सोहन लाल जी म० का आदर्श जीवन	4—0—0
4	पंजाब केशरी जैनाचार्य पूज्य काशीराम जी म० का आदर्श जीवन	3—0—0
5	शुक्ल जैन महाभारत प्रथम भाग ...	5—0—0
6	,, ,, द्वितीय ,, ...	5—0—0
7	धर्म दर्शन (दस धर्म विवेचन)	2—0—0
8	मुख्य तत्त्व चिंतामणि...	0-62 न.पै.
9	तत्त्व चिंतामणि भाग एक (विस्तार सहित) ...	0—75 ,,
10	,, ,, ,, दो ,, ,, ...	0—75 ,,
11	,, ,, ,, तीन ,, ,, ...	0—75 ,,
12	तैंतीस बोल ,, ,, ...	0—15 ,,

प्राप्ति स्थान

1 पूज्य सोहन लाल जैन रजोहरण पात्र भण्डार अम्बाला शहर (पंजाब)

2 पूज्य काशी राम स्मृति ग्रन्थ माला 12 सेडो हार्डिंग रोड नई देहली ।

प्राप्ति-स्थान

१ ला० टेकचन्द सुखदेव राज जैन
कोतवाली बाजार अम्बाला शहर (पंजाब)

२ ला० कान्ता प्रसाद जैन (जल्लाबादी)
कान्धला (मुजफ्फर नगर)

३ पूज्य सोहन लाल जैन पात्र भंडार
अम्बाला शहर (पंजाब)

४ श्री प्रीतम चन्द जैन
36 F कमला नगर, देहली

५ जिनेंद्र प्रिंटिंग प्रेस, राजपुरा
(पंजाब)